

मान्यवर

संगठन से सत्ता तक
(कांशीराम की राजनैतिक यात्रा)

अमिताभ कुमार



BlueRose ONE
Stories Matter

New Delhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS

India | U.K.

Copyright © Amitabh Kumar 2025

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assume no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



BlueRose ONE
Stories Matter
New Delhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS

www.BlueRoseONE.com

info@bluerosepublishers.com

+91 8882 898 898

+4407342408967

ISBN: 978-93-7139-361-4

Cover design: Daksh

Typesetting: Tanya Raj Upadhyay

First Edition: August 2025

मान्यवर:
संगठन से सत्ता तक
(कांशीराम की राजनैतिक यात्रा)

मान्यवर को श्रद्धांजलि

यह पुस्तक लिखते समय हर शब्द, हर पंक्ति के पीछे केवल एक ही प्रेरणा सजीव थी-मान्यवर कांशीराम का अद्वितीय संघर्ष, उनका असाधारण आत्मबल और उनका ऐतिहासिक दृष्टिकोण, जो भारतीय राजनीति को आमूलचूल परिवर्तन देने की क्षमता रखता था। यह पुस्तक मात्र एक लेखकीय प्रयास नहीं, बल्कि एक संकल्प है-उस महान आत्मा को सच्ची श्रद्धांजलि देने का, जिन्होंने भारत के बहुजन समाज को सामाजिक सम्मान, राजनैतिक भागीदारी और आत्मनिर्भरता का अद्वितीय मंत्र दिया।

कांशीराम ने सिर्फ नारे नहीं दिए, बल्कि उन नारों में जनचेतना की चिंगारी भर दी। उन्होंने हमें सिखाया कि संविधान की किताब में दर्ज अधिकार तब तक सिर्फ शब्द रहेंगे जब तक वे समाज के सबसे निचले तबके की जिन्दगी का हिस्सा न बनें। उन्होंने यह दिखाया कि लोकतंत्र में सत्ता की चाबी सबसे महत्वपूर्ण है, और वह चाबी हमें केवल संगठित संघर्ष और राजनैतिक जागरूकता से ही प्राप्त हो सकती है। उनका यह कथन कि “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” सिर्फ एक विचार नहीं, बल्कि क्रांति का आह्वान था।

उनका जीवन अपने-आप में एक युग था-एक ऐसा युग, जो बहुजन समाज की राजनैतिक चेतना, आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय के मूल्यों पर टिका हुआ था। उन्होंने BAMCEF, DS4 और बहुजन समाज पार्टी जैसे संगठनों की स्थापना कर बहुजन वर्ग के भीतर वह चेतना उत्पन्न की जो सदियों से दबाई गई थी। उनका प्रयास केवल राजनीति में हिस्सेदारी तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक

बहुजन वर्ग स्वयं अपने नेता नहीं चुनता, तब तक उनके मुद्दे केवल वायदों में रहेंगे, समाधान में नहीं बदलेंगे।

यह पुस्तक उनके विचारों को, उनके सिद्धांतों को, उनके आंदोलन को और उनके जीवन संघर्ष को शब्दबद्ध करने का एक प्रयास है। यह पुस्तक एक दस्तावेज़ है उस दर्शन की, जिसने सत्ता के ढांचे को उलटकर उस वर्ग को नेतृत्व में लाने का प्रयास किया, जिसे सदियों तक केवल अनुयायी माना गया। कांशीराम का जीवन एक आदर्श है, एक आंदोलन है, और एक ज्वाला है, जो तब तक बुझ नहीं सकती जब तक यह समाज समानता और न्याय से पूर्ण न हो जाए।

मैं इस पुस्तक को उस महान आत्मा को समर्पित करता हूँ, जिन्होंने दिखाया कि सत्ता में भागीदारी केवल एक संवैधानिक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की नींव है। जब तक इस देश में असमानता, जातिवाद और वंचना के तत्त्व विद्यमान रहेंगे, तब तक कांशीराम के विचार एक लौ की तरह जलते रहेंगे-प्रेरणा देते हुए, मार्गदर्शन करते हुए, और नए नेतृत्व को तैयार करते हुए।

— लेखक

समर्पण

इस पुस्तक को उन करोड़ों बहुजन समाज के लोगों को समर्पित करता हूँ, जिनकी आँखों में आज भी न्याय और समानता का सपना पलता है, लेकिन जिनकी हकीकत अभी भी भेदभाव, अत्याचार और संघर्षों से भरी हुई है।

आज़ादी के 75 वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन समाज के उस वर्ग के लिए, जो सदियों से वंचित रहा, यह आज़ादी अधूरी ही रही। जो अब भी अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं, जो अपने हक की ज़मीन पर खड़े होने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जो आज भी शिक्षा, रोजगार और बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं, यह पुस्तक उनके संघर्ष, उनके धैर्य और उनके अदम्य साहस को नमन करती है।

यह उन मेहनतकश हाथों को समर्पित है, जो आज भी अपने श्रम का पूरा मूल्य नहीं पाते। यह उन विद्यार्थियों के सपनों को समर्पित है, जिनकी प्रतिभा जाति के बंधनों में जकड़ी हुई है। यह उन माताओं और बहनों को समर्पित है, जिनका जीवन अभावों और सामाजिक असमानता के संघर्ष में बीत जाता है। यह उन युवाओं को समर्पित है, जिनकी योग्यता को जाति के नाम पर दरकिनार कर दिया जाता है।

संविधान ने हमें समानता का अधिकार दिया, लेकिन समाज ने हमें बराबरी का अवसर नहीं दिया। यह पुस्तक उस लड़ाई का एक दस्तावेज़ है, जो सत्ता के गलियारों से लेकर गाँव की गलियों तक, हर जगह लड़ी जा रही है। यह एक प्रयास है, उन अनकही कहानियों को सामने लाने का,

जो बताती हैं कि सत्ता में हिस्सेदारी के बिना समानता सिर्फ़ एक दिखावा है।

मैं इस पुस्तक को लिखते समय उन करोड़ों लोगों को नमन करता हूँ, जिन्होंने वर्षों तक संघर्ष किया, असमानता झेली, अन्याय सहे, लेकिन अपने आत्मसम्मान से समझौता नहीं किया। मैं स्व कांशीराम को इस समाज के लिए उनके संघर्ष, त्याग और अटूट साहस के लिए कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

यह पुस्तक केवल स्व कांशीराम जीवनी या उनके राजनैतिक जीवन का दस्तावेज़ नहीं है, बल्कि यह बहुजन समाज के लिए उनकी संघर्षगाथा को आगे बढ़ाने का एक प्रयास है। यह पुस्तक एक क्रांति का दस्तावेज़ है, एक चेतना का प्रकाशस्तंभ है।

- लेखक

लेखक परिचय

लेखक, एक भारतीय रेलवे यातायात सेवा (IRTS) अधिकारी, प्रशासनिक विशेषज्ञता को साहित्यिक प्रतिभा के साथ सहजता से मिश्रित करते हैं। शासन और नीति निर्माण के दायरे से परे, वे एक आकर्षक कहानीकार और विचारक के रूप में उभरते हैं, जो अपनी लेखनी के माध्यम से इतिहास, दर्शन, सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य और मानवीय भावनाओं की गहराइयों को जीवंत करते हैं। उनकी रचनाएँ न केवल बौद्धिक गहराई और कल्पनाशीलता का समृद्ध संगम प्रस्तुत करती हैं, बल्कि भारत के सामाजिक ताने-बाने और सांस्कृतिक विविधता को भी संवेदनशीलता के साथ उजागर करती हैं। उनकी प्रशंसित कृतियाँ-सरपंच, *Operation Log Out*, समाधि से राजयोग तक, *Bloody Merit Scholars*, *Mahant: The Godfather*, *Rainbow in White Shroud*, *GEN Z: Love Lost in Transaction*, *Kumbh Diaries: A Research Journal*, और कुम्भ डायरीज: एक शोध ग्रन्थ-उनके व्यापक दृष्टिकोण और साहित्यिक कौशल के प्रमाण हैं। इन रचनाओं ने उन्हें हिंदी और अंग्रेजी साहित्य के पाठकों के बीच सम्मानजनक स्थान दिलाया है, जो सामाजिक परिवर्तन, आध्यात्मिक अन्वेषण और समकालीन चुनौतियों पर उनके गहन चिंतन को दर्शाती हैं।

आगामी कृतियाँ

• *Pahalgam and Sindoore: Technology meets Terror*

आतंकवाद, तकनीकी प्रगति और मानवीय सहनशक्ति के परस्पर प्रभाव को उजागर करने वाली एक रोमांचक कथा।

• ***Indian Railway: From Steam to Speed***

भारतीय रेलवे के ऐतिहासिक विकास और इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव का एक जीवंत और आकर्षक विवरण।

• ***Aghori and Manikarnika: The Cosmic Dance of Death***

अघोरी परंपराओं और मणिकर्णिका घाट के आध्यात्मिक महत्व का एक गहन और रहस्यमय अन्वेषण।

• **राजनाथ सिंह: आधुनिक भारत के लौह पुरुष**

समकालीन भारत को आकार देने वाले एक अनुभवी राजनेता का प्रेरणादायक चित्रण।

• ***Rohith Vemula Files: My Birth is My Fatal Accident***

भारतीय शैक्षणिक संस्थानों में जाति आधारित भेदभाव की मार्मिक कहानियों का एक शक्तिशाली दस्तावेजीकरण।

• **मान्यवर: संगठन से सत्ता तक (कांशीराम की राजनैतिक यात्रा)**

संगठनात्मक संघर्षों से लेकर सत्ता के शिखर तक की कांशीराम की प्रेरणादायक और क्रांतिकारी राजनैतिक यात्रा का विस्तारपूर्वक विश्लेषण।

अन्य उल्लेखनीय योगदान

लेखक का प्रभाव उनकी साहित्यिक और प्रशासनिक उपलब्धियों से कहीं आगे तक फैला है। एक कुशल निशानेबाज के रूप में, उन्होंने राइफल और रिवॉल्वर शूटिंग में उत्कृष्टता के लिए राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त की है, जो उनकी अनुशासित और लक्ष्य-उन्मुख प्रकृति को दर्शाती है।

सामाजिक सेवा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता समान रूप से प्रेरणादायक है- सड़क पर रहने वाले बच्चों के पुनर्वास में उनके अथक प्रयासों ने हजारों बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और सम्मानजनक जीवन के अवसर प्रदान किए हैं। बाल कल्याण और शिक्षा पर केंद्रित प्रमुख गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) के साथ उनकी प्रभावशाली साझेदारियों ने सामाजिक सेवा के क्षेत्र में व्यापक राष्ट्रीय प्रशंसा प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त, उनकी बौद्धिक और रचनात्मक ऊर्जा सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है, जिसने उन्हें न केवल एक लेखक के रूप में बल्कि एक सामाजिक सुधारक और दूरदर्शी विचारक के रूप में भी स्थापित किया है।

लेखक की ऑनलाइन उपस्थिति

अपनी भावपूर्ण लेखनी, प्रशासनिक नेतृत्व और सामाजिक पहलों के माध्यम से, अमिताभ कुमार विविध वैश्विक पाठक और समुदाय के साथ जुड़ते हैं। उनकी रचनाएँ, विचार और सामाजिक प्रयास डिजिटल मंचों पर व्यापक रूप से चर्चा का विषय हैं, जहाँ वे सामाजिक न्याय, शिक्षा और सांस्कृतिक विरासत जैसे विषयों पर संवाद को प्रेरित करते हैं। उनकी नवीनतम रचनाओं, विचारों और पहलों से अपडेट रहने के लिए, निम्नलिखित मंचों पर उनसे संपर्क किया जा सकता है:

- X: @authoramitabh
- फेसबुक: @amitabhauthor
- इंस्टाग्राम: @authoramitabh
- लिंकडइन: @authoramitabh
- यूट्यूब: @amitabhauthor
- वेबसाइट: www.amitabhkumar.in

- ईमेल: dak@amitabhkumar.im
- ऐप:
- एंड्रॉइड: AmitabhKumar
- iOS: AmitabhKumar

पुस्तक की भूमिका

भारतीय राजनीति का इतिहास ऐसे अनेक नेताओं से भरा पड़ा है जिन्होंने सत्ता में प्रवेश के लिए वंश, धन या जातिगत प्रभाव का सहारा लिया, लेकिन कुछ विरले नेता ऐसे भी हुए जिन्होंने अपनी विचारशीलता, संगठन निर्माण की क्षमता और ज़मीनी संघर्ष के बल पर राजनीति की दिशा बदल दी। कांशीराम का नाम इन्हीं विरले क्रांतिकारियों में सबसे अग्रणी है। यह पुस्तक “मान्यवर: संगठन से सत्ता तक” उसी विचारधारा, संघर्ष और सामाजिक पुनरुत्थान की जीवंत यात्रा का दस्तावेज़ है, जो किसी एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं, बल्कि पूरे बहुजन आंदोलन का वैचारिक इतिहास है। यह ग्रंथ उस दौर को सामने लाता है जब भारतीय राजनीति में बहुजन समाज हाशिए पर था, आवाज़विहीन था और प्रतिनिधित्व के नाम पर छलावों का शिकार था। कांशीराम ने न केवल इस शोषित वर्ग को अपनी राजनैतिक पहचान दी, बल्कि उन्हें संगठित कर यह आत्मविश्वास भी दिलाया कि सत्ता के उच्चतम शिखरों तक उनकी पहुँच भी संभव है।

यह पुस्तक गहराई से विश्लेषण करती है कि कैसे कांशीराम ने जातिगत जनगणना, संविधान की व्याख्या, और जनसंख्या अनुपात जैसे तथ्यों को एक सशक्त राजनैतिक अस्त्र में परिवर्तित किया, और कैसे उन्होंने सत्ता और संगठन के बीच ऐसा संतुलन स्थापित किया जिससे बहुजन राजनीति को संस्थागत रूप मिल सका। यह केवल घटनाओं का कालक्रम नहीं है, बल्कि हर आंदोलन के पीछे की रणनीति, हर नारे के पीछे की वैचारिक गहराई, और हर संगठन-BAMCEF, DS4, BSP-की बुनियादी

संरचना का आलोचनात्मक विश्लेषण है। साथ ही, इसमें मायावती के नेतृत्व में BSP में आए वैचारिक और रणनीतिक बदलावों की भी गहराई से पड़ताल की गई है-चाहे वह “सर्वजन” की नीति हो, ब्राह्मण-बहुजन गठबंधन हो या संगठनात्मक केंद्रीकरण-यह सभी बदलाव किस प्रकार मूल विचारधारा से टकराते हैं, और किस हद तक कांशीराम की विरासत को आगे ले जाते हैं, यह पुस्तक इस पर भी स्पष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

यह ग्रंथ उन सभी पाठकों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है जो भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय, सत्ता-संघर्ष और बहुजन चेतना की गहराइयों को समझना चाहते हैं-चाहे वे युवा हों, शोधार्थी हों, राजनैतिक कार्यकर्ता हों या सामाजिक आंदोलनों से जुड़े नागरिक। यह पुस्तक अतीत का निष्क्रिय अध्ययन नहीं, बल्कि वर्तमान के साथ एक सजीव संवाद है-एक ऐसा बौद्धिक उपकरण, जो भविष्य की बहुजन राजनीति को दिशा देने में सक्षम है। कांशीराम का सपना तब तक अधूरा है जब तक बहुजन समाज को उसकी संख्या के अनुपात में निर्णय लेने की शक्ति नहीं मिलती, और इसीलिए यह पुस्तक केवल कांशीराम की वैचारिक यात्रा नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में समावेश, समानता और सहभागिता की वह चेतना है, जो हर समय, हर युग और हर संघर्ष में प्रासंगिक बनी रहेगी।

अनुक्रमणिका

अध्याय 1: जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि.....	1
अध्याय 2: बचपन और प्रारंभिक प्रभाव.....	5
अध्याय 3: शिक्षा और कॉलेज जीवन.....	9
अध्याय 4: डॉ. अंबेडकर के विचारों से पहली मुलाकात	23
अध्याय 5: कांशीराम का राजनैतिक सशक्तिकरण की ओर बढ़ता झुकाव	31
अध्याय 6: अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए शुरुआती आंदोलन.....	40
अध्याय 7: 1978 में बामसेफ (BAMCEF) की स्थापना.....	50
अध्याय 8: सरकारी कर्मचारियों को संगठित करने में बामसेफ की भूमिका.....	66
अध्याय 9: 1981 में 'डीएस4' (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) की स्थापना	76
अध्याय 10: डीएस4 का नारा “-वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा”	86
अध्याय 11 : 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना.....	99
अध्याय 12: बीएसपी के सामने शुरुआती चुनावी चुनौतियाँ.....	111
अध्याय 13: बहुजन समाज पार्टी की वैचारिक नींव.....	120
अध्याय 14: अंबेडकर और फुले के विचारों का बीएसपी पर प्रभाव.....	133
अध्याय 15: बहुजन एकता को मजबूत करने का विचार.....	144

अध्याय 16: कांशीराम की अनूठी राजनैतिक रणनीति	161
अध्याय 17: बहुजन पहचान का निर्माण: एक ऐतिहासिक और राजनैतिक विश्लेषण	172
अध्याय 18: ओबीसी, एससी, एसटी और अल्पसंख्यकों की भागीदारी	187
अध्याय 19: महिलाओं और युवाओं को राजनीति में सक्रिय करना	205
अध्याय 20: सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीति का विकास	217
अध्याय 21: BSP की राजनीति में ज़मीनी कार्यकर्ताओं की भूमिका	222
अध्याय 22: उत्तर प्रदेश में BSP की पहली जीत और कां शीराम की ऐतिहासिक भूमिका	233
अध्याय 23: मुलायम सिंह यादव के साथ गठबंधन – समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी का मिलन	246
अध्याय 24: 1995 का गेस्ट हाउस कांड और राजनैतिक असर ..	252
अध्याय 25: मायावती का कांशीराम के नेतृत्व में उभार	257
अध्याय 26: 1995 में मायावती का पहली बार मुख्यमंत्री बनना और कांशीराम की भूमिका	274
अध्याय 27: राजनैतिक उथल-पुथल के दौरान कांशीराम की भूमिका	280
अध्याय 28: उत्तर प्रदेश के बाहर बीएसपी का प्रभाव (मध्य प्रदेश, पंजाब, बिहार)	296
अध्याय 29: राष्ट्रीय राजनीति में स्थान बनाने की चुनौतियाँ और कांशीराम की रणनीति	301
अध्याय 30: मुख्यधारा की पार्टियों से आलोचना और विरोध	306

अध्याय 31: राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन राजनीति में बीएसपी की भूमिका	310
अध्याय 32: स्वास्थ्य समस्याएँ और सक्रिय राजनीति से कांशीराम की दूरी	316
अध्याय 33: मायावती को नेतृत्व सौंपने का निर्णय	327
अध्याय 35 : कांशीराम के निधन के बाद बहुजन राजनीति में शून्यता	345
अध्याय 36: मायावती के नेतृत्व में कांशीराम की विचारधारा का विस्तार	358
अध्याय 37: मायावती के नेतृत्व में बदलाव और आलोचनाएँ....	379
अध्याय 38: भारतीय राजनीति में बहुजन आंदोलन की नई दिशा	384
अध्याय 39: प्रेरणादायक युवा बहुजन नेताओं की भूमिका	388
अध्याय 40: बहुजन नेतृत्व द्वारा सरकार बनाने का सपना	404
अध्याय 41: जातिगत शोषण के विरुद्ध संघर्ष और कांशीराम की भूमिका	412
अध्याय 42: अन्य बहुजन नेताओं जैसे जगजीवन राम से मतभेद और कांशीराम की स्वतंत्र राजनैतिक धारा	417
अध्याय 43: आरक्षण नीति पर कांशीराम का दृष्टिकोण	421
अध्याय 44: बहुजनों के आर्थिक सशक्तिकरण की आवश्यकता और कांशीराम की दृष्टि	426
अध्याय 45: सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान आंदोलन में कांशीराम की भूमिका	431
अध्याय 46: बहुजन सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका और कांशीराम का दृष्टिकोण	450

अध्याय 47: सामाजिक सुधार से अधिक राजनैतिक सशक्तिकरण की प्राथमिकता और कांशीराम की दृष्टि.....	455
अध्याय 48: कांग्रेस और बीजेपी की बहुजन विरोधी नीतियों की आलोचना और कांशीराम का प्रतिरोध.....	465
अध्याय 49: “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” – कांशीराम का सिद्धांत	471
अध्याय 50: अधूरे कार्यों की समीक्षा और भविष्य में बहुजन आंदोलनों की संभावनाएँ	476
अध्याय 51: बहुजन नेतृत्व द्वारा सरकार बनाने का सपना	498

अध्याय 1: जन्म और पारिवारिक पृष्ठभूमि

जन्म और सामाजिक परिदृश्य

कांशीराम का जन्म 15 मार्च 1934 को पंजाब राज्य के रोपड़ जिले के खवासपुर नामक गाँव में हुआ, एक ऐसे दौर में जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था और समाज जातिगत शोषण के अंधकार में डूबा हुआ था। उस समय भारत के सामाजिक ताने-बाने में जाति एक गहरे विभाजन की रेखा के रूप में मौजूद थी। बहुजन समाज, जिनमें अनुसूचित जातियाँ, पिछड़े वर्ग और अन्य वंचित समुदाय शामिल थे, उन्हें शैक्षिक, आर्थिक, धार्मिक और प्रशासनिक संसाधनों से वंचित रखा गया था। गाँवों में उनके लिए अलग बस्तियाँ होती थीं, मंदिरों और स्कूलों में उनका प्रवेश निषिद्ध था, और वे सामाजिक अवसरों में दूसरे दर्जे के नागरिक की तरह व्यवहार झेलते थे। कांशीराम का जन्म एक ऐसे पारिवारिक और सामाजिक ढाँचे में हुआ, जिसमें समानता केवल एक आदर्श थी, वास्तविकता नहीं। यह सामाजिक भेदभाव उनकी चेतना को प्रारंभ से ही प्रभावित करता रहा और आगे चलकर उनके संघर्ष और आंदोलन का मूल आधार बना।

परिवार की जातीय पहचान और सामाजिक स्थिति

कांशीराम का परिवार रामदासिया समुदाय से था, जो पंजाब में अनुसूचित जाति के अंतर्गत आता है और ऐतिहासिक रूप से सामाजिक व्यवस्था में 'अस्पृश्य' माने जाने वाले वर्गों में गिना जाता है। यह समुदाय पारंपरिक रूप से चमड़ा शोधन, बुनाई, बढ़ईगिरी जैसे शिल्प कार्यों में संलग्न रहा

था, जिसे ऊँची जातियाँ 'अपवित्र' मानती थीं। गाँवों में इन समुदायों को सामाजिक जीवन की मुख्यधारा से अलग-थलग रखा जाता था। उनकी बस्तियाँ गाँव के किनारे होती थीं, उनका पानी पीने के लिए सार्वजनिक कुओं से उपयोग करना मना होता था, और वे अपने बच्चों को उच्च जातियों के बच्चों के साथ स्कूल भेजने में भी असमर्थ होते थे। सामाजिक मेलजोल और विवाह जैसे अवसरों पर भी इन पर अघोषित पाबंदियाँ थीं। इस प्रकार की सामाजिक सीमाओं ने कांशीराम को उस जातिगत अन्याय का गहरा अनुभव दिया, जिससे उन्होंने लड़ने की ठान ली।

परिवार की आर्थिक स्थिति

कांशीराम का परिवार आर्थिक रूप से साधारण लेकिन आत्मसम्मान से भरपूर था। उनके पिता हरि सिंह एक मेहनती और स्वाभिमानी व्यक्ति थे, जो चाहते थे कि उनके बच्चे शिक्षा प्राप्त करें और समाज में एक गरिमामय स्थान हासिल करें। आर्थिक सीमाओं के बावजूद, उन्होंने शिक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और यह विश्वास रखा कि ज्ञान के माध्यम से ही जाति व्यवस्था को चुनौती दी जा सकती है। उनकी माता बीशनी देवी एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं, जिन्होंने कांशीराम को नैतिकता, संघर्ष और सेवा के मूल्यों से परिचित कराया। घर में सीमित साधनों के बावजूद यह विश्वास था कि आत्मसम्मान और संघर्ष से समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह पारिवारिक परिवेश ही आगे चलकर कांशीराम की विचारधारा की नींव बना।

बचपन में जातिगत भेदभाव का अनुभव

कांशीराम के बचपन के अनुभवों ने उन्हें जाति आधारित अन्याय के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराया। गाँव में उनका परिवार अलग बस्ती

में रहता था, जहाँ से मुख्य गाँव में प्रवेश करना उनके लिए सीमित या निषिद्ध था। उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता था, स्कूल में बैठने की जगह पीछे दी जाती थी, और कई बार शिक्षक भी उनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करते थे। किसी भी सार्वजनिक आयोजन या मेले में उन्हें अलग पंक्ति में खड़ा किया जाता था या निम्न स्थानों पर बैठाया जाता था। एक बार जब कांशीराम ने गाँव के एक सामूहिक भोज में शामिल होने की इच्छा जताई, तो उन्हें अपमानित कर निकाल दिया गया। इस तरह के अनुभवों ने उनके भीतर गहरा रोष और सामाजिक चेतना पैदा की। उन्होंने जल्दी ही समझ लिया कि समाज में समानता केवल कानून की किताबों में है, व्यवहार में नहीं।

परिवार में आत्मसम्मान और संघर्ष की भावना

कांशीराम के माता-पिता ने न केवल सामाजिक अन्याय को देखा, बल्कि उसका साहसपूर्वक सामना भी किया। उनके पिता हमेशा बच्चों को यह सिखाते थे कि झुकने के बजाय लड़ने में सम्मान है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि जाति व्यवस्था से बाहर निकलने का रास्ता शिक्षा और आत्मबल से ही संभव है। उनकी माँ बीशनी देवी ने उन्हें धर्म और नैतिकता का पाठ पढ़ाया, लेकिन यह भी सिखाया कि धर्म का उद्देश्य भेदभाव नहीं, समता है। उन्होंने अपने बच्चों को बताया कि जाति नहीं, कर्म व्यक्ति की पहचान होनी चाहिए। यही आत्मसम्मान और संघर्ष की भावना कांशीराम की वैचारिक यात्रा का पहला कदम बनी।

पारिवारिक धार्मिक आस्थाएँ और प्रभाव

कांशीराम का परिवार सिख धर्म में आस्था रखता था, जो औपचारिक रूप से जातिवाद का विरोध करता है। लेकिन व्यवहार में सिख समाज के

भीतर भी जातिगत भेदभाव स्पष्ट रूप से मौजूद था। रामदासिया सिखों को गुरुद्वारों में अलग बैठाया जाता था, उन्हें प्रमुख धार्मिक पदों से वंचित रखा जाता था, और सामाजिक आयोजनों में उन्हें सीमित भूमिका दी जाती थी। यह विरोधाभास कांशीराम को गहराई से प्रभावित करता रहा। उन्होंने महसूस किया कि केवल धार्मिक विश्वास या संतों की वाणी से सामाजिक समता नहीं लाई जा सकती। इसके लिए संगठित सामाजिक और राजनैतिक प्रयास आवश्यक हैं। बाद में, उन्होंने डॉ. अंबेडकर, गुरु रविदास और संत कबीर के विचारों को पढ़ा और उनमें गहरी प्रेरणा पाई।

जन्म से मिले सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जागरूकता

कांशीराम ने बहुत कम उम्र में यह समझ लिया था कि सामाजिक व्यवस्था उनके जैसे लाखों लोगों के लिए न्याय नहीं, अपमान और शोषण का माध्यम है। उन्होंने यह अनुभव किया कि अगर बदलाव लाना है, तो अकेले सफल हो जाने से कुछ नहीं होगा। परिवर्तन तभी संभव है जब पूरी बहुजन जातियाँ संगठित होकर अपनी पहचान, अधिकार और सत्ता के लिए संघर्ष करें। इस चेतना ने उन्हें केवल एक विद्यार्थी नहीं, बल्कि एक सामाजिक योद्धा बनने के मार्ग पर अग्रसर किया। उन्होंने यह निर्णय कर लिया था कि उनका जीवन केवल व्यक्तिगत सफलता नहीं, बल्कि सामूहिक मुक्ति के लिए समर्पित रहेगा।

अध्याय 2: बचपन और प्रारंभिक प्रभाव

गाँव में जातिगत भेदभाव का अनुभव

कांशीराम का जन्म 15 मार्च 1934 को पंजाब के रोपड़ जिले के खवासपुर गाँव में एक दलित परिवार में हुआ था। उनका परिवार रामदासिया सिख समुदाय से था, जिसे भारतीय समाज में अनुसूचित जाति के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। यह वह समय था जब भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव की जड़ें अत्यंत गहरी थीं। गाँवों में दलित समुदाय के लोगों को सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक रूप से निचले पायदान पर रखा जाता था।

गाँव की संरचना इस प्रकार थी कि ऊँची जातियों को सभी सार्वजनिक संसाधनों पर विशेषाधिकार प्राप्त थे - जैसे सार्वजनिक कुएँ, मंदिर, चौपाल और स्कूल। दलित समुदाय के लोग इन स्थानों पर प्रवेश नहीं कर सकते थे। यदि कोई दलित व्यक्ति गलती से ऊँची जातियों के कुएँ से पानी ले लेता, तो पूरे समुदाय को इसका सामाजिक दंड भुगतना पड़ता था। धार्मिक आयोजनों, त्योहारों और सामाजिक समारोहों में दलितों की भागीदारी सीमित और अपमानजनक होती थी।

कांशीराम ने अपने बचपन में यह सब प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया। उन्होंने अपने माता-पिता और समुदाय के अन्य सदस्यों को बार-बार अपमानित होते देखा। उन्होंने समझ लिया कि यह केवल सामाजिक

परंपरा नहीं, बल्कि एक सुनियोजित सामाजिक अन्याय है जिसे चुनौती देना आवश्यक है। यही अनुभव आगे चलकर उनके संघर्ष की प्रेरणा बना।

परिवार में आत्मसम्मान और संघर्ष की भावना

कांशीराम का परिवार अत्यंत साधारण था, लेकिन आत्मसम्मान और संघर्ष की भावना से भरपूर था। उनके पिता हरि सिंह मेहनती और आत्मनिर्भर व्यक्ति थे। वे शारीरिक श्रम करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे, लेकिन कभी भी ऊँची जातियों के सामने झुकते नहीं थे। उनका मानना था कि इंसान की इज्जत उसकी मेहनत और ईमानदारी में होती है, न कि उसकी जाति में।

उनकी माता बीशनी देवी धार्मिक और नैतिक मूल्यों से जुड़ी महिला थीं। उन्होंने अपने बच्चों को धार्मिकता के साथ आत्मसम्मान, नैतिकता और सामाजिक न्याय की शिक्षा दी। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि चाहे दुनिया कितना भी अन्याय करे, एक दलित व्यक्ति को कभी अपना आत्मगौरव नहीं खोना चाहिए।

कांशीराम के घर का वातावरण ऐसा था जिसमें बच्चों को शुरू से ही आत्मनिर्भर बनने और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की शिक्षा दी जाती थी। यह वातावरण उनके व्यक्तित्व के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है। उनके माता-पिता के विचारों और संघर्ष की भावना ने उन्हें समाज के अन्याय को सहने नहीं, बल्कि उसे बदलने की प्रेरणा दी।

विद्यालय में भेदभाव का अनुभव

कांशीराम जब गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ने गए, तो वहाँ भी उन्हें जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। स्कूल में दलित बच्चों को ऊँची जातियों के बच्चों से अलग बैठाया जाता था। पीने का पानी, भोजन और

बैठने की जगह तक अलग होती थी। यदि कोई दलित बच्चा ऊँची जाति के छात्र की सीट पर बैठ जाता, तो उसे सार्वजनिक रूप से डांटा और दंडित किया जाता था।

शिक्षकों का व्यवहार भी पक्षपाती था। वे दलित छात्रों को कमजोर और अकुशल मानते थे, चाहे वे पढ़ाई में कितने भी अच्छे क्यों न हों। कांशीराम ने इस मानसिक भेदभाव को भी अनुभव किया। उन्हें यह महसूस होने लगा कि जाति के आधार पर किया गया यह व्यवहार केवल शिक्षा को बाधित नहीं करता, बल्कि बच्चों की आत्मा और आत्मविश्वास को भी तोड़ता है।

इन अनुभवों ने कांशीराम के भीतर शिक्षा की शक्ति के प्रति एक मजबूत विश्वास उत्पन्न किया। उन्होंने समझा कि यदि इस अन्याय को मिटाना है, तो सबसे पहले शिक्षा को हथियार बनाना होगा।

सामाजिक असमानता को लेकर बढ़ती संवेदनशीलता

गाँव के सामाजिक ढाँचे में कांशीराम ने देखा कि दलित समुदाय को हर स्तर पर दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता था। उन्हें पंचायतों में बोलने का अधिकार नहीं था, और सरकारी योजनाओं का लाभ भी उन तक नहीं पहुँचता था। सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक रूप से उन्हें लगातार वंचित किया जाता था।

उन्होंने देखा कि यह असमानता केवल सामाजिक नहीं, बल्कि राजनैतिक और आर्थिक भी थी। जाति के नाम पर विशेषाधिकार केवल कुछ जातियों तक सीमित था, जबकि दलितों को योजनाओं, नौकरी, और शिक्षा से दूर रखा जाता था।

इन अनुभवों से कांशीराम के भीतर एक ऐसी संवेदनशीलता विकसित हुई, जो केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं थी, बल्कि एक सक्रिय जागरूकता और संगठनात्मक चेतना में बदल गई। वे यह महसूस करने लगे कि जातिवाद केवल सामाजिक बुराई नहीं है, बल्कि सत्ता और संसाधनों की असमान बँटवारे का उपकरण भी है।

आत्मसम्मान और विद्रोही प्रवृत्ति का विकास

कांशीराम के भीतर आत्मसम्मान की भावना उनके परिवार और अनुभवों से उत्पन्न हुई थी, लेकिन समाज के निरंतर भेदभावपूर्ण व्यवहार ने उसमें विद्रोही चेतना को जन्म दिया। उन्होंने महसूस किया कि यदि कोई व्यक्ति अन्याय के विरुद्ध आवाज नहीं उठाता, तो वह भी उस अन्याय का भागीदार बन जाता है।

उन्होंने यह तय किया कि वे अन्याय के विरुद्ध चुप नहीं रहेंगे। उन्होंने अपने भीतर एक विद्रोही दृष्टिकोण विकसित किया - जो नकारात्मक नहीं, बल्कि रचनात्मक था। यह दृष्टिकोण आगे चलकर एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का आधार बना।

कांशीराम ने महसूस किया कि व्यक्तिगत सफलता तब तक अधूरी है, जब तक पूरा दलित समाज संगठित होकर अपनी गरिमा के लिए नहीं लड़ता। उन्होंने अपने जीवन को इसी उद्देश्य के लिए समर्पित कर दिया।

अध्याय 3: शिक्षा और कॉलेज जीवन

प्रारंभिक शिक्षा और सामाजिक बाधाएँ

कांशीराम की प्रारंभिक शिक्षा पंजाब के रोपड़ जिले के खवासपुर गाँव के सरकारी प्राथमिक विद्यालय में हुई। यह वह समय था जब भारत औपनिवेशिक शासन के अंतिम दौर से गुजर रहा था और भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव की जड़ें अत्यंत गहरी थीं। स्कूलों में जाति न केवल सामाजिक पहचान थी, बल्कि वह व्यवहार, अवसर और सम्मान का भी निर्धारक बन चुकी थी। चूंकि कांशीराम रामदासिया सिख समुदाय से थे, जो अनुसूचित जाति (दलित) में आता था, इसलिए उन्हें विद्यालय में शुरुआती दिनों से ही जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। स्कूल में दलित छात्रों को अलग स्थान पर बिठाया जाता था - अक्सर फर्श या जूट की चटाई पर - जबकि सवर्ण छात्रों को बेंच और डेस्क जैसी सुविधाएँ मिलती थीं। उनके लिए अलग बर्तन रखे जाते थे, जिससे वे पानी पी सकें, लेकिन उन बर्तनों को सवर्ण छात्र या शिक्षक छूते तक नहीं थे। यदि कोई दलित छात्र गलती से सवर्ण छात्र के बर्तन या किताब को छू लेता, तो उसे “अपवित्र” कहा जाता था, और सार्वजनिक रूप से डांट या दंडित किया जाता था। इस तरह की घटनाएँ विद्यालयों में आम थीं और यह भेदभाव शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक रूप से बच्चों की चेतना को गहराई तक प्रभावित करता था।

शिक्षकों का व्यवहार भी दलित छात्रों के प्रति तिरस्कारपूर्ण होता था। वे अक्सर उन्हें “नीच जाति के” कहकर पुकारते थे या नाम से नहीं, बल्कि

जातिसूचक शब्दों या रोल नंबर से संबोधित करते थे। शिक्षकों द्वारा यह स्पष्ट किया जाता था कि पढ़ाई लिखाई सवर्णों का अधिकार है, और दलितों को शिक्षा की बजाय परंपरागत श्रम-जैसे चमड़े का काम, कृषि मज़दूरी या सफाई कार्य-ही करना चाहिए। दलित छात्रों को कम महत्व देकर स्कूल प्रशासन यह संकेत देता था कि वे न तो प्रतिभाशाली हैं, न ही योग्य। इसके चलते दलित बच्चे अक्सर आत्मग्लानि और हीनता का शिकार हो जाते थे, जिससे उनकी प्रतिभा का विकास बाधित होता था। पाठ्यपुस्तकों और अन्य शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता भी समान नहीं थी। दलित छात्रों को पुरानी किताबें, टूटे हुए स्लेट और सीमित पाठ्यसामग्री दी जाती थी, जबकि सवर्ण छात्रों को सरकारी अनुदान और स्कूल स्टाफ की प्राथमिकता का सीधा लाभ मिलता था।

इन सभी बाधाओं और अपमानों के बावजूद कांशीराम ने शिक्षा को केवल निजी उन्नति का माध्यम नहीं, बल्कि पूरे दलित समुदाय की मुक्ति का मार्ग माना। उन्होंने अपने भीतर एक अडिग संकल्प विकसित किया कि वे समाज द्वारा थोपी गई हीनता को स्वीकार नहीं करेंगे। विद्यालय के इस विषाक्त वातावरण में भी उन्होंने शिक्षा को हथियार की तरह अपनाया, क्योंकि उन्हें महसूस हो गया था कि यदि दलित समाज को सामाजिक न्याय और सम्मान प्राप्त करना है, तो यह केवल संघर्ष और संगठन से नहीं, बल्कि ज्ञान और शिक्षा के माध्यम से ही संभव होगा। यहीं से उनके जीवन में विद्रोह का बीज बोया गया, जो बाद में क्रांति के वृक्ष में बदलने वाला था।

शिक्षा के प्रति परिवार का दृष्टिकोण

कांशीराम का परिवार भले ही आर्थिक रूप से संपन्न नहीं था, लेकिन उसकी वैचारिक संपन्नता और आत्मसम्मान की भावना अत्यंत प्रबल

थी। उनके पिता हरि सिंह एक मेहनती और सादा जीवन जीने वाले व्यक्ति थे, जो सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भरता में विश्वास रखते थे। उन्होंने कभी औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, लेकिन यह समझते थे कि समाज में बदलाव लाने का एकमात्र स्थायी उपाय शिक्षा है। वे अपने बेटे को रात में लालटेन की रोशनी में पढ़ते हुए देखते थे, और उसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते थे। खेतों में काम करने के बाद भी वे कांशीराम की पढ़ाई के लिए समय निकालते थे, और घर के माहौल को हमेशा शिक्षोपयोगी बनाए रखते थे।

माता बीशनी देवी धार्मिक महिला थीं, लेकिन उनकी धार्मिकता केवल कर्मकांडों में नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा और आत्मसम्मान की भावना में निहित थी। वे कांशीराम को बचपन से ही यह सिखाती थीं कि “धर्म वही है जो तुम्हें अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने का साहस दे, और शिक्षा वही है जो तुम्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाए।” बीशनी देवी का जीवन भी कठिनाइयों से भरा था, लेकिन उन्होंने अपने बच्चों को कभी निराशा नहीं सिखाई। उन्होंने त्याग और सेवा के माध्यम से उन्हें यह सिखाया कि आत्मसम्मान जीवन की सबसे बड़ी पूँजी होती है।

परिवार की आर्थिक स्थिति बेहद सामान्य थी। कई बार घर में भोजन की समस्या थी, तो कभी स्कूल की फीस भरना असंभव लगता था। लेकिन ऐसी स्थितियों में बीशनी देवी अपने गहने गिरवी रखतीं या पिता हरि सिंह अतिरिक्त मजदूरी करते थे, ताकि कांशीराम की पढ़ाई में कोई रुकावट न आए। एक बार फीस भरने के लिए उनके पिता ने गाँव की ज़मींदारी के एक हिस्से में मजदूरी की, केवल इसलिए कि उनका बेटा स्कूल न छोड़े। इस प्रकार, उनके माता-पिता ने यह सुनिश्चित किया कि गरीबी कभी उनके बेटे की शिक्षा के रास्ते में बाधा न बने।

परिवार का यह दृष्टिकोण केवल कांशीराम के लिए नहीं था, बल्कि उस समय के दलित समाज के लिए एक आदर्श था, जो शिक्षा को एक विशेषाधिकार नहीं, बल्कि परिवर्तन का औजार मानता था। कांशीराम के परिवार ने शिक्षा को केवल नौकरी पाने का माध्यम नहीं माना, बल्कि उन्होंने उसे दलितों के आत्मगौरव, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के संघर्ष का आधार माना। यह पारिवारिक सोच ही आगे चलकर कांशीराम के सामाजिक नेतृत्व, संगठन निर्माण और आंदोलन की नींव बनी। उनके माता-पिता की यह दूरदृष्टि थी कि उन्होंने उस बच्चे को शिक्षा दिलाई, जो आगे चलकर पूरे दलित समुदाय के लिए चेतना और परिवर्तन का प्रतीक बना।

उच्च शिक्षा की ओर बढ़ता कदम

प्रारंभिक शिक्षा की विषम परिस्थितियों को पार करते हुए जब कांशीराम ने हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की, तो यह न केवल उनके लिए बल्कि उनके परिवार और समूचे दलित समाज के लिए गर्व का विषय था। शिक्षा की पहली सीढ़ी पार करना उस समय एक दलित युवक के लिए साधारण उपलब्धि नहीं थी। समाज की दृष्टि में यह एक सीमित वर्ग का अधिकार था, और इस अधिकार का अतिक्रमण करने वाला दलित युवक तत्काल संदेह और बहिष्कार का पात्र बन जाता था। लेकिन कांशीराम की यात्रा यहीं नहीं रुकी। वे आगे बढ़े और गवर्नमेंट कॉलेज, रोपड़ में (विज्ञान स्नातक) की डिग्री के लिए नामांकन लिया। यह प्रवेश उनके जीवन में एक बड़ा मोड़ था।

कॉलेज की यह दुनिया उनके लिए भौगोलिक रूप से जितनी नई थी, मानसिक और सामाजिक रूप से उससे भी अधिक चुनौतीपूर्ण थी। गाँव के सरकारी स्कूलों की तुलना में कॉलेज का वातावरण अपेक्षाकृत

आधुनिक और संसाधन-संपन्न था, लेकिन सामाजिक संरचना और जातिगत सोच अभी भी वहीं थी। सवर्ण छात्र कॉलेज के शैक्षणिक और सामाजिक गतिविधियों में सहज रूप से भाग लेते थे, जबकि दलित छात्रों को 'आरक्षित सीट वाला' कहकर देखा जाता था। कक्षा में बैठने की जगह, प्रैक्टिकल लैब में उपकरणों की उपलब्धता, पुस्तकालय में किताबों की पहुँच - इन सभी स्थानों पर सवर्ण छात्रों को स्पष्ट रूप से प्राथमिकता मिलती थी। दलित छात्रों को अक्सर रोल नंबर से पुकारा जाता था, और कई शिक्षक उनके उत्तरों को गंभीरता से लेने से परहेज़ करते थे।

कॉलेज की राजनीति और छात्र संगठनों में भी दलित युवाओं की भागीदारी नगण्य थी। सामाजिक रूप से वे हाशिए पर रखे जाते थे और उनकी भागीदारी को हतोत्साहित किया जाता था। कांशीराम ने स्वयं अनुभव किया कि छात्रवृत्ति वितरण, खेल चयन, सेमिनार प्रतिनिधित्व और छात्र संगठनों में नेतृत्व जैसी जिम्मेदारियों में दलित छात्रों को दरकिनार कर दिया जाता था। यहाँ तक कि छात्रावास में आवंटन भी सामाजिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता था।

इन अनुभवों से कांशीराम के भीतर तीव्र सामाजिक चेतना जागी। उन्होंने महसूस किया कि शिक्षा केवल परीक्षा पास करने या नौकरी पाने का साधन नहीं हो सकती। यदि समाज में जातिवाद की गहरी जड़ें हैं, तो उससे केवल डिग्रियाँ नहीं, बल्कि विचारों और नेतृत्व के संघर्ष के माध्यम से ही लड़ा जा सकता है। कॉलेज में रहते हुए उन्होंने यह स्पष्ट रूप से समझ लिया कि व्यक्तिगत सफलता तब तक अधूरी है जब तक उसका लाभ पूरे समुदाय को न मिले। वे यह सोचने लगे कि अगर उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने में इतनी कठिनाई हो रही है, तो उनके जैसे हजारों दलित

युवक-युवतियाँ जो इससे भी अधिक वंचित हैं, उनके लिए तो यह सपना भी नहीं है। इस अनुभूति ने उन्हें एक वैयक्तिक छात्र से एक सामाजिक कार्यकर्ता की ओर मोड़ना शुरू कर दिया।

कॉलेज के इस दौर में कांशीराम का व्यक्तित्व केवल एक मेधावी छात्र का नहीं रहा, बल्कि उन्होंने आंतरिक रूप से यह तय कर लिया कि शिक्षा उनके लिए केवल कैरियर नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औजार बनेगी। यह वह दौर था जब उन्होंने अपने आत्मसम्मान, आक्रोश और चेतना को दिशा देना शुरू किया - एक ऐसी दिशा जिसकी परिणति बाद में बहुजन आंदोलन के निर्माण में हुई।

विज्ञान में रुचि और तकनीकी शिक्षा की ओर झुकाव

कांशीराम की शिक्षा में गहरी रुचि मात्र औपचारिक डिग्री प्राप्त करने तक सीमित नहीं थी। वे विषयवस्तु को समझने और उससे सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करने वाले छात्र थे। बचपन से ही उनका रुझान विज्ञान, गणित और तार्किक विश्लेषण की ओर था। प्राथमिक विद्यालय में जब अधिकांश छात्र रटकर सीखने में व्यस्त रहते थे, तब कांशीराम किसी समस्या के कारणों को समझने की कोशिश करते थे। विज्ञान की यह मौलिक समझ और तथ्य आधारित दृष्टिकोण आगे चलकर उनके सामाजिक और वैचारिक संघर्षों की पृष्ठभूमि बना।

गवर्नमेंट कॉलेज, रोपड़ में उन्होंने विज्ञान (B.Sc.) की पढ़ाई के लिए रसायन विज्ञान को मुख्य विषय के रूप में चुना। यह चयन केवल अकादमिक या रोजगारपरक दृष्टिकोण से नहीं था, बल्कि उनके भीतर यह विश्वास गहराने लगा था कि दलित समाज को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा सबसे प्रभावी माध्यम हो सकती

है। उनका मानना था कि जिस समाज को सदियों से अंधविश्वास, धार्मिक रूढ़ियों और जातीय कर्म-प्रथा के माध्यम से दबाया गया, उसे मुक्ति आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी से ही मिलेगी। वे चाहते थे कि दलित युवा केवल क्लर्क या चौकीदार बनने तक सीमित न रहें, बल्कि इंजीनियर, वैज्ञानिक, डॉक्टर और प्रशासक बनें - ताकि वे राष्ट्र के निर्णय-निर्माण में भागीदारी कर सकें।

कॉलेज में रसायन विज्ञान की प्रयोगशालाएँ, वैज्ञानिक व्याख्यान और गणितीय मॉडलिंग जैसे विषयों में उनकी उत्कृष्टता ने शिक्षकों को प्रभावित किया, लेकिन जातीय पहचान उनके मार्ग में बाधा बनी रही। कई बार उन्हें प्रयोगशाला में समय कम दिया गया या उपकरणों की प्राथमिकता में पीछे रखा गया। लेकिन उन्होंने इस अपमान को कभी अपने आत्मबल पर हावी नहीं होने दिया। उनकी वैज्ञानिक सोच ही उन्हें इस भेदभाव के पीछे की संरचनात्मक सोच को समझने में मदद करती थी - और यही कारण था कि उन्होंने कभी इसे व्यक्तिगत दुर्भाग्य नहीं माना, बल्कि सामाजिक संरचना की समस्या के रूप में पहचाना।

B.Sc. के दौरान कांशीराम की यह तकनीकी रुचि और वैज्ञानिक दृष्टिकोण उन्हें एक ऐसे मार्ग पर ले गई, जहाँ वे सामाजिक बदलाव के लिए विज्ञान को हथियार बनाना चाहते थे। उन्होंने यह ठान लिया कि वे आगे भी विज्ञान के क्षेत्र में काम करेंगे, और समाज में व्याप्त अंधकार को तार्किकता और वैज्ञानिक चेतना से चुनौती देंगे। यही संकल्प उन्हें आगे चलकर भारत सरकार के अधीन रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) तक ले गया, जहाँ वे वैज्ञानिक सहायक के रूप में नियुक्त हुए। इस नियुक्ति को उन्होंने केवल एक सरकारी नौकरी नहीं, बल्कि अपने

वैज्ञानिक ज्ञान को सामाजिक चेतना से जोड़ने के एक मिशन के रूप में देखा।

इस चरण में कांशीराम का व्यक्तित्व दो धाराओं में एक साथ विकसित हो रहा था - एक ओर वे एक कुशल वैज्ञानिक के रूप में सोचने लगे थे, दूसरी ओर एक सजग नागरिक और जागरूक दलित युवा के रूप में सामाजिक असमानता को समझने लगे थे। विज्ञान और सामाजिक न्याय के बीच की यह द्वैध यात्रा ही आगे चलकर उनके आंदोलन की विचारधारा की नींव बनी - जहाँ ज्ञान, तार्किकता और अधिकार की माँग एक साथ गूँजती थी।

पुणे में शिक्षा और सामाजिक चेतना का विकास

B.Sc. की पढ़ाई पूरी करने के बाद कांशीराम को भारत सरकार के अधीन कार्यरत प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संगठन, Defence Research and Development Organisation (DRDO) के तहत स्थित Explosives Research and Development Laboratory (ERDL), पुणे में वैज्ञानिक सहायक के पद पर नियुक्त किया गया। यह नियुक्ति अनुसूचित जाति (दलित) वर्ग के लिए आरक्षित कोटे के तहत हुई थी, लेकिन कांशीराम ने इसे केवल आरक्षण की कृपा नहीं, बल्कि अपनी मेहनत, वैज्ञानिक योग्यता और सामाजिक प्रतिबद्धता का परिणाम माना। यह वर्ष था 1957-58, जब वे पहली बार पंजाब से बाहर, एक बड़े शहरी और बहुसांस्कृतिक वातावरण में प्रवेश कर रहे थे।

पुणे में आने के बाद कांशीराम को यह विश्वास था कि अब शायद जातिवाद और सामाजिक भेदभाव से मुक्ति मिलेगी। वे सोचते थे कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सामाजिक समरसता अधिक होगी,

लेकिन बहुत जल्द ही यह भ्रम टूट गया। DRDO जैसे तकनीकी और अनुसंधान संगठन में भी दलित कर्मचारियों के प्रति व्यवहार में गहरा भेदभाव मौजूद था। उन्हें “आरक्षण वाला” कहकर पुकारा जाता था, उनकी योग्यता पर संदेह किया जाता था और उन्हें प्रयोगशालाओं में मुख्य कार्यों से दूर रखा जाता था। दलित कर्मचारियों के सुझावों को हल्के में लिया जाता, और सामाजिक मेल-जोल में उन्हें अलग-थलग किया जाता था। यह एक प्रबुद्ध वातावरण में मौजूद अघोषित जातिवाद का वास्तविक चेहरा था।

इस दौरान एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना घटी, जिसने कांशीराम के जीवन की दिशा ही बदल दी। DRDO में एक वरिष्ठ दलित कर्मचारी डी.के. खरपड़े ने जब यह मुद्दा उठाया कि बुद्ध जयंती और डॉ. अंबेडकर जयंती जैसी छुट्टियों को प्रशासन ने सूची से हटा दिया है, तो उन्हें अनुशासनात्मक कार्रवाई के तहत नौकरी से निलंबित कर दिया गया। इस घटना ने कांशीराम को झकझोर कर रख दिया। उन्होंने महसूस किया कि यह केवल एक व्यक्ति पर अन्याय नहीं था, बल्कि समूचे दलित समाज और उसके महापुरुषों के अपमान का प्रतीक था।

कांशीराम ने इस मुद्दे को व्यक्तिगत मामला नहीं, बल्कि संस्थागत अन्याय का विषय मानते हुए इसका प्रतिरोध किया। उन्होंने न केवल कार्यालय में आंदोलन खड़ा किया, बल्कि अपने विभाग के सभी दलित कर्मचारियों को एकजुट किया और स्पष्ट रूप से कहा कि यदि खरपड़े को बहाल नहीं किया गया, तो वे स्वयं इस्तीफा दे देंगे। यह कड़ा रुख और संगठित प्रतिरोध प्रशासन पर भारी पड़ा और अंततः डी के खरपड़े को सेवा में पुनः बहाल करना पड़ा। यह घटना कांशीराम के जीवन की निर्णायक मोड़ बनी।

इस घटना ने उन्हें यह सिखाया कि सिर्फ विद्वता और डिग्रियाँ अन्याय के विरुद्ध पर्याप्त नहीं हैं। समाज में वास्तविक परिवर्तन के लिए संगठन, सामूहिकता और नेतृत्व अनिवार्य है। पुणे के इस अनुभव ने कांशीराम के भीतर राजनैतिक और सामाजिक चेतना को गहराई से विकसित किया। यहीं पर उन्होंने पहली बार डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर के विचारों का गहन अध्ययन करना शुरू किया। उन्होंने “Annihilation of Caste,” “The Problem of the Rupee,” और “What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables” जैसी किताबों को पढ़ा और उनके विचारों को आत्मसात किया।

कांशीराम ने महसूस किया कि डॉ. अंबेडकर केवल कानून निर्माता या संविधान के शिल्पी नहीं थे, बल्कि वे एक वैचारिक योद्धा थे, जिन्होंने दलितों के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक अधिकारों की रक्षा के लिए पूरी जिंदगी संघर्ष किया। अंबेडकर का यह विचार कि “शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो” - कांशीराम के जीवन का ध्येयवाक्य बन गया।

पुणे का यह कालखंड कांशीराम के लिए केवल वैज्ञानिक अनुभव का नहीं था, बल्कि यह वह समय था जब उन्होंने यह निर्णय लिया कि वे केवल अपनी व्यक्तिगत प्रगति तक सीमित नहीं रहेंगे। अब उनका जीवन एक बड़े मिशन के लिए समर्पित होने वाला था - ऐसा मिशन जो दलित समाज को केवल वोट बैंक नहीं, बल्कि निर्णायक शक्ति में परिवर्तित करेगा। यहीं से कांशीराम की वैज्ञानिक प्रयोगशाला से सामाजिक प्रयोगशाला की यात्रा शुरू होती है - एक ऐसा संक्रमण जो भारत के सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य को बदलने वाला था।

छात्र जीवन में नेतृत्व क्षमता और सामाजिक सक्रियता

कांशीराम का छात्र जीवन, विशेष रूप से कॉलेज और पुणे स्थित रक्षा अनुसंधान प्रयोगशाला में बिताया गया समय, केवल शैक्षणिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं था। यह वह कालखंड था जब उनके भीतर नेतृत्व की प्रवृत्ति और सामाजिक चेतना क्रमशः जाग्रत होती गई। पहले स्कूलों में और फिर कॉलेज में अनुभव किए गए सामाजिक बहिष्कार, जातीय भेदभाव और संस्थागत असमानता ने उन्हें केवल पीड़ित नहीं बनाया, बल्कि एक सजग और संगठित प्रतिक्रिया की ओर प्रेरित किया। वे महसूस करने लगे थे कि अगर वे चुप रहे, तो यह अन्याय कभी नहीं रुकेगा - और अगर उन्होंने बोलना शुरू किया, तो अनेक लोग उनके साथ खड़े होंगे।

कॉलेज के दौरान वे अपने जैसे दलित छात्रों से संवाद करने लगे। वे न केवल अपनी पीड़ा साझा करते थे, बल्कि दूसरों की कहानियों को भी सुनते थे। उन्होंने धीरे-धीरे यह समझा कि व्यक्तिगत पीड़ा केवल व्यक्तिगत नहीं होती - वह एक सामूहिक अनुभव होती है जिसे समझकर ही संगठन का बीज बोया जा सकता है। उन्होंने अपने सहपाठियों को यह समझाना शुरू किया कि यदि वे शिक्षा प्राप्त कर भी लें, लेकिन समाज में संगठित होकर अपनी राजनैतिक आवाज़ नहीं बना पाते, तो उनकी योग्यता भी व्यर्थ जाएगी। वे अंबेडकर के विचारों को सरल भाषा में समझाकर यह बताने लगे कि दलितों को न केवल पढ़ना चाहिए, बल्कि एकजुट होकर सत्ता और नीति निर्माण की दिशा में भी बढ़ना चाहिए।

कांशीराम ने छात्र जीवन में ही यह स्पष्ट कर लिया था कि वे केवल एक संगठन बनाने तक सीमित नहीं रहेंगे, बल्कि एक आंदोलन खड़ा करेंगे - ऐसा आंदोलन जो चुनावी राजनीति से लेकर सामाजिक चेतना,

प्रशासनिक भागीदारी और बौद्धिक विमर्श तक, हर स्तर पर दलितों की निर्णायक उपस्थिति स्थापित करेगा। उन्होंने यह महसूस किया कि नेतृत्व का अर्थ केवल भाषण देना या नारे लगाना नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की रणनीति बनाना और उसे ज़मीन पर उतारना है। उनके इस दृष्टिकोण ने उन्हें उनके समय के अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं से अलग और विशिष्ट बना दिया।

सरकारी नौकरी की तैयारी और आगे का सफर

B.Sc. की डिग्री पूरी करने के बाद जब कांशीराम पुणे में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (DRDO) के अंतर्गत स्थित Explosives Research and Development Laboratory (ERDL) में वैज्ञानिक सहायक के रूप में नियुक्त हुए, तब यह किसी भी सामान्य छात्र के लिए गर्व और सफलता का क्षण होता। यह एक प्रतिष्ठित सरकारी पद था, और विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने का अवसर उन्हें न केवल एक उच्च पद दिला सकता था, बल्कि एक स्थिर और सम्मानजनक जीवन की गारंटी भी देता था। लेकिन कांशीराम के लिए यह पद और यह संस्थान केवल करियर का प्लेटफॉर्म नहीं बना, बल्कि यह उनके विचारों, नेतृत्व और संघर्ष का प्रयोगशाला बन गया।

DRDO में नियुक्ति पाने से पहले उन्होंने प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी की थी, और विज्ञान में उनकी दक्षता, गणना और विश्लेषणात्मक सोच ने उन्हें चयन में सफल बनाया। उस समय आरक्षण नीति के तहत अनुसूचित जातियों को आरक्षित पदों पर नियुक्तियाँ मिल रही थीं, और यद्यपि यह नीति संवैधानिक रूप से न्यायोचित थी, फिर भी ऐसे उम्मीदवारों को कार्यालयों में “आरक्षण वाला” कहकर नीचा दिखाया जाता था। कांशीराम ने भी इसी मानसिकता का अनुभव किया। उनके

सहकर्मियों ने कई बार उनकी प्रतिभा पर प्रश्न उठाए, उन्हें केवल आरक्षण की देन समझा और प्रमुख प्रयोगात्मक कार्यों से दूर रखा।

लेकिन कांशीराम इस मानसिकता से विचलित नहीं हुए। उन्होंने अपने ज्ञान, व्यवहार और संगठनात्मक दक्षता से यह स्पष्ट कर दिया कि वे केवल कोटे से आए व्यक्ति नहीं, बल्कि सामर्थ्य और नेतृत्व क्षमता से भरपूर कर्मयोगी हैं। उन्होंने कार्यस्थल पर अपनी वैज्ञानिक योग्यता से जो भी योगदान दिया, वह किसी भी गैर-दलित वैज्ञानिक से कमतर नहीं था। इसके साथ ही, उन्होंने देखा कि ऑफिस की दीवारों में जातिवाद कैसे छिपा हुआ है - निर्णयों में पक्षपात, उत्सवों में भेदभाव, कर्मचारियों की सामाजिक बातचीत में दूरी - यह सब उनकी चेतना को और तीव्र करता गया।

इसी दौरान, जब बुद्ध जयंती और अंबेडकर जयंती जैसी छुट्टियाँ हटाई गईं, और जब उनके सहकर्मी डी.के. खरपड़े को इस अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के कारण नौकरी से निलंबित कर दिया गया, तब कांशीराम को यह स्पष्ट हो गया कि सरकारी नौकरी का सम्मान, स्थिरता और वेतन दलित आत्मसम्मान की कीमत पर नहीं होना चाहिए। उन्होंने न केवल इस निलंबन का खुलकर विरोध किया, बल्कि यहां से उनकी सोच और जीवन की दिशा ही बदल गई। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे केवल व्यक्तिगत उन्नति की राह पर नहीं चलेंगे, बल्कि समूचे दलित समाज के लिए सामाजिक, वैचारिक और राजनैतिक परिवर्तन का नेतृत्व करेंगे।

इस घटना ने उनके भीतर वह आग जलाई जिसने उन्हें नौकरी से आगे बढ़ाकर आंदोलन की ओर मोड़ा। उन्होंने अनुभव किया कि शिक्षा और सरकारी सेवा की उपलब्धियाँ तब तक अधूरी हैं जब तक वे सामाजिक

परिवर्तन का माध्यम न बनें। उन्होंने यह जाना कि जब तक सत्ता के केंद्रों पर दलितों की भागीदारी नहीं होगी, तब तक संविधान में प्रदत्त अधिकार केवल प्रतीकात्मक रहेंगे। इस अनुभव के साथ ही उन्होंने अपना जीवन पूरी तरह से समाज को समर्पित कर दिया।

यहीं से उनकी यात्रा ने एक नया मोड़ लिया। अब वे कांशीराम नाम के पीछे कोई उपाधि नहीं चाहते थे - न 'साइंटिस्ट', न 'सरकारी कर्मचारी' - अब वे केवल एक क्रांतिकारी बनना चाहते थे। और इस रूपांतरण का आधार उनकी सरकारी नौकरी ही बनी, जिसने उन्हें न केवल जातिवाद का वास्तविक रूप दिखाया, बल्कि उसे चुनौती देने की रणनीति भी सिखाई। उनके इस अनुभव ने आने वाले दशकों में BAMCEF, DS4 और BSP जैसे आंदोलनों की रूपरेखा की नींव डाल दी।

अध्याय 4:

डॉ. अंबेडकर के विचारों से पहली मुलाकात

कांशीराम और अंबेडकर के विचारों की ओर पहला कदम

कांशीराम का जन्म 15 मार्च 1934 को पंजाब के खवासपुर गाँव में हुआ था और शुरुआती शिक्षा में उन्होंने जातिगत विषमताओं कम ही देखीं। हालांकि, जब उन्होंने सरकारी नौकरी शुरू की और DRDO, पुणे में काम किया, तब जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ा। उसी दौरान उन्होंने देखा कि उनके सहकर्मियों-विशेषकर अनुसूचित जाति और पिछड़ों से-का सम्मान अभी भी उन्हें हासिल नहीं था। इन्हीं अनुभवों ने उन्हें यह सवाल पूछा कि क्या शिक्षा और नौकरी ही सामाजिक असमानता मिटा सकती हैं, या फिर इसके लिए कुछ और चाहिए। बाद में इस प्रश्न ने उन्हें डॉ. भीमराव अंबेडकर की ओर आकर्षित किया।

कांशीराम ने अंबेडकर के विचारों को समझने के लिए उनके लेख और ग्रंथ पढ़ना शुरू किया। सबसे पहले उन्होंने “Annihilation of Caste” पढ़ी, जो उन्होंने एक चौंकाने वाले अनुभव की तरह देखा। इस पुस्तक ने उन्हें जाति व्यवस्था की सांस्कृतिक और राजनैतिक जड़ता के बारे में गहराई से सोचने पर मजबूर किया। उन्होंने महसूस किया कि अंबेडकर ने जाति प्रथा को केवल सामाजिक बुराई नहीं, बल्कि सत्ता-संरचना की बाधा के रूप में पहचाना था। यह एक नयी दृष्टि थी जिसने कांशीराम को यह समझाया कि दलित और पिछड़े समाज को केवल संवैधानिक अधिकार नहीं, बल्कि राजनैतिक सत्ता का अधिकार भी जरूरी है।

इस अनुभव की परिणति BAMCEF की स्थापना में हुई। कांशीराम ने महसूस किया कि अंबेडकर के विचार सिर्फ व्यक्तिगत चेतना तक सीमित नहीं रह सकते; उन्हें एक संगठनात्मक आंदोलन में बदलना होगा। इसी सोच के साथ 1971 में BAMCEF के निर्माण की प्रेरणा हुई-सरकारी और शिक्षित दलित-पिछड़े कर्मचारियों को एक मंच पर लाने की। BAMCEF का पहला अधिकार: अंबेडकर के विचारों को समझना और अपने जीवन व कार्यक्षेत्र में लागू करना; दूसरा उद्देश्य: अपने समुदाय की आवाज़, संघर्ष व सत्ता के लिए समर्पित करना। इस प्रकार डॉ. अंबेडकर की वैचारिक विरासत ने कांशीराम को सामाजिक सुधारक से राजनैतिक रणनीतिज्ञ के रूप में बदलने में मदद दी।

डॉ. अंबेडकर के विचारों से प्रेरणा लेने की शुरुआत

शुरुआती दिनों में कांशीराम ने अंबेडकर की कृतियों का गहन अध्ययन शुरू किया, जिसमें सबसे प्रभावशाली रहा उनका कार्य “Annihilation of Caste”। इस ग्रंथ ने उन्हें जाति को केवल सामाजिक कुरीति के रूप में नहीं, बल्कि राजनैतिक सत्ता संरचना की एक मूल बाधा के रूप में देखने की दृष्टि दी। उन्होंने जमकर लिखा-पढ़ा कि अंबेडकर ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सामाजिक समानता तभी स्थायी होगी, जब अछूतों-या दलितों को राजनैतिक अधिकार और सत्ता में सीधे हिस्सेदारी मिलेगी। इस नए दृष्टिकोण ने कांशीराम को यह सोचने पर मजबूर किया कि सामाजिक न्याय की गहराई केवल वैचारिक विमर्श तक सीमित नहीं रहती, उसे सत्ता के स्तर तक ले जाया जाना चाहिए।

इसके बाद उन्होंने डॉ. अंबेडकर की अन्य प्रमुख रचनाओं-विशेषकर “The Problem of the Rupee” और “Who Were the Shudras?”-का भी अध्ययन शुरू किया। इन ग्रंथों ने न केवल

सामाजिक विषमता की आर्थिक और ऐतिहासिक व्याख्या दी, बल्कि यह भी स्पष्ट किया कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता अधूरी है। कांशीराम ने इन तर्कों को अपनी नई सामाजिक राजनीति का आधार बनाया। उन्होंने समझा कि बहुजन समाज की उन्नति में शिक्षा के साथ-साथ आर्थिक सशक्तिकरण भी एक अनिवार्य आधार है, और उसी को BAMCEF एवं DS-4 के डिज़ाइन में शामिल किया गया।

अंबेडकर की आत्मकथा “Waiting for a Visa” ने कांशीराम पर व्यक्तिगत रूप से गहरा प्रभाव डाला। अंबेडकर द्वारा वर्णित सामाजिक अपमान और औपनिवेशिक भारत की यादों ने कांशीराम को अपनी जिंदगी के अनुभवों के साथ जोड़कर संवेदनशील बना दिया। इस आत्मकथा ने उन्हें यह सिखाया कि नेताओं की वास्तविक महानता उनके व्यक्तिगत संघर्षों के पार जाकर लोगों में संबल और प्रेरणा पैदा करने में है। कांशीराम ने इसे अपनी कार्यशैली में आत्मसात किया-अपनी बातों और आंदोलनों में व्यक्तिगत अनुभव साझा करना शुरू किया जिससे जनता और आंदोलनकारियों को प्रेरणा मिलती थी।

अपने व्यक्तित्व और संघर्ष की इस नई समझ के साथ कांशीराम ने अपने कार्यक्षेत्र में अंबेडकर के ग्रंथों पर चर्चा समूह शुरू किए। वे सहकर्मियों के साथ संविधान की मूल धारणाओं, मौलिक अधिकारों और अंबेडकरवाद के प्रयोगों पर खुलकर विमर्श करते थे। तभी उन्होंने महसूस किया कि सरकारी कर्मचारियों में पहले गहन समाज विरोधी मानसिकता थी, लेकिन समय के साथ जब लोग अंबेडकर का अध्ययन करते, तो उनमें आत्मगौरव, चेतना और बदलाव की चाह जन्म लेती।

जाति व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष की अवधारणा को अपनाना

कांशीराम ने जब डॉ. अंबेडकर के विचारों को आत्मसात करना शुरू किया, तो उन्होंने जाति को केवल सामाजिक भेदभाव की व्यवस्था नहीं, बल्कि सत्ता संरचना के एक शोषणकारी उपकरण के रूप में समझा। अंबेडकर ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया था कि जाति व्यवस्था केवल वर्ण व्यवस्था नहीं है, बल्कि यह श्रम के विभाजन को जन्म देने वाली और उसे स्थायी रूप देने वाली एक पद्धति है, जो दलितों और शोषित वर्गों को सदियों तक सत्ता से वंचित करती आई है। कांशीराम ने इसी विश्लेषण को अपने संघर्ष की आधारशिला बनाया। उन्होंने यह मान लिया कि जब तक जाति व्यवस्था कायम है, तब तक भारत में सामाजिक समानता और लोकतंत्र केवल एक भ्रम बने रहेंगे।

इस विचारधारा के साथ कांशीराम ने यह स्पष्ट रूप से समझा कि बहुजन समाज को केवल सामाजिक सुधार या कानूनों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। उन्होंने महसूस किया कि अंबेडकर द्वारा शुरू किया गया आंदोलन अधूरा है, जब तक कि यह सीधे सत्ता की राजनीति से नहीं जुड़ता। उन्होंने जाति के विरुद्ध संघर्ष को केवल सामाजिक समानता की मांग तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे राजनैतिक अधिकार, आर्थिक संसाधनों में हिस्सेदारी और सांस्कृतिक पहचान की बहाली से जोड़ा। उन्होंने यह घोषित कर दिया कि “सामाजिक बदलाव तब तक अधूरा रहेगा, जब तक राजनैतिक सत्ता में बहुजन की निर्णायक भागीदारी सुनिश्चित नहीं होती।”

कांशीराम का यह विश्वास बन गया कि जब तक दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक एकजुट होकर सत्ता में हिस्सेदारी के लिए संघर्ष नहीं करेंगे, तब तक जाति-व्यवस्था केवल नाम बदलती रहेगी लेकिन उसका

शोषणकारी स्वरूप नहीं मिटेगा। उन्होंने आरक्षण को भी एक अस्थायी उपाय माना और कहा कि यह केवल एक “फर्स्ट-एड” है, स्थायी इलाज नहीं। उन्होंने कहा कि आरक्षण तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक कि बहुजन समाज खुद नेतृत्व की भूमिका न निभाए और नीति-निर्माण में शामिल न हो। उन्होंने सत्ता के केंद्रीकरण को चुनौती देने के लिए “बैलट ही बुलेट है” जैसी अवधारणाओं को बढ़ावा दिया और आंदोलन को लोकतांत्रिक तरीके से तेज करने पर जोर दिया।

इस धारणा के साथ कांशीराम ने न केवल बामसेफ और डीएस-4 के उद्देश्यों को स्पष्ट किया, बल्कि उन्होंने अपने पूरे राजनैतिक जीवन की दिशा भी निर्धारित की। उनके अनुसार, जाति व्यवस्था से संघर्ष करने के लिए केवल नारों और भाषणों से काम नहीं चलेगा, बल्कि संगठन, रणनीति और राजनैतिक चतुराई की जरूरत है। उन्होंने अंबेडकरवाद को केवल एक वैचारिक उपकरण नहीं, बल्कि एक रणनीतिक आंदोलन के रूप में गढ़ा, जो बहुजन समाज को सत्ता के केंद्र तक पहुँचा सके। यही कारण है कि उन्होंने अपने आंदोलन को कभी भी भावुकता या अहिंसक प्रतीकों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे जमीनी हकीकत से जोड़ते हुए हर मोर्चे पर सक्रिय भूमिका निभाई।

अंबेडकरवाद को आंदोलन का आधार बनाने का निर्णय

कांशीराम ने जैसे-जैसे डॉ. अंबेडकर की विचारधारा को गहराई से समझा, उन्होंने यह स्पष्ट रूप से जाना कि अंबेडकरवाद केवल एक बौद्धिक विमर्श या सामाजिक न्याय की मांग नहीं, बल्कि एक रणनीतिक आंदोलन है, जो सत्ता में भागीदारी, संगठन निर्माण और बहुजन समाज की चेतना के पुनरुत्थान से जुड़ा हुआ है। उन्होंने महसूस किया कि अगर अंबेडकर के सिद्धांतों को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुँचाना है, तो

इसे एक संगठित आंदोलन का रूप देना अनिवार्य होगा। इसी भावना से उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन के निर्णयों को भी आंदोलन के रंग में ढालना शुरू किया। वे जानते थे कि अगर बहुजन समाज को आगे बढ़ाना है, तो केवल वैचारिक भाषणों से नहीं, बल्कि संगठित प्रयासों से ही परिणाम लाया जा सकता है।

सरकारी सेवा में रहते हुए उन्होंने यह देखा कि अधिकतर कर्मचारी-जो स्वयं बहुजन वर्ग से आते थे-अंबेडकर की शिक्षाओं से पूर्णतः अपरिचित थे। ये कर्मचारी जातिगत भेदभाव का शिकार तो थे, लेकिन वे स्वयं अपने अधिकारों, संविधान में निहित शक्तियों और अंबेडकर की क्रांतिकारी चेतना से अनभिज्ञ थे। कांशीराम ने इस स्थिति को बहुत गंभीरता से लिया और यह निर्णय लिया कि यदि बहुजन समाज को सशक्त बनाना है, तो सबसे पहले इन शिक्षित लोगों को अंबेडकर की विचारधारा से जोड़ना होगा।

कांशीराम के भाषणों और लेखन में अंबेडकरवाद एक केंद्रीय विचारधारा के रूप में उभरता है। वे बार-बार यह कहते थे कि “डॉ. अंबेडकर केवल संविधान निर्माता नहीं थे, बल्कि वे भविष्यद्रष्टा थे, जिन्होंने बहुजन समाज को आत्मसम्मान, शिक्षा, संगठन और संघर्ष की राह दिखाई।” उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अंबेडकरवाद का मतलब केवल प्रतिमा लगाना या जयंतियाँ मनाना नहीं है, बल्कि उसे जीवित रखना है-व्यवस्था के केंद्र में रखकर उसे समाज परिवर्तन का औजार बनाना है। उनका यह दृष्टिकोण, कि अंबेडकर की विचारधारा को सड़कों पर, कार्यालयों में, ग्राम सभाओं में और संसद तक ले जाना चाहिए, उन्हें सामाजिक कार्यकर्ता से आंदोलनकारी नेता में परिवर्तित कर देता है।

इस निर्णायक विचार से प्रेरित होकर कांशीराम ने अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की प्राथमिकताएँ बदल दीं। उन्होंने अंबेडकर के उस दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया जिसमें कहा गया था-“शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो”-लेकिन उसे एक समकालीन, रणनीतिक और व्यापक आंदोलन का आकार दिया। उनका यह निर्णय न केवल उनके जीवन का बल्कि भारत में बहुजन आंदोलन के इतिहास का एक निर्णायक मोड़ बन गया।

अंबेडकर के विचारों से प्रेरित होकर संघर्ष का रास्ता चुनना

कांशीराम के लिए यह अब स्पष्ट हो गया था कि यदि बहुजन समाज को सशक्त बनाना है, तो उसे केवल विचारों और संगठनों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उसे जीवन का मिशन बनाया जाना चाहिए। कांशीराम ने अनुभव किया कि जब तक वे खुद अपने जीवन में सम्पूर्ण समर्पण नहीं करेंगे, तब तक वे इस आंदोलन को गति नहीं दे सकते। यहीं से उनके भीतर एक निर्णायक निर्णय का बीज पनपा-सरकारी सेवा का त्याग और पूर्णकालिक सामाजिक संघर्ष का रास्ता।

सरकारी नौकरी में रहते हुए उन्होंने जितना जातिगत भेदभाव और सामाजिक असमानता का अनुभव किया, उसने उन्हें यह यकीन दिला दिया कि व्यवस्था के भीतर रहकर व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। उन्हें यह बोध हुआ कि जो व्यवस्था दलितों और पिछड़ों के साथ अन्याय करती है, उसमें बने रहकर उनके अधिकारों के लिए निर्णायक संघर्ष नहीं लड़ा जा सकता। इसीलिए उन्होंने अपने करियर, वेतन, और भविष्य की स्थिरता को त्यागने का साहसिक निर्णय लिया। उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर स्वयं को पूरी तरह समाज को समर्पित कर दिया। यह त्याग

केवल नौकरी का नहीं था, यह जीवनशैली, पहचान, और निजी सुविधा के बंधन तोड़ने का एक ऐतिहासिक निर्णय था।

इस त्याग के साथ उन्होंने अपने जीवन को एक मिशन में बदल दिया- बहुजन समाज को न केवल संविधानिक अधिकारों की जानकारी देना, बल्कि उन्हें संगठित कर संघर्ष की राह पर चलने को प्रेरित करना। अब उनका कार्यक्षेत्र केवल कार्यालय या संगठन की बैठकों तक सीमित नहीं रहा। वे गाँव-गाँव, नगर-नगर, रेल से, साइकिल से, या पैदल यात्रा कर लोगों तक पहुँचे और अंबेडकर की विचारधारा को जीवंत आंदोलन में रूपांतरित किया। वे बहुजन चेतना के एक चलायमान स्रोत बन गए। उन्होंने हर सभा में यह स्पष्ट किया कि संघर्ष का मार्ग कठिन है, लेकिन यही एकमात्र विकल्प है यदि बहुजन समाज को सम्मानजनक जीवन चाहिए।

काशीराम का यह जीवन-निर्णय भारतीय समाज के इतिहास में एक नई क्रांति की शुरुआत का प्रतीक बन गया। यह वह क्षण था जब विचार, संगठन और नेतृत्व-तीनों का समागम हुआ। उन्होंने बहुजन समाज को यह सिखाया कि सत्ता, अधिकार, सम्मान और स्वतंत्रता किसी दया या आरक्षण से नहीं, बल्कि कठिन संघर्ष और आत्मबलिदान से प्राप्त होती है। डॉ. अंबेडकर की तरह उन्होंने भी जीवन के भौतिक सुखों की परवाह न करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन समाज को समर्पित कर दिया। यह निर्णय न केवल उन्हें आंदोलन का पूर्ण नेता बनाता है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए यह प्रमाणित करता है कि परिवर्तन के लिए साहसिक निर्णय, आत्मबल और पूर्ण समर्पण ही सबसे बड़ी

अध्याय 5: कांशीराम का राजनैतिक सशक्तिकरण की ओर बढ़ता झुकाव

प्रारंभिक वैचारिक चेतना और राजनैतिक दृष्टिकोण का निर्माण

उनकी सामाजिक चेतना उस समय उभरी जब उन्होंने अपने समुदाय द्वारा अनुभव किए जाने वाले जातिगत विभेदों को करीब से देखा और झेला-शिक्षा, सरकारी नौकरियों और सार्वजनिक संसाधनों तक असमान पहुंच उन्हें यह अहसास दिलाती रही कि समय-समय पर व्यवस्था इन्हें आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से दबाने का माध्यम रही है। उनकी दृष्टि धीरे-धीरे यह बनी कि जातिगत भेदभाव केवल सांस्कृतिक रीतियों का हिस्सा नहीं, बल्कि एक सुनियोजित राजनैतिक और आर्थिक ढांचे का अभिन्न अंग है जो बहुजन समाज को हमेशा दूसरों की परछाई बनाए रखने का काम करता है।

उनकी वैचारिक भूमिका का आधार दो प्राथमिक स्रोतों से निर्मित हुआ: एक, उन्हें डॉ. बी. आर. अंबेडकर के लेखन और आंदोलन से सम्पूर्ण प्रेरणा मिली और दूसरा, व्यक्तिगत अनुभवों से उन्होंने भेदभाव के स्वरूपों और उसके असर को समझा। विशेषकर *Annihilation of Caste* ने उन्हें यह संदेश दिया कि जातिगत भेदभाव केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि राजनैतिक सत्ता-रचना के सोचे-समझे हिस्से के रूप में कार्य करता है। इसने उन्हें यह समझाया कि बहुजन समाज का असली विकल्प सत्ता तक पहुंचना ही है।

डॉ. अंबेडकर के विचारों ने कांशीराम को यह बोध दिलाया कि “राजनैतिक सत्ता ही सामाजिक परिवर्तन की कुंजी है।” उन्होंने यह भी समझा कि बहुजन समाज को परिवर्तन की राह में शिक्षा, संगठन और संख्यात्मक शक्ति इन तीनों का उपयोग करना चाहिए-अन्यथा वे केवल संवैधानिक अधिकारों तक सीमित रह जाएंगे। इसी अवधारणा ने उन्हें सामाजिक आलोचनात्मक आत्मनिरीक्षण से आगे बढ़कर राजनीति को एक प्रभावशाली उपकरण के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

इस सिद्धांत के आधार पर, कांशीराम ने निर्णय लिया कि बहुजन समाज के लिए वास्तविक बदलाव केवल न्यायिक या सांस्कृतिक प्रयासों से संभव नहीं है। इसके लिए एक स्वतंत्र राजनैतिक मंच होना चाहिए-जहाँ वे स्वयं अपना नेतृत्व करें। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि आरक्षण एक प्रारंभिक कसरत है, लेकिन मृत्यु-विजय की कुंजी तब मिलेगी जब बहुजन सत्ता-संघठनों में निर्णायक भूमिका निभाएँ।

सरकारी नौकरी और भेदभाव के अनुभव

कांशीराम ने जब डीआरडीओ (DRDO) जैसी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक संस्था में नौकरी शुरू की, तो यह उनके जीवन का एक महत्वपूर्ण मोड़ था। यहाँ उन्होंने वैज्ञानिक सहायक के रूप में कार्यभार संभाला, लेकिन यह अनुभव जितना तकनीकी रूप से समृद्ध था, उतना ही सामाजिक रूप से पीड़ादायक भी। उन्होंने महसूस किया कि उच्च योग्यता और परिश्रम के बावजूद बहुजन समुदाय से आने वाले कर्मचारियों को संस्थागत व्यवस्था के भीतर समानता नहीं मिलती थी। यह भेदभाव अक्सर सूक्ष्म था-जैसे निर्णय-निर्माण की बैठकों से बाहर रखा जाना, या सामाजिक आयोजनों में हाशिये पर रखा जाना-लेकिन इसका प्रभाव गहरा और निरंतर था। उनके जैसे योग्य अधिकारी को भी कार्यस्थल पर सम्मान और भागीदारी

में बराबरी नहीं दी जाती थी, जो उन्हें यह समझाने के लिए पर्याप्त था कि समस्या केवल समाज में नहीं, बल्कि सरकारी संस्थानों की संरचना में भी निहित है।

इस संस्थागत भेदभाव को कांशीराम ने कई बार प्रत्यक्ष रूप से अनुभव किया। वे यह देखकर स्तब्ध थे कि संविधान में दिए गए समानता के अधिकार, आरक्षण की नीतियाँ और सेवा शर्तों के बावजूद, बहुजन कर्मचारियों के साथ निर्णयों में भेदभाव होता था। उदाहरणस्वरूप, एक महत्वपूर्ण परियोजना से उनके एक सहयोगी को केवल इस कारण से हटा दिया गया क्योंकि वह अनुसूचित जाति से संबंधित था, जबकि उसके कार्य निष्पादन में कोई त्रुटि नहीं थी। यह घटना न केवल व्यावसायिक रूप से अन्यायपूर्ण थी, बल्कि सामाजिक असमानता की गहराई को भी उजागर करती थी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि प्रशासनिक संरचना में भेदभाव केवल परंपराओं का हिस्सा नहीं, बल्कि सत्ता संतुलन बनाए रखने की एक रणनीति है जिसमें बहुजन समाज को हाशिये पर रखना सुनिश्चित किया जाता है।

उन्होंने इस अनुभव के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि जब तक बहुजन समाज के लोग निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में सीधे शामिल नहीं होंगे, तब तक उनकी स्थिति में कोई स्थायी सुधार नहीं आ सकता। केवल सरकारी योजनाओं या संवैधानिक उपबंधों पर निर्भर रहकर समानता हासिल नहीं की जा सकती। उन्हें यह स्पष्ट हुआ कि परिवर्तन की प्रक्रिया को स्थायी और गहन बनाने के लिए सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनैतिक हस्तक्षेप भी आवश्यक है। इससे कांशीराम का ध्यान एक नए आंदोलन की दिशा में गया-ऐसे संगठन की आवश्यकता पर, जो बहुजन

कर्मचारियों को जोड़ सके और उन्हें सामाजिक जागरूकता से राजनैतिक जागरूकता तक पहुँचा सके।

इस अवधि में उन्होंने अपने अनुभवों को केवल व्यक्तिगत पीड़ा के रूप में नहीं देखा, बल्कि इन्हें एक सामाजिक विश्लेषण के उपकरण के रूप में प्रयोग किया। उन्होंने यह समझा कि एक कर्मचारी की पीड़ा पूरे समाज के अनुभव का प्रतिनिधित्व करती है। इस विचार ने उनके भीतर क्रांतिकारी चेतना को जन्म दिया और उन्होंने निर्णय लिया कि यदि वे इस अन्याय के खिलाफ खड़े नहीं होंगे, तो आने वाली पीढ़ियाँ भी इन्हीं दुर्गम परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करेंगी। यहीं से उनके सामाजिक कार्यकर्ता से राजनैतिक मार्गदर्शक बनने की प्रक्रिया ने गति पकड़ी। DRDO की नौकरी, जो शुरुआत में स्थायित्व और सफलता का प्रतीक थी, धीरे-धीरे उनके लिए अन्याय की संरचनात्मक जंजीरों की पहचान बन गई, जिससे मुक्ति का मार्ग केवल संगठित प्रतिरोध के माध्यम से ही संभव था।

सामाजिक संगठनों के माध्यम से राजनैतिक चेतना का विकास

कांशीराम के राजनैतिक दर्शन की नींव उस समय पड़ी जब उन्होंने यह महसूस किया कि बहुजन समाज को केवल सामाजिक जागरूकता से नहीं, बल्कि संगठनात्मक चेतना के जरिये ही सत्ता के समीकरणों में लाया जा सकता है। सरकारी नौकरी में कार्यरत रहते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि बहुजन समुदाय के कर्मचारियों को उनके संवैधानिक अधिकारों की न तो पूरी जानकारी थी और न ही वे उन अधिकारों की रक्षा के लिए संगठित थे। उन्होंने पाया कि इन कर्मचारियों के अंदर अंबेडकरवादी चेतना का अभाव है और उन्हें सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संगठित संघर्ष की ज़रूरत है। इसी अनुभव ने उन्हें यह दिशा दी कि संगठन का

निर्माण किसी व्यक्ति या संस्था से ऊपर उठकर एक वैचारिक क्रांति का माध्यम बन सकता है।

उन्होंने देखा कि सरकार की योजनाएँ, चाहे वह अनुसूचित जातियों के कल्याण की हों या पिछड़े वर्गों की सहायता की, वास्तव में ज़मीन पर बहुत सीमित प्रभाव छोड़ रही थीं। योजनाओं का क्रियान्वयन भ्रष्टाचार, प्रशासनिक उदासीनता और जातिवादी मानसिकता के कारण बहुत कमजोर था। इससे उन्हें यह सीख मिली कि अगर बहुजन समुदाय जागरूक नहीं होगा तो उनके लिए बनाई गई नीतियाँ भी उनके पक्ष में प्रभावी नहीं हो सकेंगी। कांशीराम ने महसूस किया कि सबसे पहले इस समुदाय को अपने अधिकारों, इतिहास और सामाजिक शोषण की प्रक्रिया के प्रति जागरूक करना होगा ताकि वे अपने हितों के प्रति सचेत हो सकें और उन्हें संगठित किया जा सके।

कांशीराम ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसे सामाजिक संगठनों की नींव रखनी शुरू की जो राजनैतिक दलों से अलग होकर केवल बहुजन समाज के सामाजिक और वैचारिक उत्थान पर केंद्रित हों। BAMCEF (बामसेफ) इसका सबसे पहला उदाहरण था, जिसकी स्थापना उन्होंने इसी दृष्टिकोण से की थी। इस संगठन का मुख्य कार्य सरकारी विभागों में कार्यरत बहुजन कर्मचारियों को संगठित करना था, ताकि वे समाज में जागरूकता फैलाने का माध्यम बन सकें। BAMCEF को एक गैर-राजनैतिक लेकिन वैचारिक संगठन के रूप में विकसित किया गया ताकि यह समाज के भीतर एक स्थायी और संगठित सामाजिक आंदोलन को जन्म दे सके।

इन सामाजिक संगठनों के माध्यम से कांशीराम ने यह रणनीति बनाई कि पहले बहुजन समाज को सामाजिक आत्मविश्वास और सामूहिक चेतना

से संपन्न किया जाए और फिर इस जागरूकता को एक राजनैतिक ताकत में परिवर्तित किया जाए। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि सामाजिक संगठनों के बिना कोई भी राजनैतिक आंदोलन खोखला होगा और स्थायित्व नहीं प्राप्त कर सकेगा। उनका उद्देश्य था कि पहले बहुजन समाज को उसके इतिहास, गौरव और राजनैतिक अधिकारों से जोड़कर उसकी चेतना को इस स्तर तक पहुँचाया जाए जहाँ वह अपनी स्थिति को समझ सके और अपने नेतृत्व को स्वयं गढ़ सके।

राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” की अवधारणा का विकास

कांशीराम के राजनैतिक दर्शन की नींव उस मूल विचार पर टिकी थी जिसे उन्होंने डॉ. भीमराव अंबेडकर से ग्रहण किया-कि भारत जैसे जातिवादी समाज में सामाजिक न्याय, बराबरी और आत्मसम्मान का मार्ग केवल सत्ता के केंद्र से होकर गुजरता है। “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” (Political Power is the Master Key) सिर्फ एक नारा नहीं था, बल्कि उनके पूरे आंदोलन का वैचारिक आधार था। कांशीराम इस तथ्य को भलीभांति समझ चुके थे कि सदियों से वंचित समाज को सामाजिक बराबरी तभी प्राप्त होगी, जब वे स्वयं उन संस्थानों और व्यवस्थाओं पर नियंत्रण स्थापित करें, जहाँ से नीतियाँ बनती हैं और शासन चलता है।

उनका यह विचार सिर्फ चुनाव लड़ने या विधायक-सांसद बनने तक सीमित नहीं था। कांशीराम ने स्पष्ट रूप से कहा था कि बहुजन समाज को सत्ता तक पहुँचना है, लेकिन उस सत्ता को वैचारिक आधार पर हासिल करना है-सिर्फ आंकड़ों के बल पर नहीं, बल्कि संगठित चेतना के बल पर। उन्होंने यह बार-बार दोहराया कि सत्ता पाने के लिए बहुजन समाज को दूसरों की पार्टियों का मोहताज नहीं बनना चाहिए। यदि दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक किसी परंपरागत पार्टी के उम्मीदवार को जिताते हैं, तो

सत्ता के ताले की चाबी उनके हाथ में नहीं रहती; वह चाबी सवर्ण नेतृत्व के पास ही रहती है। इसलिए जरूरी है कि बहुजन समाज अपने नेताओं, अपनी पार्टी और अपनी नीति के साथ सत्ता में पहुँचे।

कांशीराम ने देखा कि आज़ादी के बाद कांग्रेस जैसी पार्टियाँ, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लिया था, उन्होंने सत्ता तो प्राप्त कर ली, लेकिन सत्ता का वितरण जातिगत और वर्गीय आधार पर असमान रहा। उच्च जातियाँ सत्ता और संस्थानों पर हावी रहीं, जबकि बहुजन समाज को केवल वोट बैंक बनाकर इस्तेमाल किया गया।

उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि सामाजिक आंदोलन तब तक अधूरा है जब तक वह सत्ता में परिणत न हो। उन्होंने अंबेडकर के उस विचार को दोहराया कि “जो लोग राजनीति से परहेज़ करते हैं, वे अंततः उन्हीं लोगों द्वारा शासित होते हैं जो राजनीति में भाग लेते हैं।” कांशीराम ने बहुजन समाज को यह संदेश दिया कि सामाजिक समता, आर्थिक अधिकार और सम्मान की रक्षा केवल तब सुनिश्चित हो सकती है जब वे स्वयं शासन चलाएँ। उन्होंने यह मान्यता दी कि वोट डालना महत्वपूर्ण है, लेकिन उससे भी ज़्यादा जरूरी है कि बहुजन समाज अपने वैचारिक नेतृत्व और राजनैतिक मंच के साथ सत्ता में भागीदारी करे।

उनकी इस विचारधारा की व्यावहारिक परिणति तब हुई जब उन्होंने बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की। BSP सिर्फ एक चुनावी पार्टी नहीं थी, बल्कि वह “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” के सिद्धांत का मूर्त रूप थी। कांशीराम ने बहुजन मतदाताओं से बार-बार अपील की कि वे अपनी ताकत को पहचानें और उस सत्ता को स्वयं हासिल करें, जिसे अब तक केवल सवर्ण नेतृत्व के माध्यम से नियंत्रित किया गया था।

उनका यह दृष्टिकोण केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित नहीं था; वे चाहते थे कि देशभर में बहुजन समाज जागरूक हो और राजनैतिक रूप से स्वावलंबी बने।

बहुजन समाज को संगठित करने की रणनीति और राजनैतिक परिवर्तन की दिशा में बढ़ते कदम

कांशीराम के लिए बहुजन समाज का संगठन एक आकस्मिक विचार नहीं था, बल्कि यह एक सुविचारित रणनीति थी जो वर्षों के सामाजिक अनुभव, प्रशासनिक अवलोकन और वैचारिक मंथन का परिणाम थी। उन्होंने महसूस किया कि भारतीय लोकतंत्र में बहुसंख्यक होने के बावजूद बहुजन समाज सत्ता की निर्णायक प्रक्रिया से वंचित है, क्योंकि वह जातियों, वर्गों और क्षेत्रों में बाँटा हुआ है। इस बिखरेपन को दूर किए बिना सत्ता की वास्तविक हिस्सेदारी संभव नहीं थी। इसलिए उन्होंने संगठन को अपने आंदोलन का मूल तत्व बनाया। उनका स्पष्ट मत था: “जितनी संख्या भारी, उतनी हिस्सेदारी”-यह न केवल एक नारा था, बल्कि बहुजन एकता की सबसे बुनियादी रणनीति थी।

बहुजन समाज को संगठित करने के लिए कांशीराम ने सबसे पहले शिक्षित वर्ग को लक्षित किया। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों और पढ़े-लिखे युवाओं को एकजुट करने के लिए BAMCEF का निर्माण किया, ताकि वे समाज के भीतर परिवर्तन के प्रेरक बनें। उनका मानना था कि जिनके पास रोजगार, शिक्षा और अनुभव है, वही समाज में चेतना फैला सकते हैं और व्यापक संगठनात्मक आंदोलन की रीढ़ बन सकते हैं। उन्होंने इन कर्मचारियों को सिर्फ अपने व्यक्तिगत करियर के लिए नहीं, बल्कि सामूहिक सामाजिक उन्नयन के लिए सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया। वे कहते थे-“तुम्हारा पेन, तुम्हारी नोटिंग, तुम्हारा

निर्णय बहुजन समाज को ऊपर या नीचे कर सकता है, सोचो तुम किसके लिए काम कर रहे हो?”

इसके बाद उन्होंने बहुजन समाज की जनसंख्या को एक संगठित वोट बैंक में बदलने की कार्यनीति बनाई। उनका लक्ष्य था कि हर बहुजन नागरिक को उसकी जाति, क्षेत्र या धर्म से ऊपर उठकर एक साझा राजनैतिक पहचान दी जाए। उन्होंने इस दिशा में जागरूकता अभियान, रैलियाँ, पुस्तकें और प्रचार सामग्री के माध्यम से यह समझाया कि यदि बहुजन समाज ने अपनी राजनैतिक एकता नहीं स्थापित की, तो सत्ता में हमेशा उन्हें मोहरा ही बनाया जाएगा। उन्होंने बार-बार चेताया कि वे सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टियों में उम्मीदवार बनकर नहीं, बल्कि स्वयं की पार्टी बनाकर सत्ता में जाएँ।

राजनैतिक परिवर्तन की दिशा में बढ़ते हुए कांशीराम ने यह सुनिश्चित किया कि उनका आंदोलन केवल नारेबाज़ी या विरोध तक सीमित न रहे, बल्कि वह नीतिगत निर्णयों और प्रशासनिक नियंत्रण तक पहुँचे। इसके लिए उन्होंने यह रणनीति अपनाई कि पहले समाज को शिक्षित करो, फिर संगठित करो, फिर उसे सत्ता तक पहुँचाओ। उन्होंने कहा था—“पहले समाज को जागरूक बनाओ, फिर उन्हें संगठित करो और अंत में उन्हें चुनाव लड़ने लायक बनाओ।” यही उनकी त्रिस्तरीय रणनीति थी।

अध्याय 6: अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए शुरुआती आंदोलन

सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों के लिए संघर्ष की शुरुआत

कांशीराम के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में एक निर्णायक मोड़ तब आया जब उन्होंने यह निर्णय लिया कि वे अब सरकारी सेवा से बाहर आकर पूर्णकालिक रूप से दलित और आदिवासी कर्मचारियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करेंगे। उन्होंने देखा कि भारतीय प्रशासनिक ढाँचे में अनुसूचित जाति और जनजाति के कर्मचारियों की स्थिति बेहद दयनीय थी। संविधान द्वारा दिए गए आरक्षण के प्रावधान केवल भर्ती तक सीमित थे, लेकिन व्यवहार में यह समुदाय उच्च पदों पर पहुँचने से वंचित रखा जाता था। पदोन्नति, विभागीय सम्मान, और निर्णयकारी शक्तियों के क्षेत्र में उन्हें हमेशा हाशिये पर रखा जाता था। इसी अव्यवस्था को चुनौती देने के लिए कांशीराम ने सबसे पहले दलित सरकारी कर्मचारियों को संगठित करना शुरू किया।

उनका यह संघर्ष केवल संगठनात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि वैचारिक स्तर पर भी था। उन्होंने दलित कर्मचारियों को यह समझाने का प्रयास किया कि यदि वे केवल नौकरी तक सीमित रहेंगे और सत्ता संरचनाओं में हिस्सेदारी के लिए प्रयास नहीं करेंगे, तो वे हमेशा व्यवस्था के शिकार बने रहेंगे। वे बार-बार यह संदेश देते थे कि संविधान ने जिन अधिकारों की गारंटी दी है, वे अधिकार तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब दलित समुदाय सत्ता के सभी स्तरों पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराए। कांशीराम ने

नियमित मीटिंग, प्रशिक्षण शिविर और वैचारिक चर्चाओं के ज़रिये दलित कर्मचारियों में एक नई चेतना विकसित की। उन्होंने स्पष्ट किया कि सरकारी विभागों में जो सूक्ष्म भेदभाव चलता है, वह केवल सामाजिक नहीं, बल्कि राजनैतिक षड्यंत्र का हिस्सा है।

इस अभियान के दौरान उन्होंने यह भी अनुभव किया कि अधिकांश दलित कर्मचारी अपने संवैधानिक अधिकारों और सेवा शर्तों के बारे में अनभिज्ञ हैं। वे अपनी ही पदोन्नति, ग्रेड पे, अनुशासनिक कार्रवाई और अपील की प्रक्रिया के बारे में सही जानकारी नहीं रखते थे। इस ज्ञान की कमी का फायदा उठाकर कई उच्च अधिकारी जानबूझकर दलित कर्मचारियों को दबाते थे या उनके खिलाफ दंडात्मक कार्रवाई करते थे। कांशीराम ने इसे बदलने के लिए व्याख्यान, पुस्तिकाएँ, केस स्टडी और व्यावहारिक अनुभवों को साझा करते हुए एक मजबूत प्रशिक्षण तंत्र खड़ा किया। उन्होंने कहा कि जब तक दलित कर्मचारी अपनी ही सेवा-शर्तों और अधिकारों के संरक्षक नहीं बनेंगे, तब तक वे शासन-प्रशासन में सम्मान की जगह प्राप्त नहीं कर पाएँगे।

इस विचारधारा के प्रसार के साथ-साथ कांशीराम ने दलित कर्मचारियों की संस्थागत संगठनों में भागीदारी को भी बढ़ावा दिया। कांशीराम का मानना था कि सरकारी नौकरी में रह रहे दलित कर्मचारियों को न केवल अपने व्यक्तिगत करियर की चिंता करनी चाहिए, बल्कि उन्हें अपने समाज के लिए परिवर्तन का वाहक बनना चाहिए। उनका यह दृष्टिकोण कि “सरकारी कर्मचारी ही आंदोलन का इंजन बन सकता है,” भारतीय दलित आंदोलन के इतिहास में एक मौलिक परिवर्तन था। यह कांशीराम की दृष्टि और संगठन शक्ति का परिणाम था कि बाद में ये कर्मचारी भारतीय लोकतंत्र में निर्णायक राजनैतिक आंदोलन की नींव बने।

दलित समाज में शिक्षा के प्रसार की पहल

काशीराम ने अपने सामाजिक आंदोलन की नींव जिस स्तंभ पर रखी, वह थी-शिक्षा। उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक दलित समुदाय के लोग शिक्षित नहीं होंगे, तब तक वे न तो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होंगे और न ही सामाजिक-सांस्कृतिक गुलामी की बेड़ियों को तोड़ पाएँगे। उन्होंने अनुभव किया कि शिक्षा ही वह औज़ार है जो दलित समाज को आत्मविश्वास, नेतृत्व और वैचारिक स्वतंत्रता प्रदान कर सकता है। इसलिए उन्होंने सामाजिक संघर्ष से पहले एक वैचारिक जागरण की आवश्यकता महसूस की और इसके लिए उन्होंने सबसे पहले शिक्षा पर बल दिया। वे मानते थे कि यदि युवा पीढ़ी को स्कूल-कॉलेज और प्रशासनिक सेवाओं में पहुँचाया जाए, तो वे व्यवस्था को भीतर से बदल सकते हैं।

इस लक्ष्य को मूर्त रूप देने के लिए काशीराम ने पूरे देश में दलित युवाओं को शिक्षित करने के लिए जनजागरूकता अभियान चलाए। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता यात्रा की शुरुआत की, जहाँ उन्होंने माता-पिता से अपील की कि वे अपने बच्चों को स्कूल भेजें और उच्च शिक्षा की ओर अग्रसर करें। उन्होंने ऐसे युवाओं के लिए छात्रवृत्तियाँ, सामूहिक अध्ययन केन्द्र, और कैरियर काउंसलिंग सत्रों का आयोजन भी कराया। उन्होंने यह समझाया कि केवल पढ़-लिखकर नौकरी करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, बल्कि उद्देश्य है-अपने समाज को सशक्त बनाना और सामाजिक विषमता को चुनौती देना। काशीराम का यह दृष्टिकोण स्पष्ट था कि बिना शिक्षा के दलित समाज हमेशा निम्न वर्गों में ही सिमटा रहेगा। काशीराम ने न केवल औपचारिक शिक्षा पर बल दिया, बल्कि वैचारिक शिक्षा को भी उतना ही महत्वपूर्ण माना। उन्होंने दलित युवाओं को

बाबासाहेब अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार और सावित्रीबाई फुले जैसे नेताओं के विचारों से परिचित कराने के लिए विशेष पठन-पाठन कार्यक्रम चलाए। उनका मानना था कि जब तक युवा अतीत की सामाजिक बेड़ियों और शोषण की वास्तविकता को नहीं समझेंगे, वे वर्तमान संघर्ष का महत्व नहीं जान पाएँगे। उन्होंने छात्रों को संगठित कर दलित साहित्य, संविधान के प्रावधान, और सामाजिक न्याय की अवधारणाओं पर अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। इसके अलावा, वे अक्सर कहते थे कि “शिक्षा का अर्थ केवल किताबें पढ़ना नहीं, बल्कि अन्याय को पहचानना और उसके विरुद्ध खड़ा होना है।”

इस शिक्षा अभियान के तहत उन्होंने यह भी देखा कि विद्यालयों और महाविद्यालयों में दलित विद्यार्थियों के साथ भेदभाव का व्यवहार किया जाता है। इस भेदभाव के विरुद्ध उन्होंने कई स्तरों पर आंदोलन खड़े किए और शासन से यह माँग की कि स्कूलों में जातिगत भेदभाव को रोकने के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश बनाए जाएँ। उन्होंने सरकारी योजनाओं में यह सुझाव भी दिया कि दलित विद्यार्थियों के लिए अलग से मॉनिटरिंग तंत्र बनाया जाए जो यह सुनिश्चित करे कि उन्हें शिक्षा के दौरान कोई शोषण न हो। उनका मानना था कि यदि दलित युवाओं को सही माहौल, संसाधन और प्रेरणा दी जाए, तो वे किसी भी स्तर पर नेतृत्व करने की क्षमता रखते हैं। इस तरह, शिक्षा का यह अभियान केवल शैक्षिक नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक क्रांति की बुनियाद बन गया।

अनुसूचित जाति एवं जनजाति अत्याचार विरोधी आंदोलन

कांशीराम ने जिस युग में अपने सामाजिक आंदोलन को गति दी, उस समय देश के कई हिस्सों में अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) के लोगों पर अत्याचार की घटनाएँ तेजी से सामने आ

रही थीं। भूमि विवादों, सामाजिक अस्पृश्यता, मंदिर प्रवेश, जल स्रोतों के उपयोग जैसे मूलभूत अधिकारों पर दलित समुदाय को प्रतिदिन अपमान, हिंसा और बहिष्कार का सामना करना पड़ता था। कांशीराम ने देखा कि इन घटनाओं पर राज्य की प्रतिक्रिया या तो बेहद कमजोर होती थी या पूरी तरह अनुपस्थित। यह स्थिति न केवल न्यायिक असमानता की प्रतीक थी, बल्कि यह दर्शाती थी कि भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद में ही दलित समुदाय के लिए एक सैद्धांतिक विफलता मौजूद है। उन्होंने इन अत्याचारों के विरुद्ध एक सशक्त जनांदोलन खड़ा करने का निश्चय किया।

इस आंदोलन की पहली दिशा थी-वास्तविक घटनाओं को सामने लाना। उन्होंने एक ऐसा नेटवर्क खड़ा किया, जिसमें देशभर के दलित कार्यकर्ता अत्याचार की हर घटना को दर्ज करते, प्रमाण जुटाते और उसे सार्वजनिक मंच पर लाते। कई बार ये घटनाएँ ग्रामीण भारत की ऐसी परतों से आती थीं जहाँ मीडिया और कानून की पहुँच नहीं थी। कांशीराम का उद्देश्य था कि इन घटनाओं को छिपाया न जाए, बल्कि इन्हें राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बनाया जाए। उन्होंने सामाजिक संगठनों, छात्रों और युवाओं को इन अभियानों में सक्रिय किया और सच्चाई को उजागर करने के लिए रैलियाँ, जनसभाएँ और मीडिया कांफ्रेंस आयोजित कीं।

दूसरा पहलू था-कानूनी और संस्थागत लड़ाई। कांशीराम ने देखा कि 1989 में बने अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम को व्यवहारिक रूप से लागू कराने में प्रशासनिक उदासीनता थी। कई राज्यों में तो पुलिस एफआईआर दर्ज करने से भी इंकार करती थी। उन्होंने इस कानून को प्रभावशाली बनाने के लिए जन दवाब बनाया। उन्होंने पीड़ितों को कानूनी सहायता देने के लिए वकीलों का एक नेटवर्क तैयार किया और संगठनों को प्रशिक्षित किया कि कैसे किसी घटना के

बाद त्वरित न्याय की प्रक्रिया को शुरू किया जाए। उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि कानून की किताबों में लिखे अधिकार तभी सार्थक होंगे जब वे ज़मीन पर लागू भी हों।

तीसरी दिशा में, उन्होंने पीड़ितों को केवल न्याय दिलाने तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें सामाजिक नेतृत्व की दिशा में प्रेरित किया। उन्होंने यह देखा कि अत्याचार झेलने वाला व्यक्ति अगर भय में जीता है, तो वह कभी सामाजिक परिवर्तन का वाहक नहीं बन सकता। इसलिए उन्होंने पुनर्वास, सम्मान समारोह, और आत्मसम्मान आधारित जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से पीड़ितों को समाज में नायक के रूप में स्थापित करने की प्रक्रिया शुरू की। उनका मानना था कि दलित आंदोलन केवल आंसू बहाने का नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान और प्रतिरोध की भावना को ज़िंदा रखने का नाम है।

इस पूरे अत्याचार विरोधी आंदोलन का प्रभाव यह हुआ कि कांशीराम का आंदोलन गाँव-गाँव तक फैलने लगा। लोग न सिर्फ उन्हें एक नेता के रूप में देखने लगे, बल्कि उन्हें “हमारे हक के रक्षक” के रूप में स्वीकार करने लगे। इस आंदोलन ने भारतीय समाज में यह संदेश स्पष्ट कर दिया कि दलित समुदाय अब चुप बैठने वाला नहीं है। कांशीराम ने अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष को केवल एक घटनात्मक प्रतिक्रिया तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक निरंतर सामाजिक और वैचारिक युद्ध के रूप में खड़ा किया। यही आंदोलन आगे चलकर बहुजन राजनीति की जड़ बन गया।

सामाजिक जागरूकता अभियानों की शुरुआत

कांशीराम ने यह गहराई से समझा कि किसी भी सामाजिक आंदोलन की सफलता तब तक अधूरी है जब तक वह जनमानस में जागरूकता का संचार नहीं करता। उन्होंने अनुभव किया कि अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग सदियों से जिस दमन और अपमान के शिकार हुए हैं, उसका सबसे बड़ा प्रभाव यह रहा है कि उनके भीतर आत्म-सम्मान और अधिकार-बोध का भाव नष्ट हो गया था। इसलिए उन्होंने सामाजिक जागरूकता अभियानों को अपने आंदोलन की रीढ़ बना दिया। इन अभियानों के माध्यम से उनका उद्देश्य था – बहुजनों को अपने अधिकारों, इतिहास, महापुरुषों और संविधान प्रदत्त अधिकारों के प्रति सचेत करना और उनमें एकजुटता की भावना विकसित करना।

इन अभियानों की शुरुआत उन्होंने ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों से की, जहाँ सामाजिक बहिष्कार, मंदिर प्रवेश वर्जना, सार्वजनिक स्थानों पर भेदभाव जैसी समस्याएँ आम थीं। उन्होंने दलित बस्तियों में जाकर विशेष शिविर लगाए, जहाँ बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर के विचारों और संविधान की मूल अवधारणाओं पर भाषण दिए जाते थे। उन्होंने “जाति एक सामाजिक गुलामी है” जैसे नारों को जनमानस में रोपने का कार्य किया, ताकि लोग समझें कि जाति व्यवस्था मात्र एक परंपरा नहीं, बल्कि एक दमनकारी सामाजिक ढाँचा है जिसे तोड़ना जरूरी है। उन्होंने धार्मिक स्थलों, स्कूलों, पंचायत भवनों, और गाँव के चौराहों पर जनसभा करके समाज को झकझोरा।

कांशीराम ने इस कार्य को केवल भाषणों और नारों तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक बड़ी फौज तैयार की, जिन्हें प्रशिक्षण देकर गाँव-गाँव भेजा गया। ये कार्यकर्ता न केवल सामाजिक

भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाते थे, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और प्रशासन में भागीदारी जैसे मुद्दों पर भी लोगों को जागरूक करते थे। उन्होंने स्थानीय उदाहरणों के माध्यम से यह बताया कि कैसे सामाजिक चुप्पी ही अत्याचार को बढ़ावा देती है और किस प्रकार एकजुटता ही वास्तविक बदलाव ला सकती है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सामाजिक न्याय केवल नीतिगत विषय नहीं है, बल्कि यह जनचेतना का प्रश्न है।

इन अभियानों में युवा वर्ग को विशेष रूप से तैयार किया गया। कांशीराम को विश्वास था कि अगर युवा वर्ग सामाजिक गुलामी की मानसिकता को तोड़ दे, तो वह नेतृत्व में भी आ सकता है और सामाजिक क्रांति का वाहक बन सकता है। उन्होंने युवाओं को नेतृत्व का प्रशिक्षण देना शुरू किया, उन्हें मंच संचालन, जनसंपर्क, विचार प्रसार, और संविधान का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। ये युवा न केवल आंदोलन के सशक्त चेहरे बने, बल्कि बाद में बहुजन समाज पार्टी के सामाजिक आधार भी बने। कांशीराम की यह दूरदर्शिता थी कि उन्होंने सामाजिक जागरूकता को सिर्फ भावनात्मक मुद्दा नहीं रहने दिया, बल्कि इसे संगठित रणनीति के रूप में कार्यान्वित किया।

अनुसूचित जाति और जनजाति को संगठित करने के लिए बनाई गई रणनीति

कांशीराम ने यह महसूस किया कि अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े होने के साथ-साथ संगठनहीन भी हैं, और यही उनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जब तक यह समुदाय संगठित नहीं होगा, तब तक वे अपने अधिकारों और सम्मान के लिए एक सशक्त आवाज नहीं बना पाएंगे।

इसलिए, उन्होंने एक व्यवस्थित रणनीति तैयार की जिसका पहला उद्देश्य था - इन समुदायों के भीतर आत्म-सम्मान और सामाजिक चेतना का विकास। कांशीराम ने कहा था कि “अगर आत्मसम्मान मर जाए तो संगठन बनाना व्यर्थ है।” इसलिए उन्होंने अभियान चलाकर लोगों को समझाया कि सामाजिक अन्याय के विरुद्ध बोलना और एकजुट होना उनका अधिकार है।

इस रणनीति का दूसरा स्तंभ था – शिक्षित और जागरूक युवाओं को नेतृत्व की जिम्मेदारी देना। कांशीराम ने सरकारी विभागों में कार्यरत दलित कर्मचारियों को एक आंदोलनकारी के रूप में देखना शुरू किया और उन्हें बहुजन आंदोलन का कंधा बनाया। उन्होंने इन कर्मचारियों को संगठित किया और उन्हें समझाया कि उनका संघर्ष केवल व्यक्तिगत पदोन्नति के लिए नहीं बल्कि पूरे समुदाय के उत्थान के लिए होना चाहिए। उन्होंने यह स्थापित किया कि संगठन केवल वोट बैंक की तरह न बने, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन और राजनैतिक हस्तक्षेप का मंच हो।

तीसरे चरण में कांशीराम ने जनसंपर्क की विशेष रणनीति अपनाई, जिसमें पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं और पोस्टरों के माध्यम से अंबेडकरवादी विचारधारा का प्रचार किया गया। उन्होंने “The Oppressed Indian” और “BAMCEF Bulletin” जैसे प्रकाशनों के ज़रिए देशभर में अपने विचार पहुँचाए। यह कार्य उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए साइकिल यात्राएँ, पदयात्राएँ और जन सभाओं का सहारा लिया। उन्होंने विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं, दलित युवाओं और पिछड़े वर्गों में सामाजिक एकता की भावना को जागृत करने के लिए कई शिविर आयोजित किए। इन सभाओं में संगठन के महत्व, सामाजिक अधिकारों और राजनैतिक भागीदारी पर ज़ोर दिया जाता था।

अंततः, कांशीराम की रणनीति में राजनैतिक भागीदारी को निर्णायक भूमिका दी गई। उन्होंने महसूस किया कि जब तक दलित और आदिवासी समाज अपने नेताओं को संसद और विधानसभा में नहीं भेजेगा, तब तक नीतिगत फैसलों में उनकी कोई भूमिका नहीं होगी। इस सोच को साकार रूप देने के लिए उन्होंने “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” के सिद्धांत को संगठन की रीढ़ बनाया। उनके इस विचार ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को यह विश्वास दिलाया कि वे केवल शोषित नहीं हैं, बल्कि सत्ता के दावेदार भी हैं। यह रणनीति बाद में बहुजन समाज पार्टी की नींव बनकर उभरी और भारतीय राजनीति में दलित चेतना के पुनर्जागरण का कारण बनी।

अध्याय 7:

1978 में बामसेफ (BAMCEF) की स्थापना

बामसेफ की स्थापना का विचार और पृष्ठभूमि

कांशीराम के जीवन का सबसे निर्णायक मोड़ तब आया जब उन्होंने यह महसूस किया कि अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों के जो लोग सरकारी सेवा में आ चुके हैं, वे व्यक्तिगत रूप से तो आगे बढ़ गए हैं, लेकिन सामूहिक रूप से अपने समाज के लिए कुछ नहीं कर रहे। उन्होंने देखा कि सरकारी सेवाओं में आरक्षण के चलते जो कर्मचारी चयनित हुए हैं, वे एक बार नौकरी पा लेने के बाद अपनी सामाजिक जड़ों से कट जाते हैं। वे समाज में व्याप्त भेदभाव, जातिगत अपमान और दमन के खिलाफ कोई प्रतिरोध नहीं करते। इस विडंबना ने कांशीराम को अंदर तक झकझोर दिया। उन्हें यह समझ में आ गया कि जब तक शिक्षित और सक्षम बहुजन वर्ग संगठित होकर समाज के लिए नहीं सोचेंगे, तब तक सामाजिक परिवर्तन अधूरा रहेगा।

सरकारी सेवा में रहते हुए कांशीराम ने स्पष्ट देखा कि संविधान द्वारा प्रदत्त आरक्षण व्यवस्था तो है, लेकिन उसे लागू कराने और उसकी आत्मा को ज़मीन पर उतारने का कार्य कोई नहीं कर रहा। वह पीढ़ी जो अंबेडकर के संघर्ष से मिली सुविधाओं से लाभान्वित हुई थी, उसी के भीतर सामाजिक निष्क्रियता और आत्मगौरव की कमी थी। यह वर्ग अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए न तो संगठित हो रहा था, न ही निचले तबके के लोगों के साथ संवाद कर रहा था। कांशीराम ने यह भी देखा कि जातीय असमानता के खिलाफ एक व्यापक बौद्धिक और प्रशासनिक नेतृत्व का

अभाव है। ऐसे में एक ऐसा संगठन खड़ा करना आवश्यक था जो न सिर्फ कर्मचारियों को जागरूक करे, बल्कि उन्हें सामाजिक आंदोलन का अंग भी बनाए।

बामसेफ की परिकल्पना इसी चेतना से उपजी। यह केवल एक कर्मचारी संगठन नहीं था, बल्कि एक वैचारिक अभियान था, जिसका उद्देश्य था- संगठित, शिक्षित और जागरूक कर्मचारियों को सामाजिक परिवर्तन की अग्रिम पंक्ति में लाना। कांशीराम ने तय किया कि वह इस संगठन को गैर-राजनैतिक रखेंगे ताकि इसका केंद्र बिंदु केवल सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और बहुजन नेतृत्व का विकास रहे। उन्होंने यह भी ठान लिया कि यह संगठन न तो राजनैतिक दलों के अधीन होगा और न ही सिर्फ वेतन-भत्तों की लड़ाई लड़ेगा-बल्कि यह सामाजिक न्याय और ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती देने का माध्यम बनेगा।

6 दिसंबर 1978 को, बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर की पुण्यतिथि के अवसर पर, दिल्ली के बोट क्लब में “बैकवर्ड एंड माइनॉरिटी कम्युनिटीज एम्प्लॉइज़ फेडरेशन” यानी “बामसेफ” की औपचारिक घोषणा हुई। यह दिन प्रतीकात्मक था-एक युग की समाप्ति और दूसरे युग की शुरुआत। कांशीराम ने इसे केवल एक संगठन नहीं, बल्कि एक आंदोलन कहा-एक ऐसा आंदोलन जो शिक्षित बहुजन वर्ग को उनकी ऐतिहासिक जिम्मेदारी का एहसास दिलाएगा और उन्हें सामाजिक परिवर्तन के मिशन में सहभागी बनाएगा।

बामसेफ की संरचना और उद्देश्य

बामसेफ की स्थापना का उद्देश्य केवल एक कर्मचारी संगठन बनाना नहीं था, बल्कि इसे एक वैचारिक, सामाजिक और बौद्धिक आंदोलन का रूप

देना था। कांशीराम का यह स्पष्ट मानना था कि बहुजन समाज को राजनैतिक और सामाजिक सशक्तिकरण की दिशा में तभी ठोस रूप से आगे बढ़ाया जा सकता है, जब उसके बीच के सबसे जागरूक और संसाधन-संपन्न लोग-यानी सरकारी कर्मचारी-अपने व्यक्तिगत विकास से आगे बढ़कर सामूहिक चेतना और उत्तरदायित्व की भावना के साथ संगठित हों। इस उद्देश्य को सामने रखते हुए बामसेफ की संरचना को चरणबद्ध, अनुशासित और वैचारिक आधार पर विकसित किया गया।

बामसेफ की संरचना त्रिस्तरीय थी-स्थानीय, प्रांतीय और राष्ट्रीय। प्रत्येक स्तर पर समितियाँ गठित की गईं, जिनका कार्य न केवल प्रशासनिक संचालन करना था, बल्कि वैचारिक प्रशिक्षण और सामाजिक समर्पण को भी बढ़ावा देना था। संगठन की बैठकें नियमित रूप से होती थीं, जिनमें न केवल सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों की चर्चा होती थी, बल्कि सामाजिक अन्याय, जातिगत वर्चस्व, आत्मसम्मान, और नेतृत्व के प्रशिक्षण पर भी गहन विचार विमर्श होता था। यह संगठन जातिवादी मानसिकता को चुनौती देने के लिए बहुजन कर्मचारियों को नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करता था।

बामसेफ का प्रमुख उद्देश्य था कि सरकारी सेवा में प्रवेश पाने वाले बहुजन कर्मचारियों को यह याद दिलाया जाए कि वे अंबेडकर के संघर्षों की देन हैं। इसलिए उनकी जिम्मेदारी सिर्फ वेतन, पदोन्नति या स्थानांतरण तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि उन्हें अपने समाज के लिए आदर्श बनकर कार्य करना चाहिए। कांशीराम ने यह बार-बार दोहराया कि बामसेफ का प्रत्येक सदस्य एक “सोशल इंजीनियर” है, जिसे समाज को एक नई दिशा देनी है। बामसेफ का आदर्श वाक्य भी इस भावना को

दर्शाता था-“हमारे कर्मचारी समाज के लिए काम करें, न कि केवल अपनी प्रगति के लिए।”

बामसेफ ने न केवल सदस्यों को सामाजिक मुद्दों पर जागरूक किया, बल्कि उन्हें भारत के संविधान, अंबेडकरवादी विचारधारा, जातिव्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष, और सामाजिक समता की अवधारणा के बारे में गहन प्रशिक्षण दिया। यह संगठन यह सुनिश्चित करता था कि उसके सदस्य केवल वैचारिक रूप से प्रशिक्षित हों, बल्कि अपने-अपने क्षेत्र में सामाजिक परिवर्तन के वाहक भी बनें। इसके लिए साहित्य वितरण, अध्ययन वर्ग, सेमिनार, स्थानीय सम्मेलनों, और सार्वजनिक चर्चाओं का आयोजन किया जाता था। धीरे-धीरे बामसेफ न केवल एक कर्मचारी संगठन के रूप में, बल्कि सामाजिक चेतना के आंदोलन के रूप में उभरने लगा।

इस तरह बामसेफ की संरचना केवल संगठनात्मक ढांचे तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक वैचारिक क्रांति का माध्यम बन गया था। यह संगठन अपने भीतर नेतृत्व तैयार करता था, उसे प्रशिक्षित करता था, और उसे समाज में भेजता था-इस लक्ष्य के साथ कि हर बहुजन कर्मचारी अपने समाज का मार्गदर्शक बने, उसके आत्मसम्मान को पुनःस्थापित करे और जातिवादी सत्ता संरचनाओं को चुनौती देने का साहस जुटा सके।

बामसेफ का संगठनात्मक ढांचा

बामसेफ का संगठनात्मक ढांचा अत्यंत सुसंगठित, अनुशासित और उद्देश्यपूर्ण था, जिसे कांशीराम ने एक स्पष्ट रणनीति के तहत तैयार किया था। उन्होंने महसूस किया कि कोई भी सामाजिक आंदोलन तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक उसमें एक सशक्त, लोकतांत्रिक और

विकेन्द्रीकृत संगठनात्मक व्यवस्था न हो। इसी सोच के साथ उन्होंने बामसेफ को एक अनुशासित कैडर आधारित संगठन में विकसित किया, जिसकी संरचना राष्ट्रव्यापी थी और जो गाँव से लेकर राजधानी तक फैली हुई थी।

बामसेफ की कार्यप्रणाली तीन स्तरीय ढांचे पर आधारित थी-स्थानीय इकाई, राज्य इकाई और राष्ट्रीय इकाई। प्रत्येक स्तर पर चुने गए कार्यकर्ता जिम्मेदारियों के साथ कार्य करते थे। स्थानीय स्तर पर ब्लॉक और जिले की इकाइयाँ थीं, जो संबंधित क्षेत्र के सरकारी विभागों में कार्यरत कर्मचारियों को जोड़ने का कार्य करती थीं। वे स्थानीय मुद्दों को पहचानतीं, बैठकों का आयोजन करतीं और अपने क्षेत्र में संगठन की गतिविधियों को चलाती थीं। राज्य इकाइयाँ जिला इकाइयों का समन्वय करती थीं और राज्य स्तरीय अधिवेशनों, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और रैलियों का आयोजन करती थीं। राष्ट्रीय इकाई का कार्य था – नीति निर्धारण, विचारधारा के प्रचार का मार्गदर्शन, और संगठन के विभिन्न अंगों में समन्वय बनाए रखना।

बामसेफ में सदस्यता प्रणाली भी अत्यंत पारदर्शी और व्यवस्थित थी। सरकारी कर्मचारियों को संगठन की सदस्यता के लिए एक न्यूनतम मासिक शुल्क देना होता था, जिससे संगठन आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बना रहे। यह शुल्क संगठन की पत्रिकाओं, बैठकों, प्रशिक्षणों, यात्राओं और कानूनी सहायता कार्यक्रमों के संचालन में उपयोग होता था। बामसेफ की एक विशेषता यह भी थी कि वह किसी भी राजनैतिक दल या बाहरी स्रोत से वित्तीय सहायता नहीं लेता था, जिससे उसकी वैचारिक स्वतंत्रता और पारदर्शिता बनी रहती थी। कांशीराम ने संगठन की

आंतरिक लोकतांत्रिक परंपरा को मजबूत करने के लिए प्रत्येक वर्ष सदस्यता की पुनः पुष्टि और चुनाव की व्यवस्था भी लागू की थी।

प्रशिक्षण और नेतृत्व विकास बामसेफ के संगठनात्मक ढांचे का एक और प्रमुख अंग था। कांशीराम इस बात को भलीभाँति समझते थे कि यदि दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक कर्मचारियों को समाज का नेतृत्व करना है, तो उन्हें केवल नारों से नहीं, बल्कि गहन वैचारिक, कानूनी और संगठनात्मक प्रशिक्षण से लैस करना होगा। इसलिए बामसेफ ने “लीडरशिप डेवलपमेंट प्रोग्राम्स” शुरू किए, जिसमें प्रतिभागियों को अंबेडकरवाद, संविधान, संगठन निर्माण, जनसंवाद कौशल, प्रशासनिक व्याख्या, और सामाजिक आंदोलन की रणनीति सिखाई जाती थी। यह प्रशिक्षण इतना व्यवस्थित था कि एक सामान्य कर्मचारी भी संगठन का प्रवक्ता और मार्गदर्शक बन सकता था।

बामसेफ का संगठनात्मक ढांचा केवल कर्मचारियों को जोड़ने के लिए नहीं, बल्कि एक वैचारिक सेना तैयार करने के लिए था। इसके प्रत्येक कार्यकर्ता को यह सिखाया जाता था कि वह केवल सदस्य नहीं, बल्कि एक मिशन का वाहक है। इस संरचना में महिला सदस्यों की भी भागीदारी को प्राथमिकता दी गई थी और महिला शाखाओं को विशेष प्रशिक्षण व नेतृत्व भूमिका दी जाती थी। यह सब मिलकर बामसेफ को भारत का पहला ऐसा कर्मचारी संगठन बनाता है, जो केवल वेतन, प्रमोशन या भत्तों तक सीमित नहीं था, बल्कि एक सामाजिक परिवर्तन की रचना करने में संलग्न था।

बामसेफ का कार्यक्षेत्र और प्रारंभिक प्रभाव

बामसेफ की स्थापना के तुरंत बाद से ही संगठन ने अपने कार्यक्षेत्र को सीमित दायरे से निकालकर राष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित करना शुरू कर दिया। कांशीराम का दृष्टिकोण यह था कि यह संगठन केवल एक विशेष राज्य या क्षेत्र तक सीमित नहीं रह सकता-बल्कि इसका प्रभाव पूरे देश के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक समुदायों तक पहुँचना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बामसेफ ने अपने संगठनात्मक ढाँचे को मजबूत करते हुए प्रत्येक राज्य और प्रमुख शहरों में इकाइयाँ गठित करनी शुरू कीं।

प्रारंभ में बामसेफ की गतिविधियाँ महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब, दिल्ली और मध्य प्रदेश में केंद्रित रहीं, जहाँ पर बहुजन समुदाय के सरकारी कर्मचारी अपेक्षाकृत अधिक संख्या में थे। इन क्षेत्रों में संगठन की पहली प्राथमिकता थी-कार्यालयों में कार्यरत कर्मचारियों को संगठित करना और उन्हें अंबेडकरवादी विचारधारा से जोड़ना। इस लक्ष्य के तहत हजारों कर्मचारियों को विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों, वैचारिक गोष्ठियों और साहित्यिक प्रचार माध्यमों से जोड़कर जागरूक किया गया। धीरे-धीरे, बामसेफ की शाखाएँ तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, पश्चिम बंगाल और असम जैसे राज्यों में भी सक्रिय हो गईं।

बामसेफ की दूसरी रणनीति थी-अपने कार्यकर्ताओं और सदस्यों को केवल विचारों से प्रेरित करना नहीं, बल्कि उन्हें व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षित कर समाज में बदलाव लाने का माध्यम बनाना। इसके लिए “विचार प्रचारक प्रशिक्षण शिविर” आयोजित किए गए, जहाँ सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान, नेतृत्व विकास, संविधान की मूल भावना, और जाति उन्मूलन जैसे विषयों पर गहन मंथन और संवाद होता था। इन

प्रशिक्षणों के माध्यम से बामसेफ ने एक ऐसा जागरूक वर्ग तैयार किया, जो अपने-अपने क्षेत्रों में सामाजिक संघर्ष की अगुवाई करने लगा।

प्रारंभिक वर्षों में ही बामसेफ का प्रभाव बहुजन समाज के युवाओं और विद्यार्थियों पर भी दिखने लगा। संगठन ने कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे छात्रों को जागरूक किया कि सरकारी सेवा में आने का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत लाभ नहीं होना चाहिए, बल्कि समाज के उत्थान में योगदान देना भी उतना ही आवश्यक है। बामसेफ के प्रेरणास्रोतों ने यह सिखाया कि एक सरकारी कर्मचारी, यदि सामाजिक रूप से सक्रिय हो जाए, तो वह अपने क्षेत्र में सामाजिक क्रांति ला सकता है। इसी विचार ने धीरे-धीरे संगठन को केवल कर्मचारियों का मंच नहीं, बल्कि सामाजिक आंदोलन में बदल दिया।

बामसेफ ने अपने आरंभिक वर्षों में ही यह सिद्ध कर दिया कि यदि शिक्षित वर्ग को संगठित किया जाए और उन्हें सामाजिक जिम्मेदारी का बोध कराया जाए, तो वे समाज की सबसे बड़ी परिवर्तनकारी शक्ति बन सकते हैं। इसके माध्यम से लाखों कर्मचारियों ने अपनी जातिगत पहचान को सामाजिक दायित्व में बदला और धीरे-धीरे एक संगठित सामाजिक चेतना तैयार होने लगी।

बामसेफ की विचारधारा और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष

बामसेफ की स्थापना मात्र एक संगठनिक पहल नहीं थी, बल्कि यह उस वैचारिक क्रांति की शुरुआत थी जो भारतीय समाज में सदियों से चले आ रहे ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती देने के लिए आवश्यक थी। कांशीराम ने इस संगठन की वैचारिक नींव बाबासाहेब अंबेडकर की उस

मूल भावना पर रखी थी, जिसमें कहा गया था कि सामाजिक परिवर्तन के बिना राजनैतिक सत्ता बेमानी है, और बिना राजनैतिक सत्ता के सामाजिक बदलाव असंभव है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि बामसेफ का उद्देश्य केवल आरक्षण की रक्षा करना नहीं है, बल्कि उस मानसिकता के विरुद्ध संगठित संघर्ष करना है, जिसने बहुजन समुदाय को हाशिए पर धकेल दिया है।

बामसेफ की विचारधारा का मूलमंत्र था कि जिन वर्गों ने सरकारी नौकरियों में स्थान पाया है, वे केवल वेतनभोगी कर्मचारी न बनें, बल्कि वे अपने समाज के उत्थान की जिम्मेदारी निभाएँ। कांशीराम ने अपने भाषणों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बार-बार यह बात दोहराई कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था केवल धर्म या संस्कृति से नहीं, बल्कि सत्ता, शिक्षा और प्रशासन के एकतरफा नियंत्रण से संचालित होती है। ऐसे में सरकारी सेवा में कार्यरत बहुजन कर्मचारी ही इस व्यवस्था को भीतर से चुनौती देने की क्षमता रखते हैं-यदि वे संगठित हों और विचारधारा से प्रेरित हों।

इस विचारधारा के अंतर्गत बामसेफ ने अपने सदस्यों को समझाया कि बहुजन समाज को केवल शोषण से बाहर निकालना ही लक्ष्य नहीं है, बल्कि उन्हें आत्मसम्मान, नेतृत्व और वैचारिक सशस्त्रता से सुसज्जित करना है। संगठन के लिए “सक्रिय प्रतिबद्धता” सबसे बड़ी कसौटी थी-यानी सदस्य केवल विचारों से नहीं, कार्य से जुड़े रहें और परिवर्तन की प्रक्रिया में भागीदार बनें। बामसेफ में केवल सदस्यता संख्या नहीं गिनी जाती थी, बल्कि हर सदस्य को एक “कैडर” के रूप में प्रशिक्षित किया जाता था, जो अपने क्षेत्र में सामाजिक न्याय और चेतना का वाहक बने।

ब्राह्मणवादी वर्चस्व के खिलाफ बामसेफ की लड़ाई प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि संरचनात्मक थी। कांशीराम का मानना था कि केवल मंदिर प्रवेश, जातिनाम के बहिष्कार, या प्रतीकात्मक नारों से समाज नहीं बदलेगा- बदलाव तब आएगा जब बहुजन समाज प्रशासन, शिक्षा, कानून, और राजनीति के हर स्तर पर समान रूप से भागीदार बनेगा। इस विचारधारा को आधार बनाकर बामसेफ ने सामाजिक-राजनैतिक विमर्श को बदला। उसने पहली बार यह स्थापित किया कि परिवर्तन की प्रक्रिया केवल क्रांतिकारी नारों से नहीं, बल्कि संरचित संगठन, प्रशिक्षित नेतृत्व, और ठोस वैचारिक स्पष्टता से होती है।

बामसेफ की विचारधारा बहुजन समाज के भीतर एक नये आत्मबोध की शुरुआत थी। यह आत्मबोध केवल यह नहीं कहता था कि हम शोषित हैं, बल्कि यह भी कहता था कि अब हम संगठन के माध्यम से जवाब देंगे। इस विचार ने लाखों कर्मचारियों और युवाओं के भीतर नेतृत्व की चिंगारी पैदा की, जो आगे चलकर एक सशक्त सामाजिक आंदोलन का आधार बना।

बामसेफ का राजनीतिकरण और आगे की राह

बामसेफ की स्थापना और विस्तार के बाद कांशीराम ने यह महसूस किया कि भले ही यह संगठन लाखों बहुजन कर्मचारियों को जोड़ने में सफल रहा है, लेकिन यह परिवर्तन केवल सीमित दायरे में रह जाएगा यदि इसे जनता के बीच ले जाकर राजनैतिक आयाम न दिया जाए। बामसेफ की कार्यप्रणाली और वैचारिक मजबूती ने एक संगठित सामाजिक चेतना तो जागृत की, लेकिन इसकी सीमाएं भी स्पष्ट होने लगीं-यह संगठन सरकारी कर्मचारियों तक सीमित था, जो संविधान और सेवा नियमों से बंधे होने के कारण प्रत्यक्ष राजनैतिक संघर्ष में भाग नहीं ले सकते थे।

कांशीराम ने यह महसूस किया कि यदि बहुजन समाज को राजनैतिक रूप से सशक्त बनाना है, तो एक ऐसा मंच चाहिए जो बामसेफ की विचारधारा को आम जनता तक पहुँचा सके, जो किसी सेवा बाधा में न बंधा हो और खुलकर सत्ता के समीकरणों को चुनौती दे सके। इसी सोच के तहत उन्होंने 1981 में ‘दलित शोषित समाज संघर्ष समिति’ (DS4) की स्थापना की, जो बामसेफ से वैचारिक रूप से जुड़ा था लेकिन पूरी तरह गैर-सरकारी और राजनैतिक था। यह संगठन कोई चुनावी पार्टी नहीं था, लेकिन यह समाज में राजनैतिक चेतना फैलाने का साधन बना।

इस परिवर्तन ने कांशीराम के आंदोलन को दो आयामों में बाँटा-एक, बामसेफ, जो विचारधारा और संगठनात्मक मजबूती का आधार था; दूसरा, DS4, जो जनसंपर्क, जनजागरण और राजनैतिक शिक्षा का माध्यम था। DS4 ने रैलियों, सभाओं और जनचेतना अभियानों के माध्यम से लोगों को यह सिखाया कि जातिवादी व्यवस्था केवल सामाजिक नहीं, बल्कि राजनैतिक और प्रशासनिक भी है, और इसका मुकाबला केवल वोट से हो सकता है। कांशीराम का यह ऐलान-“जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”-केवल एक नारा नहीं बल्कि एक रणनीतिक दृष्टिकोण था, जिसने बहुजन समाज के आत्मविश्वास को बढ़ाया।

बामसेफ का राजनीतिकरण केवल एक संगठनात्मक निर्णय नहीं था, बल्कि यह उस रणनीति का हिस्सा था जिसमें कांशीराम ने धीरे-धीरे बहुजन समाज को “कर्मचारी से कार्यकर्ता”, “कार्यकर्ता से क्रांतिकारी”, और “क्रांतिकारी से शासक” बनाने की योजना तैयार की थी। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज सत्ता संरचनाओं में भाग नहीं लेगा, तब तक उसके सामाजिक अधिकार केवल कागज़ों में सिमटे रहेंगे।

यही वह बिंदु था जहाँ से काशीराम का आंदोलन सामाजिक सुधार से राजनैतिक सत्ता की ओर निर्णायक मोड़ लेता है।

इस प्रक्रिया ने भारत की राजनीति में एक नई धारा को जन्म दिया-एक वैकल्पिक बहुजन राजनैतिक चेतना, जो न केवल हाशिए के वर्गों को संगठित कर रही थी, बल्कि सत्ता के मूलभूत ढांचे को भी चुनौती दे रही थी। काशीराम ने यह सिद्ध कर दिया कि सामाजिक परिवर्तन के लिए यदि एक संगठित वैचारिक आधार तैयार हो और उसे जनता की आकांक्षाओं से जोड़ा जाए, तो वह इतिहास की दिशा बदल सकता है।

बामसेफ का भारतीय राजनीति में प्रभाव

बामसेफ ने केवल एक कर्मचारी संगठन के रूप में काम नहीं किया, बल्कि यह स्वतंत्र भारत के सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य में बहुजन चेतना का सबसे प्रभावशाली जन-संगठन बनकर उभरा। इसकी नींव जिस वैचारिक अधिष्ठान पर रखी गई थी, वह डॉ. अंबेडकर की सोच, अनुभवजन्य यथार्थ और सामाजिक न्याय की आकांक्षा से प्रेरित थी। बामसेफ का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इसने देशभर के उन कर्मचारियों और शिक्षित युवाओं को एक मंच पर लाकर खड़ा किया, जो पहले केवल अपनी व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित थे। इसने उन्हें यह बोध कराया कि वे केवल वेतनभोगी कर्मचारी नहीं हैं, बल्कि अपने समुदायों में सामाजिक चेतना के वाहक भी हैं।

यह संगठन एक विचारधारा आधारित प्रशिक्षण केंद्र की तरह कार्य करने लगा, जहाँ कर्मचारियों को संविधान, अधिकार, सामाजिक संघर्ष, जातीय उत्पीड़न और नेतृत्व के सिद्धांतों की गहरी समझ दी जाती थी। इसने कर्मचारियों के भीतर आत्म-सम्मान, सामाजिक जिम्मेदारी और

नेतृत्व क्षमता का संचार किया। बामसेफ ने यह स्थापित किया कि सरकारी नौकरी केवल एक व्यक्तिगत सफलता नहीं, बल्कि बहुजन समाज की सामूहिक आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने का एक अवसर है। इससे कर्मचारियों में सामाजिक जिम्मेदारी की भावना पनपी और उन्होंने अपने समाज की स्थिति को बदलने की दिशा में कार्य करना प्रारंभ किया।

राजनैतिक दृष्टि से देखा जाए तो बामसेफ ने एक पूरे आंदोलन को वैचारिक आधार प्रदान किया। इस आंदोलन के दो प्रमुख पहलू थे-पहला, ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विश्लेषण और विरोध; और दूसरा, बहुजन समाज को संगठित कर राजनैतिक सत्ता में हिस्सेदारी सुनिश्चित करना। कांशीराम ने बामसेफ को इस तरह तैयार किया कि यह केवल एक संगठन नहीं रहा, बल्कि एक मानसिक क्रांति का आधार बन गया।

बामसेफ के प्रभाव ने भारतीय राजनीति में गहरे परिवर्तन लाए। इस संगठन ने बहुजन समाज के शिक्षित वर्ग में यह चेतना उत्पन्न की कि केवल आरक्षण पाना पर्याप्त नहीं है-बल्कि उसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन होना चाहिए। इसने यह स्पष्ट कर दिया कि पारंपरिक दलों की राजनीति बहुजन समाज के हितों को केवल प्रतीकात्मक रूप से संबोधित करती है और एक स्वतंत्र राजनैतिक ताकत की आवश्यकता है। बामसेफ के अंतर्गत हजारों कार्यकर्ताओं और नेताओं को प्रशिक्षित किया गया, जिन्होंने आगे चलकर बहुजन आंदोलन को जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर नेतृत्व प्रदान किया। इस संगठन ने वर्ग, जाति, धर्म और भाषा की विविधताओं को पार कर एक साझा बहुजन पहचान का निर्माण किया, जिसने बहुजन राजनीति को एक सशक्त वैकल्पिक विकल्प के रूप में स्थापित किया।

बामसेफ की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने बिना किसी राजनैतिक दल का रूप लिए, भारतीय राजनीति में सत्ता के विमर्श को पूरी तरह बदल दिया। जहाँ पहले सत्ता केवल उच्च जातियों और पूँजीशाली वर्गों के हाथों में सीमित थी, वहीं बामसेफ ने यह विचार सामने रखा कि संख्या बल ही असली शक्ति है। “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”-यह विचार आगे चलकर भारत के राजनैतिक विमर्श का केंद्रीय सूत्र बन गया। इसने बहुजन समाज को यह अहसास कराया कि लोकतंत्र केवल वोट देने तक सीमित नहीं है, बल्कि सत्ता संरचना में भागीदारी ही असली उद्देश्य होना चाहिए।

अंततः, बामसेफ भारतीय सामाजिक आंदोलन का वह बिंदु बना जहाँ से बहुजन चेतना ने संगठित रूप में अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ी। यह संगठन आज भी एक वैचारिक विरासत के रूप में मौजूद है, जो भारत के सामाजिक न्याय आंदोलन की जड़ों को गहराई और दिशा देने का कार्य करता है। बामसेफ की नींव पर खड़ा हुआ आंदोलन आज भी बहुजन राजनीति की रीढ़ बना हुआ है, जो आत्मसम्मान, अधिकार और नेतृत्व की त्रिवेणी पर आधारित है।

बामसेफ और अन्य संगठनों से अंतर

बामसेफ का सबसे बड़ा और स्पष्ट अंतर यह था कि यह संगठन न तो केवल एक ट्रेड यूनियन था और न ही किसी राजनैतिक दल का परिशिष्ट। अधिकांश कर्मचारी संगठन जहाँ केवल वेतन, प्रमोशन, भत्ते, सेवा शर्तों और सुविधा-संपन्न जीवन की मांगों तक सीमित रहते हैं, वहीं बामसेफ का उद्देश्य दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों के भीतर सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और संगठित शक्ति का विकास करना था। यह एक वैचारिक आंदोलन था, जो सरकारी सेवा में कार्यरत उस वर्ग को संगठित

करना चाहता था, जिसे संविधान के माध्यम से अवसर तो मिले थे, लेकिन जिन्हें अपनी सामाजिक जिम्मेदारी का बोध नहीं हो सका था। बामसेफ उन्हें केवल कर्मी नहीं, बल्कि परिवर्तन के वाहक के रूप में देखता था।

दूसरे संगठनों की अपेक्षा बामसेफ पूरी तरह से गैर-राजनैतिक था, लेकिन इसके बावजूद इसकी सोच और गतिविधियाँ राजनैतिक जागरूकता को जन्म देती थीं। जहाँ अन्य संगठन स्वयं को किसी न किसी पार्टी से जोड़कर चलते थे, बामसेफ ने पूरी तरह स्वायत्त रहना चुना। इसका न कोई राजनैतिक लक्ष्य था और न ही इसे सत्ता की राजनीति में उतरने की कोई जल्दी थी। यह संगठन उन कर्मचारियों को वैचारिक रूप से प्रशिक्षित करता था, जो ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना के भीतर समाहित होकर अपने समुदाय से कट चुके थे। कांशीराम का मानना था कि इन कर्मचारियों को दोबारा सामाजिक जिम्मेदारी के पथ पर लाना, किसी भी राजनैतिक दल से गठजोड़ करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य है।

बामसेफ की एक अन्य प्रमुख विशेषता थी उसका जाति-विरोधी दृष्टिकोण, जो सीधे अंबेडकरवादी सिद्धांतों से प्रेरित था। जहाँ पारंपरिक कर्मचारी संगठन जाति और धर्म के आधार पर गुटों में बँटे रहते थे, वहीं बामसेफ सभी शोषित समुदायों - दलित, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक - को एक वैचारिक मंच पर लाता था। यह वर्गीय एकता की बात करता था, न कि जातीय विभाजन की। संगठन का मूल मंत्र था कि “यदि सत्ता में हिस्सेदारी चाहिए तो सामाजिक संगठन और वैचारिक अनुशासन अनिवार्य है।” इसी भावना के साथ बामसेफ ने एक नई सोच और कार्यसंस्कृति को जन्म दिया।

इसके अलावा, बामसेफ की कार्यप्रणाली भी अन्य संगठनों से भिन्न थी। जहाँ अधिकांश संगठन आंदोलन की सीमाओं में भाषणों, ज्ञापनों और रैलियों तक सीमित रहते थे, वहीं बामसेफ अपने कार्यकर्ताओं को विचारों के स्तर पर प्रशिक्षित करता था। वह सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ज्ञान को गहराई से समझाने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर बल देता था। बामसेफ का प्रत्येक कार्यकर्ता न केवल एक सदस्य होता था, बल्कि वह एक विचारधारा का संवाहक और परिवर्तन का भागीदार होता था। यही कारण था कि यह संगठन अपने सदस्यों में आत्मसम्मान, आत्मबल और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करने में सफल रहा।

अध्याय 8: सरकारी कर्मचारियों को संगठित करने में बामसेफ की भूमिका

सरकारी कर्मचारियों को संगठित करने की आवश्यकता

कांशीराम द्वारा 1978 में स्थापित बामसेफ (Backward and Minority Communities Employees Federation) का सबसे प्रमुख उद्देश्य था दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक समुदायों के उन सरकारी कर्मचारियों को संगठित करना जिन्हें संविधान के आरक्षण प्रावधानों के तहत नौकरियाँ तो प्राप्त हुई थीं, लेकिन वे सामाजिक सम्मान, प्रशासनिक प्रभाव और निर्णय-निर्धारण में बराबरी से वंचित थे। कांशीराम ने अपनी सरकारी सेवा के अनुभव और समाज में व्याप्त जातिगत असमानताओं के आधार पर यह समझा कि केवल आरक्षण पाने से दलितों का सशक्तिकरण नहीं हो सकता, जब तक वे खुद संगठित होकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए एकजुट न हों।

सरकारी दफ्तरों में दलित कर्मचारियों को निरंतर भेदभाव का सामना करना पड़ता था। वे ऊँचे पदों पर नाममात्र ही पहुँच पाते थे, निर्णय-निर्धारण की प्रक्रिया से उन्हें अलग रखा जाता था और कई बार उनके योगदान की उपेक्षा की जाती थी। इसके अलावा, उन्हें अक्सर केवल प्रतीकात्मक रूप से समावेश किया जाता था, जबकि वास्तविक सत्ता संरचना ब्राह्मणवादी मानसिकता के अधीन ही बनी रहती थी। इस सामाजिक-संस्थागत भेदभाव ने कांशीराम को यह सोचने पर मजबूर किया कि जब तक दलित कर्मचारी अपने वर्गीय और सामाजिक चेतना

के साथ संगठित होकर नहीं उठेंगे, तब तक उनका प्रशासनिक योगदान केवल खानापूति ही रहेगा।

कांशीराम ने यह स्पष्ट रूप से महसूस किया कि इन कर्मचारियों में सामाजिक जागरूकता और राजनैतिक शिक्षा का अत्यंत अभाव है। उन्हें केवल नौकरी का लाभ मिला है, लेकिन वह नौकरी समाज के लिए क्या कर सकती है, यह दृष्टिकोण उनमें नहीं है। उन्होंने बार-बार यह कहा कि यदि यह शिक्षित वर्ग संगठित होकर अपने समुदाय की सेवा में तत्पर हो जाए, तो सत्ता के हर स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की क्रांति आ सकती है। उनका यह विचार डॉ. अंबेडकर के उस कथन पर आधारित था कि “शिक्षित बनो, संगठित होओ और संघर्ष करो।”

इसलिए कांशीराम ने बामसेफ को केवल कर्मचारी संगठन नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के पूर्व चरण के रूप में देखा। उनका मानना था कि यह कर्मचारी वर्ग जोकि व्यवस्था के भीतर है, वह यदि दलित समाज के लिए अपनी सामाजिक जिम्मेदारी निभाने लगे, तो यह परिवर्तनकारी शक्ति बन सकती है। इस उद्देश्य से उन्होंने सरकारी कर्मचारियों को संगठन में जोड़ा, उन्हें सामाजिक भेदभाव की ऐतिहासिक जड़ों से अवगत कराया और उनके अंदर नेतृत्व का आत्मबल जगाया। यह प्रयास इस सोच पर आधारित था कि सत्ता परिवर्तन केवल चुनाव जीतने से नहीं आता, बल्कि उसके पीछे एक सशक्त और जागरूक सामाजिक आधार का निर्माण आवश्यक है, जो कि बामसेफ के माध्यम से संभव हो सकता था।

सरकारी कर्मचारियों के लिए बामसेफ के प्रमुख उद्देश्य

बामसेफ की स्थापना केवल एक पारंपरिक कर्मचारी संगठन के रूप में नहीं की गई थी, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक आंदोलन था,

जिसका मूल उद्देश्य था-सरकारी सेवा में कार्यरत दलित, आदिवासी, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों के कर्मचारियों को सामाजिक परिवर्तन का औज़ार बनाना। कांशीराम ने महसूस किया कि इन वर्गों के लोग आरक्षण के माध्यम से नौकरी में तो आ गए हैं, लेकिन वे अपनी सामूहिक शक्ति को पहचान नहीं पा रहे थे और प्रशासनिक व्यवस्था में निष्क्रिय होकर रह गए थे। इसीलिए उन्होंने बामसेफ के माध्यम से उन्हें संगठित कर यह सिखाना शुरू किया कि वे सिर्फ कर्मचारी नहीं हैं, बल्कि वे अपने समुदाय के लिए परिवर्तनकारी शक्ति हैं।

इस संगठन का पहला उद्देश्य था संवैधानिक अधिकारों की जानकारी और सुरक्षा सुनिश्चित करना। बहुत से दलित और पिछड़े वर्ग के कर्मचारी यह जानते ही नहीं थे कि भारतीय संविधान ने उन्हें किन अधिकारों से सशक्त किया है। बामसेफ के कार्यकर्ताओं ने उन्हें अनुच्छेद 15, 16, 17, और 46 जैसे संवैधानिक प्रावधानों की जानकारी दी, ताकि वे आरक्षण, समानता, और भेदभाव से मुक्ति के अपने अधिकारों का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें। यह जानकारी उन्हें आत्मविश्वास देती थी और अन्याय के खिलाफ लड़ने का साहस भी।

बामसेफ का दूसरा उद्देश्य था प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त जातिगत भेदभाव का संगठित विरोध करना। कई दलित कर्मचारियों को निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा जाता था, उन्हें केवल क्लर्क, चपरासी या निम्न श्रेणी की पोस्ट पर सीमित रखा जाता था। पदोन्नति में भी उन्हें पीछे रखा जाता था। बामसेफ ने इन समस्याओं को चिन्हित कर संस्थागत भेदभाव के खिलाफ आवाज़ उठाई और कर्मचारियों को यह समझाया कि जब वे संगठित होकर बोलेंगे, तभी बदलाव आएगा।

तीसरा उद्देश्य था-राजनैतिक और सामाजिक नेतृत्व तैयार करना। कांशीराम ने कर्मचारियों से यह अपेक्षा नहीं की कि वे केवल फाइलों में सीमित रहें। उन्होंने कहा कि जिस व्यक्ति के पास तनख्वाह, सुरक्षा और शिक्षा है, वही समाज को दिशा दे सकता है। इसीलिए बामसेफ ने सरकारी कर्मचारियों के भीतर नेतृत्व कौशल को विकसित करने की पहल की। वे उन्हें न केवल नीति, शासन और कानूनी व्यवस्था समझाते थे, बल्कि उन्हें भाषण, नेतृत्व और संगठन कौशल की भी शिक्षा देते थे।

चौथा उद्देश्य था-आर्थिक और कानूनी साक्षरता का विस्तार। बामसेफ ने अपने सदस्यों को सरकारी योजनाओं, कर्मचारियों के हितों, और न्यायिक अधिकारों के बारे में विस्तृत जानकारी दी। कई बार ऐसा होता था कि कर्मचारियों को उनका वेतन, भत्ता, या सेवा लाभ सही समय पर नहीं मिलता था, या उन्हें अनुचित कारणों से प्रताड़ित किया जाता था। ऐसे में बामसेफ ने उन्हें न्यायिक प्रणाली और सेवा नियमों की जानकारी दी, ताकि वे अपने अधिकारों के लिए विधिक मार्ग से लड़ सकें।

सरकारी कर्मचारियों को एकजुट करने के लिए बामसेफ की रणनीति

बामसेफ ने यह स्पष्ट रूप से समझा कि सरकारी सेवा में कार्यरत दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक कर्मचारी अपने-अपने दायरे में सिमट कर रह गए हैं। उनके पास न तो कोई साझा मंच था और न ही कोई सामूहिक पहचान। इस विघटन की स्थिति को दूर करने के लिए बामसेफ ने एक सुनियोजित और विस्तृत रणनीति तैयार की, जिसके ज़रिये इन कर्मचारियों को एकजुट कर एक संगठित शक्ति में बदला जा सके।

इस रणनीति की पहली कड़ी थी-सदस्यता अभियान। बामसेफ ने हर राज्य, हर जिले और यहाँ तक कि हर विभाग में जाकर कर्मचारियों से व्यक्तिगत संपर्क किया। यह अभियान पूरी तरह से जमीनी स्तर पर था, जहाँ बामसेफ के कार्यकर्ता दफ्तर-दफ्तर जाकर कर्मचारियों से मिलते थे, उन्हें संगठन की विचारधारा समझाते थे और फिर सदस्यता दिलाते थे। सदस्यता के लिए कोई बड़ी राशि नहीं ली जाती थी, ताकि हर कोई आसानी से इसका हिस्सा बन सके। सदस्य बनने के बाद कर्मचारी को एक जिम्मेदार सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया जाता था।

दूसरा महत्वपूर्ण कदम था-स्थानीय और क्षेत्रीय स्तर पर बैठकें और सेमिनार आयोजित करना। ये बैठकें केवल औपचारिक न होकर, एक संवाद और चेतना का माध्यम होती थीं। यहाँ कर्मचारियों को न केवल संविधान, प्रशासनिक व्यवस्था और सेवा नियमों की जानकारी दी जाती थी, बल्कि ब्राह्मणवादी सोच, जातीय वर्चस्व और सामाजिक शोषण की जड़ों की व्याख्या भी की जाती थी। इन सेमिनारों में अक्सर खुद कांशीराम भी भाग लेते थे, और अपने ओजस्वी भाषणों से कर्मचारियों में चेतना की चिंगारी जगाते थे।

तीसरा रणनीतिक कदम था-प्रचार माध्यमों का उपयोग। बामसेफ ने ‘द चाणक्य’, ‘बुलंद भारत’, जैसे पत्रों और पुस्तिकाओं के माध्यम से अपने विचारों और संदेशों को कर्मचारियों तक पहुँचाया। इन प्रकाशनों में न केवल बामसेफ की गतिविधियाँ, बल्कि सामाजिक न्याय, संवैधानिक अधिकारों और जातिवादी नीतियों की आलोचना पर आधारित लेख होते थे। यह लेखन कार्य केवल सूचना देने के लिए नहीं था, बल्कि यह कर्मचारियों को मानसिक और वैचारिक रूप से सशक्त करने की योजना का हिस्सा था।

चौथी रणनीति थी-शिक्षा और कानूनी साक्षरता को प्राथमिकता देना। बामसेफ ने महसूस किया कि सरकारी कर्मचारी अगर खुद ही संविधान, सेवा नियमों, प्रशासनिक प्रक्रिया और कानूनी प्रणाली से अनभिज्ञ रहेंगे, तो वे किसी अन्याय के विरुद्ध संगठित होकर खड़े नहीं हो सकेंगे। इसी सोच के तहत संगठन ने प्रशिक्षण कार्यक्रम, संवाद सत्र और पुस्तक वितरण जैसे कई प्रयास किए, जिससे कर्मचारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों और कार्यस्थल पर होने वाले जातिगत भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठा सकें।

इन सभी रणनीतियों ने बामसेफ को केवल एक संगठन नहीं, बल्कि एक जागरूकता आंदोलन बना दिया। कर्मचारियों में यह भावना पैदा हुई कि वे अकेले नहीं हैं, बल्कि वे एक ऐसे आंदोलन का हिस्सा हैं, जो सामाजिक बदलाव की दिशा में काम कर रहा है। यह एक ऐतिहासिक पहल थी जिसने भारत में दलित और पिछड़े वर्गों के कर्मचारियों को एक नई पहचान और नई शक्ति दी।

सरकारी कर्मचारियों पर बामसेफ के प्रभाव

बामसेफ के द्वारा अपनाई गई संगठित रणनीतियों और विचारधारा ने सरकारी कर्मचारियों के बीच एक गहरा और दूरगामी प्रभाव डाला। जिन कर्मचारियों को पहले केवल प्रशासनिक मशीनरी का एक साधारण हिस्सा समझा जाता था, उन्हें बामसेफ ने यह आत्मबोध कराया कि वे समाज परिवर्तन की शक्ति बन सकते हैं। यह संगठनात्मक चेतना कर्मचारियों के सोचने, काम करने और समाज से जुड़ने के तरीके को पूरी तरह बदलने लगी।

इस संगठन के तहत आने के बाद अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक समुदाय के सरकारी कर्मचारियों में आत्मसम्मान की भावना का उदय हुआ। पहले जहां वे खुद को व्यवस्था के हाशिए पर महसूस करते थे, वहीं बामसेफ की विचारधारा ने उन्हें यह विश्वास दिलाया कि वे व्यवस्था का अभिन्न और निर्णायक हिस्सा हैं। इस आत्मसम्मान के साथ उन्होंने कार्यस्थल पर होने वाले जातिगत भेदभाव और उत्पीड़न के खिलाफ संगठित होकर आवाज़ उठाना शुरू किया। इस प्रक्रिया ने न केवल कर्मचारियों की सामाजिक स्थिति में सुधार किया, बल्कि उनकी प्रशासनिक भूमिका में भी मजबूती लाई।

बामसेफ के प्रभाव से यह भी हुआ कि सरकारी कार्यालयों में पदोन्नति और उच्च पदों पर चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता की माँग ने जोर पकड़ा। दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग के कर्मचारी पहले जहाँ चुपचाप अन्याय सहते थे, अब वे कानूनी अधिकारों का हवाला देकर संघर्ष करने लगे। कई राज्यों में बामसेफ के सहयोग से पदोन्नति में आरक्षण संबंधी मामलों में लड़ाइयाँ लड़ी गईं, जिससे इन वर्गों के कर्मचारियों को उच्च पदों पर प्रतिनिधित्व मिलने का रास्ता खुला।

बामसेफ के संगठित प्रयासों से न केवल कर्मचारियों में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ, बल्कि उनके माध्यम से पूरे दलित समाज में राजनैतिक जागरूकता का प्रसार हुआ। सरकारी कर्मचारी, जो पहले अपने निजी जीवन में सीमित थे, अब अपने समुदाय की ज़रूरतों, अधिकारों और भविष्य को लेकर चिंतनशील और सक्रिय हो गए। उन्होंने विभिन्न जन आंदोलनों में भाग लेना शुरू किया और अपने अनुभवों को समाज के साथ साझा किया। यह परिघटना भारत के सामाजिक इतिहास में एक क्रांतिकारी मोड़ थी।

बामसेफ ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि सरकारी सेवा में कार्यरत दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग के कर्मचारी संगठित हो जाएँ, तो वे प्रशासनिक व्यवस्था में संतुलन ला सकते हैं और सामाजिक वर्चस्ववादी मानसिकता को चुनौती दे सकते हैं। यह प्रभाव केवल कुछ वर्षों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसका दीर्घकालिक असर भारतीय प्रशासनिक और सामाजिक ढांचे पर पड़ा। कर्मचारियों में नेतृत्व की भावना विकसित हुई और उन्होंने आगे चलकर विभिन्न आंदोलनों और दलों में सक्रिय भागीदारी निभाई।

बामसेफ का सरकारी तंत्र पर दीर्घकालिक प्रभाव

बामसेफ द्वारा सरकारी कर्मचारियों को संगठित करने की प्रक्रिया केवल एक तात्कालिक सामाजिक जागरूकता अभियान नहीं थी, बल्कि यह एक दीर्घकालिक वैचारिक और रणनीतिक प्रयास था जिसने भारतीय प्रशासनिक ढांचे और सामाजिक न्याय की दिशा को गहराई से प्रभावित किया। कांशीराम ने इस संगठन के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया था कि सामाजिक परिवर्तन केवल सड़कों पर आंदोलन या भाषणों के माध्यम से नहीं, बल्कि उस शासनतंत्र के भीतर से भी संभव है जिसे दशकों से ब्राह्मणवादी वर्चस्ववाद संचालित करता आया है। उन्होंने महसूस किया कि जब तक दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यक समुदायों के सरकारी कर्मचारी प्रशासनिक मशीनरी में केवल निष्क्रिय उपस्थिति बनाए रखेंगे, तब तक सामाजिक न्याय एक अधूरा सपना ही रहेगा।

बामसेफ ने इन कर्मचारियों को संगठित करके उनके भीतर नेतृत्व क्षमता, संवैधानिक जागरूकता और राजनैतिक प्रतिबद्धता का संचार किया। इसके परिणामस्वरूप, वे अब केवल कर्मचारी नहीं रह गए, बल्कि समाज के अंदर चल रहे संघर्षों के सहभागी बन गए। उन्होंने न केवल अपने

अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई, बल्कि अपने समुदायों के बीच जाकर उन्हें भी जागरूक किया। कई कर्मचारियों ने ग्रामीण क्षेत्रों में जाकर दलित समाज के लोगों को संविधान, शिक्षा, प्रशासनिक प्रक्रिया और राजनैतिक संगठन के महत्व को समझाया। यह एक प्रकार की वैचारिक पुनःसंरचना थी, जहाँ सरकार के भीतर काम करने वाला कर्मचारी भी एक सामाजिक कार्यकर्ता, प्रशिक्षक और आंदोलनकारी की भूमिका निभाने लगा।

इस दीर्घकालिक प्रभाव का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि बामसेफ ने केवल कर्मचारियों को संगठित करने तक सीमित नहीं रहकर, सामाजिक आंदोलन को एक राजनैतिक आंदोलन में तब्दील कर दिया। बामसेफ ने एक वैचारिक अनुशासन और जनशक्ति तैयार की, जिसे बाद में कांशीराम ने राजनैतिक मंच पर संगठित किया। इस प्रक्रिया में सरकारी कर्मचारियों ने एक कड़ी के रूप में कार्य किया-वे समाज से जुड़े भी थे और प्रशासन से भी, जिससे वे दोनों दुनिया के बीच सेतु बन सके।

इसके अतिरिक्त, बामसेफ ने सरकारी तंत्र के भीतर मौजूद असमानता, जातीय पूर्वाग्रह और चयन प्रक्रियाओं में पक्षपात के खिलाफ गंभीर बहस और आंदोलन खड़ा किया। इसने सरकार को मजबूर किया कि वह अपने भीतर सुधार लाए, जैसे पदोन्नति में आरक्षण की समीक्षा, विभागीय शिकायत निवारण तंत्र की पारदर्शिता, और संवैधानिक निकायों की जिम्मेदारी को सुनिश्चित करना। इन परिवर्तनों ने लंबे समय तक सरकारी नीति निर्माण को प्रभावित किया और प्रशासन में दलित भागीदारी को नकारा नहीं जा सका।

बामसेफ का सबसे बड़ा दीर्घकालिक प्रभाव यह रहा कि इसने भारत में एक ऐसा वैकल्पिक बौद्धिक और प्रशासनिक वर्ग खड़ा किया जो दलित,

पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों से आया था, और जो न केवल व्यवस्था को समझता था बल्कि उसमें हस्तक्षेप करने की योग्यता और इच्छाशक्ति भी रखता था। यह वर्ग आने वाले वर्षों में दलित आंदोलन, बहुजन राजनीति और सामाजिक न्याय की मांगों का नेतृत्व करता रहा।

अध्याय 9:

1981 में 'डीएस4' (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) की स्थापना

बामसेफ से डीएस4 की ओर बढ़ते कदम

बामसेफ की स्थापना के बाद कांशीराम को यह बोध हुआ कि केवल सरकारी कर्मचारियों को संगठित करके समाज में व्यापक सामाजिक परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। उन्होंने देखा कि बामसेफ ने सरकारी नौकरी में कार्यरत दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों के लोगों के बीच चेतना और संगठन की भावना को जन्म तो दिया, लेकिन यह संगठन एक सीमित दायरे में काम कर रहा था। चूंकि बामसेफ की संरचना केवल सरकारी कर्मचारियों के लिए थी और वह एक गैर-राजनैतिक मंच था, इसलिए वह समाज के उन करोड़ों वंचित वर्गों तक नहीं पहुँच पा रहा था जो सरकारी सेवा में नहीं थे परंतु सामाजिक अन्याय और दमन का सामना कर रहे थे।

इसके अतिरिक्त, कांशीराम ने यह भी महसूस किया कि बामसेफ के कई सदस्य केवल अपने करियर, वेतन और प्रमोशन तक सीमित सोच रखते थे। उनमें से कई लोग सामाजिक बदलाव की लड़ाई में सक्रिय भूमिका निभाने से कतराते थे। ऐसे में बामसेफ के भीतर मौजूद सीमाएं स्पष्ट हो चुकी थीं—यह संगठन चेतना फैलाने में सफल था, लेकिन यह क्रांति या सत्ता परिवर्तन की दिशा में अग्रसर नहीं हो पा रहा था। कांशीराम को यह समझ में आ गया कि यदि उन्हें दलितों, पिछड़ों और शोषितों को सत्ता में भागीदारी दिलानी है, तो एक ऐसा मंच बनाना होगा जो गैर-सरकारी

लोगों को भी जोड़ सके और राजनैतिक हस्तक्षेप की दिशा में भी काम कर सके।

इन्हीं विचारों और अनुभवों के आधार पर कांशीराम ने 1981 में 'डीएस4' यानी "दलित शोषित समाज संघर्ष समिति" की स्थापना की। यह संगठन बामसेफ की तरह केवल कर्मचारियों तक सीमित नहीं था, बल्कि समाज के आम दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को भी सक्रिय रूप से संगठित करने के उद्देश्य से बनाया गया था। डीएस4 का गठन इस सोच पर आधारित था कि केवल संविधान की जानकारी या सामाजिक चेतना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन समुदायों को संगठित करना आवश्यक है जो सत्ता से बाहर हैं और जिनकी आवाज़ आज तक राजनैतिक मंचों से दूर रही है।

डीएस4 ने कांशीराम की रणनीतिक सोच का अगला चरण प्रस्तुत किया। यह संगठन अब केवल सामाजिक जागरूकता तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य राजनैतिक चेतना और सत्ता की भागीदारी था। कांशीराम ने महसूस किया कि अगर दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को सम्मान और अधिकार सुनिश्चित कराने हैं, तो उन्हें सत्ता के केंद्रों तक पहुँचाना होगा। डीएस4 की स्थापना इसी दिशा में पहला निर्णायक कदम थी, जिसने बहुजन आंदोलन को एक नई दिशा दी और राजनैतिक क्रांति का आधार तैयार किया।

डीएस4 की स्थापना और इसका उद्देश्य

“दलित शोषित समाज संघर्ष समिति” (DS-4), जो बामसेफ के सामाजिक कार्यों से आगे एक राजनैतिक और सामाजिक आंदोलन का विस्तार था। इसका मूल उद्देश्य यह था कि दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग

और धार्मिक अल्पसंख्यक जो अब तक राजनैतिक रूप से उपेक्षित रहे थे, उन्हें एक संगठित शक्ति में बदला जाए। कांशीराम ने इस संगठन के माध्यम से स्पष्ट रूप से घोषणा की कि दलित और शोषित समाज अब केवल नीतियों का विषय नहीं रहेंगे, बल्कि वे स्वयं नीति निर्धारण की प्रक्रिया में भागीदार बनेंगे। DS-4 ने इस विचार को जन-जन तक पहुँचाया कि बहुसंख्यक समाज की राजनैतिक चेतना और भागीदारी के बिना भारत में कोई भी वास्तविक सामाजिक न्याय संभव नहीं है।

DS-4 का मूल लक्ष्य राजनैतिक सत्ता को दलित और वंचित समुदाय के लिए उपलब्ध कराना था। कांशीराम का मानना था कि केवल नौकरियों और शिक्षा के अवसर पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि यदि सत्ता पर अधिकार नहीं होगा, तो इन सभी संसाधनों का संरक्षण नहीं हो पाएगा। उन्होंने डॉ. आंबेडकर के उस सिद्धांत को अपना आधार बनाया जिसमें राजनैतिक सत्ता को सामाजिक परिवर्तन की 'कुंजी' कहा गया था। DS-4 के माध्यम से यह संदेश प्रसारित किया गया कि वंचित वर्गों को अब केवल मतदान करने वाले के रूप में नहीं, बल्कि सत्ता की संरचना के भागीदार के रूप में स्थापित होना है।

इस संगठन की खास बात यह थी कि इसमें केवल कर्मचारी ही नहीं, बल्कि ग्रामीण, शहरी, छात्र, महिलाएँ, किसान, मजदूर जैसे समाज के सभी वंचित और उत्पीड़ित तबके शामिल हो सकते थे। यह बामसेफ की तुलना में कहीं अधिक व्यापक और संघर्षशील मंच बन गया। कांशीराम ने इसे 'क्रांतिकारी संगठन' का रूप दिया, जो न केवल सामाजिक असमानता के खिलाफ लड़ता था, बल्कि सत्ता की संरचना में आमूलचूल परिवर्तन लाने का भी आह्वान करता था।

DS-4 का उद्देश्य केवल विरोध या जागरूकता तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका मूल लक्ष्य था एक ऐसा संगठित जनबल तैयार करना जो भारतीय राजनीति को बदल सके। इस संगठन ने अपने प्रारंभिक वर्षों में ही कई आंदोलनों और जनसभाओं के माध्यम से इस लक्ष्य की दिशा में बड़ी ऊर्जा के साथ काम करना शुरू कर दिया था, जो आगे चलकर बहुजन समाज पार्टी की नींव बनी। DS-4 का यह उद्देश्य आज भी भारत के सामाजिक न्याय आंदोलन के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ माना जाता है।

डीएस4 के कार्य और आंदोलन

दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (DS-4) ने अपने गठन के साथ ही सामाजिक परिवर्तन को व्यवहार में लाने की दिशा में निर्णायक कार्य करना शुरू किया। यह केवल एक वैचारिक संगठन नहीं था, बल्कि एक ज़मीनी स्तर पर सक्रिय आंदोलन बन गया, जिसने दलित, पिछड़े, और वंचित समुदायों के वास्तविक मुद्दों को जन आंदोलन का रूप दिया। इस संगठन ने सबसे पहले ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना और जातिगत उत्पीड़न के खिलाफ संगठित रूप से मोर्चा खोला। गाँवों और कस्बों से लेकर शहरी क्षेत्रों तक, जहाँ भी सामाजिक अन्याय और भेदभाव होता था, वहाँ DS-4 ने खुलकर हस्तक्षेप किया। इसने पीड़ित समुदायों को न केवल न्याय दिलाने की कोशिश की, बल्कि उनमें आत्मविश्वास भी जगाया कि वे संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं।

इस आंदोलन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी सार्वजनिक जनसभाएँ, जागरूकता यात्राएँ और पोस्टर-दीवार लेखन अभियानों के माध्यम से जनता से सीधा संवाद था। DS-4 के कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाकर बहुजन समुदाय को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करते थे

और यह बताते थे कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति केवल नारे लगाने से नहीं, बल्कि सत्ता के केंद्रों तक पहुँचने से ही संभव है। कांशीराम स्वयं इन सभाओं में भाग लेते और कार्यकर्ताओं को आंदोलन की विचारधारा और राजनैतिक महत्व का प्रशिक्षण देते थे। इसके माध्यम से DS-4 एक ऐसा आंदोलन बन गया, जिसमें पढ़े-लिखे युवा, छात्र, महिलाएं, किसान और मजदूर तक शामिल हो गए।

इसके अतिरिक्त, DS-4 ने प्रेस और पत्रिकाओं के माध्यम से एक सशक्त वैचारिक आंदोलन भी चलाया। कांशीराम की अगुवाई में प्रकाशित 'Oppressed Indian', 'The Chamcha Age' जैसी पुस्तकों और साप्ताहिक लेखों ने बहुजन समाज के लोगों को सामाजिक-राजनैतिक शोषण के स्वरूप को समझने में मदद की। यह साहित्य आन्दोलन का वैचारिक हथियार बना। साथ ही, संगठन ने बहुजन नायकों की स्मृति में समारोह आयोजित किए, जिससे समुदाय को अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक गौरव का बोध कराया जा सके।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि DS-4 ने बहुजन युवाओं में राजनैतिक महत्वाकांक्षा पैदा की। संगठन का यह स्पष्ट सन्देश था कि यदि राजनीति में भागीदारी नहीं होगी, तो दलित, पिछड़े, और शोषित समाज का हाशिए पर रहना तय है। यह संगठन न केवल अन्याय के खिलाफ आवाज बना, बल्कि बहुजन समुदाय को एक संगठित शक्ति में बदलने का प्रयास भी बना। इस आंदोलन की जड़ों में व्यावहारिक संघर्ष, वैचारिक स्पष्टता और सत्ता तक पहुँचने की रणनीति स्पष्ट रूप से मौजूद थी, जिसने भारतीय सामाजिक न्याय आंदोलन की दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया।

डीएस4 और राजनीति की ओर बढ़ता कदम

दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (DS-4) के प्रारंभिक चरण में सामाजिक जागरूकता और जनसंपर्क केंद्रित रहा, लेकिन कुछ ही वर्षों में कांशीराम ने यह गहराई से समझ लिया कि बहुजन समाज को केवल सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से नहीं, बल्कि सत्ता के गलियारों में प्रवेश करके ही सशक्त किया जा सकता है। उन्होंने अनुभव किया कि जब तक नीति निर्धारण की प्रक्रिया में वंचित वर्गों की भागीदारी नहीं होगी, तब तक उनके लिए वास्तविक सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना संभव नहीं है। इसी बोध के चलते DS-4 की गतिविधियाँ धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना की ओर झुकने लगीं और इसके कार्यक्रमों में सत्ता की भागीदारी की आवश्यकता का विचार अधिक स्पष्ट होता गया।

यह स्पष्ट हो चला था कि देश की परंपरागत राजनैतिक पार्टियाँ, विशेष रूप से कांग्रेस और अन्य मुख्यधारा की पार्टियाँ, दलितों और पिछड़ों को केवल वोट बैंक की तरह देखती हैं। वे चुनावों के समय इन वर्गों को लुभाने के लिए वादे करती थीं, लेकिन उनके अधिकारों और वास्तविक सशक्तिकरण के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाता था। कांशीराम ने इस व्यवस्था को 'चमचा संस्कृति' कहा और बार-बार यह दोहराया कि बहुजन समाज को अपना राजनैतिक दल खड़ा करना होगा, ताकि वे सत्ता में अपनी सहभागिता तय कर सकें। DS-4 ने यह समझाया कि केवल विरोध प्रदर्शन या मोर्चा निकालना काफी नहीं है, बल्कि सत्ता के ढांचे में प्रवेश करके ही नीतिगत परिवर्तन संभव हैं।

राजनैतिक मंच की ओर DS-4 की यह यात्रा राजनीतिक भी थी और क्रांतिकारी भी। कांशीराम ने महसूस किया कि बहुजन समाज की राजनैतिक जागरूकता को संगठित करने के लिए एक सशक्त राजनैतिक

विकल्प की आवश्यकता है, जो सवर्ण नेतृत्व पर निर्भर न होकर स्वयं अपने वर्ग से निकले। इसके लिए DS-4 ने बहुजन समाज के बीच व्यापक जनसंवाद शुरू किया, जिसमें यह बताया गया कि “राजनैतिक सत्ता ही वह चाबी है जिससे हर दरवाज़ा खुल सकता है।” यह नारा समाज के निचले तबकों के बीच गूँजने लगा और बहुजन युवाओं, कर्मचारियों, महिलाओं तथा ग्रामीण जनता को एक नये विश्वास से जोड़ने लगा।

DS-4 के कार्यकर्ताओं और नेतृत्व ने BSP के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई। यह पहली बार था जब दलित, पिछड़े, और अल्पसंख्यक समुदायों के नेतृत्व में एक ऐसी पार्टी बनी जिसका उद्देश्य सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करना था, न कि केवल सवर्ण नेताओं की छत्रछाया में काम करना। DS-4 ने भारतीय राजनीति को यह स्पष्ट संकेत दिया कि दलित और शोषित समाज अब अपनी स्वतंत्र राजनैतिक पहचान और रणनीति के साथ सामने आ रहा है। यही DS-4 की सबसे बड़ी ऐतिहासिक भूमिका थी-जिसने सामाजिक आंदोलन से राजनैतिक सशक्तिकरण तक का सेतु तैयार किया।

डीएस4 का बहुजन आंदोलन पर प्रभाव

डीएस4 की स्थापना ने भारत के सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य में एक गहरे बदलाव की शुरुआत की। इस संगठन ने पहली बार दलित, पिछड़े, और वंचित वर्गों को यह अहसास दिलाया कि वे केवल एक ‘वोट बैंक’ नहीं, बल्कि एक राजनैतिक शक्ति हैं। यह संगठन ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना के सामने एक वैकल्पिक राजनैतिक विमर्श लेकर आया जिसने बहुजन समाज को सशक्त बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाए। डीएस4 के प्रयासों से बहुजन समाज ने यह समझा कि यदि वे संगठित हो

जाएँ और राजनैतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाएँ, तो वे न केवल अपनी स्थिति को बेहतर कर सकते हैं, बल्कि पूरे शासनतंत्र को भी अपने पक्ष में मोड़ सकते हैं।

इस संगठन ने बहुजन समाज को राजनैतिक दृष्टि से जागरूक करने का कार्य बड़ी कुशलता से किया। गाँव-गाँव, मोहल्लों-मोहल्लों में जाकर लोगों को यह बताया गया कि किस प्रकार वे ऐतिहासिक रूप से शोषित रहे हैं और किस तरह उन्हें योजनाबद्ध ढंग से सत्ता से बाहर रखा गया है। डीएस4 के नेताओं ने स्पष्ट कर दिया कि राजनैतिक सत्ता ही वह माध्यम है जिसके द्वारा शिक्षा, रोजगार, न्याय और सामाजिक सम्मान प्राप्त किया जा सकता है। इस बात ने बहुजन समाज के भीतर आत्मसम्मान की भावना पैदा की और एक नई राजनैतिक चेतना का जन्म हुआ जो अब केवल अन्य राजनैतिक दलों पर निर्भर नहीं रहना चाहता था।

डीएस4 ने बहुजन आंदोलन को एक राष्ट्रीय पहचान दिलाने में अहम भूमिका निभाई। पहले जहाँ यह आंदोलन बिखरा हुआ था और विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय संघर्षों तक सीमित था, वहीं डीएस4 ने इन संघर्षों को एक संगठित राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। इससे यह सुनिश्चित हुआ कि दलित और पिछड़ा वर्ग सिर्फ सामाजिक आंदोलनों तक सीमित नहीं रहें, बल्कि वे भारतीय राजनीति के निर्णायक खिलाड़ी बनें। डीएस4 के कार्यक्रमों और रैलियों में बड़ी संख्या में महिलाएँ, युवा, किसान, मजदूर और कर्मचारी भाग लेने लगे, जिससे यह आंदोलन एक जनांदोलन का रूप लेने लगा।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि डीएस4 के माध्यम से बहुजन समाज को यह विश्वास मिला कि वे सत्ता में भागीदारी के वास्तविक हकदार हैं। उन्हें यह समझ आया कि राजनैतिक दलों की चाटुकारिता की बजाय

अपनी पार्टी और नेतृत्व होना अधिक प्रभावशाली और स्थायी रास्ता है। यही सोच आगे चलकर बहुजन समाज पार्टी (BSP) की नींव बनी। डीएस4 ने बहुजन राजनीति को एक मजबूत वैचारिक और संगठनात्मक आधार दिया, जिसने बाद के दशकों में उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की राजनीति को पूरी तरह बदल कर रख दिया। इस प्रकार, डीएस4 केवल एक आंदोलन नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की राजनीति की दिशा बदलने वाला एक निर्णायक पड़ाव सिद्ध हुआ।

डीएस4 की सीमाएँ और उससे उत्पन्न राजनैतिक आवश्यकता

यद्यपि डीएस4 ने बहुजन समाज के भीतर राजनैतिक चेतना और सामाजिक एकता का एक व्यापक आधार तैयार किया, लेकिन समय के साथ इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट होने लगीं। यह संगठन मुख्यतः एक जागरूकता और आंदोलनात्मक मंच था, जो सत्ता में भागीदारी की सीधी प्रक्रिया से दूर था। इसकी सबसे बड़ी सीमा यह थी कि यह स्वयं चुनावी राजनीति में भाग नहीं लेता था। कांशीराम ने महसूस किया कि जब तक दलितों और पिछड़ों के अधिकारों की लड़ाई केवल सड़कों, जनसभाओं, और आंदोलनों तक सीमित रहेगी, तब तक निर्णायक नीतिगत परिवर्तन संभव नहीं होंगे। इसीलिए उन्होंने इसे एक संक्रमणकालीन संगठन के रूप में देखा, जो बहुजन समाज को राजनैतिक भागीदारी के लिए तैयार करेगा, लेकिन सत्ता प्राप्ति का अंतिम माध्यम नहीं होगा।

डीएस4 ने बहुजन समाज के लाखों लोगों को संगठित तो किया, लेकिन यह संगठन केवल जनआंदोलन तक सीमित रहा। जब इसकी लोकप्रियता और जनाधार बढ़ने लगा, तो यह बात सामने आई कि बहुजन समाज अब केवल जागरूकता से संतुष्ट नहीं रहेगा, बल्कि वह सत्ता के केंद्रों तक पहुँचने की आकांक्षा रखता है। इस स्थिति में डीएस4 की संरचना और

रणनीति अपर्याप्त सिद्ध होने लगी। इसके माध्यम से समाज में जो ऊर्जा और संगठन शक्ति तैयार हुई थी, उसे अब एक राजनैतिक दिशा देने की आवश्यकता महसूस की गई। यह स्पष्ट हो गया कि यदि बहुजन समाज को निर्णायक शक्ति बनना है, तो उसे केवल सामाजिक या आंदोलनात्मक मंच से नहीं, बल्कि एक पूर्ण राजनैतिक पार्टी के रूप में सामने आना होगा।

इसके अतिरिक्त, डीएस4 के सामने यह चुनौती भी थी कि यह एक संगठन के रूप में बहुजन समाज के सभी तबकों की आकांक्षाओं को पूरी तरह समाहित नहीं कर पा रहा था। विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों की जरूरतें अलग थीं, और उन्हें एक समग्र राजनैतिक एजेंडे में शामिल करने के लिए एक संगठित राजनैतिक संगठन की आवश्यकता थी। डीएस4 की यह सीमित भूमिका बहुजन राजनीति के विस्तार के मार्ग में बाधा बनने लगी। यही कारण था कि कांशीराम ने जल्द ही यह निर्णय लिया कि एक ऐसी पार्टी बनाई जाए जो न केवल बहुजन समाज की आवाज़ हो, बल्कि चुनावी राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेकर सत्ता की चाबी भी अपने हाथों में ले सके।

इस संदर्भ में, डीएस4 का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसने वह आधार तैयार किया जिस पर बहुजन समाज पार्टी (BSP) का निर्माण संभव हुआ। डीएस4 की सीमाओं ने कांशीराम को यह स्पष्ट रूप से समझा दिया कि सामाजिक न्याय की अंतिम लड़ाई बिना सत्ता प्राप्ति के अधूरी रहेगी।

अध्याय 10:

डीएस4 का नारा “ –वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा”

डीएस4 का वैचारिक आधार और नारे का महत्व

“दलित शोषित समाज संघर्ष समिति” (DS-4) भारतीय राजनीति में एक नई वैचारिक क्रांति की शुरुआत थी। यह संगठन बामसेफ की सीमाओं से आगे बढ़कर एक जनआंदोलन में परिवर्तित हुआ, जिसका उद्देश्य केवल सरकारी कर्मचारियों को संगठित करना नहीं था, बल्कि संपूर्ण बहुजन समाज - जिसमें दलित, पिछड़े वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल थे - को राजनैतिक रूप से जागरूक और संगठित करना था। इस नई दिशा को स्पष्ट करने और आंदोलन को जनमानस तक पहुँचाने के लिए कांशीराम ने एक अत्यंत प्रभावशाली नारा गढ़ा: “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा।” यह नारा सिर्फ एक नारेबाज़ी नहीं थी, बल्कि दशकों से सत्ता से वंचित रहे समुदायों के भीतर राजनैतिक चेतना जगाने का औजार बन गया। यह नारा बहुजन समाज को यह बताने के लिए था कि वे केवल सत्ता तक पहुँचाने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि उन्हें स्वयं सत्ता का हिस्सा बनना है।

इस नारे के पीछे कांशीराम की स्पष्ट वैचारिक सोच थी। उन्होंने महसूस किया कि भारत में स्वतंत्रता के बाद भी राजनैतिक सत्ता की बागडोर सवर्ण नेतृत्व के पास ही बनी रही, जबकि बहुजन समाज को केवल वोट बैंक समझा जाता रहा। वे सरकारें बनाने में निर्णायक भूमिका निभाते रहे,

लेकिन कभी सत्ता में भागीदार नहीं बन सके। कांशीराम ने इस स्थिति को “राजनैतिक गुलामी” कहा और उसे समाप्त करने की आवश्यकता जताई। उनका मानना था कि जब तक बहुजन समाज खुद सत्ता में हिस्सेदारी नहीं करेगा, तब तक उसका सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक उत्थान केवल एक भ्रम बना रहेगा। उन्होंने देखा कि कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और अन्य सवर्ण-नेतृत्व वाली पार्टियाँ बहुजन समाज से केवल चुनावी लाभ लेती हैं, परंतु सत्ता में आने के बाद उन्हें निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखती हैं। इसीलिए उन्होंने एक ऐसा नारा गढ़ा जो लोगों के ज़हन में सीधे उतर जाए और उन्हें आत्मसाक्षात्कार की ओर ले जाए।

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा” ने बहुजन समाज के भीतर एक तरह की क्रांतिकारी ऊर्जा भर दी। यह नारा हर सभा, रैली, गाँव की दीवार, जनसंचार पत्रिका और जनसभा में गूँजने लगा। यह उस लंबे राजनैतिक छल और शोषण के विरुद्ध एक चुनौती बन गया, जिसमें आरक्षित वर्गों को केवल प्रतिनिधित्व का मुखौटा पहनाकर सत्ता की वास्तविकता से दूर रखा गया था। कांशीराम ने अपने भाषणों में स्पष्ट किया कि इस नारे का मकसद केवल राजनैतिक बयानबाज़ी नहीं, बल्कि बहुजन समाज को यह समझाना है कि वोट देना पर्याप्त नहीं है, सत्ता हासिल करना आवश्यक है। यदि बहुजन समाज को अपने अधिकारों, सम्मान और समानता के लिए संघर्ष करना है, तो उन्हें सत्ता के केंद्र में पहुँचना ही होगा, वरना वे दूसरों की सत्ता के लिए केवल ईंधन बने रहेंगे।

यह नारा बहुजन राजनीति की दिशा को पुनर्परिभाषित करने वाला बन गया। यह जनचेतना को राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित करने का कार्य करता था। डीएस4 के माध्यम से इसे पूरे भारत में, विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब और महाराष्ट्र में फैलाया गया। यह नारा ना

केवल जनसभाओं में प्रयोग हुआ, बल्कि बहुजन समाज के युवाओं के बीच एक राजनैतिक घोषवाक्य के रूप में उभरा। कांशीराम ने इस नारे के जरिए यह स्पष्ट कर दिया कि बहुजन समाज अब वोट देने के बाद किनारे बैठने वाला वर्ग नहीं रहेगा, बल्कि सत्ता में भागीदारी और नेतृत्व की जिम्मेदारी अपने हाथों में लेगा।

अतः यह कहा जा सकता है कि “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा” भारतीय लोकतंत्र के उस मोड़ पर उत्पन्न हुआ जब बहुजन समाज को पहली बार उसकी राजनैतिक ताकत का एहसास कराया गया। इस नारे ने उन्हें सवर्ण नेतृत्व से स्वतंत्र होने, अपनी आवाज़ खुद बनने और अपने नेतृत्व को चुनने की प्रेरणा दी। यह नारा आज भी बहुजन आंदोलन की राजनैतिक चेतना का स्तंभ है और भारतीय राजनीति में एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतीक बन चुका है।

इस नारे के पीछे कांशीराम की सोच

कांशीराम की सोच का मूल आधार यह था कि राजनैतिक सत्ता के बिना किसी भी वंचित समाज का वास्तविक उत्थान असंभव है। उन्होंने गहराई से विश्लेषण किया कि भारत में स्वतंत्रता के बाद भी बहुजन वर्ग सिर्फ मतदाता बना रहा, निर्णय लेने की शक्ति हमेशा उनके हाथों में रही जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था के संरक्षक थे। कांशीराम ने इस असमानता को “राजनैतिक गुलामी” की संज्ञा दी, जिसमें बहुजन समाज अपनी ही वोट से सत्तारूढ़ दलों को तो बना रहा था, लेकिन उन सरकारों में उसकी भूमिका प्रतीकात्मक से अधिक नहीं थी। उनका यह भी मानना था कि जिन सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टियों को बहुजन समाज दशकों से समर्थन

देता आ रहा था, वे उनकी समस्याओं का समाधान करने के बजाय सत्ता में आकर उनकी उपेक्षा करती रहीं।

इस सोच ने उन्हें यह कहने पर मजबूर किया कि केवल संगठन बनाकर सामाजिक जागरूकता फैलाना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस जागरूकता को राजनैतिक शक्ति में बदलना आवश्यक है। कांशीराम का यह विचार बिल्कुल साफ था कि जब तक बहुजन समाज खुद राजनैतिक ताकत अपने हाथों में नहीं लेगा, तब तक सत्ता में बैठे लोग उनके हितों के विरुद्ध ही निर्णय लेते रहेंगे। उन्होंने अपने कई भाषणों में कहा कि बहुजन समाज को केवल शासन में भागीदारी नहीं, बल्कि उसका नेतृत्व करना होगा। यह सोच “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” जैसे नारे में पूरी तरह साकार होती है।

कांशीराम की राजनैतिक दृष्टि में यह नारा केवल एक तात्कालिक विरोध नहीं था, बल्कि एक दीर्घकालिक आंदोलन की शुरुआत थी। उन्होंने यह भी महसूस किया कि यदि बहुजन समाज अपने मताधिकार का प्रयोग विवेक और संगठित तरीके से करे, तो वे सवर्णों के बनाए हर सत्ता समीकरण को तोड़ सकते हैं। लेकिन इसके लिए उन्हें पहले आत्मगौरव और आत्मनिर्भरता के साथ जागरूक होना पड़ेगा। इसी उद्देश्य से उन्होंने डीएस4 जैसे संगठन का निर्माण किया और नारे को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे जनता केवल मतदान की प्रक्रिया में भागीदारी करने के बजाय उसे अपनी शक्ति समझे और सशक्त राजनैतिक हस्तक्षेप की ओर बढ़े।

इस नारे की विचारधारा का एक और महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि यह केवल किसी वर्ग के विरुद्ध नहीं था, बल्कि यह अपने हक की माँग थी। यह एक चेतावनी भी थी और एक उम्मीद भी - चेतावनी उन दलों के लिए जो

बहुजन वोट लेकर सत्ता में आते थे पर बदले में कुछ नहीं देते थे, और उम्मीद उन वंचितों के लिए जो दशकों से सत्ता के दरवाजे पर खड़े थे। कांशीराम की यह सोच एक रणनीतिक क्रांति थी, जिसने भारतीय राजनीति में सत्ता की धुरी को सवर्णों से बहुजन की ओर मोड़ने की भूमिका निभाई।

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” का मूल संदेश यही था कि अब बहुजन समाज सत्ता की सीढ़ियों पर किसी और को चढ़ाने का माध्यम नहीं बनेगा। वह स्वयं अपने हाथों में सत्ता की चाबी लेगा, अपने नेता खुद चुनेगा, और अपनी समस्याओं का हल अपने प्रतिनिधित्व के जरिए निकालेगा। यही कांशीराम की उस सोच की परिणति थी जिसने बहुजन राजनीति को आत्मविश्वास और नेतृत्व की दिशा दी।

इस नारे के पीछे की पृष्ठभूमि

आज़ादी के बाद भारत में लोकतांत्रिक ढांचे की स्थापना तो हो गई, लेकिन सत्ता की वास्तविक बागडोर अब भी उन्हीं हाथों में रही जो सदियों से सामाजिक और आर्थिक वर्चस्व बनाए हुए थे। संविधान द्वारा दिए गए आरक्षण और प्रतिनिधित्व के बावजूद बहुजन समाज केवल एक औपचारिक उपस्थिति तक सीमित रह गया। कांशीराम ने इस यथास्थिति को गहराई से समझा और महसूस किया कि भारतीय राजनीति में जो बहुजन विधायक और सांसद चुनकर आते हैं, वे अक्सर अपनी स्वायत्त भूमिका नहीं निभा पाते। उन्हें पार्टी के उच्चवर्गीय नेतृत्व द्वारा नियंत्रित किया जाता है, जिससे वे समाज की जमीनी समस्याओं को न तो खुलकर उठा सकते हैं और न ही उनका समाधान करा सकते हैं।

इस पृष्ठभूमि में कांशीराम ने देखा कि आरक्षित सीटों का उपयोग केवल सत्ता संतुलन के एक उपकरण के रूप में हो रहा है, जिसमें बहुजन प्रतिनिधियों को चुनाव लड़वाकर दिखावा किया जाता है, जबकि निर्णय लेने की प्रक्रिया पूरी तरह से सर्वर्ण नेतृत्व के हाथ में रहती है। इस प्रकार बहुजन समाज केवल सत्ता के मंच का दर्शक बना रहा, जिसकी भूमिका चुनावी समर्थन तक सीमित थी, और जो नीतिगत प्रक्रिया से दूर रखा जाता था। यह परिदृश्य ही वह बिंदु था जहाँ कांशीराम ने “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” जैसे नारे की आवश्यकता महसूस की।

इस नारे के जरिए उन्होंने यह स्थापित किया कि बहुजन समाज की राजनैतिक चेतना को केवल रिएक्शन तक सीमित नहीं रखा जा सकता। इसे एक रचनात्मक शक्ति में बदला जाना चाहिए, जो केवल सत्ता के गलियारों में दस्तक न दे, बल्कि वहाँ निर्णायक भूमिका निभाए। कांशीराम ने बार-बार यह कहा कि बहुजन समाज को चाहिए कि वह केवल चुनावों में भाग न ले, बल्कि अपनी स्वतंत्र राजनैतिक पहचान गढ़े, अपनी पार्टी बनाए और अपने नेताओं को तैयार करे, ताकि वे केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि निर्णयकारी शक्तियों का संचालन कर सकें।

यह नारा उस गहन असंतोष और घुटन से निकला था जो बहुजन समाज ने दशकों तक अनुभव की। यह न केवल सत्ता से बहिष्करण का विरोध था, बल्कि सत्ता की संरचना को नए सिरे से परिभाषित करने का एक सशक्त प्रयास भी था। कांशीराम ने बहुजन समाज को बताया कि जब तक वे सत्ता के शीर्ष पर नहीं पहुँचेंगे, तब तक कोई भी उनका भला नहीं करेगा - चाहे वह कितने ही वादे क्यों न करे। इसलिए, यह नारा केवल असंतोष का प्रतीक नहीं, बल्कि एक संकल्प का उद्गार था कि अब दिशा और निर्णय बहुजन समाज के हाथ में होंगे।

इस प्रकार यह नारा इतिहास की उस गूँज में बदल गया जिसने बहुजन समाज को एक नए आत्मविश्वास से भर दिया। यह आत्मविश्वास उन्हें केवल एक सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि राजनैतिक अधिकार और रणनीतिक जागरूकता की ओर ले गया। इससे बहुजन समाज यह समझ सका कि केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, सत्ता में सहभागिता और नेतृत्व ही वास्तविक बदलाव की कुंजी है।

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” का संदेश

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” नारा सिर्फ शब्दों का मेल नहीं था, यह एक चेतावनी थी, एक उद्घोषणा थी और एक आंदोलनात्मक घोषणा थी, जिसने बहुजन समाज की दशकों पुरानी राजनैतिक निष्क्रियता को झकझोर कर रख दिया। कांशीराम द्वारा दिए गए इस नारे ने बहुजन समाज को यह एहसास कराया कि वे अब तक अपनी सबसे शक्तिशाली राजनैतिक पूंजी-वोट-का उपयोग सिर्फ दूसरों को सत्ता में पहुँचाने के लिए कर रहे थे, लेकिन खुद उससे वंचित रह जाते थे। यह नारा उस मानसिक और राजनैतिक क्रांति की शुरुआत थी, जो यह कहता था कि अब बहुजन समाज दूसरों की सत्ता को स्थापित करने का औजार नहीं बनेगा, बल्कि स्वयं सत्ता का स्वामी बनेगा।

इस नारे ने पहली बार बहुजन समाज को एक सामूहिक आत्ममंथन की ओर अग्रसर किया। उन्हें यह सोचने पर विवश किया कि आखिर उनकी संख्या इतनी अधिक होने के बावजूद भी वे सत्ता से इतने दूर क्यों हैं। यह नारा समाज को यह समझाने में सफल हुआ कि मात्र वोट देना पर्याप्त नहीं है, जब तक उस वोट का वास्तविक फल सत्ता में प्रतिनिधित्व और नीति निर्धारण के रूप में नहीं मिलता। कांशीराम ने स्पष्ट कर दिया कि जब तक

बहुजन समाज के हाथों में सत्ता की चाबी नहीं होगी, तब तक उनके मुद्दे सिर्फ चुनावी वादों तक सीमित रहेंगे और वास्तविक बदलाव संभव नहीं होगा।

इस नारे का दूसरा बड़ा संदेश यह था कि अब नेतृत्व का चेहरा बदलेगा। बहुजन समाज ने पहली बार यह दृढ़ निश्चय किया कि अब वे अपनी राजनीति स्वयं तय करेंगे, अपने नेता स्वयं चुनेंगे और नीतियाँ भी स्वयं बनाएँगे। यह नारा उन बहुजन नेताओं के लिए एक चुनौती बन गया जो वर्षों से सवर्ण नेतृत्व की छाया में केवल प्रतीकात्मक भूमिका निभा रहे थे। अब उन्हें या तो बहुजन समाज की स्वतंत्र राजनैतिक चेतना के साथ चलना था, या फिर हाशिए पर चले जाना था। इससे बहुजन नेतृत्व की दिशा और शैली दोनों में आमूलचूल परिवर्तन आया।

इस क्रांतिकारी नारे ने गाँवों, कस्बों और शहरों तक व्यापक जनचेतना फैलाई। डीएस4 के कार्यकर्ताओं ने इसे जनसभाओं, पोस्टरों, नाटकों, जुलूसों और दीवार लेखन के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। यह केवल एक राजनैतिक प्रचार का माध्यम नहीं था, बल्कि यह बहुजन समाज की मानसिकता और आत्मविश्वास को बदलने का औजार बन गया। इस नारे की लोकप्रियता इतनी थी कि यह हर बहुजन के जुबान पर आ गया और धीरे-धीरे यह नारा एक आंदोलनात्मक घोषणापत्र में बदल गया, जिसने दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदायों में आत्मसम्मान की भावना को पुनर्जीवित किया।

यह नारा उस मौन स्वीकृति के अंत का प्रतीक था, जिसमें बहुजन समाज अपने शोषण और राजनैतिक बहिष्करण को भाग्य मानकर स्वीकार करता आ रहा था। अब उन्होंने यह ठान लिया था कि सत्ता का रास्ता उनकी चेतना, एकता और संघर्ष से होकर गुजरेगा। वे अब दूसरों के बनाए

हुए ढाँचे में फिट होने की कोशिश नहीं करेंगे, बल्कि अपना अलग राजनैतिक मंच, अपनी भाषा और अपना नेतृत्व खड़ा करेंगे। “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” एक युगांतकारी उद्घोष था, जिसने बहुजन राजनीति को मौन से मुखरता की ओर, और समर्थन से नेतृत्व की ओर धकेला।

डीएस4 के आंदोलनों में इस नारे का प्रयोग

जब कांशीराम ने “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” जैसा सशक्त नारा दिया, तो यह केवल भाषणों में नहीं रहा, बल्कि जमीन पर आंदोलन की शक्ति में उतर आया। डीएस4 के कार्यकर्ताओं ने इस नारे को उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब, महाराष्ट्र और कर्नाटक जैसे राज्यों के गाँव-गाँव, गली-गली में ले जाकर बहुजन समाज के भीतर राजनैतिक चेतना का संचार किया। यह नारा उन जनसभाओं का केंद्रीय सूत्र बन गया जो रेलवे स्टेशन से लेकर बस स्टैंड, पंचायत से लेकर विश्वविद्यालय तक हर जगह आयोजित की गई। इन सभाओं में समाज के वंचित वर्गों को उनके वास्तविक राजनैतिक अधिकारों का ज्ञान कराया गया और उन्हें समझाया गया कि अब समय आ गया है जब वे केवल वोट न दें, बल्कि अपनी राजनीति भी स्वयं संचालित करें।

डीएस4 के आंदोलन केवल नारों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने इस नारे को एक संगठनात्मक नीति के रूप में अपनाया। आरक्षित सीटों पर केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व को खारिज करते हुए, संगठन ने यह माँग की कि बहुजन समुदाय के प्रत्याशी अपनी स्वतंत्र राजनैतिक विचारधारा के साथ मैदान में उतरें। कांशीराम ने स्पष्ट किया कि बहुजन प्रतिनिधि अब किसी सवर्ण पार्टी के अनुचर नहीं बनेंगे, बल्कि अपने समुदाय के

स्वाभिमान और नीति निर्धारण के वाहक बनेंगे। इसके लिए डीएस4 ने न केवल आरक्षित क्षेत्रों में अभियान चलाया, बल्कि सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में भी बहुजन चेतना के प्रसार हेतु कार्यक्रमों की एक श्रृंखला शुरू की।

इस आंदोलन के दौरान डीएस4 ने 'राजनैतिक बेड़ियों को तोड़ो' जैसी रैलियाँ आयोजित कीं, जिनमें हजारों लोग एकत्र होते थे। इन रैलियों में कांशीराम का भाषण बहुजन युवाओं में जोश भर देता था। उनके मंच पर यह नारा बार-बार गूंजता था और दर्शकगण इसे अपनी आवाज बना लेते थे। यह नारा केवल एक घोषवाक्य नहीं रहा, बल्कि यह एक सामाजिक और राजनैतिक अनुशासन में बदल गया, जिसके माध्यम से डीएस4 ने एक नई पीढ़ी को वैचारिक दृष्टिकोण से तैयार किया। उन युवाओं को, जो अब तक केवल वोटर थे, एक कार्यकर्ता और फिर एक नेता के रूप में परिवर्तित किया गया।

इसके अतिरिक्त, डीएस4 ने इस नारे को लेकर कांग्रेस और समाजवादी पार्टियों की बहुजन विरोधी नीतियों पर भी तीखा प्रहार किया। चुनावों में डीएस4 ने बहुजन समाज को यह चेताया कि जो पार्टियाँ उन्हें केवल चुनावी मौसम में याद करती हैं, उनसे सावधान रहना चाहिए। इस प्रचार अभियान में पर्चे, गीत, पोस्टर, नुक्कड़ नाटक और समाचार पत्रों के माध्यम से जनता को यह समझाने की कोशिश की गई कि सत्ता में भागीदारी का अधिकार उन्हें खुद लेना होगा-कोई और उन्हें सौंपने नहीं आएगा। परिणामस्वरूप, पहली बार बहुजन समाज ने पारंपरिक दलों से दूरी बनानी शुरू की और आत्मनिर्भर राजनीति की ओर अग्रसर हुआ।

इस तरह, “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” नारे ने डीएस4 के आंदोलनों को एक विचारधारा और दिशा दी। इस नारे ने बहुजन राजनीति को संघर्षशील बना दिया और आंदोलन को जन-जन तक पहुँचाने का औजार साबित हुआ। इससे यह सिद्ध हो गया कि अब बहुजन समाज सिर्फ सामाजिक चेतना में ही नहीं, बल्कि राजनैतिक रणनीति में भी परिपक्व हो चुका है। यही वैचारिक दृढ़ता बाद में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की नींव बनी, जिसने न केवल चुनावी सफलता पाई, बल्कि सत्ता के केंद्र में बहुजन नेतृत्व को स्थापित कर एक ऐतिहासिक परिवर्तन की नींव रखी।

इस नारे का दीर्घकालिक प्रभाव

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा, नहीं चलेगा” नारा न केवल एक चुनावी औजार था, बल्कि यह एक दीर्घकालिक राजनैतिक क्रांति की प्रस्तावना साबित हुआ। इसने बहुजन समाज को आत्मनिरीक्षण करने, राजनैतिक रूप से जागरूक होने, और सबसे बढ़कर सत्ता को केवल दूसरों के हाथों सौंपने की प्रवृत्ति से मुक्त होने का मार्ग दिखाया। कांशीराम का यह नारा धीरे-धीरे एक आंदोलनात्मक मंत्र में तब्दील हो गया, जिसे लाखों लोगों ने आत्मसात किया। यह नारा गाँवों के चौपाल से लेकर शहरी विश्वविद्यालयों तक गूँजने लगा। यह पहली बार था जब बहुजन समाज को महसूस हुआ कि वे केवल संख्या नहीं हैं, बल्कि राजनैतिक दिशा बदलने की क्षमता रखने वाली शक्ति हैं।

इस नारे का पहला स्पष्ट प्रभाव यह था कि बहुजन समाज ने पारंपरिक दलों पर अपनी राजनैतिक निर्भरता को समाप्त करना शुरू किया। उन्होंने यह समझा कि जब तक वे अपनी राजनैतिक पार्टी नहीं बनाएँगे, तब तक

उनका एजेंडा, उनकी आवश्यकताएँ और उनका सम्मान किसी दूसरे नेतृत्व की प्राथमिकता नहीं बन सकता। यहीं से “बहुजन समाज पार्टी” की स्थापना की रूपरेखा बननी शुरू हुई। कांशीराम ने डीएस4 को उस विचारधारा का माध्यम बनाया, और इस नारे को उस सोच की रीढ़ बनाया, जो बहुजन राजनीति को आत्मनिर्भर और निर्णायक बनाना चाहता था। यह नारा बहुजन समाज पार्टी की विचारधारा का मूल आधार बन गया, जिसने भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय को एक सशक्त और सक्रिय एजेंडा बना दिया।

राजनैतिक परिवर्तन के अतिरिक्त, इस नारे ने सामाजिक चेतना में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किया। इससे पहले तक बहुजन समाज खुद को सत्ता के योग्य नहीं मानता था, लेकिन इस नारे ने उस आत्मग्लानि को आत्मसम्मान में बदला। शिक्षित युवाओं में नेतृत्व की भावना जागी, महिलाओं में भागीदारी की प्रेरणा आई, और बुजुर्गों में राजनैतिक संवाद की लहर उठी। यह नारा केवल चुनाव के समय तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह बहुजन समाज की वैचारिक स्मृति का हिस्सा बन गया। हर आंदोलन, हर राजनैतिक सभा, हर पोस्टर, और हर प्रचार अभियान में यह नारा बहुजन अस्मिता का प्रतीक बन गया।

इतिहास गवाह है कि इसी नारे के आधार पर उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुजन समाज पार्टी ने बहुमत हासिल किया और कांशीराम के बाद मायावती के नेतृत्व में पहली बार एक दलित महिला मुख्यमंत्री बनीं। यह एक ऐतिहासिक पल था, जब यह नारा केवल एक राजनैतिक वाक्य नहीं, बल्कि एक वैचारिक विजय का प्रमाण बन गया। इस नारे ने यह सिद्ध कर दिया कि जब कोई समाज अपनी राजनैतिक ताकत को पहचानता है, तो वह सत्ता की सीढ़ियाँ स्वयं चढ़ सकता है-किसी की कृपा पर नहीं।

इसलिए “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” केवल अतीत की स्मृति नहीं है, बल्कि यह आज भी हर उस बहुजन व्यक्ति की चेतना में जीवित है, जो राजनैतिक असमानता के विरुद्ध खड़ा है। यह नारा न केवल बहुजन राजनीति की नींव है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में हाशिए पर खड़े समाजों को सत्ता में भागीदारी दिलाने का स्थायी प्रतीक बन चुका है। यह बहुजन चेतना की आवाज है, जो हर पीढ़ी को यह याद दिलाती है कि अधिकार मांगने से नहीं, बल्कि संगठन, संघर्ष और आत्मनिर्भर नेतृत्व से प्राप्त होते हैं।

अध्याय 11 : 14 अप्रैल 1984 को बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना

डीएस4 से BSP की ओर बढ़ते कदम

जब कांशीराम ने “दलित शोषित समाज संघर्ष समिति” (DS-4) की स्थापना की थी, तब उनका मुख्य उद्देश्य बहुजन समाज को सामाजिक रूप से संगठित करना और उन्हें राजनैतिक चेतना से जोड़ना था। DS-4 ने यह कार्य प्रभावी ढंग से किया-उसने बहुजन समुदाय को न केवल शोषण और भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठाने की ताकत दी, बल्कि यह भी समझाया कि जब तक राजनैतिक सत्ता उनके हाथ में नहीं होगी, तब तक उनका शोषण समाप्त नहीं होगा। लेकिन DS-4 चुनाव नहीं लड़ सकता था क्योंकि यह एक गैर-राजनैतिक संगठन था। इसके कारण, कांशीराम के सामने एक स्पष्ट चुनौती थी-अगर सत्ता परिवर्तन लाना है तो केवल सामाजिक आंदोलन पर्याप्त नहीं है। सामाजिक जागरूकता को राजनैतिक सत्ता में बदलना जरूरी है।

कांशीराम ने पूरे भारत में सैकड़ों सभाओं और यात्राओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि बहुजन समाज को केवल अन्य पार्टियों को वोट देने तक सीमित नहीं रहना चाहिए। उन्होंने कहा कि दशकों से कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और अन्य सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टियाँ बहुजन समाज के वोट से सत्ता में तो आ रही हैं, लेकिन उनकी समस्याओं को हल करने में पूरी तरह असफल रही हैं। DS-4 के ज़रिए उन्होंने महसूस किया कि बहुजन

समाज के भीतर राजनैतिक नेतृत्व और आत्मनिर्भरता की जबरदस्त क्षमता है-बस उसे दिशा देने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त, DS-4 में भी कुछ सीमाएं थीं। चूंकि यह एक सामाजिक आंदोलन था, इसलिए इसमें शामिल कार्यकर्ताओं की ऊर्जा का राजनैतिक दिशा में उपयोग नहीं किया जा सकता था। यह महसूस करते हुए कि अगर बहुजन समाज को सत्ता में वास्तविक भागीदारी दिलानी है तो एक अलग राजनैतिक मंच की आवश्यकता है, कांशीराम ने 1984 में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की नींव रखने का निर्णय लिया। यह फैसला केवल रणनीतिक नहीं था, बल्कि ऐतिहासिक भी था, क्योंकि इससे पहले किसी भी दल ने बहुजन समाज के अधिकारों और सत्ता में भागीदारी को अपने मूल एजेंडे में शामिल नहीं किया था।

BSP की स्थापना 14 अप्रैल को की गई, जो डॉ. भीमराव अंबेडकर की जयंती थी। इस दिन को चुनना एक प्रतीकात्मक कार्य था, क्योंकि डॉ. अंबेडकर के विचार-राजनैतिक सत्ता को सामाजिक परिवर्तन का साधन मानना-BSP की नींव का आधार बने। कांशीराम ने इसे अंबेडकर के अधूरे आंदोलन को आगे बढ़ाने की दिशा में निर्णायक कदम बताया। उन्होंने यह ऐलान किया कि अब बहुजन समाज केवल सत्ता का साधन नहीं रहेगा, बल्कि वह सत्ता का स्वामी बनेगा। DS-4 से BSP की यह यात्रा एक सामाजिक चेतना से राजनैतिक क्रांति की ओर कदम था, जिसने भारतीय राजनीति में बहुजन आंदोलन को संगठित स्वरूप दिया।

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना का उद्देश्य

14 अप्रैल 1984 को डॉ. भीमराव अंबेडकर की जयंती के अवसर पर बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना केवल एक राजनैतिक दल की

शुरुआत नहीं थी, बल्कि यह बहुजन समाज के ऐतिहासिक संघर्षों की राजनैतिक परिणति थी। कांशीराम ने इस दिन का चुनाव अंबेडकर के विचारों और क्रांतिकारी दर्शन को साकार रूप देने के लिए किया। डॉ. अंबेडकर का यह कथन “—राजनैतिक सत्ता ही समाज के सभी समस्याओं का हल है”—BSP की स्थापना की वैचारिक नींव बन गया। कांशीराम इस बात को भलीभाँति समझ चुके थे कि सामाजिक आंदोलनों, जनसभाओं और नारों से बहुजन समाज को आत्मसम्मान तो मिल सकता है, लेकिन जब तक सत्ता में भागीदारी नहीं होगी, तब तक कोई स्थायी परिवर्तन संभव नहीं है।

BSP की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था — बहुजन समाज को अपनी राजनैतिक पहचान देना, उन्हें सत्ता की प्रक्रिया में सीधी भागीदारी दिलाना और ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना को सीधी चुनौती देना। कांशीराम ने यह महसूस किया कि स्वतंत्रता के कई दशक बीत जाने के बावजूद बहुजन समाज को केवल वोट बैंक की तरह इस्तेमाल किया गया। कांग्रेस, समाजवादी दलों और अन्य पारंपरिक पार्टियों ने बहुजन समुदाय से केवल समर्थन लिया लेकिन सत्ता के निर्णय लेने वाले स्थानों पर उन्हें कभी शामिल नहीं किया। इस सत्ताविहीनता ने बहुजन समाज को हमेशा आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक पिछड़ेपन में बनाए रखा।

BSP की स्थापना से पहले बहुजन समाज संगठित रूप से राजनैतिक विकल्पों की तलाश में था। कांशीराम ने बहुजन युवाओं, बुद्धिजीवियों, मजदूरों, किसानों, कर्मचारियों और बेरोजगारों को समझाया कि जब तक उनका अपना दल नहीं होगा, जो उनकी नीतियों को प्राथमिकता देगा, तब तक वे दूसरे दलों की दया पर निर्भर रहेंगे। BSP ने राजनैतिक गुलामी से मुक्ति का द्वार खोला और बहुजन समाज को अपने भविष्य की चाबी

सौंप दी। इस दल का उद्देश्य सिर्फ चुनाव जीतना नहीं था, बल्कि यह सत्ता में जाकर नीतियाँ बनाना, सामाजिक न्याय को लागू करना और ऐतिहासिक अन्याय को सुधारे जाने की दिशा में ठोस कार्य करना था।

कांशीराम ने यह भी स्पष्ट किया कि BSP किसी भी प्रकार की सवर्ण प्रभुत्व वाली राजनीति का हिस्सा नहीं बनेगी। इसके विपरीत, यह एक ऐसी पार्टी होगी जो बहुजन हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता देगी, भले ही इसके लिए कितनी भी राजनैतिक चुनौतियों का सामना करना पड़े। BSP का उद्देश्य था – बहुजन समाज को अपने नेता स्वयं चुनने, अपनी नीति स्वयं बनाने, और अपने हक के लिए लड़ने का मंच प्रदान करना। यही कारण था कि इस पार्टी को जनाधार जुटाने में अपेक्षाकृत कम समय लगा, क्योंकि यह पार्टी जनता की पीड़ा से निकली थी, और उसका नेतृत्व उन्हीं पीड़ित वर्गों के लोगों द्वारा किया जा रहा था।

इस प्रकार, BSP की स्थापना का उद्देश्य एक क्रांतिकारी परिवर्तन की भूमिका था, जिसने भारतीय राजनीति में सत्ता के चरित्र को बदलने की दिशा में बहुजन समाज को नेतृत्व और आत्मविश्वास दिया। यह केवल एक दल नहीं, बल्कि बहुजन जागरण का राजनैतिक विस्तार था।

BSP का वैचारिक आधार और नीतियाँ

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की विचारधारा केवल एक चुनावी रणनीति नहीं थी, बल्कि यह भारत के जातिवादी ढांचे के विरुद्ध एक लंबा वैचारिक संघर्ष थी। इसकी नींव उन ऐतिहासिक विचारधाराओं में थी, जो ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना को तोड़ने और बहुजन समाज को न्याय, समानता और सम्मान दिलाने के लिए खड़ी की गई थीं। कांशीराम ने यह स्पष्ट रूप से समझा था कि यदि बहुजन समाज को केवल वोटर बनाकर

रखा गया और नेतृत्व हमेशा सवर्ण वर्ग के पास रहा, तो संविधान प्रदत्त अधिकार कभी भी वास्तविकता में नहीं बदलेंगे। इसलिए, BSP की वैचारिक रचना इस बात पर आधारित थी कि बहुजन समाज को केवल प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि निर्णायक नेतृत्व की भूमिका में आना होगा।

BSP की नीतियाँ सामाजिक न्याय को केंद्र में रखती थीं, जिसमें आरक्षण की मजबूती, प्रशासनिक सुधारों में सहभागिता, आर्थिक संसाधनों तक समान पहुँच, और शिक्षा में प्राथमिकता शामिल थी। कांशीराम का मानना था कि “राजनैतिक सत्ता ही वह चाबी है जो हर ताले को खोल सकती है,” और यह चाबी तभी बहुजन समाज के हाथ में आ सकती है जब वे संगठित होकर सत्ता तक पहुँचें। BSP ने न केवल SC/ST/OBC वर्ग को बल्कि मुस्लिम और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों को भी अपनी विचारधारा में जोड़ा। पार्टी ने यह स्पष्ट किया कि सत्ता परिवर्तन के बिना सामाजिक परिवर्तन की बात करना एक धोखा है।

BSP की एक और महत्वपूर्ण नीति थी “ब्राह्मणवाद का बहिष्कार”, जो उस मानसिकता और व्यवस्था को चुनौती देती थी जो समाज को जन्म से ऊँच-नीच में बाँटती है। यह बहिष्कार किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस सोच के विरुद्ध था जो हजारों वर्षों से बहुजन समाज को शोषित बनाती रही। कांशीराम ने कहा कि जब तक सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणवाद बना रहेगा, तब तक बहुजन समाज केवल वोट देने का औज़ार बना रहेगा और निर्णय लेने की शक्ति उनके पास नहीं होगी। BSP ने इस सोच को जड़ों से उखाड़ फेंकने का काम किया।

इस वैचारिक आंदोलन में आत्मसम्मान को एक केंद्रीय मुद्दा बनाया गया। कांशीराम ने लगातार इस बात पर बल दिया कि बहुजन समाज को

मानसिक रूप से गुलामी की स्थिति से बाहर निकलना होगा। उन्होंने सिखाया कि आरक्षण कोई दया नहीं, बल्कि संविधानिक अधिकार है, और इसे पूरी दृढ़ता से लागू कराने के लिए सत्ता में भागीदारी अनिवार्य है। BSP की नीतियाँ सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण के पूर्ण और पारदर्शी क्रियान्वयन के लिए दबाव बनाती थीं। इसके अलावा, पार्टी ने यह भी सुनिश्चित किया कि प्रशासनिक तंत्र में बहुजन प्रतिनिधित्व बढ़े, ताकि निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी हो।

BSP ने बहुजन एकता पर भी बहुत बल दिया। कांशीराम ने विभिन्न जातियों और धार्मिक समुदायों के बीच व्याप्त विभाजन को दूर करने के लिए 'बहुजन' शब्द को एक समावेशी शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी रणनीति थी कि OBC, SC, ST, मुस्लिम और अन्य वंचित वर्ग अगर संगठित हो जाएँ, तो वे सत्ता की दिशा तय कर सकते हैं। इसके लिए उन्होंने "जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी" का सिद्धांत दिया, जो राजनैतिक प्रतिनिधित्व और संसाधनों के वितरण में न्यायसंगत भागीदारी सुनिश्चित करने की मांग करता था।

इस प्रकार, BSP की विचारधारा सिर्फ चुनाव जीतने की योजना नहीं थी, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति का प्रारूप थी, जो शोषण की व्यवस्था को बदलकर बहुजन समाज को सत्ता, सम्मान और आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने के लिए संघर्षरत थी। यह विचारधारा आज भी भारतीय राजनीति में बहुजन चेतना की सबसे मजबूत नींव मानी जाती है।

BSP का संगठनात्मक ढांचा और रणनीति

बहुजन समाज पार्टी (BSP) के संगठनात्मक ढांचे की सबसे विशेष बात इसका कैडर आधारित मॉडल था, जिसे कांशीराम ने बेहद सुविचारित

ढंग से तैयार किया। उनका मानना था कि कोई भी सामाजिक या राजनैतिक आंदोलन तभी सफल हो सकता है जब उसकी जड़ें समाज के हर स्तर पर मजबूती से फैली हों। इस उद्देश्य से उन्होंने BSP को न केवल एक चुनावी पार्टी के रूप में, बल्कि एक आंदोलन के रूप में विकसित किया। पार्टी के भीतर कार्यकर्ताओं का एक ठोस ढांचा तैयार किया गया, जिसमें हर स्तर-गांव, ब्लॉक, जिला, मंडल, राज्य और राष्ट्रीय स्तर-पर प्रशिक्षित कैडर तैनात किए गए। इन कार्यकर्ताओं को पार्टी की विचारधारा, उद्देश्य और नीतियों से लैस किया गया ताकि वे समाज में जागरूकता फैलाने का काम कर सकें।

BSP की रणनीति में सबसे अहम पहलू था 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' के सिद्धांत को प्रचारित करना। कांशीराम ने अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार और स्वयं अपनी विचारधारा को संगठन के हर स्तर पर पहुंचाने के लिए पुस्तिकाएं, पर्चे, जनसभाएं, प्रशिक्षण शिविर और ग्रामीण संवादों का आयोजन करवाया। इन माध्यमों से उन्होंने समाज के वंचित वर्गों को संगठित करने, ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना की आलोचना करने, और बहुजन एकता को मजबूती देने का कार्य किया। विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में BSP ने स्थानीय कार्यकर्ताओं को मजबूती दी, जो गांव-गांव जाकर जनता को पार्टी के उद्देश्यों से जोड़ने का कार्य करते थे।

BSP की चुनावी रणनीति भी विशिष्ट थी। पार्टी ने चुनावों में भागीदारी से पहले समाज के भीतर व्यापक चेतना अभियानों पर ध्यान दिया। "ब्राह्मणवाद का बहिष्कार करो", "सत्ता की चाबी बहुजन के हाथ में" जैसे नारों का प्रयोग कर उन्होंने बहुजन समाज को यह अहसास दिलाया कि अब उन्हें केवल मतदाता नहीं, बल्कि सत्ताधारी बनना होगा। चुनावों

में उम्मीदवार चयन की प्रक्रिया भी नीचे से ऊपर तक कार्यकर्ताओं की सिफारिश और क्षेत्रीय समाज की भागीदारी से की जाती थी, जिससे हर उम्मीदवार ज़मीनी स्तर से जुड़ा हुआ होता।

इसके अलावा, कांशीराम ने पार्टी को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए 'सहयोग राशि' प्रणाली की शुरुआत की, जिसमें प्रत्येक समर्थक सदस्य से छोटी राशि नियमित रूप से ली जाती थी। इसका मकसद यह था कि पार्टी पूंजीपतियों या बाहरी दानदाताओं पर निर्भर न होकर अपने कार्यकर्ताओं और समाज के सहयोग से चले। इससे कार्यकर्ताओं में जिम्मेदारी की भावना भी आई और उन्होंने इसे अपने आंदोलन की निजी जिम्मेदारी के रूप में लिया।

कुल मिलाकर, BSP का संगठनात्मक ढांचा न केवल चुनावी राजनीति के लिए था, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति का आधार था। यह ढांचा कांशीराम की दूरदृष्टि, अनुशासनप्रियता और बहुजन स्वाभिमान की भावना का प्रतिफल था, जिसने आगे चलकर बहुजन आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन और राजनैतिक सफलता की ओर अग्रसर किया।

BSP के पहले राजनैतिक अभियान और शुरुआती चुनौतियाँ

बहुजन समाज पार्टी (BSP) ने अपनी राजनैतिक यात्रा की औपचारिक शुरुआत 1985 के विधानसभा चुनावों से की। यद्यपि इस पहले प्रयास में पार्टी को व्यापक चुनावी सफलता नहीं मिली, फिर भी यह भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक युगांतरकारी क्षण था। यह पहली बार था जब भारत के सामाजिक रूप से वंचित वर्ग - अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों - के लिए एक राजनैतिक मंच तैयार हुआ था, जो न तो कांग्रेस की छाया था, न ही सवर्ण नेतृत्व के अधीन। यह आंदोलन,

भले ही संसाधनों की दृष्टि से सीमित था, लेकिन विचारधारा और जनसंपर्क के स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली था।

BSP का पहला चुनावी अभियान एक तरफ आत्मविश्वास से परिपूर्ण था, तो दूसरी ओर संसाधनों की गंभीर कमी से भी जूझ रहा था। पार्टी के पास न तो पर्याप्त आर्थिक सहयोग था, न ही मीडिया का समर्थन, और न ही पारंपरिक अर्थों में चुनावी ताकत माने जाने वाले बाहुबल का सहारा। किंतु फिर भी कांशीराम और उनके समर्पित कार्यकर्ताओं ने घर-घर जाकर लोगों को जागरूक किया। उन्होंने बसों, ट्रेनों और पैदल यात्रा करते हुए गाँव-गाँव और मोहल्लों में जाकर आम जनता को समझाया कि यह केवल एक पार्टी नहीं, बल्कि बहुजन समाज को सत्ता की ओर ले जाने वाला आंदोलन है। कांशीराम की स्पष्टवादिता और संगठन की वैचारिक प्रतिबद्धता ही BSP की असली ताकत थी - बिना धन, मीडिया और बाहुबल के भी।

BSP को शुरुआत में सत्ता में आने के लिए कई प्रकार की रुकावटों का सामना करना पड़ा। विपक्षी दलों - खासकर कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और समाजवादी दलों - ने BSP के बढ़ते प्रभाव को एक चुनौती के रूप में देखा। उन्होंने बहुजन समाज को अपनी राजनैतिक पकड़ में बनाए रखने के लिए न केवल जातीय समीकरणों का दोहन किया, बल्कि सरकारी मशीनरी, प्रशासनिक अधिकारियों और मीडिया संस्थानों का भी उपयोग किया। कई बार कांशीराम के भाषणों को तोड़ा-मरोड़ा गया, उनके आंदोलनों को “विभाजनकारी” करार दिया गया और पार्टी की छवि को नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गई। लेकिन इन सब के बावजूद, BSP अपने सिद्धांतों से नहीं डगमगाई और संगठनात्मक विस्तार में लगी रही।

एक अन्य प्रमुख चुनौती यह थी कि बहुजन समाज को लंबे समय से पारंपरिक दलों ने केवल “वोट बैंक” के रूप में इस्तेमाल किया था। BSP के लिए सबसे पहली आवश्यकता थी - समाज के भीतर यह विश्वास पैदा करना कि वे केवल दूसरों के हाथों की कठपुतली न बनकर, खुद अपने राजनैतिक भाग्य के निर्माता बन सकते हैं। इसके लिए BSP ने विचारधारात्मक प्रशिक्षण शिविर, जनसभाएँ, जागरूकता अभियान और वैचारिक साहित्य जैसे उपकरणों का प्रयोग किया। लोगों को अंबेडकर, फुले, पेरियार और कांशीराम के विचारों से परिचित कराया गया। यह आंदोलन नारेबाजी से कहीं आगे बढ़ चुका था - यह एक वैचारिक परिवर्तन था।

इन तमाम कठिनाइयों के बीच BSP का यह शुरुआती संघर्ष भारतीय लोकतंत्र में जनसंगठनों की भूमिका का एक ऐतिहासिक उदाहरण बन गया। यद्यपि 1985 का चुनाव संगठनात्मक रूप से एक सीख देने वाला मोड़ था, लेकिन इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि बहुजन समाज पार्टी एक टिकाऊ और विचारधारात्मक दल के रूप में भारतीय राजनीति में जड़ें जमा चुकी है। इस चुनाव के परिणामों ने पार्टी को स्पष्ट रूप से यह दिखाया कि एक लंबी यात्रा शुरू हो चुकी है, और यदि बहुजन समाज संगठित रहे, तो सत्ता की सीढ़ियाँ दूर नहीं हैं।

BSP की स्थापना का सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना ने भारत की सामाजिक और राजनैतिक संरचना में एक ऐतिहासिक परिवर्तन की शुरुआत की। इससे पहले बहुजन वर्ग - जिसमें दलित, पिछड़े वर्ग, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल थे - मुख्यतः कांग्रेस जैसी परंपरागत सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टियों पर निर्भर थे। वे केवल वोट बैंक के रूप में प्रयुक्त होते थे,

जबकि सत्ता और नीति निर्धारण में उनकी भूमिका सीमित और प्रतीकात्मक बनी रहती थी। BSP ने इस एकतरफा समीकरण को तोड़ा और बहुजन समाज को बताया कि वे न केवल सरकार बनाने में सहायक हैं, बल्कि स्वयं भी सत्ता के अधिकारिक दावेदार हैं।

BSP की स्थापना ने बहुजन समाज को पहली बार राजनैतिक आत्मनिर्भरता का बोध कराया। यह सिर्फ एक राजनैतिक दल नहीं था, बल्कि यह एक वैचारिक आंदोलन था जिसका उद्देश्य राजनैतिक सत्ता के माध्यम से सामाजिक न्याय को साकार करना था। कांशीराम के नेतृत्व में यह आंदोलन बहुजन समाज के लिए एक नई आशा बन गया - उन्होंने यह समझाया कि आरक्षण, सामाजिक सम्मान और शिक्षा जैसे मुद्दे तभी प्रभावी रूप से हल हो सकते हैं, जब बहुजन समाज अपनी राजनैतिक सत्ता स्वयं अर्जित करे।

राजनैतिक दृष्टिकोण से BSP की स्थापना ने भारत की चुनावी राजनीति में “कास्ट ब्लॉक वोटिंग” की परंपरा को तोड़ते हुए “कास्ट कलेक्टिव पावर” की अवधारणा को स्थापित किया। यह पहला मौका था जब किसी पार्टी ने OBC, SC, ST और मुस्लिम समुदायों को एक साझा वैचारिक मंच पर लाने की गंभीर और संगठित कोशिश की। BSP ने जाति के आधार पर उत्पीड़ित वर्गों को एक मजबूत राजनैतिक ताकत में बदलने की दिशा में रणनीति बनाई। इसके नतीजतन बहुजन समाज के लोगों ने पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग किसी सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टी को जिताने के लिए नहीं, बल्कि अपने समाज के प्रतिनिधियों को सत्ता में लाने के लिए किया।

सामाजिक प्रभाव की दृष्टि से देखें तो BSP ने ब्राह्मणवादी मानसिकता और सत्ता संरचना को खुली चुनौती दी। पार्टी ने यह भी दिखाया कि

नेतृत्व केवल उच्च जातियों की बपौती नहीं है, बल्कि एक सफाईकर्मि का बेटा या एक किसान की बेटी भी मुख्यमंत्री बन सकता है। यह सोच मायावती के मुख्यमंत्री बनने पर चरितार्थ भी हुई, जब एक दलित महिला ने देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की सत्ता संभाली।

इसके अलावा BSP ने राजनैतिक विमर्श में सामाजिक न्याय और आत्मसम्मान को केंद्र में ला दिया। कांग्रेस और अन्य दल जहाँ जाति को एक छाया विषय की तरह प्रस्तुत करते रहे, BSP ने इसे सामाजिक सच्चाई के रूप में स्वीकार कर उसके विरुद्ध राजनैतिक चेतना का निर्माण किया। इससे राजनीति की दिशा ही बदल गई - अब सामाजिक न्याय, बहुजन अधिकार, दलित नेतृत्व, और सत्ता में भागीदारी जैसे विषय चुनावी विमर्श के केंद्र में आ गए।

BSP की स्थापना ने यह भी प्रमाणित किया कि यदि कोई संगठन विचारधारा, जमीनी कार्य और सांगठनिक शक्ति के आधार पर राजनीति करता है, तो वह बिना धन, बाहुबल या मीडिया समर्थन के भी सत्ता तक पहुँच सकता है। यही कारण है कि BSP भारतीय लोकतंत्र का एक ऐसा उदाहरण बन गई, जो यह दर्शाता है कि हाशिए पर खड़े समाज भी अगर संगठित हों, तो वे सत्ता की शिखर तक पहुँच सकते हैं।

इस तरह BSP की स्थापना केवल एक दल का जन्म नहीं था, बल्कि यह सामाजिक क्रांति का एक संगठित स्वरूप था, जिसने भारत की राजनीति को जातिवादी उत्पीड़न से सामाजिक न्याय की दिशा में मोड़ा। कांशीराम का यह प्रयास न केवल बहुजन समाज को एक नई पहचान देने में सफल हुआ, बल्कि उसने आने वाले समय के लिए सत्ता के चरित्र को भी बदल कर रख दिया।

अध्याय 12:

बीएसपी के सामने शुरुआती चुनावी चुनौतियाँ

बीएसपी के चुनावी राजनीति में प्रवेश की पृष्ठभूमि

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना के बाद कांशीराम के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी पार्टी को भारतीय चुनावी राजनीति में स्थापित करना। यह वह दौर था जब भारतीय राजनीति में कांग्रेस, समाजवादी दलों और अन्य राष्ट्रीय पार्टियों का गहरा वर्चस्व था, और नए विचारों व नेतृत्व के लिए कोई स्थान लगभग नहीं था। इन पारंपरिक दलों ने वर्षों तक बहुजन, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों को केवल मतदाताओं के रूप में देखा-जो सरकार बनाने में सहायक तो बन सकते हैं, लेकिन सत्ता में भागीदारी नहीं पा सकते। इस कारण इन वर्गों का नेतृत्व कभी भी निर्णायक नहीं बन पाया।

कांशीराम ने इस राजनैतिक परिदृश्य को चुनौती दी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज अपने नेतृत्व को स्वयं विकसित नहीं करेगा और सत्ता में भागीदारी नहीं करेगा, तब तक उनका वास्तविक सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक उत्थान असंभव है। बहुजन समाज पार्टी की स्थापना केवल चुनाव लड़ने के लिए नहीं की गई थी, बल्कि उसका उद्देश्य था-सामाजिक न्याय को राजनैतिक शक्ति के माध्यम से सुनिश्चित करना। यही कारण था कि कांशीराम का नारा केवल “वोट दो” तक सीमित नहीं था, बल्कि “राज में हिस्सेदारी लो” तक फैला हुआ था।

कांग्रेस और अन्य सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टियाँ भले ही कभी-कभी अनुसूचित जातियों या पिछड़े वर्गों के नेताओं को टिकट देती थीं, लेकिन वे स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकते थे। उन्हें पार्टी अनुशासन और सवर्ण नेतृत्व की सीमा में रहकर ही काम करना होता था। कांशीराम इसे “राजनैतिक गुलामी” कहते थे। उन्होंने बहुजन समाज को एक वैचारिक चेतना दी, जिसमें उन्होंने समझाया कि जब तक सत्ता की चाबी बहुजन हाथों में नहीं होगी, तब तक किसी भी नीतिगत बदलाव की उम्मीद नहीं की जा सकती।

इस प्रकार, बीएसपी का गठन भारतीय राजनीति में केवल एक नई पार्टी की शुरुआत नहीं था, बल्कि यह उस ऐतिहासिक संघर्ष का विस्तार था, जो डॉ. भीमराव अंबेडकर ने शुरू किया था-जिसका लक्ष्य था दलितों, पिछड़ों और वंचितों को सामाजिक गरिमा के साथ-साथ राजनैतिक अधिकार भी प्रदान करना। कांशीराम ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया और इसे संगठित रूप दिया, जिससे वह वर्ग जो अब तक सिर झुकाकर केवल वोट देता था, वह सिर उठाकर सत्ता का भागीदार बनने की दिशा में आगे बढ़ा। यही बीएसपी के चुनावी राजनीति में प्रवेश की वास्तविक पृष्ठभूमि थी।

चुनावी राजनीति में बीएसपी की शुरुआती दिक्कतें

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) को अपने शुरुआती दौर में अनेक जटिलताओं और बाधाओं का सामना करना पड़ा। पार्टी ने जिस समाज के उत्थान का संकल्प लिया था, वही समाज दशकों से हाशिये पर था, राजनैतिक रूप से निष्क्रिय था और चुनावी रणनीति की दृष्टि से प्रशिक्षणहीन भी। बीएसपी के समक्ष सबसे पहली चुनौती थी - संसाधनों की। पार्टी के पास चुनाव प्रचार के लिए न तो पर्याप्त धन था, न ही कोई

कॉरपोरेट या उद्योगपति समर्थन। चूंकि बीएसपी दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और वंचितों की पार्टी थी, जो स्वयं ही आर्थिक रूप से कमजोर थे, इसलिए पार्टी को आर्थिक चंदे के लिए आम जनमानस पर ही निर्भर रहना पड़ता था। कार्यकर्ता चंदा इकट्ठा करने से लेकर प्रचार सामग्री छापने और घर-घर जाकर प्रचार करने तक हर स्तर पर खुद जुटे रहते थे।

दूसरी बड़ी चुनौती थी - मीडिया और प्रशासन की उपेक्षा। उस समय की मुख्यधारा मीडिया ने बीएसपी की गतिविधियों, नारों, आंदोलनों और भाषणों को या तो पूरी तरह नजरअंदाज किया या नकारात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और अखबार, जिनका उस समय जनमत निर्माण में भारी प्रभाव था, वे ब्राह्मणवादी दलों के प्रभाव में काम कर रहे थे और बीएसपी जैसे एक क्रांतिकारी दल को हाशिए पर रखने का प्रयास कर रहे थे। इसके परिणामस्वरूप, बीएसपी का जनसंदेश समाज के बड़े वर्ग तक नहीं पहुँच पा रहा था।

तीसरी समस्या जातिगत राजनीति के संगठित प्रतिरोध की थी। परंपरागत दल - कांग्रेस, समाजवादी दल और हिंदूवादी संगठन - दशकों से दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को अपने वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते आ रहे थे। जैसे ही बीएसपी इन वर्गों को संगठित कर सशक्तिकरण की दिशा में ले जाने लगी, उन्हीं दलों ने काउंटर-रणनीति अपनाकर जातिगत ध्रुवीकरण और भ्रम फैलाना शुरू किया। कभी बीएसपी को अतिवादी दल कहा गया, तो कभी इसे “फूट डालो और राज करो” की नीति से जोड़कर बदनाम किया गया।

इसके अतिरिक्त, स्थानीय प्रशासनिक मशीनरी का विरोध भी बीएसपी के रास्ते में एक बड़ी दीवार बनकर खड़ा हुआ। कइयों को झूठे मामलों में

फँसाया गया, रैलियों को रोका गया, सभा की अनुमति नहीं दी गई, कार्यकर्ताओं को धमकियाँ दी गईं, और कई बार पुलिसिया कार्रवाई के जरिए पार्टी को डराने की कोशिश की गई।

इन सभी परिस्थितियों में भी बीएसपी और कांशीराम डटे रहे। उन्होंने कार्यकर्ताओं को मानसिक रूप से तैयार किया कि यह संघर्ष केवल सत्ता का नहीं, बल्कि सम्मान और सामाजिक परिवर्तन का है। कांशीराम ने कहा कि “हम चुनाव हार सकते हैं, लेकिन संघर्ष नहीं छोड़ेंगे”। यही जज़्बा बीएसपी को आगे चलकर भारत की सबसे प्रभावशाली सामाजिक-राजनैतिक शक्तियों में बदलने की नींव बना।

बीएसपी के पहले चुनावी अनुभव और उनसे प्राप्त सबक

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) ने 1985 के विधानसभा चुनावों में पहली बार औपचारिक रूप से अपने उम्मीदवारों को मैदान में उतारा। यह चुनाव न केवल पार्टी के लिए एक बड़ी चुनौती थी, बल्कि एक ऐतिहासिक प्रयोग भी था - एक ऐसी राजनैतिक ताकत के उभार की शुरुआत, जो न तो परंपरागत राजनैतिक संसाधनों पर निर्भर थी, न ही ब्राह्मणवादी सत्ता के समर्थन से प्रेरित थी। कांशीराम ने इस चुनाव को एक प्रयोगशाला की तरह लिया, जहाँ वे अपने संगठन की ताकत, जनसमर्थन और प्रचार रणनीति को परखना चाहते थे।

बीएसपी ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र और पंजाब सहित कई राज्यों में अपने उम्मीदवार उतारे, परंतु पार्टी को कोई सीट नहीं मिली। फिर भी यह चुनाव पार्टी के लिए ‘राजनैतिक पराजय’ नहीं बल्कि ‘संगठनात्मक जागरूकता’ का युगांतकारी चरण बना। कांशीराम ने इस हार को कभी भी असफलता के रूप में नहीं देखा। उन्होंने इसे “सीखने

की प्रक्रिया' बताया और इसे पार्टी के भविष्य की मजबूती के लिए आवश्यक बताया।

इस चुनाव ने पार्टी को कई अहम सबक दिए। पहला, यह स्पष्ट हो गया कि बहुजन समाज को राजनैतिक रूप से जागरूक करना और जातीय आधार पर संगठित करना केवल नारों से संभव नहीं है - इसके लिए सतत जनसंपर्क, प्रशिक्षण और विचारधारा को विस्तार देने की जरूरत है। दूसरा, प्रचार के पारंपरिक साधनों के अभाव में बीएसपी को वैकल्पिक प्रचार साधनों जैसे जनसभाएँ, दीवार लेखन, पर्चे, गीत-संगीत और गांवों में पैदल जनसंपर्क के मॉडल को अपनाना पड़ा, जो आगे चलकर पार्टी की विशिष्ट रणनीति बन गई।

तीसरा, यह चुनाव कार्यकर्ताओं के लिए एक मनोवैज्ञानिक परीक्षा थी। प्रचार के दौरान विरोधियों द्वारा अपमानजनक टिप्पणियाँ, उपेक्षा और कभी-कभी हिंसा के बावजूद बीएसपी कार्यकर्ता डटे रहे। यही समर्पण बीएसपी की सबसे बड़ी पूंजी साबित हुआ। चुनाव में भले ही जीत नहीं मिली, पर वोट प्रतिशत में वृद्धि ने यह संकेत दिया कि बहुजन समाज पार्टी की बात जनता तक पहुँच रही है और वह धीरे-धीरे उसकी राजनीति को स्वीकारने लगा है।

इस अनुभव के बाद कांशीराम ने पार्टी कार्यकर्ताओं को प्रेरित करते हुए कहा कि उनका संघर्ष केवल सत्ता के लिए नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए है। उन्होंने यह भी कहा कि एक दिन आएगा जब बीएसपी न केवल चुनावों में भाग लेगी बल्कि सत्ता में भी निर्णायक भूमिका निभाएगी - और यह सपना, धीरे-धीरे, वास्तविकता की ओर बढ़ने लगा।

बीएसपी के सामने राजनैतिक गठजोड़ और विपक्ष का रवैया

बीएसपी के राजनैतिक मंच पर उभरते ही देश की पारंपरिक सवर्ण-प्रधान राजनैतिक पार्टियों में हलचल मच गई। बीएसपी की विचारधारा और जनाधार दोनों ही स्थापित दलों के लिए एक खतरे की तरह उभरे, विशेषकर कांग्रेस, समाजवादी दलों और भारतीय जनता पार्टी के लिए। कांशीराम के नेतृत्व में बहुजन समाज जिस तरह से आत्मनिर्भर राजनैतिक दिशा में संगठित हो रहा था, उसने वर्षों से जातिगत समीकरणों और वोट बैंक की राजनीति पर आधारित दलों की नींव को चुनौती देना शुरू कर दिया था।

इस नए खतरे से निपटने के लिए विरोधी दलों ने बहुजन समाज पार्टी को कमजोर करने की कई रणनीतियाँ अपनाईं। कांग्रेस और समाजवादी दलों ने बहुजन नेताओं को पार्टी में पद और वचन देकर अपने साथ बनाए रखने की कोशिश की। उन्हें यह डर था कि यदि बीएसपी बहुजन समाज को संगठित कर लेती है, तो उनके पारंपरिक वोट बैंक का पतन हो जाएगा। इसीलिए कई जगहों पर इन दलों ने जानबूझकर बीएसपी के संभावित उम्मीदवारों को अपने टिकट का लालच देकर तोड़ने की कोशिश की, ताकि पार्टी के संगठनात्मक ढाँचे को अस्थिर किया जा सके।

बीजेपी और अन्य दक्षिणपंथी संगठनों ने एक दूसरी रणनीति अपनाई - उन्होंने जातिगत ध्रुवीकरण को हवा दी। ओबीसी और अनुसूचित जातियों के बीच मतभेद पैदा करने की कोशिश की गई ताकि बहुजन एकता कमजोर हो। उन्होंने अपने प्रचार में यह बात फैलाई कि बीएसपी सिर्फ एक जाति विशेष की पार्टी है, ताकि अन्य पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक इससे दूरी बना लें। इस विभाजन की नीति ने चुनावी मैदान में बीएसपी के प्रचार अभियान को कठिन बना दिया, लेकिन कांशीराम

ने अपने सधे हुए भाषणों और विचारधारा के माध्यम से इस भ्रम को लगातार चुनौती दी।

इसके अलावा स्थानीय प्रशासन और सत्ता में बैठे लोगों ने भी बीएसपी के उभार को रोकने में अप्रत्यक्ष भूमिका निभाई। कई राज्यों में बीएसपी के कार्यकर्ताओं को जनसभाओं की अनुमति नहीं दी गई, रैलियों पर रोक लगाई गई, और पुलिस प्रशासन ने कार्यकर्ताओं के साथ कठोरता दिखाई। कई बार तो ऐसे हालात बनाए गए कि बीएसपी समर्थकों को झूठे मामलों में फँसाकर राजनैतिक रूप से उत्पीड़ित किया गया, ताकि पार्टी का मनोबल टूटे और संगठन बिखर जाए।

लेकिन इन तमाम प्रयासों के बावजूद बीएसपी के संगठन और नेतृत्व ने हार नहीं मानी। कांशीराम ने कार्यकर्ताओं को सिखाया कि यह संघर्ष एक दिन की लड़ाई नहीं, बल्कि पीढ़ियों तक चलने वाला आंदोलन है। उन्होंने बताया कि विरोधी दलों का रवैया ही इस बात का प्रमाण है कि बीएसपी सही दिशा में आगे बढ़ रही है, और यही उन सभी चुनौतियों का जवाब है जो उसे रोकने के लिए रची जा रही थीं। इस रणनीतिक सोच ने बीएसपी को एक आंदोलनात्मक पार्टी से एक संगठित राजनैतिक ताकत में बदलने की प्रक्रिया को और तेज कर दिया।

बीएसपी की चुनावी रणनीति में सुधार और भविष्य की योजना

शुरुआती असफलताओं और विरोधी दलों की कूटनीतिक चालों से सबक लेकर, बीएसपी ने अपने संगठनात्मक ढाँचे और चुनावी रणनीति में महत्वपूर्ण सुधार किए। कांशीराम इस बात को भली-भाँति समझ चुके थे कि बहुजन समाज को सत्ता तक पहुँचाने का मार्ग केवल नारों या भावनात्मक अपील से नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित राजनैतिक संगठन,

प्रशिक्षण और दीर्घकालिक रणनीति से होकर जाता है। इसी सोच के तहत उन्होंने बीएसपी को एक आंदोलन से एक अनुशासित राजनैतिक पार्टी के रूप में ढालना शुरू किया।

बीएसपी ने गाँव-गाँव, वार्ड-वार्ड और बूथ-स्तर तक अपनी पहुँच बढ़ाने के लिए एक सशक्त कैडर प्रणाली को विकसित किया। कार्यकर्ताओं को केवल प्रचारक नहीं, बल्कि विचारधारा के प्रशिक्षक के रूप में तैयार किया गया। उन्हें अंबेडकर, फुले, पेरियार और कांशीराम के विचारों से लैस किया गया, ताकि वे जनता को बहुजन एकता, राजनैतिक सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय के लिए संगठित कर सकें। इस प्रक्रिया में स्थानीय स्तर पर 'सेक्टर प्रभारी', 'जोन प्रभारी' और 'मंडल प्रभारी' जैसे सांगठनिक ढाँचे को मजबूत किया गया।

कांशीराम ने महिलाओं और युवाओं की भूमिका को भी पार्टी की सफलता के लिए केंद्रीय माना। उन्होंने अधिक से अधिक महिलाओं को जिला और ब्लॉक स्तर पर नेतृत्व की जिम्मेदारी दी, जिससे समाज के भीतर एक नई चेतना जागी। युवाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए गए, जहाँ उन्हें बहुजन विचारधारा, संगठन निर्माण, और विरोधी प्रचार से कैसे निपटना है – इन सब बातों की व्यावहारिक जानकारी दी गई।

साथ ही, पार्टी ने बहुजन एकता को जातिगत खाँचों में बाँटने के विरोध में बड़ा वैचारिक अभियान शुरू किया। यह अभियान केवल चुनावी लाभ के लिए नहीं, बल्कि बहुजन समाज के दीर्घकालिक आत्मनिर्भर राजनैतिक भविष्य की नींव रखने के लिए था। इसमें विशेष रूप से यह

बात फैलाई गई कि यदि दलित, पिछड़ा और मुस्लिम समाज एकजुट होकर मतदान करें, तो वे सत्ता की चाबी अपने हाथों में ले सकते हैं।

“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” जैसे नारों को पार्टी ने केवल नारेबाज़ी तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इन्हें जनचेतना और जनसंपर्क अभियान का हिस्सा बना दिया। कार्यकर्ता इस नारे के माध्यम से लोगों को यह समझाते थे कि उनका वोट केवल सवर्ण दलों को सत्ता में पहुँचाने के लिए नहीं, बल्कि स्वयं की राजनैतिक हैसियत को बढ़ाने के लिए होना चाहिए। बीएसपी ने यह भी सिखाया कि केवल वोट डालना काफी नहीं, बल्कि यह देखना ज़रूरी है कि उस वोट का फायदा किसे और कैसे मिल रहा है।

इन सभी सुधारों और प्रयासों का प्रभाव यह हुआ कि बीएसपी एक सशक्त राजनैतिक विकल्प के रूप में उभरने लगी। पार्टी ने अपने मत प्रतिशत में निरंतर वृद्धि की और जनसंपर्क व सांगठनिक आधार पर मजबूत होती गई। यह परिश्रम और रणनीति ही थी जिसने आने वाले वर्षों में बीएसपी को न केवल विधानसभा में पहुँचाया, बल्कि उसे सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ने के काबिल भी बनाया।

अध्याय 13: बहुजन समाज पार्टी की वैचारिक नींव

बहुजन समाज पार्टी की स्थापना और उसकी विचारधारा का आधार

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना भारतीय राजनीति में एक युगांतकारी घटना थी। यह पार्टी केवल एक राजनैतिक संगठन नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन थी, जिसका उद्देश्य भारत के उस बहुजन समाज को एक संगठित राजनैतिक शक्ति में बदलना था, जिसे सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से वंचित रखा गया था। कांशीराम के नेतृत्व में BSP ने उन वर्गों-जैसे अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), और मुस्लिम अल्पसंख्यकों-को एक मंच पर लाने का प्रयास किया, जिनका संख्या बल तो अत्यधिक था लेकिन जिनकी राजनैतिक भागीदारी नगण्य रही थी। BSP का गठन इस विश्वास पर आधारित था कि जब तक यह विशाल बहुजन वर्ग स्वयं सत्ता के केंद्र में नहीं पहुँचेगा, तब तक उनके साथ होने वाला शोषण समाप्त नहीं होगा।

BSP की स्थापना भारत की उस सामाजिक संरचना के विरुद्ध विद्रोह थी, जो हजारों वर्षों से ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अंतर्गत चली आ रही थी। कांशीराम ने इस व्यवस्था को सीधे चुनौती दी और यह ऐलान किया कि अब बहुजन समाज किसी अन्य दल का पिछलगू नहीं रहेगा, बल्कि अपने नेतृत्व और अपनी पार्टी के माध्यम से सत्ता के सर्वोच्च केंद्रों तक पहुँचेगा। इस दृष्टिकोण से BSP को सत्ता की राजनीति में भागीदारी के

लिए खड़ा किया गया, न कि केवल चुनावी सजावट के लिए। यह स्पष्ट रूप से कहा गया कि सत्ता वही प्राप्त करेगा जो संगठित है, और BSP का मूल उद्देश्य था बहुजन समाज को एक सशक्त, संगठित और स्वाभिमानी राजनैतिक इकाई में बदलना।

BSP की वैचारिक आधारशिला चार महान विचारकों के दर्शन पर टिकी थी-डॉ. भीमराव अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, पेरियार और स्वयं कांशीराम। डॉ. अंबेडकर ने स्पष्ट किया था कि सामाजिक न्याय और बराबरी की स्थापना के लिए राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना अनिवार्य है। ज्योतिबा फुले ने 'बहुजन' शब्द को सामाजिक संरचना की दृष्टि से परिभाषित करते हुए कहा था कि समाज की बहुसंख्यक जनसंख्या ही सत्ता का वास्तविक आधार होनी चाहिए। पेरियार ने आत्मसम्मान आंदोलन के ज़रिए ब्राह्मणवादी वर्चस्व को उखाड़ फेंकने का आह्वान किया, और कांशीराम ने इन सभी विचारों को एकजुट कर एक मजबूत राजनैतिक आंदोलन का निर्माण किया, जो सत्ता को सामाजिक क्रांति के उपकरण के रूप में प्रयोग करने के लिए तैयार था।

BSP की राजनीति मूलतः "राजनैतिक सत्ता सामाजिक क्रांति की कुंजी है" इस मूलमंत्र पर आधारित थी। कांशीराम का यह दृढ़ मत था कि केवल सामाजिक आंदोलन, सांस्कृतिक मंच या आरक्षण की मांगें ही पर्याप्त नहीं हैं। अगर बहुजन समाज को वास्तव में अपनी स्थिति बदलनी है तो उन्हें सत्ता पर सीधा अधिकार चाहिए, और वह अधिकार उन्हें किसी दल के द्वारा नहीं, बल्कि अपने स्वयं के संगठित प्रयासों से ही प्राप्त होगा। यही कारण था कि BSP न केवल चुनाव लड़ने वाली पार्टी बनी, बल्कि एक वैचारिक संगठन भी, जो सामाजिक बदलाव को संस्थागत रूप से लागू करने की दिशा में कार्यरत थी।

BSP की विचारधारा यह भी थी कि चुनाव केवल सत्ता पाने का माध्यम नहीं, बल्कि समाज में व्यापक बदलाव लाने का यंत्र है। पार्टी ने इस सोच को बढ़ावा दिया कि समाज को जागरूक किए बिना सत्ता परिवर्तन टिकाऊ नहीं हो सकता। इसीलिए, BSP ने शिक्षा, संगठन निर्माण, सामाजिक चेतना और जातिगत एकता जैसे मुद्दों पर समान रूप से बल दिया। कांशीराम इस बात को बार-बार दोहराते थे कि “सिर्फ जाति का नाम लेना ही पर्याप्त नहीं, हमें उसे संगठित और राजनैतिक रूप से सक्षम बनाना होगा।” यही विचारधारा BSP को भारत की अन्य दलों से भिन्न बनाती है-क्योंकि उसका लक्ष्य सत्ता की प्राप्ति मात्र नहीं, बल्कि बहुजन समाज की संपूर्ण मुक्ति और प्रतिष्ठा की स्थापना था।

“बहुजन” की परिभाषा और सामाजिक संरचना

बहुजन समाज पार्टी की वैचारिक आत्मा “बहुजन” शब्द में निहित थी। “बहुजन” का अर्थ है-वह विशाल बहुसंख्यक समाज, जिसे ऐतिहासिक रूप से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सत्ता, शिक्षा, भूमि और सम्मान से वंचित रखा गया। कांशीराम ने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” जैसे नारों के माध्यम से यह स्पष्ट कर दिया था कि लोकतंत्र में संख्या का महत्व सर्वोपरि है और बहुजन समाज को अब केवल मतदाता के रूप में नहीं, बल्कि नीति निर्धारण और सत्ता संचालन में भागीदार बनना है। बहुजन समाज में अनुसूचित जातियों (SC), अनुसूचित जनजातियों (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC), मुस्लिम, और अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक आते हैं-जो मिलकर भारत की जनसंख्या का लगभग 85% हिस्सा बनाते हैं।

कांशीराम ने बहुजन समाज की सामाजिक संरचना को स्पष्ट करते हुए तीन प्रमुख वर्गों की व्याख्या की। पहला वर्ग वह है जिसे परंपरागत रूप से शासित वर्ग माना जाता है-SC, ST, OBC और अल्पसंख्यक। इन समुदायों को सत्ता से दूर रखा गया, उन पर सदियों से ब्राह्मणवादी सत्ता प्रणाली का वर्चस्व रहा। दूसरा वर्ग वह है जिसने सत्ता और संसाधनों पर अपना प्रभुत्व बनाए रखा-ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया जैसे सवर्ण समुदाय। ये वे लोग थे जिन्होंने शोषणकारी धार्मिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के ज़रिए बहुजनों को हाशिए पर रखा। तीसरा वर्ग राजनैतिक रूप से असंगठित जन समूहों का है-जो बहुजन तो हैं, पर अब तक राजनैतिक रूप से जागरूक नहीं हुए हैं। BSP ने इन बिखरे हुए समुदायों को एक राजनैतिक प्लेटफ़ॉर्म पर एकजुट कर, उन्हें सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और राजनैतिक अधिकारों के लिए संगठित किया।

BSP की राजनीति जातिगत चेतना पर आधारित थी, लेकिन यह चेतना विभाजनकारी नहीं थी, बल्कि समावेशी और संघटनकारी थी। कांशीराम ने स्पष्ट किया कि जाति को मिटाने के लिए पहले जातियों को संगठित करना होगा। उन्होंने कहा कि “जाति व्यवस्था को तोड़ने के लिए जातियों का गठबंधन ज़रूरी है,” और इसी सोच के आधार पर उन्होंने बहुजन समाज को एकजुट किया। BSP का नारा-“बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय”-यही बताता है कि यह पार्टी केवल एक जाति की नहीं, बल्कि उस व्यापक समाज की पार्टी है, जो सदियों से वंचित रहा और जो अब जागरूक होकर अपना नेतृत्व स्वयं चुनना चाहता है।

यह परिभाषा और संरचना केवल सिद्धांत नहीं थी, बल्कि इसके पीछे एक मजबूत रणनीति थी। कांशीराम जानते थे कि सामाजिक न्याय की लड़ाई तभी संभव है जब शोषित वर्गों को संख्या, संगठन और नेतृत्व का

बल मिले। BSP ने इस विचार को मूर्त रूप दिया और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से यह प्रयास किया कि बहुजन समाज को केवल सत्ता का पर्यवेक्षक नहीं, बल्कि उसका स्वामी बनाया जाए। यही विचार BSP को भारतीय राजनीति में वैचारिक गहराई और सामाजिक प्रतिबद्धता की एक अनूठी मिसाल बनाता है।

बीएसपी की वैचारिक प्रेरणाएँ

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की विचारधारा किसी एक नेता या संगठन तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह उन क्रांतिकारी समाज सुधारकों के विचारों से प्रेरित थी, जिन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता, जातिवाद और ब्राह्मणवादी वर्चस्व को चुनौती दी थी। कांशीराम ने स्वयं स्वीकार किया कि उनकी राजनैतिक चेतना और आंदोलनात्मक सोच चार महापुरुषों की विचारधारा से निर्मित हुई-डॉ. भीमराव अंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले, ई.वी. रामास्वामी पेरियार और अंततः स्वयं कांशीराम की समकालीन व्यावहारिक रणनीति। इन चारों महापुरुषों के विचार BSP की आत्मा में रचे-बसे हैं।

डॉ. भीमराव अंबेडकर को BSP का वैचारिक स्तंभ माना जाता है। अंबेडकर का मानना था कि सामाजिक और आर्थिक बदलाव के लिए राजनैतिक सत्ता का अधिग्रहण अनिवार्य है। उन्होंने कहा था कि “राजनैतिक सत्ता समाज की सभी समस्याओं की चाबी है,” और इसी कारण उन्होंने दलितों को केवल शिक्षा और सुधार तक सीमित न रखकर राजनीति में सक्रिय होने की आवश्यकता बताई।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने ‘बहुजन’ शब्द की अवधारणा प्रस्तुत की थी। उन्होंने शूद्र-अतिशूद्र (अब एससी/ओबीसी) और महिलाओं की शिक्षा,

समानता और राजनैतिक भागीदारी के लिए संगठित संघर्ष छेड़ा। उन्होंने भारतीय समाज की उस सत्ता संरचना को उजागर किया जो ब्राह्मणों द्वारा धर्म और वर्ण के नाम पर निर्मित की गई थी। फुले की यह मान्यता कि ब्राह्मणवाद समाज में अन्याय और दासत्व का प्रमुख कारण है, BSP के विचारों में केंद्रीय स्थान रखती है।

पेरियार, दक्षिण भारत के समाज सुधारक, ब्राह्मणवाद और हिन्दू धर्म के कठोर आलोचक रहे। उन्होंने आत्मसम्मान आंदोलन की शुरुआत की, जिसमें सामाजिक समानता, स्त्री अधिकार, तर्कवाद और ब्राह्मणवादी प्रतीकों का बहिष्कार शामिल था। BSP ने पेरियार के इस आंदोलनात्मक दृष्टिकोण को उत्तर भारत की राजनीति में लाकर सामाजिक चेतना की एक नई लहर पैदा की। कांशीराम ने पेरियार को “क्रांतिकारी सामाजिक चेतना के अग्रदूत” की संज्ञा दी थी।

स्वयं कांशीराम की विचारधारा, इन तीनों महापुरुषों के सिद्धांतों को व्यावहारिक राजनैतिक रूप में ढालने का परिणाम थी। उन्होंने कहा कि केवल आंदोलन, नारेबाजी या लेखन से सामाजिक परिवर्तन नहीं आएगा, जब तक कि बहुजन समाज सत्ता में अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं करेगा। कांशीराम ने ‘संगठित वोट, संगठित नेतृत्व और संगठित नीति’ के जरिए सत्ता में बहुजन समाज की भागीदारी का व्यावहारिक खाका तैयार किया। वे सामाजिक क्रांति और राजनैतिक अधिकार के बीच एक ऐसा पुल थे, जिसने अंबेडकर, फुले और पेरियार के विचारों को चुनावी लोकतंत्र में सशक्त रूप दिया।

इस प्रकार BSP की वैचारिक प्रेरणाएँ केवल ऐतिहासिक नहीं थीं, बल्कि सामाजिक न्याय और राजनैतिक अधिकार के लिए लड़ने वाले विभिन्न

आंदोलनों की परंपरा का जीवंत समायोजन थीं। इन प्रेरणाओं ने BSP को केवल एक राजनैतिक दल न बनाकर एक वैचारिक आंदोलन के रूप में गढ़ा, जो आज भी भारत के लोकतंत्र में बहुजन हितों की सशक्त आवाज है।

बीएसपी की प्रमुख राजनैतिक नीतियाँ

बहुजन समाज पार्टी की राजनैतिक नीतियाँ उसके वैचारिक दर्शन की ठोस व्याख्या थीं। कांशीराम का यह स्पष्ट मानना था कि सामाजिक परिवर्तन तभी संभव है जब बहुजन समाज सत्ता में सीधा भागीदार बने। इसलिए बीएसपी ने सत्ता को केवल दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों के लिए उपलब्ध कराने का लक्ष्य नहीं रखा, बल्कि उसे उनके द्वारा संचालित कराने की रणनीति भी तैयार की। यह कोई परंपरागत सत्ता संघर्ष नहीं था, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन था जिसमें सत्ता को सामाजिक न्याय के औजार के रूप में परिभाषित किया गया।

बीएसपी की सबसे पहली और स्पष्ट नीति थी कि राजनैतिक सत्ता को बहुजन समाज के हाथों में सौंपा जाए। इसके पीछे यह सोच थी कि जब तक सत्ता का केंद्र ब्राह्मणवादी संरचना के नियंत्रण में रहेगा, तब तक नीति निर्माण, संसाधन वितरण और सामाजिक व्यवस्था में न्याय नहीं हो सकेगा। इसलिए पार्टी ने सत्ता प्राप्त करने को लक्ष्य बनाकर उसे सामाजिक मुक्ति के माध्यम के रूप में स्थापित किया।

दूसरी नीति थी जातिगत बहुजन एकता की राजनैतिक लामबंदी। बीएसपी ने जाति को केवल सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि राजनैतिक साधन के रूप में प्रयोग किया। उसने यह स्पष्ट किया कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम समुदाय की

सम्मिलित संख्या भारत की अधिकांश आबादी है, लेकिन यदि ये सभी वर्ग बिखरे रहें, तो सवर्ण दल सत्ता में बने रहेंगे। इसी कारण बीएसपी ने इन वर्गों के बीच साझा वैचारिक और राजनैतिक मंच तैयार करने के लिए सतत प्रयास किया, जिससे उनकी एकता मजबूत हो और सत्ता में उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

तीसरी नीति थी, राजनैतिक जागरूकता का सशक्त नारा - “वोट हमारा, राज तुम्हारा - नहीं चलेगा”। इस नारे ने दलितों और वंचितों को यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि वे केवल मतदान तक सीमित क्यों रहें, उन्हें निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में भी भागीदारी चाहिए। यह नारा जनजागरण का औजार बन गया, जिसने बहुजन समाज में यह चेतना जगाई कि केवल सरकारों को चुनना ही नहीं, बल्कि उन्हें चलाना भी उनका अधिकार है।

बीएसपी की चौथी नीति थी ब्राह्मणवादी सत्ता तंत्र का राजनैतिक विरोध। कांशीराम ने स्पष्ट कहा कि कांग्रेस, समाजवादी और भारतीय जनता पार्टी जैसी मुख्यधारा की पार्टियाँ ब्राह्मणवादी राजनीति का प्रतीक हैं। उन्होंने बहुजन समाज को केवल वोट बैंक के रूप में देखा है, उन्हें सत्ता से दूर रखा है, और सामाजिक परिवर्तन को हमेशा हाशिये पर रखा है। बीएसपी ने इन दलों की नीतियों को न केवल विचारधारात्मक रूप से चुनौती दी, बल्कि सामाजिक न्याय का वैकल्पिक एजेंडा प्रस्तुत कर भारतीय राजनीति में नई धारा स्थापित की।

पाँचवीं नीति थी स्वतंत्र राजनीति और गठबंधनविहीन संघर्ष। बीएसपी ने अपने प्रारंभिक वर्षों में यह सिद्धांत अपनाया कि जब तक बहुजन समाज की राजनैतिक चेतना पूरी तरह परिपक्व नहीं होती, तब तक किसी भी सवर्ण नेतृत्व वाली पार्टी से गठबंधन नहीं किया जाएगा। कांशीराम मानते थे कि गठबंधन राजनीति बहुजन चेतना को कमजोर करती है और सत्ता

में सवर्ण प्रभुत्व को बनाए रखती है। इसलिए बीएसपी ने अपने कार्यकर्ताओं को आत्मनिर्भर और वैचारिक रूप से समर्पित बनाने का अभियान शुरू किया, जो अपने

सिद्धांतों से समझौता किए बिना सत्ता संघर्ष में टिके रह सकें।

बीएसपी का संगठनात्मक ढाँचा और कार्यप्रणाली

बहुजन समाज पार्टी की ताकत केवल उसके विचारों में नहीं थी, बल्कि उसकी मजबूत और अनुशासित संगठनात्मक संरचना में भी थी। कांशीराम ने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि केवल नारों और वैचारिक प्रचार से बहुजन समाज को सशक्त नहीं बनाया जा सकता- इसके लिए एक ऐसा संगठन चाहिए जो जमीनी स्तर पर सक्रिय हो, अनुशासित हो, और अपने लक्ष्य को लेकर स्पष्ट और समर्पित हो। इसीलिए बीएसपी को एक परंपरागत चुनावी दल के रूप में नहीं, बल्कि एक कैडर आधारित आंदोलनकारी पार्टी के रूप में विकसित किया गया।

बीएसपी का संगठनात्मक ढाँचा त्रिस्तरीय था-राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर पर अलग-अलग जिम्मेदारियाँ तय की गई थीं। प्रत्येक स्तर पर विचारधारा से प्रशिक्षित कार्यकर्ता नियुक्त किए गए, जिन्हें “मिशनरी कैडर” कहा जाता था। इन कैडरों का मुख्य कार्य था-पार्टी की विचारधारा को लोगों तक पहुँचाना, मतदाता जागरूकता फैलाना, और चुनावों के समय संगठनात्मक व्यवस्था को मजबूत बनाए रखना। कैडर की यह व्यवस्था बहुजन आंदोलन को दीर्घकालिक दृष्टिकोण और स्थायित्व प्रदान करती थी।

पार्टी ने बूथ स्तर तक संगठन का विस्तार किया। प्रत्येक गांव, हर वार्ड, हर बस्ती में पार्टी ने छोटे-छोटे कार्यकर्ता मंडल बनाए जो पार्टी की रीढ़

की हड्डी बने। इन कार्यकर्ताओं का चयन वैचारिक प्रतिबद्धता और सामाजिक सेवा के आधार पर होता था, न कि केवल व्यक्तिगत प्रभाव या धनबल के आधार पर। इससे बीएसपी को एक समर्पित कार्यकर्ता वर्ग मिला, जिसने सीमित संसाधनों में भी पार्टी की रीति-नीति को जनता तक पहुँचाया।

महिलाओं और युवाओं की भूमिका को बीएसपी ने संगठनात्मक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण माना। पार्टी ने महिलाओं को सिर्फ भाषणों में नहीं, बल्कि संगठनात्मक पदों पर भी नियुक्त किया, जिससे बहुजन नारी चेतना को नयी दिशा मिली। इसी तरह युवाओं को प्रशिक्षण शिविरों, विचार गोष्ठियों और रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से राजनीति से जोड़ा गया और उन्हें नेतृत्व की ओर प्रेरित किया गया।

बीएसपी की कार्यप्रणाली में विचारधारा, अनुशासन और दीर्घकालिक लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्धता सर्वोपरि थी। पार्टी ने जनसभाओं, पत्रिकाओं, पुस्तकों, और अंबेडकर-जयंती जैसे आयोजनों के माध्यम से अपनी वैचारिक चेतना को निरंतर ज़िंदा रखा। पार्टी कार्यकर्ताओं को समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जाता था, जिसमें उन्हें अंबेडकर, फुले, पेरियार और कांशीराम के विचारों की गहन समझ दी जाती थी।

संक्षेप में, बीएसपी का संगठनात्मक ढाँचा उसकी विचारधारा का जीवंत प्रतिबिम्ब था। यह केवल सत्ता की राजनीति नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की ज़मीन पर टिकी एक सशक्त और अनुशासित कार्यप्रणाली थी, जिसने भारतीय राजनीति में बहुजन वर्ग को संगठित कर नेतृत्व की नई मिसाल कायम की।

बीएसपी की विचारधारा बनाम अन्य राजनैतिक दलों की विचारधारा

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की विचारधारा भारतीय राजनीति की उस मुख्यधारा से भिन्न थी, जिसे लंबे समय तक कांग्रेस, समाजवादी दलों और बाद में भारतीय जनता पार्टी ने आकार दिया था। बीएसपी की राजनीति का मूल आधार केवल चुनावी गणित नहीं था, बल्कि यह एक वैचारिक आंदोलन था, जो सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और राजनैतिक भागीदारी को केंद्र में रखता था। यह पार्टी उस ऐतिहासिक अन्याय को चुनौती देने के लिए अस्तित्व में आई थी, जिसमें बहुजन समाज को केवल वोट बैंक बनाकर रखा गया, लेकिन सत्ता और निर्णय-निर्माण से वंचित कर दिया गया।

कांग्रेस पार्टी ने स्वतंत्रता के बाद लंबे समय तक देश पर शासन किया और अपने को सभी वर्गों का प्रतिनिधि बताकर प्रस्तुत किया। लेकिन कांशीराम और बीएसपी का तर्क था कि कांग्रेस ने बहुजन समाज को केवल वोट देने का माध्यम माना, उसे सत्ताधारी बनाने की कभी गंभीर कोशिश नहीं की। कांग्रेस ने कभी भी बहुजन समाज से नेतृत्व विकसित नहीं होने दिया, बल्कि उन्हें परोक्ष रूप से सवर्ण नेतृत्व के अधीन रखा। बीएसपी की विचारधारा कांग्रेस की इसी बहुजन-विरोधी राजनीति का प्रतिकार थी।

समाजवादी दलों ने 1970 और 1980 के दशक में पिछड़े वर्गों की राजनीति को आगे बढ़ाने का प्रयास किया, लेकिन बीएसपी का मानना था कि समाजवाद के नाम पर जातिगत राजनीति की एक नई किस्म शुरू हो गई थी, जिसमें पिछड़े और दलित समुदायों के बीच विभाजन को बढ़ावा मिला। बीएसपी ने इसे सामाजिक एकता के लिए खतरनाक माना और “बहुजन एकता” की विचारधारा के तहत SC, ST, OBC और अल्पसंख्यकों को एक मंच पर लाने की रणनीति अपनाई। कांशीराम का

यह स्पष्ट मत था कि समाजवादी आंदोलन ने केवल कुछ जातियों को ऊपर उठाया, जबकि शेष बहुजन समुदाय को हाशिये पर रखा गया।

भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) और उससे जुड़े हिंदूवादी संगठनों की राजनीति भी बीएसपी की वैचारिक राह से पूरी तरह भिन्न थी। भाजपा ने “हिंदू एकता” का नारा देकर बहुजन समाज को सांस्कृतिक रूप से जोड़ने का प्रयास किया, लेकिन कांशीराम और बीएसपी ने इसे ब्राह्मणवादी वर्चस्व को बनाए रखने की एक रणनीति के रूप में देखा। बीएसपी ने बार-बार यह दोहराया कि हिंदुत्व की राजनीति के पीछे असल में जातिगत ऊँच-नीच की संरचना को बनाए रखने का प्रयास होता है। भाजपा द्वारा दलितों और पिछड़ों को प्रतीकात्मक पदों पर बैठाकर सामाजिक न्याय का भ्रम फैलाया गया, लेकिन असल सत्ता संरचना में उन्हें भागीदारी नहीं दी गई।

बीएसपी ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी विचारधारा किसी एक जाति या वर्ग के हितों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उन सभी वंचित समुदायों को संगठित करने का प्रयास है, जिन्हें सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से दबाया गया। बीएसपी की विचारधारा समावेशी थी, लेकिन इसमें ब्राह्मणवादी संरचनाओं का स्पष्ट विरोध निहित था। पार्टी ने सत्ता को केवल चुनावी जीत का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औज़ार माना।

इस प्रकार, बीएसपी की राजनीति ने पहली बार बहुजन समाज को यह एहसास दिलाया कि वे केवल समर्थनकर्ता नहीं, बल्कि सत्ता के वास्तविक हकदार हैं। कांग्रेस की उदारवाद, समाजवादी दलों की अर्ध-विकासशील पिछड़ा राजनीति, और भाजपा की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की राजनीति के विरुद्ध बीएसपी ने आत्म-सम्मान, राजनैतिक हिस्सेदारी और

विचारधारा-आधारित नेतृत्व को आगे बढ़ाया। यही अंतर बीएसपी को अन्य दलों से अलग और विशिष्ट बनाता है।

अध्याय 14: अंबेडकर और फुले के विचारों का बीएसपी पर प्रभाव

बहुजन समाज पार्टी की वैचारिक प्रेरणा

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना केवल एक चुनावी संगठन नहीं थी, बल्कि यह एक गहन वैचारिक और सामाजिक आंदोलन का परिणाम थी, जिसकी नींव भारत के दो महान समाज सुधारकों-डॉ. भीमराव अंबेडकर और ज्योतिबा फुले-के विचारों पर आधारित थी। इस पार्टी का जन्म उन परिस्थितियों में हुआ जब बहुजन, पिछड़े, आदिवासी और मुस्लिम जैसे सामाजिक रूप से वंचित वर्ग राजनैतिक रूप से संगठित नहीं थे और सत्ता से पूरी तरह वंचित थे। बीएसपी ने कांशीराम के नेतृत्व में यह विचार स्थापित किया कि इन समुदायों को केवल सामाजिक आंदोलन से नहीं, बल्कि सक्रिय राजनैतिक भागीदारी के माध्यम से सशक्त किया जाना चाहिए।

कांशीराम का यह स्पष्ट दृष्टिकोण था कि फुले और अंबेडकर ने जो विचार और चेतना बहुजन समाज के लिए विकसित की थी, उन्हें केवल स्मारक या अध्ययन तक सीमित न रखते हुए उन्हें व्यावहारिक राजनीति का हिस्सा बनाना चाहिए। उन्होंने यह कहा था कि जब तक बहुजन समाज को यह एहसास नहीं होगा कि सत्ता उनके अधिकार का हिस्सा है, तब तक उनका शोषण जारी रहेगा। बीएसपी का उद्देश्य सत्ता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि सत्ता को एक औजार के रूप में प्रयोग कर समाज में न्याय, समानता और गरिमा स्थापित करना था।

कांशीराम ने यह भी बार-बार कहा कि भारतीय समाज में सत्ता का ढाँचा सदियों से ब्राह्मणवादी व्यवस्था के अधीन रहा है, जिसने योजनाबद्ध तरीके से बहुजन समाज को सामाजिक, शैक्षणिक और राजनैतिक अवसरों से वंचित किया। उन्होंने इस व्यवस्था को तोड़ने और बहुजन समाज को राजनैतिक शक्ति के केंद्र में लाने के लिए बीएसपी को एक सामाजिक क्रांति के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, यह आंदोलन अंबेडकर और फुले की उस विरासत को आगे बढ़ाने का प्रयास था, जिसमें बहुजन समाज को केवल शोषण के विरुद्ध खड़ा ही नहीं होना था, बल्कि सत्ता की बागडोर भी अपने हाथों में लेनी थी।

इस वैचारिक प्रेरणा में सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि बीएसपी की राजनीति चुनावी अंकगणित या सत्ता में भागीदारी तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह भारतीय सामाजिक ढाँचे को पुनर्गठित करने की एक राजनैतिक क्रांति थी। अंबेडकर की चेतना और फुले की सामाजिक दृष्टि को समाहित करते हुए बीएसपी ने यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज शिक्षित, संगठित और राजनैतिक रूप से जागरूक नहीं होगा, तब तक उसे न्याय नहीं मिलेगा। इसीलिए कांशीराम ने पार्टी कार्यकर्ताओं और समर्थकों को सामाजिक परिवर्तन के कार्यकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया, न कि केवल मतदाता के रूप में देखा।

बीएसपी की यह वैचारिक प्रेरणा अंबेडकर और फुले के विचारों को केवल प्रतीक रूप में इस्तेमाल करने तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसे जमीन पर सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन के रूप में उतारा गया। यही कारण है कि बीएसपी का उद्भव केवल एक दल के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक चेतना के रूप में हुआ जिसने सत्ता की

परंपरागत धारणाओं को चुनौती दी और भारतीय राजनीति के विमर्श को बहुजन केंद्रित दिशा दी।

डॉ. अंबेडकर के विचार और बीएसपी की राजनीति

डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज के सबसे क्रांतिकारी चिंतकों में से एक थे, जिन्होंने न केवल संविधान निर्माण में अहम भूमिका निभाई, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता और मानव गरिमा के लिए जीवनभर संघर्ष किया। बहुजन समाज पार्टी की वैचारिक धारा अंबेडकर के इन्हीं सिद्धांतों से निकली। कांशीराम ने अंबेडकर को केवल एक संविधान निर्माता या दलित नेता के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के अग्रदूत के रूप में देखा, और उनके विचारों को बीएसपी की राजनैतिक रणनीति का आधार बनाया।

अंबेडकर ने जाति व्यवस्था को भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई बताया और कहा कि जब तक यह व्यवस्था खत्म नहीं होती, तब तक न तो सच्चा लोकतंत्र संभव है, न ही सामाजिक समानता। उनका यह स्पष्ट विचार था कि केवल राजनैतिक स्वतंत्रता से कुछ नहीं होगा, जब तक सामाजिक और आर्थिक समता स्थापित नहीं होती। इसी आधार पर बीएसपी ने जाति आधारित राजनैतिक चेतना को संगठित कर यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज सत्ता में भागीदार नहीं होगा, तब तक समाज में संतुलन नहीं आ सकता। पार्टी ने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” के सिद्धांत को अपनाकर यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि बहुजन वर्गों की जनसंख्या को उनके राजनैतिक अधिकारों से जोड़ा जाए।

अंबेडकर कांग्रेस की राजनीति को ब्राह्मणवादी बताते हुए उसकी तीखी आलोचना करते थे। उनका मानना था कि कांग्रेस और अन्य मुख्यधारा की पार्टियाँ बहुजन समाज को केवल एक वोट बैंक के रूप में देखती हैं, न कि स्वतंत्र राजनैतिक शक्ति के रूप में। उन्होंने बहुजन समाज से आह्वान किया था कि वे ऐसी पार्टियों के अधीन रहने के बजाय अपनी राजनैतिक पार्टी बनाएं और सत्ता की चाबी खुद के हाथ में लें। बीएसपी ने इस विचार को आत्मसात करते हुए ब्राह्मणवादी दलों का विरोध किया और बहुजन नेतृत्व को सशक्त करने की दिशा में कार्य किया।

“शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो” - अंबेडकर का यह नारा बीएसपी की राजनैतिक कार्यप्रणाली का मूल मंत्र बना। कांशीराम ने माना कि बहुजन समाज को सबसे पहले शिक्षित किया जाना आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा ही उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाएगी। बीएसपी ने शिक्षा को केवल विद्यालयों तक सीमित न रखते हुए सामाजिक और राजनैतिक जागरूकता का माध्यम बनाया, जिससे बहुजन समाज समझ सके कि उसकी दुर्दशा का कारण कौन है, और उसका समाधान सत्ता में भागीदारी के बिना संभव नहीं।

अंबेडकर का एक और महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने दलितों और बहुजनों को आत्म-सम्मान की चेतना दी। उन्होंने समाज को यह बताया कि वे केवल शोषित नहीं, बल्कि शक्ति के वाहक भी बन सकते हैं-यदि वे संगठित हों और संघर्ष करें। बीएसपी ने इस चेतना को जमीनी राजनीति में ढालते हुए बहुजन समाज को आत्मनिर्भर और राजनैतिक रूप से सक्षम बनाने की कोशिश की। कांशीराम ने बार-बार कहा कि “राजनैतिक सत्ता ही वह चाबी है जिससे सामाजिक ताले खोले जा सकते हैं”-यह कथन सीधे-सीधे अंबेडकर के दृष्टिकोण से मेल खाता है।

इस प्रकार, बीएसपी की राजनीति केवल अंबेडकर के नाम और तस्वीरों के प्रयोग तक सीमित नहीं रही, बल्कि उनकी विचारधारा को जीवंत बनाकर बहुजन समाज के राजनैतिक सशक्तिकरण का माध्यम बनी। बीएसपी ने अंबेडकर के उन विचारों को राजनीति के केंद्र में रखा जो अब तक केवल पुस्तकों और भाषणों तक सीमित थे, और उन्हें बहुजन चेतना की वास्तविक राजनैतिक क्रांति में बदल दिया।

ज्योतिबा फुले के विचार और बीएसपी की राजनीति

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की वैचारिक प्रेरणाओं में ज्योतिबा फुले का स्थान डॉ. अंबेडकर के समान ही केंद्रीय है। फुले भारत के पहले सामाजिक चिंतकों में थे जिन्होंने जाति व्यवस्था, ब्राह्मणवादी प्रभुत्व और महिलाओं की दुर्दशा के विरुद्ध खुलकर आवाज़ उठाई। उन्होंने बहुजन समाज के अधिकारों और आत्म-सम्मान की लड़ाई उस समय लड़ी जब समाज में छुआछूत, अशिक्षा और सामाजिक गुलामी को धार्मिक और सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। बीएसपी के संस्थापक कांशीराम ने फुले की इन क्रांतिकारी विचारधाराओं को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उन्हें अपनी राजनैतिक विचारधारा की धुरी बनाया।

ज्योतिबा फुले की सबसे प्रभावशाली रचना गुलामगिरी में उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा बहुजन समाज पर थोपे गए धार्मिक मिथकों और जातिगत उत्पीड़न का गंभीर विश्लेषण किया। उनका मानना था कि ब्राह्मणों ने वेद-पुराणों और धार्मिक संस्कारों के माध्यम से बहुजन समाज को मानसिक और सामाजिक रूप से गुलाम बना दिया है। उन्होंने इस स्थिति को 'सांस्कृतिक दासता' कहा और इसके विरुद्ध चेतना जगाने के लिए आंदोलन शुरू किया। बीएसपी ने इस विचार को अपने राजनैतिक सिद्धांत का आधार

बनाकर यह घोषित किया कि जब तक ब्राह्मणवाद का प्रतिकार नहीं होगा, तब तक बहुजन समाज स्वतंत्र नहीं हो सकता। कांशीराम ने साफ कहा कि ब्राह्मणवाद को केवल आलोचना से नहीं, बल्कि सत्ता परिवर्तन के माध्यम से चुनौती दी जा सकती है।

फुले ने शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का सबसे बड़ा अस्त्र माना और उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय बहुजन समाज-विशेष रूप से महिलाओं-को शिक्षित करने में लगाया। उन्होंने सावित्रीबाई फुले के साथ मिलकर भारत का पहला महिला विद्यालय खोला और यह साबित किया कि अगर शिक्षा बहुजन और महिलाओं के हाथों में दी जाए, तो समाज की बुनियादी संरचना बदली जा सकती है। बीएसपी ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया और बहुजन समाज के बीच शिक्षा, राजनैतिक जागरूकता और नेतृत्व की भावना को विकसित करने के लिए कैडर आधारित कार्यशालाएं, प्रशिक्षण शिविर और बौद्धिक सम्मेलन आयोजित किए। यह कांशीराम की दूरदृष्टि थी कि उन्होंने फुले की विचारधारा को न केवल आदर्श के रूप में अपनाया, बल्कि उसे संगठित राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित किया।

फुले का एक और महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने सामाजिक सुधार के साथ-साथ संगठन निर्माण पर भी ज़ोर दिया। उन्होंने कहा था कि जब तक बहुजन समाज संगठित नहीं होगा, तब तक ब्राह्मणवादी व्यवस्था का अंत संभव नहीं है। बीएसपी की संगठनात्मक संरचना-बूथ स्तर से लेकर राज्य स्तरीय कैडर तक-इसी सिद्धांत पर आधारित थी। कांशीराम ने फुले के विचार को व्यवहारिक राजनीति में बदलते हुए यह दिखाया कि यदि बहुजन समाज एकजुट हो जाए, तो वह किसी भी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था को बदल सकता है।

ज्योतिबा फुले ने मुस्लिम, ओबीसी, एससी, एसटी और महिलाओं को सामाजिक समानता के दायरे में लाने की वकालत की। बीएसपी ने इसी विचार को “बहुजन एकता” के रूप में विकसित किया और इन सभी समुदायों को एक साझा सामाजिक-सांस्कृतिक मंच पर लाकर उन्हें राजनीति में निर्णायक शक्ति बनाया। कांशीराम ने बहुजन समाज को “शक्ति के रूप में संगठित वोट बैंक” में तब्दील कर दिया, जिसे मुख्यधारा की राजनीति अनदेखा नहीं कर सकती थी।

इस प्रकार, बीएसपी की वैचारिक और राजनैतिक संरचना में ज्योतिबा फुले का योगदान न केवल बौद्धिक प्रेरणा तक सीमित रहा, बल्कि उन्होंने बहुजन क्रांति के लिए एक व्यवहारिक दिशा भी प्रदान की। कांशीराम ने फुले के सिद्धांतों को ज़मीन पर उतारकर एक ऐसा सामाजिक आंदोलन खड़ा किया, जिसने भारतीय राजनीति की दिशा को ही बदल दिया।

बीएसपी की नीतियों में अंबेडकर और फुले के प्रभाव का विश्लेषण

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की नीतियाँ कोई सामान्य राजनैतिक घोषणाएँ नहीं थीं, बल्कि ये डॉ. भीमराव अंबेडकर और ज्योतिबा फुले की विचारधारा का व्यावहारिक रूप थीं। इन दोनों समाज सुधारकों ने बहुजन समाज के सामाजिक, शैक्षिक और राजनैतिक उत्थान के लिए जिस संघर्ष और दर्शन की नींव रखी थी, उसे कांशीराम ने राजनैतिक रणनीतियों में रूपांतरित किया और उसे संगठित रूप से लागू किया। बीएसपी की हर नीति, नारा और अभियान का मूल उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन और सत्ता में भागीदारी था, जो अंबेडकर और फुले की चेतना का ही विस्तार था।

डॉ. अंबेडकर के ‘राजनैतिक सत्ता ही परिवर्तन की चाबी है’ सिद्धांत को BSP ने पूरी गंभीरता से आत्मसात किया। अंबेडकर मानते थे कि बहुजन समाज को यदि सामाजिक सम्मान और आर्थिक अवसर चाहिए, तो उन्हें राजनैतिक सत्ता में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करनी होगी। इसी विचारधारा को लेकर बीएसपी ने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” का नारा दिया। यह नारा केवल एक चुनावी जुमला नहीं था, बल्कि यह अंबेडकर के उस गहन दर्शन का राजनैतिक अनुवाद था, जिसमें वे बहुजन समाज को वोट बैंक से आगे जाकर नीति-निर्माण की सीटों तक पहुँचते देखना चाहते थे।

ज्योतिबा फुले के ‘शिक्षा और संगठन’ के सिद्धांत को बीएसपी ने पार्टी संगठन और जनचेतना अभियान की रीढ़ बनाया। फुले का विश्वास था कि बहुजन समाज को सामाजिक गुलामी से मुक्त कराने का रास्ता शिक्षा और आत्मसम्मान से होकर गुजरता है। बीएसपी ने अपने आरंभिक चरणों में गांव-गांव जाकर कैडर तैयार किए, लोगों को उनके इतिहास, अधिकार और राजनैतिक शक्ति के महत्व के बारे में शिक्षित किया। ये कार्य केवल चुनावी फायदे के लिए नहीं, बल्कि एक गहन सामाजिक रूपांतरण के उद्देश्य से किए गए, जैसा कि फुले ने अपने जीवनकाल में प्रस्तावित किया था।

बीएसपी की प्रमुख नीतियों में अंबेडकर के “शिक्षित बनो, संगठित बनो और संघर्ष करो” के सिद्धांत की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है। पार्टी ने कैडर आधारित संरचना बनाकर बहुजन समाज को सांगठनिक रूप से मजबूत किया और हर स्तर पर नेतृत्व विकसित करने का प्रयास किया। इसके अंतर्गत बूथ स्तर पर कार्यकर्ताओं की नियुक्ति, बहुजन युवाओं को प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से राजनैतिक शिक्षण, और महिला

कार्यकर्ताओं को नेतृत्व की जिम्मेदारी देना अंबेडकर की उस अवधारणा का विस्तार था जिसमें उन्होंने आत्मनिर्भर राजनैतिक नेतृत्व पर जोर दिया था।

इसी प्रकार, ब्राह्मणवादी सत्ता और मनुवादी व्यवस्था के खिलाफ फुले और अंबेडकर दोनों ने खुलकर लिखा और बोला। बीएसपी ने इस विचार को राजनैतिक विमर्श का केंद्र बना दिया और कांग्रेस, समाजवादी दलों और भाजपा जैसी मुख्यधारा की पार्टियों पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने बहुजन समाज को सिर्फ वोट बैंक बनाकर रखा, जबकि सत्ता में उनकी निर्णायक भागीदारी से हमेशा इंकार किया गया। बीएसपी ने सत्ता प्राप्ति को साध्य नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का साधन माना और इस सोच में अंबेडकर और फुले दोनों का दर्शन स्पष्ट झलकता है।

BSP की विचारधारा बनाम अन्य राजनैतिक दलों की विचारधारा

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की विचारधारा भारतीय राजनीति में मौलिक रूप से अन्य सभी दलों से अलग थी। यह एकमात्र ऐसा दल था जिसने अपने गठन के पहले दिन से ही यह स्पष्ट कर दिया कि उसका लक्ष्य केवल सत्ता प्राप्त करना नहीं, बल्कि सत्ता संरचना को ही बदल देना है। इसके मूल में बहुजन समाज को आत्मनिर्भर बनाना, राजनैतिक सत्ता में सहभागी बनाना, और ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को चुनौती देना शामिल था। इसके विपरीत, अन्य राजनैतिक दलों की विचारधाराएँ अधिकतर सत्ता-संचालन और चुनावी गठजोड़ों तक सीमित थीं, जो समाज के वंचित वर्गों को केवल वोट बैंक के रूप में देखते थे।

कांग्रेस पार्टी, जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम की अगुआ रही, ने लंबे समय तक सत्ता में रहकर बहुजन समाज को केवल वोटर और कार्यकर्ता के रूप

में इस्तेमाल किया। डॉ. अंबेडकर स्वयं इस तथ्य को कई बार उजागर कर चुके थे कि कांग्रेस का नेतृत्व उच्च जातियों के हाथ में रहा है और उसने बहुजन समाज को वास्तविक नेतृत्व देने से हमेशा इनकार किया है। कांग्रेस ने कभी बहुजन समाज को निर्णय लेने वाले पदों पर स्थापित नहीं किया, और सामाजिक न्याय की बातें केवल घोषणापत्रों तक सीमित रहीं। BSP ने कांग्रेस के इस दोहरे चरित्र को उजागर किया और उसे बहुजन विरोधी पार्टी करार दिया।

समाजवादी दलों की बात करें, तो इनका दावा था कि वे पिछड़ों और गरीबों के हितों की राजनीति करते हैं। लेकिन व्यवहार में इन्होंने OBC वर्ग को केंद्र में रखकर सत्ता प्राप्त की और दलितों और आदिवासियों को हमेशा हाशिए पर रखा। कांशीराम ने इस वर्गीय विभाजन की राजनीति को 'सामाजिक न्याय के नाम पर धोखा' कहा। समाजवादी राजनीति ने OBC नेताओं को उभारा, लेकिन बहुजन एकता को बाधित किया। BSP ने इसके विपरीत, अनुसूचित जातियों, जनजातियों, OBC और मुस्लिमों को एक ही सामाजिक न्याय के मंच पर लाकर उन्हें 'बहुजन' की एकता में बाँधने का कार्य किया।

भारतीय जनता पार्टी (BJP) की राजनीति सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदुत्व की विचारधारा पर आधारित रही है, जो एक प्रकार से ब्राह्मणवादी वर्चस्व को पुनः स्थापित करने की रणनीति रही। भाजपा ने "सबका साथ, सबका विकास" जैसे नारों के माध्यम से सामाजिक समरसता की बात जरूर की, लेकिन वास्तविकता में बहुजन समाज को अपने एजेंडे में स्थान देने से परहेज किया। बीजेपी के नेतृत्व और संगठनात्मक ढांचे में सर्वार्थ वर्चस्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। BSP ने भाजपा की इस रणनीति को 'नरम ब्राह्मणवाद' करार दिया और उसे खुलकर चुनौती दी।

इसके अतिरिक्त, वामपंथी दल भी सामाजिक न्याय और समानता की बात करते रहे हैं, लेकिन उनका वर्गीय दृष्टिकोण जातिगत असमानता को पर्याप्त महत्व नहीं देता। वे जाति व्यवस्था को आर्थिक वर्ग संघर्ष में विलीन करने का प्रयास करते हैं, जिससे बहुजन समाज के विशेष उत्पीड़न का स्वरूप धुंधला हो जाता है। BSP ने इस वर्ग आधारित विश्लेषण को खारिज करते हुए कहा कि भारत की मूल समस्या जाति है, और जब तक जाति नहीं टूटेगी, तब तक कोई भी सामाजिक परिवर्तन अधूरा रहेगा।

इस प्रकार BSP की राजनीति का मूलभूत अंतर यह रहा कि उसने न केवल बहुजन समाज के अधिकारों की बात की, बल्कि उसे सत्ता का वास्तविक भागीदार बनाने का ठोस कार्यक्रम दिया। इसने बहुजन चेतना को केवल सामाजिक आंदोलन तक सीमित न रखकर उसे संगठित राजनैतिक शक्ति में रूपांतरित किया। यह दृष्टिकोण न तो कांग्रेस में था, न समाजवादियों में, न भाजपा में और न ही वामपंथियों में। BSP की विचारधारा, अपने स्पष्ट लक्ष्य, समर्पित संगठन और ऐतिहासिक संदर्भों के कारण, भारतीय राजनीति में सामाजिक परिवर्तन की सबसे गंभीर और स्थायी पहल मानी जाती है।

अध्याय 15:

बहुजन एकता को मजबूत करने का विचार

बहुजन एकता की पृष्ठभूमि और इसकी आवश्यकता

भारतीय समाज सदियों से जातिवादी ढांचे में बँधा हुआ रहा है, जहाँ सत्ता, संसाधन और सम्मान पर कुछ गिनी-चुनी उच्च जातियों का एकाधिकार रहा है। इस व्यवस्था ने बहुजन समाज-जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम जैसे वंचित समुदाय शामिल हैं-को सुनियोजित ढंग से शिक्षा, अर्थव्यवस्था, प्रशासन, न्याय व्यवस्था और राजनैतिक प्रतिनिधित्व से वंचित रखा। बहुजन समाज का योगदान राष्ट्र निर्माण में जितना बड़ा था, उनके अधिकार उतने ही सीमित कर दिए गए। परिणामस्वरूप, ये वर्ग सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से हाशिए पर धकेल दिए गए और केवल वोट बैंक की भूमिका में सीमित होकर रह गए।

इसी अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ समाज सुधारकों-डॉ. भीमराव अंबेडकर, ज्योतिबा फुले और पेरियार-ने बहुजन समाज को चेताया और जागरूक किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि जब तक बहुजन वर्ग संगठित नहीं होगा, तब तक वह ब्राह्मणवादी सत्ता-संरचना को चुनौती नहीं दे सकता और उसकी हालत में कोई बदलाव नहीं आएगा। डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि सामाजिक परिवर्तन का सबसे सशक्त माध्यम राजनीति है, और इसके लिए सत्ता का प्राप्त होना अत्यंत आवश्यक है। लेकिन बहुजन वर्ग की विडंबना यही रही कि संख्या में बहुसंख्यक होते हुए भी वह सत्ता की चाबी से हमेशा दूर रखा गया।

कांशीराम ने इन्हीं समाज सुधारकों की विचारधारा को राजनैतिक धरातल पर उतारने का कार्य किया। उन्होंने यह गहराई से समझा कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने बहुजन समाज को आपस में बाँटकर ही सदियों से शासन किया है। उन्होंने महसूस किया कि जब तक बहुजन समाज में आपसी एकता नहीं बनेगी, तब तक न केवल सत्ता बल्कि सम्मान भी हासिल नहीं हो सकेगा। इसी कारण उन्होंने बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की। इस पार्टी का उद्देश्य चुनावों में केवल सीट जीतना नहीं था, बल्कि बहुजन समाज को जाति और धर्म की सीमाओं से ऊपर उठाकर एकजुट करना और उसे संगठित राजनैतिक शक्ति में बदलना था। कांशीराम का विचार था कि यदि SC, ST, OBC और मुस्लिम समुदाय एक मंच पर आ जाएँ, तो भारत की सत्ता का स्वरूप ही बदल सकता है।

BSP की राजनीति इसी सोच से निकली थी कि बहुजन समाज की राजनैतिक चेतना को जागृत किया जाए, ताकि वे खुद को सत्ता में भागीदार मानें, न कि केवल अन्य दलों के लिए वोट देने वाली भीड़। कांशीराम ने बार-बार यह कहा कि “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” का सिद्धांत केवल एक नारा नहीं, बल्कि लोकतंत्र की आत्मा है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि बहुजन समाज को सत्ता तक पहुँचने के लिए एकजुट होना ही होगा—न केवल ब्राह्मणवाद से लड़ने के लिए, बल्कि खुद अपने भीतर मौजूद जातिगत विभाजन को भी समाप्त करने के लिए।

बहुजन एकता की आवश्यकता केवल राजनैतिक उद्देश्यों तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक सम्मान, सांस्कृतिक स्वायत्तता और आर्थिक सशक्तिकरण से भी जुड़ी हुई थी। बहुजन समाज की एकता से न केवल उनका प्रतिनिधित्व बढ़ेगा, बल्कि उनके बच्चों को शिक्षा,

नौकरियाँ, जमीन, अवसर और गरिमा का वह हक मिलेगा जिससे वे सदियों तक वंचित रहे। इसीलिए कांशीराम ने बहुजन एकता को अपने राजनैतिक आंदोलन का केंद्रीय लक्ष्य बनाया, और इसी विचार ने BSP को एक साधारण राजनैतिक दल नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति का माध्यम बना दिया।

बहुजन एकता का महत्व और कांशीराम का दृष्टिकोण

बहुजन एकता का विचार कांशीराम की राजनीति का मूल स्तंभ था। उन्होंने बार-बार यह स्पष्ट किया कि भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में जहाँ अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम जैसे समुदाय मिलकर जनसंख्या का 85% हिस्सा हैं, वहाँ यदि ये समुदाय एकजुट हो जाएँ तो सत्ता की चाबी उनके हाथ में आ सकती है। लेकिन सदियों की गुलामी, सामाजिक भेदभाव, धार्मिक-जातीय विभाजन और सत्ता की साजिशों ने इन समुदायों को एक-दूसरे से अलग-थलग कर रखा था। कांशीराम ने इसी स्थिति को बदलने का निश्चय किया। उनका नारा “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” कोई भावनात्मक उद्धोष मात्र नहीं था, बल्कि यह भारत के लोकतंत्र की गणितीय और नैतिक सत्यता पर आधारित राजनैतिक सिद्धांत था।

कांशीराम का दृष्टिकोण यह था कि बहुजन समाज को संगठित किए बिना भारत में सामाजिक न्याय और वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है। उन्होंने इस एकता की आवश्यकता को “राजनैतिक डीएनए” के रूप में देखा और कहा कि जब तक बहुजन समाज अपनी साझा पहचान को नहीं अपनाएगा और जाति, उपजाति, धर्म और क्षेत्र के नाम पर विभाजित रहेगा, तब तक वह केवल अन्य राजनैतिक दलों के लिए ‘वोट

बैंक 'बना रहेगा और उसकी नियति शोषण बनी रहेगी। उन्होंने जोर दिया कि बहुजन समाज को केवल अपने अधिकारों की बात नहीं करनी है, बल्कि सत्ता की मांग करनी है। वोट देना काफी नहीं है, नीति बनाना जरूरी है-और इसके लिए सत्ता में पहुँचना अनिवार्य है।

कांशीराम ने बहुजन समाज के राजनैतिक उत्थान को केवल एक दलित आंदोलन या पिछड़ा वर्ग आंदोलन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने इसे एक समग्र सामाजिक क्रांति के रूप में देखा। उनका मानना था कि बहुजन समाज की एकता ही उस ब्राह्मणवादी सत्ता-संरचना को चुनौती दे सकती है जिसने भारत में सत्ता को कुछ जातियों तक सीमित कर रखा है। उन्होंने यह भी कहा कि बहुजन समाज को अपनी संख्या और शक्ति का अहसास तब तक नहीं होगा, जब तक वे संगठित होकर एक राजनैतिक शक्ति के रूप में खड़े नहीं होंगे। इसीलिए BSP की संरचना और रणनीति, दोनों इस उद्देश्य के इर्द-गिर्द बुनी गई थीं कि कैसे बहुजन समाज को एक मंच पर लाया जाए और उसे अपने अधिकारों के लिए सजग, संगठित और संघर्षशील बनाया जाए।

इस दृष्टिकोण ने उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों की राजनीति को ही नहीं बदला, बल्कि भारत की राजनीति में एक वैकल्पिक विमर्श प्रस्तुत किया-वह विमर्श जिसमें सत्ता के केंद्र में बहुजन वर्ग की बात थी, और जहाँ बहुजन समाज केवल संख्याबल नहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता बनकर उभरा। कांशीराम का यह विचार आज भी भारतीय राजनीति के सामाजिक न्याय आधारित विमर्श की आधारशिला बना हुआ है।

जातियों के भीतर भेदभाव को खत्म करना

कांशीराम ने जिस बहुजन एकता का सपना देखा था, उसमें सबसे बड़ी बाधा खुद बहुजन समाज के भीतर व्याप्त आपसी जातिगत भेदभाव था। यद्यपि उन्होंने ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना को भारत में सामाजिक असमानता और बहुजन शोषण का मूल कारण माना, परंतु वे यह भी भलीभांति समझते थे कि केवल बाहरी ताकतों को दोषी ठहराना पर्याप्त नहीं है। अगर बहुजन समाज स्वयं अपनी अंतर्विरोधी मानसिकता और जातिगत अहंकार से बाहर नहीं आएगा, तो वह किसी भी सामाजिक क्रांति को अंजाम नहीं दे सकेगा। यही कारण था कि कांशीराम ने अपने आंदोलन की शुरुआत से ही यह स्पष्ट किया कि बहुजन समाज को सबसे पहले अपने भीतर मौजूद विभाजनों को खत्म करना होगा।

भारत में दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम समाज के भीतर अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं, जिनके बीच परंपरागत रूप से सामाजिक दूरी, श्रेष्ठता का भाव, और आपसी अविश्वास व्याप्त रहा है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों के भीतर भी अनेक जातियाँ एक-दूसरे को नीचा समझती हैं। इसी प्रकार ओबीसी समुदाय के अंदर भी 'अतिपिछड़े' और 'ऊँच पिछड़े' का वर्गीकरण चलता रहा है। यह वर्गीकरण केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक व्यवहार, विवाह संबंध, गांवों की बस्तियों और आपसी बातचीत के स्तर पर भी दिखाई देता है। इन आंतरिक भेदभावों ने ब्राह्मणवादी सत्ता को मजबूती दी और बहुजन समाज को संगठित होने से रोका।

कांशीराम ने इस विभाजन को 'भीतर का ब्राह्मणवाद' कहा। उन्होंने कहा कि यदि बहुजन समाज अपने ही भीतर एक-दूसरे को नीचा दिखाता

रहेगा, तो वह कभी संगठित नहीं हो सकेगा। उन्होंने इसे दूर करने के लिए राजनैतिक एकता को औजार बनाया। उनका मानना था कि चुनाव और सत्ता के माध्यम से ही समाज में वह चेतना उत्पन्न की जा सकती है, जो जातिगत अहंकार को समाप्त कर सकती है। BSP ने अपने अभियानों, रैलियों और साहित्य के माध्यम से यह स्पष्ट संदेश फैलाया कि बहुजन समाज को एक-दूसरे की जाति नहीं, बल्कि साझा शोषण का इतिहास और भविष्य देखना होगा।

इस प्रक्रिया में उन्होंने “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” को व्यवहारिक अर्थ में स्थापित किया। पार्टी ने नारा दिया कि “हम दलित-पिछड़े, मुस्लिम-आदिवासी, सब हैं भाई-भाई”-और इस भाईचारे की भावना को प्रचारित करने के लिए हर स्तर पर सामाजिक संवाद, सांस्कृतिक मेल-मिलाप, और राजनैतिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग किया। BSP के संगठन में विभिन्न जातियों और समुदायों को नेतृत्व देने का प्रयास किया गया, जिससे संदेश जाए कि यह पार्टी किसी एक जाति की नहीं, बल्कि समूचे बहुजन समाज की है।

इस प्रकार, जातियों के भीतर मौजूद भेदभाव को समाप्त करने का कार्य कांशीराम की रणनीति का मूल भाग था। वे जानते थे कि जब तक बहुजन समाज स्वयं अपने भीतर से जातिगत दीवारों को नहीं गिराएगा, तब तक वह बाहर की सत्ता-संरचना को नहीं बदल सकता। यह विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी बहुजन समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती एकता की है-और वह तभी संभव है जब भीतरी भेदभाव की बेड़ियाँ तोड़ी जाएँ।

बहुजन समाज को राजनैतिक जागरूकता देना

कांशीराम ने हमेशा यह समझा और कहा कि यदि बहुजन समाज को उसका वास्तविक अधिकार दिलाना है, तो सबसे पहले उसे राजनैतिक रूप से जागरूक बनाना होगा। उनके अनुसार, केवल सामाजिक सहानुभूति या भावनात्मक अपील से बहुजन समाज को उन्नति नहीं मिल सकती; बल्कि जब तक वह अपनी राजनैतिक शक्ति को नहीं पहचानेगा और संगठित होकर मतदान के माध्यम से अपनी शक्ति का प्रदर्शन नहीं करेगा, तब तक न तो नीति बदलेगी और न ही सत्ता के चरित्र में कोई परिवर्तन आएगा।

भारत के राजनैतिक इतिहास में दलित, पिछड़ा वर्ग, आदिवासी और मुस्लिम समुदाय लंबे समय तक केवल “वोट बैंक” के रूप में प्रयोग किए जाते रहे। कांग्रेस, बीजेपी और समाजवादी दलों ने इन समुदायों को जाति, धर्म, क्षेत्रीय अस्मिता या भावनात्मक मुद्दों में उलझाकर रखा, जिससे वे कभी अपने असली हितों को समझ ही नहीं सके। यही वह बिंदु था, जहां कांशीराम ने हस्तक्षेप किया। उन्होंने बहुजन समाज को बताया कि जब तक वे अपने वर्गीय हितों की पहचान नहीं करेंगे और एकजुट होकर मतदान नहीं करेंगे, तब तक वे केवल “गिनती” में रहेंगे, “हिस्सेदारी” में नहीं।

BSP ने बहुजन समाज को राजनैतिक रूप से जागरूक बनाने के लिए व्यापक अभियान चलाए। इन अभियानों के माध्यम से गांवों, कस्बों और शहरी झुग्गियों तक यह संदेश पहुँचाया गया कि सत्ता उन्हीं के हाथ में आती है, जो संगठित होकर वोट डालते हैं। पार्टी कार्यकर्ताओं को बूथ स्तर पर प्रशिक्षित किया गया और “प्रत्येक वोट की ताकत” को समझाने

के लिए विशेष जन-जागरूकता कार्यक्रम चलाए गए। इन अभियानों में यह स्पष्ट किया गया कि बहुजन समाज यदि अपनी जनसंख्या के अनुपात में संगठित होकर मतदान करे, तो वह किसी भी राजनैतिक दल को सत्ता से बाहर कर सकता है और स्वयं सत्ता में आ सकता है।

इसके अतिरिक्त BSP ने अपने साहित्य-जैसे “मनुवाद के खिलाफ आंदोलन”, “बहुजन राजनीति का इतिहास” आदि-के माध्यम से भी राजनैतिक चेतना का विकास किया। बहुजन युवाओं को संगठित करने के लिए छात्र इकाइयाँ बनाई गईं, जो विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सामाजिक न्याय की अवधारणाओं पर चर्चा और जागरूकता फैलाती थीं। महिला इकाइयों को भी प्रशिक्षित किया गया ताकि बहुजन महिलाएँ भी राजनीति में सक्रिय भूमिका निभा सकें।

कांशीराम ने यह भी समझाया कि केवल मतदान करना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि यह भी ज़रूरी है कि बहुजन समाज राजनैतिक दलों में नेतृत्व की भूमिका निभाए। इसलिए उन्होंने नेतृत्व निर्माण पर भी ज़ोर दिया और कहा, “हम नेता बनाएँगे, दूसरों के नेता नहीं पूजेंगे।” इस विचारधारा ने बहुजन युवाओं में आत्मविश्वास का संचार किया और उन्हें अपने समुदाय की समस्याओं को अपने तरीके से उठाने और हल करने की प्रेरणा दी।

बहुजन समाज को राजनैतिक रूप से जागरूक बनाना केवल BSP की रणनीति का हिस्सा नहीं, बल्कि उसका केंद्रीय स्तंभ था। यह वही जागरूकता थी जिसने आगे चलकर उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में बहुजन नेतृत्व को सत्ता तक पहुँचाया। कांशीराम का यह सपना कि “हमारी संख्या तो बहुत है, बस संगठित नहीं हैं,” धीरे-धीरे साकार होने लगा।

बहुजन एकता की रणनीति और संगठनात्मक प्रयास

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की सबसे बड़ी रणनीतिक उपलब्धि यह थी कि उसने बहुजन समाज को केवल एक राजनैतिक नारे तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे संगठनात्मक ढांचे में ढालकर एक शक्तिशाली आंदोलन का रूप दिया। कांशीराम का यह दृढ़ विश्वास था कि बिना ठोस संगठन के कोई भी सामाजिक या राजनैतिक परिवर्तन संभव नहीं है। इसीलिए उन्होंने बहुजन एकता को सिर्फ वैचारिक स्तर पर नहीं, बल्कि ज़मीनी स्तर पर साकार करने के लिए एक विस्तृत संगठनात्मक रणनीति अपनाई।

सबसे पहले, उन्होंने कैडर-बेस्ड पार्टी की अवधारणा को अपनाया। BSP ने आरंभ से ही ऐसे कार्यकर्ताओं को तैयार किया, जो केवल चुनाव के समय नहीं, बल्कि साल भर पार्टी के वैचारिक प्रचार और संगठन निर्माण में सक्रिय रहते थे। यह कैडर गांवों, कस्बों, और शहरों तक फैला हुआ था और प्रत्येक कार्यकर्ता को समाज के विभिन्न वर्गों से संवाद करने, उन्हें जागरूक करने, और पार्टी के साथ जोड़ने की जिम्मेदारी दी जाती थी। बूथ स्तर से लेकर ज़िला, मंडल और राज्य स्तर तक यह संगठनात्मक ढांचा बहुत ही अनुशासित और सक्रिय था।

BSP ने यह भी समझा कि जातिगत ध्रुवीकरण बहुजन एकता की सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए पार्टी की रणनीति में यह बात केंद्रीय थी कि बहुजन समाज के विभिन्न घटकों-SC, ST, OBC और मुस्लिम-को एक साझा मंच पर लाया जाए। पार्टी ने लगातार यह प्रचार किया कि ये सभी समुदाय एक ही सामाजिक और राजनैतिक शोषण के शिकार रहे हैं, और जब तक वे एकजुट नहीं होंगे, तब तक वे सत्ता में निर्णायक भूमिका नहीं निभा सकते। इस विचार को जन-जन तक पहुँचाने के लिए BSP ने “ब्राह्मणवादी राजनीति” के खिलाफ व्यापक जनजागरण अभियान

चलाए, जिनका लक्ष्य था – जातियों के बीच व्याप्त अविश्वास को समाप्त करना और साझा पहचान विकसित करना।

इस अभियान को सशक्त बनाने के लिए “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” जैसा नारा विकसित किया गया, जिसने बहुजन समाज को उसकी वोट की ताकत का एहसास दिलाया। यह नारा सिर्फ विरोध नहीं, बल्कि एक घोषणा थी कि बहुजन समाज अब सत्ता की चाबी अपने हाथों में लेना चाहता है। इसके समर्थन में BSP ने अपने हर चुनाव में इस सिद्धांत को केंद्र में रखा और रणनीतिक उम्मीदवार चयन, बूथ मैनेजमेंट, और मतदान प्रतिशत बढ़ाने की योजनाएँ बनाईं।

संगठनात्मक रूप से BSP ने महिला कार्यकर्ताओं को भी विशेष महत्व दिया। उन्हें न केवल सामान्य कार्यकर्ताओं के रूप में, बल्कि नेतृत्वकर्ता के रूप में प्रशिक्षित किया गया। इसी तरह, युवाओं को छात्र इकाइयों के माध्यम से जोड़ा गया और उनमें राजनैतिक और वैचारिक प्रशिक्षण दिया गया। पार्टी ने स्पष्ट रूप से समझा कि यदि भविष्य में बहुजन आंदोलन को टिकाऊ बनाना है, तो महिलाओं और युवाओं की भूमिका अनिवार्य है।

यह संगठनात्मक प्रयास ही था जिसने BSP को सिर्फ एक क्षेत्रीय दल नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक आंदोलन में बदल दिया। यह पार्टी हर चुनाव में केवल सीटें नहीं लड़ रही थी, बल्कि बहुजन समाज को सत्ता के समीकरणों में एक निर्णायक शक्ति बनाने की दिशा में काम कर रही थी। इस ढांचे ने बहुजन समाज में आत्मविश्वास, नेतृत्व और रणनीतिक सोच को जन्म दिया और उसे शोषण से मुक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ाया।

बहुजन एकता में आने वाली चुनौतियाँ

बहुजन एकता का विचार जितना सशक्त और न्यायसंगत था, उसे ज़मीनी स्तर पर लागू करना उतना ही कठिन रहा। इस एकता के मार्ग में सबसे बड़ी चुनौती स्वयं भारतीय समाज की वह ऐतिहासिक संरचना थी, जो जातीय विभाजन और सामाजिक वर्चस्व पर आधारित थी। सदियों से ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने बहुजन, ओबीसी, आदिवासी और अल्पसंख्यक समाज के भीतर गहरे अंतर पैदा किए थे, जिनमें पारस्परिक अविश्वास, जातिगत श्रेष्ठता की भावना और सांस्कृतिक भिन्नताएँ मौजूद थीं। ऐसे में इन सभी वर्गों को एक साझा राजनैतिक मंच पर लाना एक कठिन और दीर्घकालिक प्रक्रिया थी।

इस प्रक्रिया में सबसे पहली बाधा पारंपरिक राजनैतिक दलों की रणनीति रही। कांग्रेस, भाजपा, और कई क्षेत्रीय दलों ने जानबूझकर बहुजन समाज को जातिगत समूहों में बाँटकर उनकी राजनैतिक शक्ति को खंडित किया। कांग्रेस ने दलितों को अपने पाले में रखने की कोशिश की, वहीं समाजवादी दलों ने केवल पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व का दावा किया, और भाजपा ने हिंदू एकता के नाम पर बहुजन समाज को अपने सांस्कृतिक एजेंडे में समाहित करने का प्रयास किया। इन दलों ने OBC, SC, ST और मुस्लिम समुदाय के बीच प्रतिस्पर्धा और असुरक्षा की भावना को बनाए रखा, ताकि वे कभी एक मंच पर संगठित न हो सकें।

दूसरी चुनौती बहुजन समाज के भीतर मौजूद जातिगत भेदभाव थी। दलित, पिछड़ा, अति पिछड़ा, और आदिवासी समाज के भीतर भी उप-जातियों के बीच सामाजिक दूरी और आपसी संघर्ष थे। कई बार एक उप-वर्ग को दूसरे की तुलना में कमतर या श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति ने संगठन की एकता को बाधित किया। काशीराम ने इसे पहचानते हुए बार-बार कहा

कि बहुजन समाज को पहले आपसी मतभेद खत्म करने होंगे, क्योंकि असली दुश्मन वह सत्ता है जिसने सभी को गुलाम बनाया है।

एक अन्य बड़ी चुनौती मुस्लिम समाज और बहुजन वर्गों के बीच साझा राजनैतिक समझ का अभाव था। ऐतिहासिक और सांप्रदायिक राजनीति ने दोनों वर्गों के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी कर दी थी। BSP ने यह स्पष्ट किया कि मुस्लिम समाज भी उस ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का शिकार रहा है, जिसने बहुजनों को भी दबाया। लेकिन इसे ज़मीनी स्तर पर समझाना और दोनों समाजों को चुनावी रूप से जोड़ना आसान नहीं था। राजनैतिक दलों द्वारा फैलाई गई अफवाहें, धार्मिक ध्रुवीकरण, और अलग-अलग सांस्कृतिक पहचान इस एकता की राह में बाधा बनी रहीं।

इनके अतिरिक्त, आर्थिक असमानता और शिक्षा की कमी भी एक बड़ी चुनौती थी। बहुजन समाज का बड़ा हिस्सा गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी और प्रशासनिक उपेक्षा से जूझ रहा था। ऐसी स्थिति में उनके लिए दीर्घकालिक राजनैतिक विचारधारा को अपनाना कठिन था। वे तात्कालिक लाभ, मुफ्त योजनाओं या जातिगत समीकरणों के झांसे में आ जाते थे। कांशीराम और BSP के लिए यह चुनौती थी कि वे इन वर्गों को तात्कालिक फायदे से निकालकर दीर्घकालिक राजनैतिक चेतना की ओर प्रेरित करें।

इन सबके बावजूद, BSP ने लगातार संघर्ष करते हुए इन चुनौतियों को पहचानकर रणनीतियाँ विकसित कीं। पार्टी ने जातीय संवाद, संगठनात्मक प्रशिक्षण, और वैचारिक कार्यक्रमों के माध्यम से इन बाधाओं को धीरे-धीरे कम किया। हालांकि यह कार्य पूरी तरह पूर्ण नहीं

हुआ, लेकिन बहुजन समाज के बीच जो जागरूकता और एकता की भावना पैदा हुई, वह भारतीय राजनीति में एक ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

मुस्लिम और ओबीसी समाज को एक मंच पर लाने की कठिनाई

बहुजन एकता की संकल्पना में मुस्लिम और ओबीसी समाज को एक मंच पर लाना एक आवश्यक लेकिन अत्यंत चुनौतीपूर्ण कार्य था। कांशीराम की रणनीति इस बात पर आधारित थी कि यदि भारत की बहुसंख्यक जनसंख्या - जिसमें ओबीसी, दलित, आदिवासी और मुस्लिम शामिल हैं - एक राजनैतिक धुरी पर संगठित हो जाए, तो वे सत्ता के वास्तविक साझेदार बन सकते हैं। लेकिन मुस्लिम और ओबीसी समाज को एक साथ लाने की प्रक्रिया सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से जटिल रही है।

सबसे पहले, ऐतिहासिक रूप से मुस्लिम समुदाय और ओबीसी वर्गों के बीच संबंध हमेशा सौहार्दपूर्ण नहीं रहे। कुछ क्षेत्रों में भूमि, स्थानीय वर्चस्व और धार्मिक रीति-रिवाजों को लेकर संघर्ष की घटनाएँ रही हैं, जिसने दोनों वर्गों के बीच सामाजिक दूरी बना दी। इसके अलावा, सामंतवाद और धार्मिक अलगाववाद की राजनीति ने दोनों समुदायों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास और असुरक्षा की भावना को पोषित किया। यह सामाजिक विभाजन राजनैतिक एकता के मार्ग में एक बड़ी बाधा बनकर उभरा।

दूसरी चुनौती यह रही कि पारंपरिक राजनैतिक दलों ने इन दोनों वर्गों के बीच मतभेद को और गहरा करने का कार्य किया। एक ओर कांग्रेस और समाजवादी पार्टियों ने ओबीसी को आरक्षण और पिछड़ेपन के आधार पर अलग पहचान दी, वहीं मुस्लिम समाज को अलगाववादी राजनीति

और तुष्टिकरण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। इससे यह धारणा बनी कि दोनों समुदायों के हित अलग हैं, और वे एक ही मंच पर संगठित नहीं हो सकते। भाजपा जैसी पार्टियों ने सांप्रदायिक राजनीति के ज़रिए इन वर्गों को और विभाजित करने की कोशिश की - जहाँ ओबीसी हिंदुत्व की ओर झुके और मुस्लिम समुदाय को शत्रु के रूप में प्रस्तुत किया गया।

तीसरी प्रमुख बाधा धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं की रही। मुस्लिम समाज की धार्मिक आस्था, खानपान, पहनावा और सामाजिक रीति-रिवाज हिन्दू बहुजन समाज से भिन्न रहे हैं। ब्राह्मणवादी शक्तियों ने इस सांस्कृतिक भिन्नता को एक-दूसरे के प्रति भय और घृणा पैदा करने का औजार बना लिया। खासकर ओबीसी समाज, जिसे एक ओर सामाजिक उत्पीड़न झेलना पड़ा, वहीं दूसरी ओर उसे हिंदुत्व की विचारधारा में समाहित करने का प्रयास हुआ। यह विचारधारा उन्हें मुसलमानों के विरोध में खड़ा करती थी, जिससे बहुजन एकता का ढाँचा कमजोर होता रहा।

इन तमाम चुनौतियों के बावजूद BSP ने रणनीतिक स्तर पर कई प्रयास किए। पार्टी ने बार-बार यह स्पष्ट किया कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था और पूंजीवादी शासन दोनों ही वर्गों के लिए समान रूप से शोषणकारी रहे हैं। कांशीराम ने कहा कि “मुसलमान हमारी तरह ही इस व्यवस्था के शिकार हैं,” और उन्हें सत्ता में भागीदारी देने के लिए बहुजन आंदोलन का अनिवार्य हिस्सा माना जाना चाहिए। पार्टी ने मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में अपने संगठन को मजबूत किया, मुस्लिम नेताओं को पार्टी में नेतृत्व की भूमिका दी और बहुजन-मुस्लिम एकता को अपने अभियानों में विशेष प्राथमिकता दी।

फिर भी, यह एक दीर्घकालिक संघर्ष था - जिसमें कुछ सीमित सफलताएँ मिलीं लेकिन संपूर्ण एकता अभी भी अधूरी रही। आज भी मुस्लिम और ओबीसी समाज के बीच राजनैतिक और सामाजिक समरसता को बढ़ाना एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। बहुजन आंदोलन के भविष्य की सफलता इसी बात पर निर्भर करेगी कि यह दोनों समुदाय एक साझा दृष्टिकोण और साझा मंच पर कितनी प्रभावशाली एकजुटता कायम कर पाते हैं।

बहुजन एकता के प्रभाव और भविष्य की संभावनाएँ

बहुजन एकता के सिद्धांत ने भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव की नींव रखी, जिसने न केवल दलित, पिछड़े, आदिवासी और मुस्लिम समाज को संगठित किया, बल्कि सत्ता की पारंपरिक संरचना को भी गहराई से चुनौती दी। कांशीराम और बहुजन समाज पार्टी (BSP) के नेतृत्व में जिस राजनैतिक चेतना का प्रसार हुआ, उसने पहली बार उन समुदायों को सत्ता में भागीदारी दिलाने की दिशा में ठोस कदम उठाए जिन्हें सदियों तक केवल वोट बैंक समझा जाता था।

इस आंदोलन का सबसे बड़ा प्रभाव यह रहा कि जिस वर्ग को पारंपरिक राजनीति में हाशिए पर रखा गया था, वही वर्ग सत्ता का निर्णायक कारक बनकर उभरा। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में BSP की सरकार बनना इस एकता का प्रत्यक्ष परिणाम था। यह दर्शाता है कि जब बहुजन वर्ग संगठित होता है, तो वह न केवल चुनावी परिणाम बदल सकता है, बल्कि नीतियों की दिशा भी तय कर सकता है। बहुजन एकता ने पहली बार भारतीय लोकतंत्र को उस दिशा में मोड़ दिया जहाँ संख्या बल और सामाजिक वास्तविकता के आधार पर सत्ता का स्वरूप तय किया जाने लगा।

इसके अतिरिक्त, बहुजन एकता ने राजनैतिक विमर्श को भी परिवर्तित किया। पहले जहाँ केवल ऊँची जातियों की जरूरतों और विचारधाराओं को प्राथमिकता दी जाती थी, अब बहुजन वर्ग की आकांक्षाएँ, अधिकार और भागीदारी भी राजनैतिक एजेंडों का हिस्सा बनने लगीं। 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी' जैसे नारों ने सिर्फ चुनावी प्रचार की भाषा नहीं बदली, बल्कि राजनैतिक चेतना को जनांदोलन में बदल दिया। शिक्षा, रोजगार, सुरक्षा और सामाजिक सम्मान जैसे मुद्दे बहुजन वर्ग के केंद्र में आए और उन्होंने अपने लिए न्याय और प्रतिनिधित्व की मांग को ताकतवर तरीके से प्रस्तुत किया।

हालाँकि, बहुजन एकता को आज भी कई नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। जातियों के बीच विभाजन की राजनीति, नई आर्थिक असमानताएँ, सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और सोशल मीडिया पर फैलाई जा रही भ्रांतियाँ इस एकता को लगातार कमजोर करने का प्रयास कर रही हैं। साथ ही, बहुजन नेतृत्व में निरंतरता की कमी, विचारधारा की स्पष्टता का अभाव और युवाओं को एकीकृत करने की रणनीति का न बन पाना भी आंदोलन को कमजोर करता है।

फिर भी, इस एकता की संभावना समाप्त नहीं हुई है। यदि बहुजन वर्ग के भीतर आत्म-मूल्यांकन की चेतना उत्पन्न हो, और वे अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक शक्तियों को पुनः एकजुट करें, तो वे भारत के लोकतंत्र को और अधिक समावेशी तथा न्यायपूर्ण बना सकते हैं। इसके लिए जरूरी है कि बहुजन नेतृत्व एक दीर्घकालीन दृष्टिकोण अपनाए, जिसमें शिक्षा, संगठन, आर्थिक सशक्तिकरण और सांस्कृतिक पुनर्जागरण को प्राथमिकता दी जाए।

बहुजन एकता केवल एक राजनैतिक रणनीति नहीं, बल्कि एक सामाजिक दर्शन है, जो भारत के लोकतंत्र को उसकी वास्तविक आत्मा - सामाजिक न्याय, समानता और सहभागिता - से जोड़ता है। यह एकता यदि फिर से जागृत और सशक्त होती है, तो वह आने वाले समय में देश की राजनैतिक दिशा को पूरी तरह परिवर्तित कर सकती है।

अध्याय 16: कांशीराम की अनूठी राजनैतिक रणनीति

बहुजन राजनीति का नया दृष्टिकोण

कांशीराम ने भारतीय राजनीति में एक नया और मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जो पूरी तरह से परंपरागत चुनावी राजनीति से भिन्न था। उनके लिए राजनीति का अर्थ केवल चुनाव लड़कर सत्ता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि बहुजन समाज को सामाजिक रूप से जागरूक करना, राजनैतिक रूप से संगठित करना और आत्मनिर्भर नेतृत्व खड़ा करना था। उनका लक्ष्य था कि बहुजन, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदाय सत्ता में केवल किसी दल के वोट बैंक बनकर न रहें, बल्कि वे स्वयं सत्ता के भागीदार और नीति निर्धारक बनें।

इस नए दृष्टिकोण की नींव सामाजिक जागरण पर आधारित थी। कांशीराम मानते थे कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने सैकड़ों वर्षों तक बहुजन समाज को शिक्षा, प्रशासन, धर्म और राजनीति से बाहर रखा है। इस व्यवस्था ने जानबूझकर बहुजन समाज को जातियों में बाँटा और उन्हें आपस में लड़वाकर कमजोर किया। कांशीराम ने इस साजिश को बेनकाब करते हुए यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज अपनी संख्या, पीड़ा और ऐतिहासिक अपमान को पहचानकर एकजुट नहीं होगा, तब तक भारत में सत्ता परिवर्तन केवल नाममात्र रहेगा, असली व्यवस्था वही बनी रहेगी जो शोषण पर आधारित है।

उन्होंने “बहुजन” शब्द को एक राजनैतिक विचारधारा में बदल दिया, जिसमें पिछड़े, दलित, आदिवासी, मुस्लिम और अन्य वंचित समुदायों को शामिल किया गया। उन्होंने बहुजन राजनीति को आत्मगौरव, सामाजिक न्याय और राजनैतिक अधिकारों की राजनीति में बदल दिया। उनका यह दृष्टिकोण केवल चुनावी गठजोड़ या सीटों की रणनीति नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक आंदोलन था, जिसका उद्देश्य सत्ता की प्रकृति को बदलना था - ऊपर से नीचे की बजाय नीचे से ऊपर तक नेतृत्व विकसित करना।

कांशीराम का मानना था कि भारत का लोकतंत्र यदि सच्चे अर्थों में बहुजन के हाथ में आना है, तो इसके लिए जागरूक कार्यकर्ताओं, संगठित जनशक्ति और वैचारिक रूप से स्पष्ट नेतृत्व की आवश्यकता है। उन्होंने इसी लक्ष्य से बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की, जो न केवल एक चुनावी पार्टी थी, बल्कि बहुजन चेतना का प्रतीक बन गई। इस पार्टी ने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” का सिद्धांत देकर भारतीय राजनीति में जाति और जनसंख्या के समीकरण को एक नई दिशा दी।

कांशीराम की राजनीति ने यह सिद्ध किया कि संगठित बहुजन समाज, बिना मीडिया, बिना पूंजी और बिना बाहुबल के भी सत्ता तक पहुँच सकता है, यदि उसमें वैचारिक स्पष्टता, संगठनात्मक ताकत और नेतृत्व की दृढ़ता हो। यही उनकी रणनीति का मूल था - सत्ता का माध्यम बनाकर सामाजिक क्रांति लाना और लोकतंत्र को बहुजन के हाथों में सौंपना।

पारंपरिक राजनैतिक दलों से अलग रणनीति

कांशीराम की राजनैतिक रणनीति भारतीय राजनीति की पारंपरिक परिपाटी से पूरी तरह भिन्न थी। जहाँ कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी और समाजवादी दल जैसे मुख्यधारा के दल जातीय समीकरणों, पूँजीवादी संसाधनों और मीडिया की ताकत के सहारे सत्ता प्राप्ति की राजनीति करते थे, वहीं कांशीराम ने ऐसी रणनीति विकसित की जो बहुजन समाज के हितों पर केंद्रित थी। उन्होंने चुनावी राजनीति को केवल सीट जीतने का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक औज़ार माना। उनका मानना था कि जब तक दलित, पिछड़े, आदिवासी और मुस्लिम समुदाय मिलकर एक संगठित राजनैतिक ताकत नहीं बनते, तब तक वे सत्ता की दहलीज़ तक भी नहीं पहुँच सकते।

BSP की राजनीति केवल चुनावी मौसम में सक्रिय होने वाली गतिविधि नहीं थी, बल्कि यह साल भर चलने वाला एक आंदोलन था, जिसे संगठित करने के लिए कांशीराम ने “कैडर आधारित मॉडल” चुना। इस मॉडल में “मिशनरी कार्यकर्ता” तैयार किए जाते थे, जिन्हें विचारधारा, सामाजिक अन्याय का इतिहास, ब्राह्मणवादी वर्चस्व की संरचना और बहुजन एकता की आवश्यकता का गहन प्रशिक्षण दिया जाता था। ये कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाकर न केवल पार्टी का प्रचार करते थे, बल्कि जनता को सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और सत्ता में भागीदारी का महत्व भी समझाते थे। यह तरीका पारंपरिक दलों की मौसमी रैली और भाषण आधारित राजनीति से कहीं अधिक सशक्त और गहराई लिए हुए था।

कांशीराम का एक और अहम निर्णय था – मुख्यधारा की ब्राह्मणवादी पार्टियों से दूरी बनाए रखना। उनका मानना था कि कांग्रेस और बीजेपी जैसे दल बहुजन समाज को केवल वोट बैंक के रूप में देखते हैं और कभी उन्हें सत्ता में वास्तविक भागीदारी नहीं देना चाहते। इसलिए उन्होंने BSP को एक स्वतंत्र राजनैतिक शक्ति के रूप में स्थापित करने का संकल्प लिया, जो किसी पर निर्भर नहीं रहती और न ही सत्ता के लिए आत्मसमर्पण करती है। उन्होंने बार-बार यह कहा कि जब तक बहुजन समाज अपना स्वतंत्र नेतृत्व नहीं विकसित करेगा, तब तक उसकी स्थिति शोषित वर्ग की ही बनी रहेगी।

जातिगत ध्रुवीकरण को लेकर कांशीराम की सोच भी विशिष्ट थी। वे इसे नकारात्मक नहीं, बल्कि एक रचनात्मक राजनैतिक हथियार मानते थे। उनके अनुसार, जब तक बहुजन समाज अपने जातीय अस्तित्व को पहचानकर संगठित नहीं होता, तब तक वह सत्ता में प्रभावी भागीदारी नहीं कर सकता। उन्होंने यह विचार दिया कि जातिगत पहचान को आत्मसम्मान, आत्मगौरव और सत्ता प्राप्ति के उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि समाज को बाँटने वाले कारण के रूप में। यही कारण था कि उन्होंने बहुजन समाज के हर वर्ग – SC, ST, OBC और मुस्लिम – को एक साझा मंच पर लाने की रणनीति अपनाई।

कांशीराम की इस रणनीति ने भारतीय राजनीति की दिशा ही बदल दी। उन्होंने पहली बार यह दिखा दिया कि बिना पूँजी, बिना मीडिया और बिना बाहुबल के भी कोई संगठन केवल विचारधारा और जनसंपर्क के बल पर सत्ता तक पहुँच सकता है। पारंपरिक दलों से अलग जाकर उन्होंने जो रास्ता दिखाया, उसने आने वाले वर्षों में बहुजन राजनीति को आत्मनिर्भर, संगठित और वैचारिक आधार प्रदान किया। यह रणनीति

सत्ता के नए प्रतिमान गढ़ने वाली साबित हुई और बहुजन समाज को केवल समर्थक नहीं, बल्कि निर्णायक बनने की राह पर ले गई।

जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी

कांशीराम की राजनीति का केंद्रीय सिद्धांत यही था कि सत्ता का वास्तविक आधार जनसंख्या होती है, और जिस वर्ग की जनसंख्या जितनी अधिक है, उसे उतनी ही भागीदारी मिलनी चाहिए। यह विचार केवल एक नारा नहीं, बल्कि भारतीय लोकतंत्र के भीतर सत्ता-संरचना को चुनौती देने का एक सशक्त औज़ार था। भारत जैसे देश में जहाँ जाति व्यवस्था ने सदियों तक शक्ति के केंद्रीकरण को कुछ गिनी-चुनी जातियों तक सीमित कर दिया था, वहाँ कांशीराम ने यह बात स्थापित करने का प्रयास किया कि बहुजन समाज (SC, ST, OBC, और मुस्लिम) की संख्या में बहुलता होने के बावजूद वे सत्ता से वंचित क्यों हैं। इस असंतुलन को दूर करने के लिए उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि अब समय आ गया है कि संख्या बल को सत्ता बल में बदला जाए।

कांशीराम ने यह भी कहा कि भारत में लोकतंत्र केवल चुनावी प्रक्रिया तक सीमित रह गया है, जहाँ मतदाता तो बहुजन हैं, लेकिन निर्वाचित और शासक हमेशा अल्पसंख्यक उच्च जातियों से आते हैं। उन्होंने इसे लोकतंत्र का विकृतिकरण बताया और यह स्थापित करने की कोशिश की कि जब तक बहुजन समाज अपनी संख्या को पहचानकर संगठित नहीं होता, तब तक सत्ता में वास्तविक भागीदारी नहीं मिल सकती। इसीलिए उन्होंने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” को सिर्फ एक राजनैतिक नारे के रूप में नहीं, बल्कि बहुजन क्रांति का आधार बनाया।

इस सिद्धांत ने राजनैतिक चेतना के स्तर पर व्यापक बदलाव लाया। BSP ने चुनावों में अपने उम्मीदवारों का चयन जनसंख्या के जातिगत अनुपात के अनुसार करना शुरू किया, ताकि यह नज़र आ सके कि पार्टी सत्ता को केवल कुछ जातियों की बपौती नहीं मानती, बल्कि हर वर्ग को उसके संख्यात्मक अनुपात के अनुसार स्थान देना चाहती है। कांशीराम का यह विचार बहुजन समाज को यह विश्वास देने में सफल रहा कि सत्ता उनके लिए भी सुलभ है, यदि वे एकजुट हो जाएँ। इससे एक आत्मसम्मान की भावना जागृत हुई, और बहुजन समाज ने पहली बार यह महसूस किया कि वे किसी के भरोसे नहीं, बल्कि अपनी शक्ति के दम पर सत्ता प्राप्त कर सकते हैं।

कांशीराम ने यह भी कहा कि भारतीय संविधान ने सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व का जो ढाँचा दिया है, उसे केवल आरक्षण तक सीमित कर देना एक भूल होगी। उनका मानना था कि राजनैतिक सत्ता पर अधिकार प्राप्त करना ही असली आरक्षण है, और बहुजन समाज को इस दिशा में अपने संख्याबल का उपयोग करना चाहिए। उन्होंने हर मंच से यह कहा कि यदि बहुजन समाज संगठित हो जाए और अपने मत का प्रयोग जातीय एकता के साथ करे, तो वे न केवल सत्ता बदल सकते हैं, बल्कि सामाजिक ढाँचे को भी अपने अनुकूल बना सकते हैं।

इस सिद्धांत ने केवल उत्तर प्रदेश ही नहीं, बल्कि देश के कई हिस्सों में बहुजन राजनीति को नई दिशा दी। पहली बार ऐसा हुआ जब सामाजिक न्याय के नाम पर मतदाता केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि गणितीय आधार पर वोट देने लगे। कांशीराम के इस विचार ने सत्ता को पुनः परिभाषित किया और यह स्थापित किया कि बहुजन समाज की शक्ति उनके एकजुट संख्याबल में निहित है, न कि दूसरों की सहानुभूति में।

वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा आंदोलन

बहुजन समाज पार्टी की राजनीति का सबसे शक्तिशाली और जनमानस को आंदोलित करने वाला नारा था-“वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा।” यह नारा केवल एक राजनैतिक स्लोगन नहीं, बल्कि एक सामाजिक चेतना की क्रांति थी, जो भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे में व्याप्त गहरे असंतुलन को उजागर करता था। इस आंदोलन के माध्यम से कांशीराम और BSP ने यह सवाल खड़ा किया कि जब वोट देने वाले बहुजन हैं, जब जनसंख्या का बहुमत बहुजन समुदायों का है, तो फिर सत्ता पर अधिकार किन्हीं गिने-चुने उच्चवर्णीय समूहों का ही क्यों बना रहता है?

कांशीराम ने स्पष्ट किया कि भारत में लोकतंत्र के नाम पर एक संरचनात्मक धोखा चल रहा है, जहाँ सत्ता का द्वार केवल उस वर्ग के लिए खुला है जो सदियों से सामाजिक हैसियत और आर्थिक संसाधनों पर कब्जा जमाए बैठा है। उन्होंने कहा कि बहुजन समाज को केवल मतदान का औजार बनाकर रखा गया है, जबकि निर्णय लेने और नीति बनाने की वास्तविक शक्ति उनसे कोसों दूर है। इसीलिए “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” आंदोलन के ज़रिए उन्होंने बहुजन समाज को एक चेतावनी दी कि यदि अब भी वे संगठित नहीं हुए, तो उनकी स्थिति हमेशा दूसरों की सत्ता स्थापित करने तक सीमित रह जाएगी।

यह आंदोलन एक व्यापक सामाजिक जागरूकता का कारण बना। BSP ने गाँव-गाँव, मोहल्ले-मोहल्ले, और चुनावी क्षेत्रों में अपने कैडर और कार्यकर्ताओं के माध्यम से इस नारे को जन-जन तक पहुँचाया। बहुजन समाज के लोगों को समझाया गया कि केवल मत डालने से कुछ नहीं होगा, जब तक वे सत्ता में सीधे भागीदारी नहीं लेंगे, तब तक उनकी

समस्याओं का समाधान असंभव है। इस नारे ने भावनात्मक रूप से बहुजन मतदाताओं को झकझोर दिया, और उन्हें पहली बार अपनी राजनैतिक ताकत का बोध हुआ।

BSP ने इस आंदोलन को चुनावी रणनीति से जोड़ते हुए, बूथ-स्तर तक संगठनों का निर्माण किया। कार्यकर्ताओं को यह ज़िम्मेदारी दी गई कि वे मतदाताओं को न केवल जागरूक करें, बल्कि उन्हें यह भी बताएं कि कैसे सत्ता में भागीदारी उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन को सीधे प्रभावित करती है। इस आंदोलन का नतीजा यह हुआ कि बहुजन समाज ने पहली बार एकजुट होकर राजनैतिक विकल्प तैयार करने शुरू किए। वे अब किसी भी पार्टी के अंध समर्थक नहीं रहे, बल्कि अपनी राजनैतिक चेतना के साथ अपने उम्मीदवार और अपनी पार्टी का चयन करने लगे।

इस आंदोलन ने बहुजन समाज में आत्मविश्वास भर दिया। उन्हें यह समझ में आया कि सत्ता कोई दान नहीं है, जिसे कोई अन्य वर्ग उन्हें सौंप देगा, बल्कि यह एक अधिकार है जिसे संगठित होकर प्राप्त करना होगा। इस आंदोलन ने उन्हें यह अहसास दिलाया कि यदि वे जातिगत एकता के साथ वोट करें, तो न केवल सत्ता का संतुलन बदल सकते हैं, बल्कि अपने समुदाय के लिए वास्तविक सामाजिक परिवर्तन भी ला सकते हैं। “वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा” आंदोलन ने भारतीय राजनीति में एक नई जागरूकता का बीज बोया, और यही वह क्रांतिकारी दृष्टिकोण था जिसने बहुजन राजनीति को केवल हाशिए की राजनीति से उठाकर सत्ता की मुख्यधारा में ला खड़ा किया।

बूथ-स्तर पर संगठन और कार्यकर्ताओं का सशक्तिकरण

बहुजन समाज पार्टी की राजनैतिक रणनीति की नींव एक मजबूत संगठनात्मक ढाँचे पर टिकी थी, जिसमें बूथ-स्तर तक पार्टी का प्रभाव स्थापित करने पर विशेष ध्यान दिया गया। कांशीराम इस बात को भलीभांति समझते थे कि यदि कोई भी दल वास्तविक जनाधार बनाना चाहता है, तो उसे केवल शीर्ष नेतृत्व या मीडिया प्रचार से नहीं, बल्कि जमीनी स्तर पर संगठन खड़ा करके ही ताकतवर बनना होगा। इसी सोच के तहत BSP ने गाँव, पंचायत, वार्ड, कस्बा और शहरों के हर बूथ पर प्रशिक्षित और समर्पित कार्यकर्ताओं की फौज खड़ी की, जिन्हें पार्टी की विचारधारा, लक्ष्य, और आंदोलनात्मक शैली से प्रशिक्षित किया गया था। ये कार्यकर्ता न केवल चुनाव के समय सक्रिय रहते थे, बल्कि पूरे वर्ष समाज में बहुजन चेतना फैलाने, जातिगत अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाने और सत्ता के प्रति जन-जागृति लाने का कार्य करते थे।

BSP का संगठनात्मक ढाँचा पिरामिड की तरह था, जिसमें शीर्ष नेतृत्व से लेकर बूथ स्तर तक विचारधारा का सीधा प्रवाह होता था। कार्यकर्ताओं को यह बताया गया कि वे किसी राजनैतिक दल के पारंपरिक कार्यकर्ता नहीं, बल्कि “मिशनरी सैनिक” हैं, जिनका उद्देश्य केवल चुनाव जीतना नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति लाना है। इन कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण शिविर, सेमिनार और बैठकें आयोजित की जाती थीं, जिनमें उन्हें अंबेडकर, फुले, पेरियार और कांशीराम के विचारों से लैस किया जाता था। उनके भाषणों, पुस्तिकाओं और आंदोलनात्मक साहित्य को गाँवों में पहुँचाने की जिम्मेदारी भी इन्हीं कार्यकर्ताओं की होती थी।

इस संगठन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह व्यक्ति विशेष या परिवार केंद्रित नहीं था, जैसा कि अन्य दलों में देखा जाता है। BSP ने

कार्यकर्ताओं को जाति, वर्ग, और क्षेत्र के आधार पर संगठित किया और उनमें राजनैतिक नेतृत्व के गुण विकसित किए। कांशीराम का मानना था कि यदि बहुजन समाज को सत्ता में स्थायी भागीदारी दिलानी है, तो हर क्षेत्र से नेतृत्व उभरना चाहिए - न कि केवल कुछ चेहरों के माध्यम से। यही कारण था कि BSP ने अपने संगठन के माध्यम से हजारों नए नेताओं को तैयार किया, जिनका संबंध सीधे समाज से था और जो जमीनी मुद्दों को समझते थे।

बूथ स्तर पर संगठन की ताकत का असर तब देखने को मिला जब BSP ने उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में चुनावों के दौरान बिना पैसे, माफिया या मीडिया के समर्थन के भारी समर्थन जुटाया। यह समर्थन किसी जादुई लहर का परिणाम नहीं था, बल्कि उस संगठनात्मक परिश्रम का फल था जिसमें एक-एक कार्यकर्ता दिन-रात जनजागरण के लिए लगा रहता था। यही कारण था कि बहुजन समाज ने पहली बार यह महसूस किया कि वे अब केवल भीड़ नहीं, बल्कि सत्ता के निर्धारक बन सकते हैं। बूथ स्तर पर संगठित यह शक्ति ही BSP को अन्य दलों से अलग करती थी - एक ऐसी पार्टी जो विचार, संगठन और संघर्ष से बनी थी, न कि जातीय समीकरणों और पूँजीवादी सौदों से।

BSP की राजनैतिक रणनीति का प्रभाव और निष्कर्ष

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की राजनैतिक रणनीतियाँ भारतीय लोकतंत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का प्रतीक बनीं। कांशीराम द्वारा स्थापित इस पार्टी ने न केवल राजनैतिक विमर्श को बदलने का कार्य किया, बल्कि बहुजन समाज को सत्ता की मुख्यधारा में लाने की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाई। जहां भारतीय राजनीति लंबे समय तक ब्राह्मणवादी प्रभुत्व, जातीय वंशवाद और सवर्ण नेतृत्व के अधीन रही, वहीं BSP ने एक वैकल्पिक और चुनौतीपूर्ण शक्ति के रूप में खुद को स्थापित किया,

जिसने बहुजन, दलित, पिछड़े और मुस्लिम समुदायों को एकजुट कर सत्ता-साझेदारी की अवधारणा को मजबूती से प्रस्तुत किया।

उत्तर प्रदेश में BSP की विजय, विशेष रूप से 2007 के विधानसभा चुनाव में पूर्ण बहुमत की सरकार बनाना, इस रणनीति की पराकाष्ठा थी। मायावती के नेतृत्व में BSP ने यह साबित कर दिया कि भारत के लोकतंत्र में बहुजन समाज यदि संगठित हो जाए, तो वह सत्ता के शीर्ष तक पहुँच सकता है, और यह सब बिना वंशवाद, पूंजी, मीडिया समर्थन या बाहुबल के संभव हुआ। BSP ने यह भी दिखाया कि सामाजिक न्याय के मुद्दे केवल भाषणों तक सीमित नहीं रह सकते, बल्कि उन्हें सरकारी नीतियों, कानूनों और प्रशासनिक निर्णयों में बदला जा सकता है - जैसे कि दलितों के लिए भूमि वितरण, सरकारी नौकरियों में आरक्षण का विस्तार, और सामाजिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना।

हालाँकि, BSP की रणनीति समय के साथ कई चुनौतियों से भी घिरी रही - जैसे जातियों के भीतर विभाजन, मुस्लिम समुदाय के अन्य दलों की ओर झुकाव, और संगठनात्मक कमजोरी। लेकिन इसके बावजूद, काशीराम की यह मूल रणनीति - कि बहुजन समाज की संख्या ही उनकी राजनैतिक शक्ति का आधार है - आज भी सामाजिक न्याय की राजनीति की रीढ़ मानी जाती है। BSP ने यह रास्ता दिखाया कि सत्ता के शिखर तक पहुँचने के लिए नारेबाज़ी या भावनात्मक अपील से अधिक जरूरी है एक सुसंगठित, वैचारिक और कैडर आधारित राजनैतिक आंदोलन। इसने लोकतांत्रिक राजनीति को केवल सवर्ण वर्गों के नियंत्रण से बाहर निकालकर बहुजनों के हाथों में देने की ऐतिहासिक पहल की।

अध्याय 17:

बहुजन पहचान का निर्माण: एक ऐतिहासिक और राजनैतिक विश्लेषण

“बहुजन” शब्द की उत्पत्ति और उसका ऐतिहासिक महत्व

“बहुजन” शब्द की उत्पत्ति प्राचीन बौद्ध साहित्य में हुई थी, जहाँ इसे गौतम बुद्ध के उपदेशों में “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” के रूप में प्रयुक्त किया गया। यह वाक्य केवल आध्यात्मिक निर्देश नहीं था, बल्कि एक समतामूलक सामाजिक दर्शन का सूत्र था, जिसका मूल उद्देश्य था- अधिकतम लोगों का कल्याण और सुख। बुद्ध ने उस समय के सामाजिक ढाँचे में व्याप्त ऊँच-नीच, जातिभेद और सामंती वर्चस्व को नकारते हुए एक ऐसे समाज की कल्पना की जो सभी के लिए न्यायसंगत हो। यही कारण है कि बौद्ध धर्म ने विशेष रूप से उन वर्गों को आकर्षित किया जो सामाजिक व्यवस्था के निचले पायदान पर थे-अस्पृश्य, शूद्र, महिलाएँ और अन्य वंचित समूह। इसके हजारों वर्षों बाद, जब ब्राह्मणवादी वर्चस्व ने पुनः समाज पर नियंत्रण बना लिया और वर्ण व्यवस्था के माध्यम से बहुजन समाज को शोषण और हाशिए पर धकेल दिया, तब “बहुजन” शब्द एक बार फिर सामाजिक आंदोलन का केंद्र बना। 19वीं सदी में महात्मा ज्योतिबा फुले ने इस शब्द को पुनर्जीवित किया और सामाजिक शोषण से त्रस्त बहुजन वर्ग के लिए इसका प्रयोग करते हुए इसे एक चेतना का प्रतीक बनाया। फुले का स्पष्ट मत था कि असली “बहुजन” वे हैं जो खेतों में हल चलाते हैं, उद्योगों में श्रम करते हैं, समाज का निर्माण करते हैं-परंतु जिन्हें सत्ता और सम्मान से वंचित रखा गया है। उन्होंने इसे केवल

एक सांस्कृतिक पहचान नहीं, बल्कि सत्ता-संघर्ष का औजार बनाया, जिससे सत्ता पर एकाधिकार रखने वाली मुट्ठीभर जातियों की सामाजिक संरचना को चुनौती दी जा सके। 20वीं सदी में डॉ. भीमराव अंबेडकर ने “बहुजन” विचारधारा को वैधानिक शक्ति दी। उन्होंने न केवल सामाजिक न्याय के सिद्धांत को संविधान में स्थान दिलाया, बल्कि बहुजन समाज को आरक्षण, प्रतिनिधित्व और मानवाधिकारों के माध्यम से वास्तविक शक्ति दिलाने की कोशिश की। उनके लिए “बहुजन” केवल एक पीड़ित समाज नहीं, बल्कि एक संभावनाशील शक्ति थी, जिसे संगठित और शिक्षित कर सत्ता का भागीदार बनाया जा सकता है। “बहुजन” की अवधारणा ने इस प्रकार इतिहास, धर्म, समाज और राजनीति के चौराहे पर एक नई चेतना को जन्म दिया-जो आज भी बहुजन आंदोलन की रीढ़ बनी हुई है।

बहुजन पहचान का राजनैतिक विस्तार और BSP का उदय

बहुजन शब्द की ऐतिहासिक और दार्शनिक नींव को राजनैतिक शक्ति में बदलने का श्रेय जिस संगठन और नेतृत्व को जाता है, वह बहुजन समाज पार्टी और इसके संस्थापक कांशीराम हैं। उन्होंने इस शब्द को केवल सामाजिक समानता के एक प्रतीक के रूप में सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे संगठित राजनैतिक प्रतिरोध और प्रतिनिधित्व का आधार बनाया। कांशीराम ने महसूस किया कि बहुजन समाज - जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, और मुस्लिम समाज के वंचित तबके शामिल हैं - यदि संगठित रूप से एकजुट हो जाए, तो भारतीय राजनीति की दिशा ही बदल सकता है। इसी सोच को साकार करने के लिए उन्होंने 1984 में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की, जिसका मूल

उद्देश्य सामाजिक न्याय की विचारधारा को राजनैतिक ताकत में बदलना था।

BSP ने बहुजन शब्द को नई राजनैतिक धार दी और इसे एक सशक्त पहचान में रूपांतरित किया। पार्टी की रणनीति यह थी कि जो लोग सदियों से शोषण, भेदभाव और बहिष्करण के शिकार रहे हैं, उन्हें अब सत्ता में भागीदारी लेनी चाहिए और अपनी संख्यात्मक शक्ति को एकजुट कर एक निर्णायक मतदाता वर्ग बनना चाहिए। कांशीराम ने इस विचार को केवल भाषणों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे जमीनी स्तर पर कार्यकर्ताओं, आंदोलन और सांगठनिक ढांचे के माध्यम से विस्तृत किया। उन्होंने जोर दिया कि बहुजन समाज को यह समझने की जरूरत है कि वोट केवल दान नहीं होता, बल्कि सत्ता परिवर्तन का उपकरण होता है - और यदि वे इसे रणनीतिक रूप से इस्तेमाल करें, तो वे केवल वोट देने वाले नहीं, बल्कि सत्ता का चेहरा बन सकते हैं।

BSP का यह प्रयास भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में एक नए युग की शुरुआत था। इसने पहली बार ऐसा माहौल पैदा किया जहाँ सामाजिक रूप से वंचित वर्गों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में राजनैतिक प्रतिनिधित्व की मांग उठाने का नैतिक और रणनीतिक आधार मिला। कांशीराम ने जिस तरह से “बहुजन” शब्द को एक संगठित राजनैतिक समुदाय में बदला, वह भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी मोड़ था। इस विचारधारा ने लाखों लोगों को यह आत्मबोध कराया कि वे केवल मतदाता नहीं हैं, बल्कि नीति निर्धारण, सत्ता साझेदारी, और सामाजिक पुनर्गठन के मुख्य स्तंभ भी हो सकते हैं।

कांशीराम की बहुजन पहचान विकसित करने की रणनीति: जाति के आधार पर बहुजन समाज को संगठित करना

कांशीराम की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने भारतीय समाज की सबसे जटिल समस्या-जाति-को समझने और उसे राजनैतिक ताकत में बदलने की अद्भुत रणनीति विकसित की। उनका मानना था कि भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत असमानता केवल सामाजिक बुराई नहीं है, बल्कि एक राजनैतिक औजार भी है, जिसका उपयोग अब तक शोषणकारी सत्ताओं द्वारा किया जाता रहा है। उन्होंने देखा कि बहुजन समाज के विभिन्न वर्गों - जैसे दलित, पिछड़ा वर्ग, आदिवासी और मुस्लिम - के बीच न केवल सामाजिक दूरी है, बल्कि ऐतिहासिक द्वेष और अविश्वास भी है, जिसे ब्राह्मणवादी सत्ता ने जानबूझकर पोषित किया है ताकि वे कभी एकजुट न हो सकें।

कांशीराम ने इसी विखंडन के खिलाफ रणनीतिक लड़ाई छेड़ी। उन्होंने लगातार यह बात दोहराई कि यदि बहुजन समाज अपनी जातीय अस्मिताओं को भूलकर साझा राजनैतिक लक्ष्य के लिए संगठित नहीं होता, तो वे हमेशा सत्ता के बाहर ही रहेंगे। उन्होंने इस विभाजन को मिटाने के लिए संगठन निर्माण को सबसे प्रमुख हथियार माना और कैडर आधारित एक ऐसा ढांचा खड़ा किया, जिसमें जातिगत भेदभाव को चुनौती देने वाली सामाजिक चेतना का समावेश था। उनके अनुसार, जब तक प्रत्येक बहुजन समुदाय अपने जातिगत दायरे से बाहर निकलकर “सामूहिक बहुजन चेतना” को नहीं अपनाएगा, तब तक बहुजन आंदोलन केवल भाषणों तक ही सीमित रहेगा।

कांशीराम ने इस रणनीति को जमीन पर उतारने के लिए “बहुजन समाज पार्टी” के कार्यकर्ताओं को यह जिम्मेदारी दी कि वे गाँव-गाँव जाकर लोगों को यह समझाएँ कि उनकी समस्याओं की जड़ जाति नहीं है, बल्कि वह व्यवस्था है जिसने जाति को सत्ता-लाभ के उपकरण में बदल

दिया है। उन्होंने बहुजन समाज के प्रत्येक घटक को यह संदेश दिया कि यदि वे एकजुट होकर राजनीति में भागीदारी करें, तो वे न केवल नीति निर्माण में भागीदार बन सकते हैं, बल्कि अपने समुदाय की दशा-दिशा भी बदल सकते हैं। उनका यह दृष्टिकोण भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप था, जो केवल सत्ता प्राप्ति का नहीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति का साधन भी था।

ब्राह्मणवादी सत्ता के खिलाफ बहुजन एकता को मजबूत करना

कांशीराम की राजनैतिक सोच का सबसे केंद्रीय और प्रखर पक्ष था ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना को चुनौती देना और उसे बहुजन एकता के माध्यम से खत्म करना। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि भारत में सदियों से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसे सवर्ण समुदायों ने धर्म, जाति और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के नाम पर न केवल सामाजिक, बल्कि आर्थिक और राजनैतिक संसाधनों पर भी एकाधिकार स्थापित कर रखा है। यह वर्चस्व इतना गहरा था कि शूद्र और अति-शूद्र समाज को इस असमानता की प्रणालीकृत व्यवस्था ही उनकी नियति लगने लगी थी। कांशीराम ने इस मानसिक पराजय को तोड़ने के लिए पहले चेतना, फिर संगठन, और अंत में सत्ता का सपना रचा।

उन्होंने बहुजन समाज के लोगों को यह समझाने का प्रयास किया कि उनके सबसे बड़े शत्रु वे नहीं हैं जो उनसे अलग जाति के हैं, बल्कि वे हैं जिन्होंने जानबूझकर बहुजन समाज को बाँट कर रखा ताकि वे कभी राजनैतिक चुनौती न बन सकें। ब्राह्मणवाद की इस विभाजनकारी नीति के विरुद्ध उन्होंने “जातिगत जागरूकता” को सबसे बड़ा हथियार बनाया। उनका नारा था-“ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर छोड़, बाकी सब हैं DS4”- जिसके ज़रिए उन्होंने यह समझाया कि जो लोग उत्पादन के साधनों,

शिक्षा और प्रशासन से दूर रखे गए हैं, वे यदि एकजुट हो जाएँ, तो सत्ता की चाबी उन्हीं के हाथ में होगी।

कांशीराम का यह भी मानना था कि ब्राह्मणवादी राजनीति सिर्फ मंदिर और धार्मिक प्रतीकों के ज़रिए नहीं, बल्कि प्रशासनिक, आर्थिक और शैक्षणिक संस्थानों के ज़रिए भी बहुजन समाज को नियंत्रित करती है। इसी कारण उन्होंने सामाजिक परिवर्तन को केवल नारे या भावनात्मक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि बहुजन समाज को सत्ता की राजनीति में लाकर सीधे व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन इसीलिए हुआ कि बहुजन समाज ब्राह्मणवादी सत्ता के खिलाफ एक वैकल्पिक राजनैतिक मॉडल खड़ा करे।

BSP ने चुनावों में भी इसी रणनीति के तहत सवर्ण वर्चस्व वाले क्षेत्रों में बहुजन प्रत्याशी खड़े किए और जातिगत ध्रुवीकरण को खुलकर अपनाया ताकि ब्राह्मणवादी एकता के खिलाफ बहुजन एकता खड़ी हो सके। पार्टी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया गया कि वे सवर्ण प्रभुत्व वाले ग्राम पंचायतों, नगर निकायों और विधानसभाओं में जाकर यह बताएं कि ब्राह्मणवाद ने सदियों से बहुजनों को मानसिक गुलामी में रखा है, और अब समय है कि वे इसे तोड़कर खुद नेतृत्व करें।

इस तरह कांशीराम की राजनीति न केवल सत्ता पाने की राजनीति थी, बल्कि वह एक विचारधारा-आधारित युद्ध था, जिसमें शोषणकारी परंपराओं, जातिगत व्यवस्था, और ब्राह्मणवादी संरचनाओं को बहुजन एकता और वोट की ताकत से पराजित करने का लक्ष्य था। यह दृष्टिकोण भारतीय लोकतंत्र में अब तक की सबसे स्पष्ट और ठोस चुनौती था उस

सत्ता संरचना के विरुद्ध, जिसने हजारों वर्षों से बहुजन समाज को उनकी ही भूमि, अधिकार और आत्मसम्मान से वंचित किया था।

बहुजन पहचान के सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव

काशीराम द्वारा स्थापित की गई “बहुजन” पहचान ने भारतीय समाज में सामाजिक चेतना और राजनैतिक जागरूकता की जो लहर उत्पन्न की, वह केवल सीमित क्षेत्रों तक नहीं रही, बल्कि देश के अलग-अलग हिस्सों में मौजूद शोषित, वंचित और पिछड़े समुदायों में एक नई आत्म-गौरव की भावना का संचार हुआ। पहले जहां बहुजन समाज के लोग स्वयं को केवल वोट डालने वाला नागरिक मानते थे, वहीं इस पहचान के उदय के बाद उन्होंने न सिर्फ अपने अधिकारों के प्रति सजगता दिखाई, बल्कि यह भी समझा कि वे सत्ता के हिस्सेदार बन सकते हैं। इससे राजनैतिक विमर्श में उनका स्थान निर्णायक बन गया।

इस सामाजिक प्रभाव का सबसे पहला संकेत उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में देखने को मिला, जहां बहुजन समाज पार्टी ने सत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया। 1993 में पहली बार सपा-बसपा गठबंधन में BSP की निर्णायक भूमिका, और फिर 1995, 2002 और 2007 में पार्टी की मजबूती ने बहुजन समाज को यह आत्मविश्वास दिया कि वह भी नीतियों को गढ़ सकता है, सत्ता चला सकता है, और संविधान के प्रावधानों को अमल में ला सकता है। यह जागरूकता केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं रही, बल्कि गाँव-गाँव, खेत-खलिहान और छोटे व्यवसायों तक पहुँची। गाँवों में अनुसूचित जाति और पिछड़े वर्ग के लोग अब केवल आश्रित नहीं, बल्कि नेतृत्व के स्वाभाविक दावेदार समझे जाने लगे।

राजनैतिक दृष्टिकोण से “बहुजन” की अवधारणा ने भारतीय राजनीति के जातिगत समीकरणों को बदल दिया। पहले जहाँ कांग्रेस जैसी पार्टियाँ शोषित वर्गों को केवल वोट बैंक समझती थीं, अब उन्हें स्पष्ट रूप से यह संदेश मिल गया कि बहुजन समाज केवल भीड़ नहीं, बल्कि विचारधारा और नेतृत्व देने वाली शक्ति है। भाजपा जैसी पार्टियाँ भी अब अपने भीतर पिछड़ा वर्ग मोर्चा, अनुसूचित जाति मोर्चा जैसे संगठन बनाने पर विवश हुईं ताकि इस बढ़ती चेतना से राजनैतिक संतुलन बनाया जा सके। मायावती के नेतृत्व में BSP की सरकार बनने के बाद न केवल राजनैतिक प्रतिनिधित्व बढ़ा, बल्कि प्रशासनिक सेवा में भी बहुजन समुदाय के लोगों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

सामाजिक स्तर पर इस पहचान ने एक नया स्वाभिमान विकसित किया। पहले जो बहुजन समाज अपने आत्मसम्मान की भावना खो चुका था, वह अब “हम भी शासक बन सकते हैं” की भावना से प्रेरित होकर सामाजिक आचरण और जीवन शैली में बदलाव लाने लगा। बहुजन युवाओं में शिक्षा की आकांक्षा बढ़ी, महिलाओं में राजनैतिक भागीदारी के लिए आग्रह उत्पन्न हुआ, और दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों में सामाजिक बंधनों को तोड़कर नेतृत्व करने की भावना पनपी। इस सामाजिक बदलाव का प्रभाव यह हुआ कि धीरे-धीरे बहुजन समाज में नेतृत्व का नवाचार शुरू हुआ, जिसमें छात्र संगठन, महिला संगठन और कर्मचारी संगठन जैसे मंचों से राजनैतिक और सामाजिक चेतना का विस्तार हुआ।

इस समूचे परिवर्तन ने “बहुजन” पहचान को केवल एक राजनैतिक उपकरण नहीं रहने दिया, बल्कि यह एक सामाजिक आंदोलन, एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण और एक वैचारिक शक्ति बन गई। इसके ज़रिए

भारत के लोकतंत्र में वह आवाज़ शामिल हुई जिसे सदियों से दबाया गया था। यह पहचान अब नारे या चुनाव तक सीमित नहीं, बल्कि संविधान, नीति-निर्माण, और समाज-संरचना के केंद्र में पहुँच चुकी है।

बहुजन समाज का आत्मसम्मान और नेतृत्व निर्माण

“बहुजन” पहचान के प्रसार और कांशीराम की वैचारिक क्रांति ने न केवल सामाजिक चेतना को जगाया, बल्कि बहुजन समाज के भीतर नेतृत्व की भूख और आत्मगौरव की भावना को भी पुनर्जीवित किया। पारंपरिक भारतीय समाज में शासक और शासित के बीच एक स्थायी विभाजन बना हुआ था, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसे उच्च वर्णों ने सत्ता, शिक्षा और निर्णय लेने की प्रक्रिया पर पूर्ण नियंत्रण बनाए रखा था। इसके विपरीत, शूद्र, अनुसूचित जातियाँ, पिछड़े वर्ग और आदिवासी न केवल आर्थिक और सामाजिक संसाधनों से वंचित थे, बल्कि उन्हें नेतृत्व करने के योग्य भी नहीं माना जाता था। इस ऐतिहासिक अपमान और बहिष्करण को चुनौती देने का कार्य “बहुजन” आंदोलन ने किया।

कांशीराम का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने बहुजन समाज को यह विश्वास दिलाया कि वे केवल शोषित नहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता भी बन सकते हैं। उन्होंने बहुजन समाज पार्टी को एक ऐसा मंच बनाया, जहाँ बहुजन युवाओं, महिलाओं और समुदाय के अग्रणी सदस्यों को प्रशिक्षण, राजनैतिक विचार और मंच प्रदान किया गया। इस आंदोलन ने यह स्पष्ट किया कि यदि कोई समाज बार-बार शोषण का शिकार होता रहा है, तो उसकी मुक्ति केवल किसी और की कृपा से नहीं, बल्कि स्वयं अपने नेतृत्व के विकास से ही संभव है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कांशीराम ने बूथ स्तर तक कार्यकर्ता नेटवर्क खड़ा किया। इन कार्यकर्ताओं को सामाजिक शिक्षा, संविधान की जानकारी, और दलित नायकों के संघर्ष से परिचित कराया गया। संगठन की बैठकों, रैलियों, प्रशिक्षण शिविरों और चेतना यात्राओं के माध्यम से बहुजन समाज के लोगों में नेतृत्व का भाव जाग्रत किया गया। यह कार्य मात्र चुनावी तैयारी नहीं था, बल्कि दीर्घकालिक सामाजिक और वैचारिक बदलाव की रणनीति थी। इस प्रयास का असर यह हुआ कि BSP के बैनर तले पंचायत से लेकर संसद तक बहुजन समाज के सैकड़ों नेता उभरे, जिनमें से कई पहली पीढ़ी के शिक्षित, जागरूक और संघर्षशील व्यक्ति थे।

महिलाओं के संदर्भ में भी यह आंदोलन क्रांतिकारी सिद्ध हुआ। मायावती जैसी महिला नेता का मुख्यमंत्री बनना एक प्रतीक मात्र नहीं था, बल्कि वह इस बात का प्रमाण था कि अब बहुजन समाज की महिलाएँ भी निर्णय लेने वाले स्थान पर पहुँच सकती हैं। बहुजन महिलाओं ने सामाजिक शर्म और आर्थिक बेड़ियों को तोड़ते हुए राजनीति में भागीदारी शुरू की और पंचायतों, नगर निगमों, महिला मोर्चा संगठनों में नेतृत्व करना शुरू किया।

इस नेतृत्व निर्माण प्रक्रिया ने बहुजन समाज को न केवल आत्मसम्मान का बोध कराया, बल्कि उन्हें सत्ता के केंद्र तक पहुँचने की हिम्मत दी। दलित साहित्य, ओबीसी जागरण आंदोलन, आदिवासी अधिकार मंच जैसे कई सांस्कृतिक और बौद्धिक आंदोलनों ने इस नेतृत्व को वैचारिक समृद्धि दी। उन्होंने इस आंदोलन को सिर्फ वोट आधारित राजनीति से बाहर निकालकर एक दीर्घकालिक क्रांति के रूप में स्थापित किया, जिसमें बहुजन समाज न केवल भागीदार बने, बल्कि मार्गदर्शक भी बने।

बहुजन पहचान का भविष्य और BSP की अगली रणनीति

बहुजन पहचान ने बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय राजनीति और समाजशास्त्रीय विमर्श को एक नई दिशा दी, लेकिन इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में इसके सामने कई नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ खड़ी हुई हैं। कांशीराम द्वारा शुरू किया गया आंदोलन, मायावती के नेतृत्व में सत्ता तक पहुँचा, लेकिन समय के साथ उसका प्रभाव राजनैतिक दृष्टि से कुछ हद तक सीमित हो गया। आज जब जातिगत समीकरण बदल रहे हैं, डिजिटल युग में राजनैतिक संवाद तेजी से परिवर्तित हो रहा है, और युवा पीढ़ी अपनी पहचान नए सामाजिक-राजनैतिक फ्रेमवर्क में खोज रही है, तब बहुजन आंदोलन को नए सिरे से पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है।

BSP की रणनीति में परिवर्तन की शुरुआत तब हुई जब मायावती ने “बहुजन से सर्वजन” की नीति की घोषणा की। यह रणनीतिक बदलाव इसलिए अपनाया गया ताकि पार्टी का जनाधार केवल SC, ST और OBC तक सीमित न रहकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अन्य सवर्ण जातियों को भी अपने पाले में लाया जा सके। 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में यह रणनीति सफल रही, जहाँ BSP ने पूर्ण बहुमत हासिल कर सरकार बनाई और ‘ब्राह्मण-दलित भाईचारा’ जैसे नारे लोकप्रिय हुए। यह एक प्रयोग था जो सत्ता के स्थायित्व को ध्यान में रखकर किया गया था।

हालाँकि, इस रणनीति की सीमाएँ भी स्पष्ट हो गईं। बहुजन आंदोलन की मूल आत्मा – सामाजिक न्याय, आत्म-सम्मान और शोषितों का नेतृत्व ‘—सर्वजन’ की व्यापकता में कहीं गुम होती नज़र आई। इससे बहुजन

समाज के कुछ वर्गों में असंतोष पनपने लगा, जिन्होंने इसे वैचारिक विचलन के रूप में देखा। इसीलिए, बहुजन पहचान के भविष्य को लेकर यह प्रश्न आज बहुत प्रासंगिक है कि क्या यह आंदोलन अपनी मूल वैचारिक रेखा पर लौटेगा, या रणनीतिक लचीलेपन के साथ नई सामाजिक-सांस्कृतिक समूहों को शामिल कर एक व्यापक गठबंधन बनाएगा।

इसके उत्तर में BSP को चाहिए कि वह एक संतुलित रणनीति अपनाए। पार्टी को यह स्पष्ट करना होगा कि “सर्वजन” की अवधारणा “बहुजन” की मूल आत्मा को प्रतिस्थापित नहीं करती, बल्कि उसे विस्तार देती है। रणनीतिक दृष्टि से BSP को बहुजन युवाओं को नेतृत्व में लाना होगा, जो डिजिटल माध्यमों, सामाजिक आंदोलनों और जमीनी मुद्दों पर अधिक सजग हैं। छात्र संगठन, महिला मंच, ऑनलाइन वैचारिक अभियान और क्षेत्रीय नेतृत्व की विविधता को BSP को प्राथमिकता देनी होगी।

“बहुजन” का भविष्य तभी सुरक्षित रहेगा जब यह आंदोलन राजनैतिक सत्ता के साथ-साथ वैचारिक नेतृत्व और सामाजिक चेतना का केंद्र भी बना रहे। इसके लिए ज़रूरी है कि BSP केवल चुनावी सफलता को लक्ष्य न बनाए, बल्कि बहुजन समाज में पुनः वैचारिक जागरण लाए। जैसे-जैसे भारत में सामाजिक न्याय, आरक्षण, जातिगत जनगणना, और आर्थिक विषमता जैसे मुद्दे पुनः उभर रहे हैं, वैसे-वैसे बहुजन आंदोलन की प्रासंगिकता और ज़्यादा बढ़ती जा रही है।

BSP को चाहिए कि वह इन मुद्दों पर एक वैकल्पिक राजनैतिक विमर्श तैयार करे, जो पारंपरिक दलों की जातिवादी राजनीति से अलग हो, और

नए भारत में बहुजन समाज को नेतृत्व प्रदान कर सके। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि पार्टी बहुजन महिलाओं, युवाओं, दलित बुद्धिजीवियों और अल्पसंख्यकों को निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका दे, ताकि नेतृत्व विविध और जमीनी हो सके।

इस प्रकार, “बहुजन” पहचान का भविष्य केवल नारेबाज़ी में नहीं, बल्कि ठोस रणनीति, विचारधारात्मक स्पष्टता, और जनसरोकारों से जुड़े कार्यों में निहित है। BSP के सामने यह अवसर है कि वह पुनः उस जन-आंदोलन का स्वरूप ग्रहण करे, जिसे कांशीराम ने एक विचारधारा, एक मिशन और एक क्रांति के रूप में खड़ा किया था।

बहुजन समाज के भीतर नए नेतृत्व को तैयार करना

बहुजन आंदोलन की दीर्घकालिक स्थिरता और उसकी वैचारिक निरंतरता तभी संभव है जब वह केवल करिश्माई नेताओं पर निर्भर न रहकर एक संगठित और प्रशिक्षित नेतृत्व की पूरी श्रृंखला विकसित करे। यही बात कांशीराम ने भी अपने जीवन में कई बार स्पष्ट की थी कि नेतृत्व को वंशवादी नहीं, विचारवादी बनाना चाहिए। उन्होंने यह चेतावनी दी थी कि यदि आंदोलन केवल कुछ व्यक्तियों तक सीमित रह जाएगा, तो वह एक समय के बाद ठहराव का शिकार हो जाएगा। इसी दृष्टिकोण से, बहुजन समाज पार्टी (BSP) के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह बहुजन समाज के भीतर नए नेतृत्व को खड़ा करे, जो जमीनी स्तर से जुड़ा हो, वैचारिक रूप से परिपक्व हो, और समकालीन चुनौतियों को समझता हो।

BSP ने विभिन्न सामाजिक वर्गों – जैसे कि अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, आदिवासियों, मुस्लिम समुदायों और महिलाओं – के भीतर नेतृत्व

विकास की प्रक्रिया को धीरे-धीरे गति दी है। पार्टी ने जातिगत आधार पर स्थानीय प्रभावशाली नेताओं को उम्मीदवार बनाकर एक तरफ अपने चुनावी समीकरणों को साधा, तो दूसरी तरफ उन समुदायों को राजनैतिक मुख्यधारा से जोड़ा। लेकिन अब नेतृत्व केवल प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रह सकता; उसे वैचारिक निष्ठा, सार्वजनिक संवाद क्षमता और संगठनात्मक योग्यता से भी लैस होना चाहिए।

इसके लिए पार्टी को छात्र संगठनों, महिला मोर्चों, किसान संगठनों और प्रोफेशनल मंचों के माध्यम से युवाओं को बहुजन आंदोलन की विचारधारा से जोड़ना होगा। यह कार्य तभी सफल हो सकेगा जब पार्टी भीतर से लोकतांत्रिक संस्कृति को बढ़ावा दे और कार्यकर्ताओं को केवल आदेशपाल नहीं, बल्कि नीति-निर्माण की प्रक्रिया का भागीदार बनाए। बहुजन छात्र संगठनों को विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में सशक्त करना, उन्हें प्रशिक्षण देना, और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना, इस रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा हो सकता है।

साथ ही, BSP को सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर भी अपनी वैचारिक उपस्थिति को मज़बूत करना होगा, जहाँ आज की युवा पीढ़ी विचार निर्माण और विमर्श में सक्रिय है। ऐसे डिजिटल बहस मंचों और वैचारिक प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से नए विचारशील नेताओं को तैयार किया जा सकता है, जो कांशीराम और अंबेडकर की परंपरा को आधुनिक संदर्भ में आगे ले जा सकें।

इस नेतृत्व विकास की प्रक्रिया में महिलाओं को भी समुचित स्थान देना अनिवार्य है। बहुजन महिलाओं को केवल वोटर या प्रतीकात्मक प्रतिनिधि न मानकर, उन्हें संगठनात्मक दायित्वों में, नीति-निर्माण की प्रक्रिया में, और जमीनी आंदोलन में अग्रिम पंक्ति में लाना होगा।

मायावती जैसे उदाहरणों ने यह साबित किया है कि जब बहुजन महिलाएं नेतृत्व में आती हैं, तो वे पूरे समाज में प्रेरणा का स्रोत बनती हैं।

नवीन नेतृत्व तैयार करने की यह प्रक्रिया केवल चुनावी सफलता की नहीं, बल्कि आंदोलन की आत्मा को जीवित रखने की आवश्यकता है। यदि बहुजन आंदोलन को नई पीढ़ी के बीच प्रासंगिक बनाना है, तो उसे नए नेतृत्व, नई भाषा और नए माध्यमों की ओर बढ़ना होगा – लेकिन इसकी जड़ें काशीराम और अंबेडकर के मूल विचारों में ही हों, तभी यह आंदोलन दीर्घकालिक हो सकेगा।

अध्याय 18: ओबीसी, एससी, एसटी और अल्पसंख्यकों की भागीदारी

बहुजन समाज में विभिन्न वर्गों की भागीदारी की आवश्यकता

बहुजन राजनीति की प्रभावी और स्थायी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के उन सभी वर्गों को, जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक रूप से वंचित रहे हैं-जैसे अनुसूचित जातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जनजातियाँ, और अल्पसंख्यक समुदाय, विशेषतः मुस्लिम-एक साझा राजनैतिक मंच पर संगठित किया जाए। कांशीराम का यह स्पष्ट मत था कि ब्राह्मणवादी सत्ता-व्यवस्था ने भारतीय समाज को सैकड़ों जातीय और धार्मिक समूहों में बाँट कर बहुजन वर्ग को सत्ता से दूर कर दिया है। इस विभाजन का मुख्य उद्देश्य यह था कि वंचित तबके आपस में ही बँटे रहें और कभी भी राजनैतिक रूप से एक निर्णायक ताकत न बन सकें। कांशीराम ने इस सामाजिक विखंडन के विरुद्ध एक ठोस वैकल्पिक ढाँचे की आवश्यकता को समझा और बहुजन समाज पार्टी की स्थापना के साथ-साथ उन्होंने इन समुदायों को एकजुट करने का रणनीतिक प्रयास प्रारंभ किया।

कांशीराम का यह मानना था कि केवल आरक्षण या सरकारी कल्याणकारी योजनाएँ ही वंचित समाज की मुक्ति का साधन नहीं हो सकतीं। इसके लिए आवश्यक है कि बहुजन समाज सत्ता-व्यवस्था के केंद्र में सीधे भागीदारी करे। उन्होंने बार-बार यह कहा कि जब तक ये वर्ग सिर्फ वोट देने तक सीमित रहेंगे और अपने मतों का इस्तेमाल किसी अन्य

के सत्तारोहण के लिए करते रहेंगे, तब तक उनका उत्थान संभव नहीं। इसलिए उन्होंने 'सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक मुक्ति' का जो नारा दिया, उसका मुख्य आधार यही था कि राजनैतिक भागीदारी ही सत्ता परिवर्तन का वास्तविक साधन बन सकती है।

इस दृष्टिकोण को मूर्त रूप देने के लिए BSP ने एक आंदोलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया जिसमें बहुजन समाज के हर तबके को शामिल किया गया। कांशीराम ने इस बात पर जोर दिया कि सत्ता के लिए संघर्ष में बहुजन, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों को भी उतनी ही निर्णायक भूमिका निभानी होगी जितनी अनुसूचित जातियों की है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि ये वर्ग संगठित होकर राजनैतिक मंच पर आएँ और अपने मुद्दों को केन्द्र में रखें, तो वे न केवल सत्ता में हिस्सेदारी पा सकते हैं, बल्कि नीतिगत बदलाव भी सुनिश्चित कर सकते हैं जो उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन को सीधे प्रभावित करते हैं। यह दृष्टिकोण केवल एक राजनैतिक योजना नहीं था, बल्कि यह सामाजिक न्याय की एक क्रांतिकारी परिकल्पना थी, जिसे लागू करने के लिए उन्होंने जीवन भर कार्य किया।

ओबीसी (अन्य पिछड़ा वर्ग) की BSP में भागीदारी

1990 के दशक में जब मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू किया गया, तो भारतीय राजनीति में एक नया सामाजिक मोड़ आया जिसने अन्य पिछड़ा वर्ग की राजनैतिक चेतना को प्रखर रूप से उभारा। मंडल आयोग की रिपोर्ट, जो 1980 में तैयार की गई थी लेकिन 1990 में तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह द्वारा लागू की गई, ने यह स्पष्ट रूप से दर्शाया कि भारत की एक बड़ी आबादी सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है और उन्हें सरकारी नौकरियों तथा शैक्षणिक संस्थानों में

आरक्षण की आवश्यकता है। इस ऐतिहासिक फैसले ने OBC समुदाय में राजनैतिक जागरूकता को तेज कर दिया और वे संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए राजनैतिक मंचों पर सक्रिय होने लगे। लेकिन कांशीराम ने यह महसूस किया कि समाजवादी दलों-जैसे जनता दल और समाजवादी पार्टी-ने इस वर्ग की पूरी शक्ति का उपयोग नहीं किया। ये पार्टियाँ मुख्यतः यादव समुदाय पर केंद्रित हो गईं, जबकि कुर्मी, लोध, गुर्जर, निषाद, तेली, मौर्य, काछी, बिंद, कहार जैसे दर्जनों अन्य पिछड़ी जातियाँ राजनैतिक हाशिये पर ही रहीं।

इसी सामाजिक-सांस्कृतिक उपेक्षा को देखते हुए कांशीराम ने BSP को एक ऐसे विकल्प के रूप में खड़ा किया जो गैर-यादव OBC जातियों की वास्तविक राजनैतिक आकांक्षाओं को संबोधित कर सके। उन्होंने यह सिद्ध किया कि केवल यादवों तक सीमित प्रतिनिधित्व OBC समुदाय के बहुलांश को राजनैतिक रूप से निराश करता है, जबकि BSP की रणनीति थी कि वह समूचे पिछड़े वर्ग को उनके जातीय आधार और स्थानीय सामाजिक-आर्थिक संरचना के अनुसार संगठित करे। कांशीराम ने यह कहा कि सामाजिक न्याय केवल नारे या आरक्षण से नहीं मिलेगा, बल्कि सत्ता में सीधी हिस्सेदारी से ही सच्चा परिवर्तन संभव है। उन्होंने इस वर्ग को 'शिक्षित पिछड़े, संगठित पिछड़े' का नारा देकर एकजुट किया और उन्हें बताया कि जब तक वे सत्ता के केंद्र में नहीं आएँगे, तब तक उनका शोषण समाप्त नहीं होगा।

BSP ने OBC समुदाय के नेताओं को संगठनात्मक ढांचे में महत्वपूर्ण स्थान देकर यह संदेश दिया कि यह पार्टी बहुजन समाज के हर वर्ग को नेतृत्व में भागीदारी देती है। लोकसभा और विधानसभा चुनावों में बड़ी संख्या में गैर-यादव OBC प्रत्याशियों को टिकट देकर BSP ने इस वर्ग

को राजनैतिक पहचान दी। कांशीराम ने न केवल सामाजिक चेतना जगाई, बल्कि उन्हें चुनावी राजनीति में प्रशिक्षित किया और नेतृत्व की भूमिका सौंपी। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में BSP को कुर्मी, मौर्य, लोध और अन्य OBC जातियों का समर्थन प्राप्त हुआ और यह समर्थन पार्टी के जनाधार को मजबूत करने में निर्णायक साबित हुआ।

BSP की OBC रणनीति

बहुजन समाज पार्टी ने अन्य पिछड़ा वर्ग , विशेष रूप से गैर-यादव जातियों, को संगठित करने और उन्हें सत्ता की मुख्यधारा में लाने के लिए एक सुविचारित, बहुस्तरीय रणनीति अपनाई। कांशीराम को इस बात का स्पष्ट बोध था कि केवल सामाजिक न्याय के नारों या आरक्षण की मांगों से OBC समाज को दीर्घकालिक सशक्तिकरण नहीं मिल सकता, जब तक कि वे राजनैतिक रूप से संगठित न हों और सत्ता-संरचना में अपनी ठोस भागीदारी सुनिश्चित न करें। इसी सोच के आधार पर BSP ने OBC समाज को पार्टी की वैचारिक, संगठनात्मक और चुनावी रणनीति के केंद्र में रखा।

BSP की रणनीति का पहला पहलू यह था कि उसने गैर-यादव OBC जातियों जैसे कुर्मी, मौर्य, शाक्य, सैनी, लोध, गुर्जर, तेली, नाई, काछी, कहार, बिंद आदि को लक्षित कर एक वैकल्पिक नेतृत्व मंच प्रदान किया। जबकि समाजवादी दल यादवों पर केंद्रित थे, BSP ने इन उपेक्षित जातियों को बताया कि उनके सामाजिक बहिष्करण का कारण न केवल ब्राह्मणवादी व्यवस्था है, बल्कि राजनैतिक दलों द्वारा की जा रही सवर्ण बनावट यादव द्वैत रणनीति भी है, जिससे अन्य जातियाँ पृष्ठभूमि में चली

गई हैं। BSP ने इन जातियों को संगठन में शामिल कर, उन्हें ब्लॉक स्तर से लेकर मंडल, जिला और राज्य स्तर तक नेतृत्व में स्थान दिया।

दूसरे चरण में BSP ने “शिक्षित पिछड़े – संगठित पिछड़े” अभियान चलाया, जिसका उद्देश्य था पिछड़े वर्गों के शिक्षित युवाओं को पार्टी से जोड़ना और उन्हें प्रशिक्षण देकर राजनीति की मुख्यधारा में लाना। पार्टी ने समझा कि OBC समाज में शिक्षा का स्तर भले धीमा हो, लेकिन वह तेजी से आगे बढ़ रहा है, और यही युवा वर्ग सामाजिक परिवर्तन का वाहक बन सकता है। इस अभियान के तहत BSP कार्यकर्ताओं को विशेष प्रशिक्षण दिया गया कि वे OBC समुदाय में जाकर यह समझाएं कि केवल वोट देकर या जातीय पहचान से कुछ नहीं होगा, जब तक कि वे अपने समाज से निकले नेताओं को सत्ता में न पहुँचाएँ।

तीसरे और निर्णायक चरण में BSP ने चुनावों में इन जातियों के उम्मीदवारों को टिकट देना शुरू किया। कांशीराम और बाद में मायावती ने कई बार खुले मंच से कहा कि यदि OBC समाज अपनी जातिगत अस्मिता को भूलकर बहुजन विचारधारा से जुड़े, तो वे सत्ता में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं। यह नीति 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में विशेष रूप से सफल रही, जब BSP ने विभिन्न गैर-यादव OBC जातियों के नेताओं को मैदान में उतारा और दलित-ओबीसी गठबंधन को एक प्रभावी चुनावी समीकरण के रूप में प्रस्तुत किया।

BSP की OBC रणनीति का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह था कि पार्टी ने OBC समाज को केवल एक ‘वोट बैंक’ नहीं समझा, बल्कि उन्हें नेतृत्व का हिस्सा बनाया और उन्हें बताया कि वे भी मुख्यमंत्री, सांसद, मंत्री या संगठन प्रमुख बन सकते हैं-बशर्ते वे संगठित हों। यह दृष्टिकोण अन्य दलों

से अलग था, जहाँ OBC नेताओं को प्रतीकात्मक भूमिका ही दी जाती थी। कांशीराम के नेतृत्व में BSP ने एक समावेशी और सशक्त नेतृत्व मॉडल प्रस्तुत किया, जिसमें OBC समाज न केवल भागीदार था, बल्कि उसकी निर्णायक भूमिका भी स्थापित की गई।

बहुजन समाज और BSP का नेतृत्व

कांशीराम की रणनीति का एक केंद्रीय पहलू यह था कि बहुजन समाज केवल राजनैतिक प्रतिनिधित्व तक सीमित न रहे, बल्कि उसका स्वयं का स्वतंत्र नेतृत्व विकसित हो। भारतीय राजनीति में लंबे समय तक बहुजन समाज को कांग्रेस, समाजवादी दलों और अन्य पारंपरिक पार्टियों ने एक 'वोट बैंक' के रूप में इस्तेमाल किया। इन दलों ने दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों से चुनाव में समर्थन तो लिया, लेकिन उन्हें सत्ता में भागीदारी या नीति निर्माण में निर्णायक भूमिका नहीं दी। वे बहुजन नेताओं को टिकट देकर दिखावटी प्रतिनिधित्व तो देते थे, लेकिन उन्हें अपने दम पर खड़ा होने का अवसर नहीं देते थे। कांशीराम ने इस राजनैतिक प्रवृत्ति को गहराई से समझा और इसे 'ब्राह्मणवादी राजनैतिक नियंत्रण' का हिस्सा बताया, जिसमें बहुजन नेता केवल कठपुतली की भूमिका निभाते हैं।

BSP के गठन के साथ ही कांशीराम ने यह स्पष्ट कर दिया कि अब बहुजन समाज को 'नेताओं की भीख' नहीं लेनी, बल्कि अपने समाज से नेतृत्व पैदा करना है और सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करनी है। उन्होंने कहा था कि "हम सत्ता में भीख नहीं माँगेंगे, हम सत्ता छीनेंगे, अपने अधिकार से।" इसी सोच के तहत उन्होंने BSP को एक वैकल्पिक राजनैतिक मंच के रूप में स्थापित किया, जहाँ बहुजन समाज के लोग स्वयं टिकट पाएँगे,

चुनाव लड़ेंगे, जीतेंगे और शासन करेंगे। यह विचार तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था के लिए चुनौतीपूर्ण था, जिसने दलित और पिछड़े नेताओं को केवल 'अनुयायी' की भूमिका में देखा था।

कांशीराम के नेतृत्व में BSP ने बहुजन समाज के नेताओं को पूरी स्वतंत्रता और ताकत दी। मायावती इसका सबसे बड़ा उदाहरण बनीं। वह न केवल पार्टी की राष्ट्रीय अध्यक्ष बनीं, बल्कि उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री भी बनीं-वह भी चार बार। मायावती का मुख्यमंत्री बनना केवल एक दलित महिला के सत्ता तक पहुँचने की कहानी नहीं थी, बल्कि यह बहुजन समाज के नेतृत्व की स्वायत्तता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक था। इससे यह संदेश गया कि अब बहुजन समाज को सत्ता के गलियारों में स्थान पाने के लिए किसी सवर्ण नेता की कृपा की आवश्यकता नहीं है।

इसके अतिरिक्त BSP ने अपने संगठनात्मक ढाँचे में भी बहुजन नेतृत्व को बढ़ावा दिया। हर जिले, हर मंडल और हर राज्य में पार्टी ने बहुजन समाज के नेतृत्व को बढ़ाया और उन्हें पार्टी का संरक्षक, महासचिव, प्रवक्ता, प्रभारी, और समन्वयक जैसे पदों पर नियुक्त किया। यह न केवल राजनैतिक सशक्तिकरण था, बल्कि सामाजिक सम्मान की पुनर्स्थापना भी थी। कांशीराम का यह प्रयास था कि बहुजन समाज के भीतर आत्मविश्वास विकसित हो, ताकि वे स्वयं को नेतृत्व देने में सक्षम मानें, और किसी अन्य जातीय या सामाजिक समूह पर निर्भर न रहें।

इस प्रकार BSP ने एक ऐसे नेतृत्व का निर्माण किया जो जातिगत दमन के विरुद्ध खड़ा हो सके, समाज के भीतर आत्मसम्मान की भावना को पुनर्जीवित करे, और शासन में भागीदारी के माध्यम से नीति निर्धारण की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाए। यह नेतृत्व न केवल चुनावी

राजनीति तक सीमित था, बल्कि समाज में गहराई तक जाकर परिवर्तन लाने वाला नेतृत्व था, जो विद्यालयों, पंचायतों, विश्वविद्यालयों और सामाजिक आंदोलनों तक फैला हुआ था। कांशीराम का यह मॉडल भारतीय लोकतंत्र में एक अनूठा उदाहरण बना, जहाँ बहुजन समाज ने अपने ही नेतृत्व में सत्ता प्राप्त की और अपने समाज के लिए नीतियाँ बनाई।

बहुजन समाज को संगठित करने के लिए जमीनी स्तर पर अभियान

बहुजन समाज पार्टी की सबसे बड़ी ताकत उसका जमीनी स्तर पर स्थापित संगठनात्मक ढाँचा था, जिसे कांशीराम ने अत्यंत व्यवस्थित और अनुशासित रूप में विकसित किया। कांशीराम यह भलीभाँति समझते थे कि भारतीय राजनीति में बहुजन समाज का सशक्तिकरण केवल भाषणों या घोषणाओं से नहीं होगा, बल्कि इसके लिए गाँव-गाँव, घर-घर जाकर लोगों को जागरूक करना आवश्यक है। उन्होंने “संगठन से ही परिवर्तन संभव है” की अवधारणा को व्यवहार में उतारते हुए बूथ स्तर तक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति और प्रशिक्षण की एक मजबूत प्रणाली बनाई। यह कोई परंपरागत चुनावी प्रचार नहीं था, बल्कि एक दीर्घकालीन सामाजिक-राजनैतिक जागरूकता अभियान था।

BSP कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया जाता था कि वे जातिगत शोषण, सामाजिक भेदभाव और राजनैतिक वंचना के खिलाफ अपने समाज को जागरूक करें। उन्हें सिखाया जाता था कि केवल आरक्षण पाकर या योजनाओं का लाभ लेकर बहुजन समाज सशक्त नहीं होगा, जब तक वह सत्ता की कुंजी को अपने हाथ में नहीं लेता। इसी विचार के तहत पार्टी ने “हमारा वोट, हमारी सरकार” और “जो जमीन पर नहीं, वह सदन में नहीं”

जैसे नारे दिए, जो बहुजन समाज को उसकी राजनैतिक ताकत का अहसास दिलाते थे।

इस जमीनी अभियान की विशेषता यह थी कि BSP ने प्रत्येक जिले, तहसील, ब्लॉक, ग्राम पंचायत और यहाँ तक कि बूथ स्तर पर “सेक्टर प्रभारी” और “बूथ प्रभारी” जैसे पदों के माध्यम से कार्यकर्ताओं की एक मजबूत शृंखला तैयार की। ये कार्यकर्ता लगातार बहुजन समाज के लोगों से संपर्क बनाए रखते थे, उन्हें पार्टी की विचारधारा बताते थे, और चुनाव से बहुत पहले से ही उनके बीच काम शुरू कर देते थे। कांशीराम ने इस कार्यप्रणाली को “मिशनरी राजनीति” कहा, जहाँ कार्यकर्ता केवल चुनाव के समय सक्रिय नहीं होते, बल्कि समाज में बदलाव के लिए निरंतर काम करते रहते हैं।

BSP ने अपने अभियानों में बहुजन समाज के बच्चों, युवाओं, महिलाओं और बुजुर्गों को विशेष रूप से जोड़ा। इसके लिए पार्टी ने सामूहिक संवाद, प्रशिक्षण शिविर, विचार संगोष्ठियाँ और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से बहुजन इतिहास, नायकों, संघर्षों और अधिकारों की जानकारी दी। खासकर डॉक्टर अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु, पेरियार, बिरसा मुंडा और कांशीराम की जीवन गाथाओं के माध्यम से प्रेरणा दी जाती थी कि कैसे एकजुट होकर सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में बढ़ा जा सकता है।

BSP का यह जमीनी अभियान इतना प्रभावी था कि उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों के बीच पार्टी की गहरी पैठ बन गई। कांशीराम ने कहा था, “जब तक हमारे समाज का हर व्यक्ति राजनैतिक रूप से शिक्षित

नहीं होगा, तब तक परिवर्तन नहीं आएगा।” इस सिद्धांत को अमल में लाने के लिए उन्होंने गाँवों में “बहुजन प्रेरणा केंद्र” स्थापित किए, जहाँ लोग आकर पार्टी की पुस्तिकाएँ पढ़ते थे, वीडियो देखते थे और संवाद करते थे।

इस संगठित अभियान का परिणाम यह हुआ कि BSP का मतदाता वर्ग एक ‘कमिटेड कैडर’ में बदल गया, जो चुनाव के हर चरण में सक्रिय और जागरूक रहता था। इसने पार्टी को न केवल चुनाव जीतने की शक्ति दी, बल्कि एक स्थायी सामाजिक आंदोलन में परिवर्तित कर दिया, जिसमें बहुजन समाज की सामूहिक चेतना और राजनैतिक आकांक्षाएँ केंद्र में थीं। कांशीराम का यह प्रयास भारत के लोकतंत्र में एक ऐसा उदाहरण बना, जहाँ समाज के सबसे वंचित वर्गों ने संगठित होकर सत्ता के गलियारों तक पहुँच बनाई।

एसटी (अनुसूचित जनजाति) और BSP की रणनीति

भारत की अनुसूचित जनजातियाँ, जो देश के आदिवासी समुदायों का प्रतिनिधित्व करती हैं, लंबे समय से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक उपेक्षा का शिकार रही हैं। ऐतिहासिक रूप से ये समुदाय वनों, पर्वतीय क्षेत्रों और सीमांत भूभागों में रहते आए हैं, जहाँ उन्हें उनके पारंपरिक अधिकारों से वंचित कर खनन, वन कानून और भूमि अधिग्रहण जैसे उपायों से हाशिये पर धकेल दिया गया। राजनैतिक दलों ने इन समुदायों को प्रायः केवल आरक्षित सीटों तक सीमित रखा, जिससे वे न तो वास्तविक राजनैतिक नेतृत्व विकसित कर पाए, और न ही निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हो सके। इसी ऐतिहासिक उपेक्षा को पहचानते हुए

बहुजन समाज पार्टी ने अनुसूचित जनजातियों को अपनी सामाजिक-राजनैतिक रणनीति का अनिवार्य अंग बनाया।

कांशीराम यह भलीभाँति समझते थे कि बहुजन आंदोलन तब तक अधूरा है, जब तक आदिवासी समाज को भी इसमें समान भागीदारी नहीं दी जाती। उनके अनुसार, आदिवासी समाज भी ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का उतना ही शिकार है, जितना कि दलित या पिछड़ा वर्ग। उन्होंने कहा कि वनवासी कहे जाने वाले ये समुदाय “भूमि के वास्तविक स्वामी” हैं, लेकिन इनकी जमीनें छीनी गईं, परंपराएं कुचली गईं और पहचान को मिटाने का प्रयास किया गया। इसी कारण उन्होंने आदिवासी समाज को बहुजन मंच से जोड़ने का प्रयास किया और उन्हें सत्ता में भागीदारी दिलाने का लक्ष्य रखा।

BSP की रणनीति के अंतर्गत झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओडिशा और राजस्थान जैसे राज्यों में पार्टी संगठन का विस्तार किया गया, जहाँ आदिवासी आबादी प्रभावशाली संख्या में है। पार्टी ने इन क्षेत्रों में आदिवासी नेताओं को जिला इकाइयों और राज्य इकाइयों में महत्वपूर्ण स्थान दिए। उदाहरण के लिए, छत्तीसगढ़ में BSP ने गोंड, उरांव, और भील जनजातियों से आने वाले नेताओं को विधानसभा और लोकसभा चुनावों में प्रत्याशी बनाया। इसके अलावा, BSP ने आदिवासी समुदायों के सांस्कृतिक प्रतीकों और आंदोलनों को भी समर्थन दिया—जैसे बिरसा मुंडा के शहादत दिवस को मनाना और उनकी विचारधारा को प्रसारित करना।

कांशीराम की सोच यह थी कि आदिवासी समाज को केवल वन और जल-जंगल-जमीन तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उन्हें राजनैतिक जागरूकता और नेतृत्व निर्माण की प्रक्रिया में सहभागी बनाया जाए।

इसके लिए BSP ने आदिवासी बहुल इलाकों में “जन संवाद यात्रा,” “बहुजन अधिकार शिविर,” और “बिरसा चेतना कार्यक्रम” जैसे आयोजनों के माध्यम से आदिवासी युवाओं को पार्टी से जोड़ा। इन कार्यक्रमों में आदिवासी इतिहास, अधिकारों और संविधान प्रदत्त शक्तियों के बारे में बताया गया, जिससे उनमें आत्मगौरव और राजनैतिक चेतना का संचार हो।

इस रणनीति का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह था कि BSP ने आदिवासी महिलाओं की भागीदारी पर भी विशेष ध्यान दिया। पार्टी ने “वनवासी महिला सशक्तिकरण मंच” जैसे संगठनों के माध्यम से उन्हें स्थानीय स्तर पर नेतृत्व के लिए प्रशिक्षित किया। आदिवासी महिलाओं को पंचायती राज, सहकारी समितियों और स्थानीय विकास परिषदों में प्रतिनिधित्व दिलाने की पहल की गई, जिससे वे केवल घरेलू भूमिका में सीमित न रहकर सार्वजनिक जीवन का हिस्सा बन सकें।

राजनैतिक रूप से, BSP का उद्देश्य आदिवासी समाज को “वोट बैंक” से ऊपर उठाकर उन्हें सत्ता में हिस्सेदार बनाना था। पार्टी ने यह सुनिश्चित किया कि आदिवासी उम्मीदवार केवल प्रतीकात्मक न बनें, बल्कि उन्हें वास्तविक निर्णय लेने की शक्ति मिले। यही कारण है कि BSP की सरकारों में, विशेषकर उत्तर प्रदेश में, आदिवासी समुदाय के लोगों को प्रशासनिक पदों और आयोगों में प्रतिनिधित्व देने के प्रयास किए गए।

इस प्रकार, BSP की एसटी रणनीति केवल चुनावी जीत तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह एक समावेशी आंदोलन का हिस्सा थी, जिसका उद्देश्य था आदिवासी समाज को भारतीय लोकतंत्र में स्वाभिमान, भागीदारी और नेतृत्व की पूर्ण भूमिका दिलाना। यह वह दृष्टिकोण था जिसने बहुजन

राजनीति को केवल दलित और पिछड़ों तक सीमित रखने के बजाय एक समावेशी, न्यायपूर्ण और व्यापक स्वरूप प्रदान किया।

आदिवासी वोट बैंक में BSP की पैठ

1990 के दशक के बाद भारतीय राजनीति में जैसे-जैसे क्षेत्रीय और पहचान आधारित दलों की भूमिका बढ़ी, बहुजन समाज पार्टी ने भी अपनी रणनीति में विविधता लाते हुए अनुसूचित जनजातियों को अपने वोट बैंक का एक सशक्त स्तंभ बनाने की ओर गंभीर पहल की। कांशीराम ने यह स्पष्ट रूप से देखा कि आदिवासी समाज, जो अब तक कांग्रेस और अन्य क्षेत्रीय दलों का पारंपरिक समर्थन आधार रहा था, राजनैतिक रूप से उपेक्षित और नेतृत्वहीन बना हुआ है। उन्होंने इस तथ्य को चुनौती के रूप में लिया कि आदिवासी समुदाय के लोग चुनावों में भारी संख्या में मतदान करते हैं, लेकिन उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया में बराबरी का हिस्सा नहीं मिलता।

BSP ने इस खाई को भरने के लिए न केवल आदिवासी समाज को पार्टी में शामिल किया, बल्कि उन्हें संगठित वोट बैंक में परिवर्तित करने के लिए योजनाबद्ध रणनीति बनाई। पार्टी की यह समझ थी कि झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, ओडिशा और राजस्थान जैसे राज्यों में आदिवासी समुदाय की महत्वपूर्ण जनसंख्या है, और यदि उन्हें वैचारिक रूप से जोड़कर स्थायी समर्थन में बदला जाए, तो BSP न केवल चुनावों में बेहतर प्रदर्शन कर सकती है, बल्कि आदिवासी समुदाय को सशक्तिकरण की दिशा में भी बढ़ाया जा सकता है।

इस लक्ष्य को पाने के लिए BSP ने आदिवासी समाज के बीच “बहुजन-वनवासी एकता अभियान” की शुरुआत की। इस अभियान के तहत पार्टी

कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाकर आदिवासी जनता से संवाद करते थे, उन्हें बाबा साहब अंबेडकर, बिरसा मुंडा, सिद्धो-कान्हू जैसे नायकों की भूमिका से परिचित कराते थे, और यह समझाते थे कि आदिवासी समाज भी दलितों और पिछड़ों की तरह ब्राह्मणवादी व्यवस्था के शोषण का शिकार रहा है। इस वैचारिक एकता के माध्यम से BSP ने आदिवासी समाज को यह एहसास दिलाया कि वे बहुजन आंदोलन का अभिन्न हिस्सा हैं, और उन्हें सत्ता के केंद्र में लाने का यही सही समय है।

चुनावों में BSP ने आदिवासी समाज के नेताओं को टिकट देकर नेतृत्व विकसित करने की दिशा में प्रयास किया। उदाहरण के लिए, छत्तीसगढ़ के बस्तर, सरगुजा और जशपुर क्षेत्रों में, झारखंड के संथाल परगना और कोल्हान क्षेत्रों में, और मध्य प्रदेश के डिंडोरी, शहडोल तथा मण्डला क्षेत्रों में BSP ने आदिवासी प्रत्याशियों को चुनावी मैदान में उतारा। इन क्षेत्रों में पार्टी का संदेश था कि आदिवासी समाज को “नेतृत्व मांगना नहीं, बनाना है।” यही कारण था कि BSP के घोषणापत्रों में आदिवासी अधिकारों को प्राथमिकता दी गई, जिनमें वन अधिकार अधिनियम, भूमि स्वामित्व, शिक्षा, और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता को प्रमुखता दी गई।

इसके साथ ही BSP ने उन मुद्दों को भी उठाया जो आदिवासी समाज की गरिमा और पहचान से जुड़े थे। पार्टी ने यह मांग की कि आदिवासी क्षेत्रों में बड़े बाँध और खनन परियोजनाओं को लागू करने से पहले ग्राम सभाओं की सहमति अनिवार्य की जाए। साथ ही, जल-जंगल-जमीन पर पारंपरिक अधिकारों को बहाल करने के लिए राज्य स्तर पर आयोग गठित किए जाएँ। इन मांगों के माध्यम से BSP ने यह संदेश दिया कि पार्टी केवल सत्ता की आकांक्षा नहीं रखती, बल्कि वह आदिवासी

जीवनशैली, संस्कृति और अधिकारों की रक्षा की प्रतिबद्धता भी रखती है।

BSP की यह रणनीति धीरे-धीरे आदिवासी समाज के बीच प्रभाव छोड़ने लगी। विशेष रूप से युवा आदिवासी मतदाता, जो परंपरागत दलों से मोहभंग की स्थिति में थे, BSP की विचारधारा की ओर आकर्षित हुए। आदिवासी छात्र संगठनों, महिला मंडलों और सामाजिक आंदोलनों को पार्टी से जोड़ा गया, जिससे आदिवासी समाज को लगा कि अब उनके मुद्दों को राजनैतिक मंच पर न केवल जगह मिल रही है, बल्कि उन्हें नेतृत्व की भूमिका में भी लाया जा रहा है।

इस प्रकार, आदिवासी वोट बैंक में BSP की पैठ केवल एक चुनावी रणनीति नहीं रही, बल्कि यह एक दीर्घकालिक वैचारिक और सामाजिक आंदोलन का हिस्सा बनी। इस पहल ने बहुजन आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक गठबंधन में बदल दिया, जो केवल जाति पर आधारित नहीं था, बल्कि उसमें संस्कृति, परंपरा, और अधिकारों की साझा लड़ाई भी समाहित थी। यह रणनीति भारतीय राजनीति में एक नई संभावना का संकेत थी-जहाँ दलित, पिछड़े, आदिवासी और मुस्लिम समाज एक साथ आकर सत्ता के ढांचे को चुनौती दे सकते थे।

बहुजन समाज की राजनैतिक ताकत को स्थायी बनाना

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की दीर्घकालिक रणनीति का अंतिम और सबसे निर्णायक पहलु यह था कि बहुजन समाज को केवल एक चुनावी शक्ति तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उसे एक स्थायी राजनैतिक ताकत में परिवर्तित किया जाए। कांशीराम और बाद में मायावती ने यह भली-भाँति समझा कि जब तक बहुजन, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक

समाज का संगठित नेतृत्व विकसित नहीं होगा, तब तक उनके सामाजिक और राजनैतिक अधिकार स्थायी रूप से सुनिश्चित नहीं किए जा सकते। इसीलिए BSP ने न केवल चुनावी भागीदारी पर बल दिया, बल्कि संगठनात्मक मजबूती, वैचारिक स्पष्टता, और सामाजिक चेतना के निर्माण पर भी समान रूप से ध्यान केंद्रित किया।

इस रणनीति के तहत पार्टी ने तीन स्तरों पर कार्य किया: पहला, समाज के भीतर वैचारिक जागरूकता फैलाकर यह समझाना कि सत्ता केवल चुनाव जीतने से नहीं मिलती, बल्कि उसे स्थायी रूप से प्राप्त करने के लिए संगठन और नेतृत्व की निरंतरता आवश्यक है। कांशीराम का नारा था - “राजनैतिक सत्ता ही सर्वाधिक कारगर साधन है, जिससे बहुजन समाज के सभी दुखों का अंत संभव है।” इस वैचारिक स्पष्टता ने दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों को यह सोचने पर मजबूर किया कि उन्हें केवल “वोटर” नहीं, बल्कि “निर्णायक शक्ति” बनना है।

दूसरा, पार्टी ने स्थानीय से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक संगठन का ऐसा ढाँचा तैयार किया जिसमें OBC, SC, ST और मुस्लिम समुदाय के लोग समाविष्ट हों और उन्हें निर्णायक भूमिका दी जाए। पार्टी के ब्लॉक स्तर, जिला स्तर, और प्रांतीय स्तर पर सामाजिक प्रतिनिधित्व का ध्यान रखा गया ताकि किसी भी समुदाय को हाशिए पर न रखा जाए। इसके परिणामस्वरूप संगठन न केवल चुनावों के दौरान बल्कि सामान्य समय में भी जनसमस्याओं पर कार्य करता रहा, जिससे BSP को “जनांदोलन की पार्टी” के रूप में देखा जाने लगा।

तीसरा, BSP ने यह रणनीति अपनाई कि केवल विपक्ष की भूमिका से संतोष नहीं किया जाएगा, बल्कि सत्ता की प्राप्ति ही बहुजन आंदोलन की

परिपक्वता का संकेत होगी। इसलिए पार्टी ने सत्ता प्राप्त करने के बाद जनहितकारी योजनाओं को लागू किया, जैसे उत्तर प्रदेश में मायावती सरकार द्वारा दलित बस्तियों में सड़कों का निर्माण (डॉ. अंबेडकर ग्राम योजना), दलित युवाओं के लिए छात्रवृत्ति योजनाएँ, और प्राथमिक विद्यालयों में भोजन योजना का विस्तार। इन योजनाओं से पार्टी की सामाजिक स्वीकार्यता बढ़ी और दलित-OBC समाज को लगा कि BSP उनकी समस्याओं को समझने और समाधान देने में सक्षम है।

इसके अतिरिक्त, BSP ने सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक राजनीति का भी प्रयोग किया। डॉ. अंबेडकर, काशीराम, संत रविदास, संत कबीर, बिरसा मुंडा जैसे नायकों की मूर्तियों, स्मारकों और स्मृति स्थलों का निर्माण यह दर्शाता है कि पार्टी अपने इतिहास, विरासत और पहचान को संरक्षित करने के लिए प्रतिबद्ध है। इस सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का उद्देश्य यह था कि बहुजन समाज को यह अहसास हो कि उनका भी एक गौरवशाली अतीत है, और वे सत्ता के केंद्र में अपनी जगह के अधिकारी हैं।

इन सभी प्रयासों का दीर्घकालिक प्रभाव यह हुआ कि बहुजन समाज, जो लंबे समय तक सत्ता से दूर रखा गया था, अब राजनीति की मुख्यधारा में एक निर्णायक भूमिका निभाने लगा। उत्तर प्रदेश इसका सबसे सशक्त उदाहरण बना, जहाँ BSP ने न केवल बहुमत की सरकार बनाई, बल्कि मुख्यमंत्री पद पर बहुजन समाज की महिला को प्रतिष्ठित कर एक ऐतिहासिक मिसाल कायम की। इसने स्पष्ट किया कि यदि संगठन मजबूत हो, विचारधारा स्पष्ट हो और नेतृत्व में पारदर्शिता हो, तो बहुजन समाज न केवल वोटर रहेगा, बल्कि सत्ता का संरचना निर्माता भी बन सकता है।

अंततः BSP की यह रणनीति केवल एक पार्टी की सफलता की कहानी नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन की परिपक्वता की कहानी है। इसने

भारतीय राजनीति को यह सिखाया कि हाशिए पर खड़े वर्ग यदि संगठित हों और अपने अधिकारों के लिए जागरूक हों, तो वे न केवल सत्ता में भागीदार बन सकते हैं, बल्कि राजनैतिक दिशा भी तय कर सकते हैं। यही कारण है कि “बहुजन समाज की स्थायी राजनैतिक ताकत” अब एक सपना नहीं, बल्कि एक यथार्थ बन चुका है-हालाँकि इसे और मज़बूत करने के लिए निरंतर संघर्ष और संगठन की आवश्यकता बनी हुई है।

अध्याय 19: महिलाओं और युवाओं को राजनीति में सक्रिय करना

बहुजन राजनीति में महिलाओं और युवाओं की भूमिका

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं और युवाओं की राजनैतिक भागीदारी का इतिहास बहुजन समाज के संदर्भ में अधिक जटिल और संघर्षपूर्ण रहा है। अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग और मुस्लिम समाज जैसे वंचित तबकों की महिलाओं और युवाओं को लंबे समय तक सत्ता और निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं से अलग रखा गया। जातिगत भेदभाव, पितृसत्तात्मक सोच, संसाधनों की भारी कमी और सामाजिक उपेक्षा जैसी रुकावटों ने इन्हें न केवल राजनैतिक रूप से सीमित किया, बल्कि समाज में इनकी आवाज़ को भी दबाकर रखा। अधिकांश राजनैतिक दलों ने महिलाओं और युवाओं को केवल एक प्रतीकात्मक स्थान दिया-जहाँ वे चुनावी मंचों पर तो दिखाई देते हैं, परन्तु नीति-निर्धारण और नेतृत्व की असली शक्ति से उन्हें वंचित रखा जाता है।

बहुजन समाज पार्टी (BSP) ने इस ऐतिहासिक विसंगति को चुनौती देने का कार्य किया। कांशीराम का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि अगर बहुजन आंदोलन को स्थायी और शक्तिशाली बनाना है, तो इसके केंद्र में महिलाओं और युवाओं को रखना अनिवार्य है। यह केवल संख्या की दृष्टि से नहीं, बल्कि रणनीतिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक था। कांशीराम ने महसूस किया कि महिला और युवा शक्ति वह नींव है, जिस पर

समतावादी समाज की इमारत खड़ी हो सकती है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि बहुजन राजनीति को केवल पुरुषों के नेतृत्व तक सीमित रखने से समाज की आधी आबादी हाशिए पर रह जाएगी, और ऐसा कोई भी आंदोलन टिकाऊ नहीं हो सकता जो समाज के इतने बड़े हिस्से को दरकिनार करे।

इसलिए BSP ने बहुजन महिलाओं को राजनैतिक रूप से शिक्षित करने, संगठित करने और नेतृत्व देने की स्पष्ट नीति अपनाई। यह नीति केवल आरक्षण की सीमाओं तक नहीं रुकी, बल्कि संगठनात्मक ढाँचे, जन जागरण अभियानों, और नेतृत्व विकास के माध्यमों से उन्हें सशक्त बनाया गया। बूथ स्तर से लेकर ज़िला और राज्य स्तर तक महिलाओं को पद दिए गए, प्रशिक्षण शिविर लगाए गए, और उन्हें यह समझाया गया कि सत्ता में भागीदारी के बिना सामाजिक सम्मान अधूरा है। महिला कार्यकर्ताओं को यह दृष्टि दी गई कि वे केवल सहयोगी नहीं, बल्कि आंदोलन की मुख्य धुरी बन सकती हैं। मायावती का उदय इस सोच का प्रत्यक्ष उदाहरण बना, जब एक बहुजन महिला मुख्यमंत्री बनीं और सत्ता की सबसे ऊँचाई तक पहुँचीं।

युवाओं की बात करें तो BSP ने विशेष रूप से बहुजन छात्रों और बेरोज़गार युवाओं को संगठन से जोड़ने के लिए छात्र संगठनों की स्थापना की। “शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो” के अंबेडकरी संदेश को आधार बनाकर युवा वर्ग में राजनैतिक चेतना जगाई गई। कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, और प्रतियोगी परीक्षा केंद्रों पर संपर्क कार्यक्रम चलाए गए। युवाओं को यह बताया गया कि अगर वे केवल सरकारी नौकरी की प्रतीक्षा करते रहे, तो वे केवल व्यवस्था के एक अंग बनकर रह जाएंगे। लेकिन यदि वे राजनीति में भाग लेंगे, तो नीति बनाने वालों में उनकी

भूमिका होगी। इसके लिए BSP ने टिकट वितरण की नीति में युवाओं को प्राथमिकता दी, उन्हें मंचों पर बोलने और संगठनों का नेतृत्व करने के अवसर दिए।

इस प्रकार, BSP ने महिलाओं और युवाओं को केवल दर्शक नहीं, बल्कि राजनीति के निर्णायक किरदार के रूप में स्थापित करने का कार्य किया। कांशीराम के नेतृत्व में यह प्रयास भारतीय राजनीति के लिए एक उदाहरण बना, जहाँ पहली बार किसी पार्टी ने बहुजन महिला और युवा शक्ति को आंदोलन का मेरुदंड माना। यह दृष्टिकोण आज भी सामाजिक न्याय की राजनीति में एक दिशा-संकेतक बना हुआ है। यदि यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही, तो भविष्य में भारतीय राजनीति में बहुजन नेतृत्व न केवल संख्या में बढ़ेगा, बल्कि गुणवत्ता और दृष्टिकोण में भी श्रेष्ठता स्थापित करेगा।

BSP की महिलाओं को सशक्त बनाने की रणनीति

बहुजन समाज पार्टी ने भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का कार्य किया। जहाँ अधिकांश राजनैतिक दल महिलाओं को मात्र चुनावी औजार के रूप में इस्तेमाल करते रहे, वहीं BSP ने उन्हें राजनीति की निर्णायक धारा में लाने का प्रयास किया। यह प्रयास केवल वैचारिक नहीं था, बल्कि संगठनात्मक और रणनीतिक दोनों स्तरों पर इसे लागू किया गया। कांशीराम और मायावती के नेतृत्व में पार्टी ने यह सुनिश्चित किया कि महिलाएँ बहुजन आंदोलन की केवल सहायक नहीं, बल्कि उसकी रीढ़ बनें। कांशीराम का मानना था कि पितृसत्ता और ब्राह्मणवाद की दोहरी जंजीरों में जकड़ी महिलाओं को जब तक राजनीति में सक्रिय भागीदारी नहीं मिलेगी, तब तक सामाजिक क्रांति अधूरी रहेगी। इसी सोच के तहत BSP ने महिला सशक्तिकरण को केवल

नारेबाज़ी तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे पार्टी की रणनीति और कार्यशैली का केन्द्रीय तत्व बनाया।

इस रणनीति की सबसे बड़ी मिसाल मायावती के नेतृत्व में दिखाई दी, जिन्होंने न केवल चार बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री के रूप में कार्य किया, बल्कि भारतीय राजनीति में यह साबित किया कि एक दलित महिला भी सबसे बड़े राज्य की सत्ता संभाल सकती है। मायावती का नेतृत्व प्रतीकात्मक नहीं था, बल्कि वह हजारों महिलाओं के लिए प्रेरणा बना, जिन्होंने पहली बार महसूस किया कि वे भी राजनीति में निर्णयकारी भूमिका निभा सकती हैं। BSP ने मायावती को नेता के रूप में प्रस्तुत करके यह स्पष्ट किया कि बहुजन महिलाओं को अब केवल समर्थन देने वाली शक्ति नहीं, बल्कि नेतृत्व करने वाली शक्ति के रूप में देखा जाएगा।

पार्टी ने महिला कार्यकर्ताओं का एक संगठित नेटवर्क विकसित किया, जिसे “मंडल” और “सेक्टर” स्तर पर सक्रिय किया गया। महिलाओं को बूथ प्रभारी से लेकर जिला प्रभारी तक की जिम्मेदारियाँ दी गईं। इन महिलाओं को विशेष प्रशिक्षण दिया गया-जिसमें राजनैतिक शिक्षा, नेतृत्व कौशल, कानूनी अधिकार और जन-संपर्क की विधियों का समावेश था। BSP ने ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिला जागरूकता शिविरों का आयोजन किया, जहाँ उन्हें संविधान, दलित आंदोलन के इतिहास, और राजनैतिक प्रक्रिया की जानकारी दी गई। यह जागरूकता अभियान केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं था, बल्कि महिलाओं को संगठन के भीतर निर्णय लेने की शक्ति भी दी गई।

इसके अतिरिक्त, BSP ने स्थानीय निकायों, पंचायतों और नगर निगमों में महिलाओं को बड़ी संख्या में टिकट देकर चुनावी राजनीति में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की। पार्टी का स्पष्ट मानना था कि जब तक महिलाएँ

सत्ता की प्रक्रिया में भाग नहीं लेंगी, तब तक सामाजिक न्याय का सपना अधूरा रहेगा। BSP ने महिला आरक्षण की माँग का भी जोरदार समर्थन किया और यह माँग की कि संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या बढ़ाई जाए, विशेषकर बहुजन समाज की महिलाओं के लिए। पार्टी का यह भी दृष्टिकोण था कि आरक्षण केवल उच्च जाति की महिलाओं के लिए न होकर, दलित, पिछड़ी और मुस्लिम महिलाओं के लिए भी सुनिश्चित किया जाए।

BSP की यह रणनीति न केवल महिला नेतृत्व को तैयार करने में सफल रही, बल्कि इससे महिलाओं में आत्मसम्मान और सामाजिक जागरूकता की भावना भी विकसित हुई। आज भी BSP की महिला कार्यकर्ता उत्तर प्रदेश और अन्य राज्यों में समाज परिवर्तन की एक जीवंत ताकत बनी हुई हैं। यह कहा जा सकता है कि BSP ने बहुजन महिलाओं को राजनीति में एक नया स्थान दिया-जहाँ वे केवल वोट डालने वाली नहीं, बल्कि सत्ता के निर्णयों में भाग लेने वाली भी बनीं। यही दृष्टिकोण भारतीय लोकतंत्र को अधिक समावेशी और न्यायसंगत बनाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम साबित हुआ।

BSP की युवा राजनीति और उनकी भागीदारी

बहुजन समाज पार्टी की राजनीति में युवाओं की भूमिका केवल सहायक शक्ति तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्हें एक संगठित वैचारिक आंदोलन का आधार स्तंभ बनाया गया। कांशीराम का स्पष्ट मानना था कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्थायी और गतिशील बनाना है तो उसमें युवाओं की सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है। उनके अनुसार, पुराने राजनैतिक ढांचे को बदलने की ताकत केवल वही पीढ़ी रखती है, जो नए विचारों, ऊर्जा और समर्पण के साथ मैदान में उतरती है। इसीलिए BSP

ने युवाओं को केवल चुनावी समर्थन की दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उन्हें नेतृत्व, संगठन और आंदोलन के केंद्रीय कर्ता-धर्ता के रूप में विकसित करने की नीति अपनाई।

BSP ने अंबेडकर के प्रसिद्ध नारे-“शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो”-को अपनी युवा रणनीति का मूलमंत्र बनाया। पार्टी ने इस नारे को व्यवहार में उतारने के लिए गाँव-गाँव, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विशेष शिविर और विचार संगोष्ठियों का आयोजन किया। युवा कार्यकर्ताओं को राजनैतिक और सामाजिक शिक्षा देने के लिए पार्टी ने अलग-अलग प्रशिक्षण सत्र तैयार किए, जिसमें उन्हें भारतीय संविधान, बहुजन आंदोलन का इतिहास, दलित विमर्श, सामाजिक न्याय की अवधारणा, और राजनैतिक संगठन की तकनीकी समझ दी जाती थी। इस तरह BSP ने एक ऐसा वैचारिक वातावरण तैयार किया जिसमें युवा केवल भाषणबाज़ी तक सीमित नहीं रहे, बल्कि जमीनी स्तर पर संगठनात्मक ढाँचे का अभिन्न हिस्सा बन गए।

BSP की युवा नीति में एक और महत्वपूर्ण पहलू यह था कि उसने छात्र संगठनों और युवा मोर्चों के माध्यम से बहुजन युवाओं को प्रारंभिक स्तर से ही राजनीति में शामिल किया। पार्टी ने कई राज्यों के विश्वविद्यालयों में छात्र संगठनों को बढ़ावा दिया, जहाँ बहुजन समाज के छात्रों को नेतृत्व के अवसर दिए गए और उन्हें समाज के सवालों पर मुखर होने की प्रेरणा दी गई। इन संगठनों ने दलित, पिछड़े, आदिवासी और मुस्लिम छात्रों के शैक्षणिक अधिकारों, छात्रवृत्तियों, आवास, लैंगिक समानता और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों पर संघर्ष किया। इससे BSP को न केवल एक जागरूक युवा कार्यकर्ता वर्ग प्राप्त हुआ, बल्कि यह वर्ग पार्टी के वैचारिक आधार को भी मज़बूती से आगे ले गया।

युवाओं को पार्टी के भीतर नेतृत्व की भूमिकाओं में शामिल करने की दृष्टि से BSP ने पंचायत, नगर पालिका, विधानसभा और लोकसभा चुनावों में युवा उम्मीदवारों को टिकट देना शुरू किया। इस रणनीति का उद्देश्य केवल राजनैतिक प्रतिनिधित्व देना नहीं था, बल्कि एक ऐसी नई पीढ़ी को सामने लाना था जो सत्ता की संरचना में न्यायसंगत बदलाव ला सके। युवाओं को टिकट देने से यह संदेश गया कि BSP सत्ता का विकेंद्रीकरण करके निचले तबकों के लोगों को निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बना रही है।

इसके साथ ही BSP ने डिजिटल युग में युवाओं को जोड़ने के लिए सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का भी प्रयोग शुरू किया। पार्टी की विचारधारा, घोषणापत्र, आंदोलनों और नेताओं के भाषणों को इंटरनेट और मोबाइल एप्स के ज़रिए फैलाया गया, ताकि तकनीक-प्रेमी युवा पीढ़ी तक सीधे पहुंच बनाई जा सके। इससे पार्टी को शहरी युवाओं के बीच भी एक वैकल्पिक वैचारिक मंच के रूप में पहचान मिली।

BSP की युवा नीति का सबसे बड़ा योगदान यह रहा कि इसने बहुजन युवाओं में एक नई राजनैतिक चेतना और आत्मविश्वास का संचार किया। वे अब केवल वोटर नहीं रहे, बल्कि नेतृत्व करने के लिए तैयार नागरिक बन चुके हैं। इस नीति ने यह साबित किया कि यदि युवाओं को उचित मार्गदर्शन, अवसर और मंच दिया जाए, तो वे सामाजिक परिवर्तन के सबसे शक्तिशाली वाहक बन सकते हैं। यही BSP की रणनीति की असली ताकत थी—एक ऐसा युवा वर्ग तैयार करना जो न केवल वर्तमान सत्ता ढांचे को चुनौती दे, बल्कि भविष्य की राजनीति को भी सामाजिक न्याय की दिशा में पुनर्निर्मित करे।

BSP की महिला और युवा राजनीति को कमजोर करने की चुनौतियाँ

बहुजन समाज पार्टी (BSP) द्वारा महिला और युवा नेतृत्व को सशक्त करने की रणनीति, भारतीय राजनीति की परंपरागत सत्ता संरचनाओं के लिए एक चुनौती बन गई। यही कारण था कि BSP की इस पहल को कई सामाजिक, राजनैतिक और संस्थागत अवरोधों का सामना करना पड़ा। सबसे पहली चुनौती थी पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता, जो विशेष रूप से ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में महिलाओं की राजनैतिक भागीदारी को संदेह की दृष्टि से देखता रहा है। BSP की महिला कार्यकर्ताओं और नेताओं को न केवल अपने समुदाय की सामाजिक रूढ़ियों से जूझना पड़ा, बल्कि उन्हें राजनैतिक मंच पर अपनी वैधता भी बार-बार सिद्ध करनी पड़ी। राजनैतिक रूप से सक्रिय महिलाओं को अक्सर समाज में “उत्तेजक”, “उपयोगी मात्र” या “पुरुष-प्रेरित” कहकर कलंकित किया गया, जिससे उनका मनोबल और सामाजिक सम्मान प्रभावित हुआ।

इसके अलावा BSP के महिला नेतृत्व को अन्य दलों की रणनीतिक प्रतिस्पर्धा से भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जब मायावती मुख्यमंत्री बनीं और महिला सशक्तिकरण की प्रतीक बनीं, तब पारंपरिक दलों ने महिलाओं के मुद्दों को अपने घोषणापत्रों में शामिल करना शुरू कर दिया, परंतु व्यवहार में उन्होंने महिलाओं को केवल चुनावी चेहरों के रूप में प्रस्तुत किया। यह रणनीति कहीं न कहीं BSP की मौलिक पहल को कमजोर करने का प्रयास थी। इसके साथ ही, जातिगत राजनीति में महिलाओं की पहचान अक्सर उनकी जाति की सीमाओं में बाँध दी जाती थी, जिससे महिला नेतृत्व का व्यापक स्वीकार कम हुआ।

BSP की युवा नीति को भी गहरी सामाजिक और राजनैतिक चुनौतियाँ झेलनी पड़ीं। बहुजन युवाओं को राजनीति में संगठित करने के BSP के प्रयासों को कई बार यह कहकर नकारा गया कि युवा राजनीति में अपरिपक्व होते हैं और उन्हें केवल आंदोलन की भीड़ में इस्तेमाल किया जा रहा है। यह धारणा मीडिया, सवर्ण बुद्धिजीवियों और पारंपरिक दलों द्वारा फैलाई गई, जिससे BSP की छात्र इकाइयाँ और युवा मोर्चे मुख्यधारा विमर्श से अलग-थलग किए जाने लगे। दूसरी ओर, दलित, पिछड़े और मुस्लिम युवाओं को रोजगार, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा के नाम पर सरकारों द्वारा योजनाओं में उलझाकर उनकी राजनैतिक सक्रियता को सीमित करने की कोशिशें हुईं।

BSP की महिला और युवा कार्यकर्ताओं को प्रशासनिक दमन, पुलिस उत्पीड़न और कानूनी मामलों में फँसाने जैसी रणनीतियाँ भी अपनाई गईं, जिससे आंदोलन की ताकत को कमजोर किया जा सके। कई राज्यों में महिला कार्यकर्ताओं को रैलियों और जनसभाओं में हिस्सा लेने से रोका गया, तो कहीं छात्र इकाइयों को विश्वविद्यालयों में संगठनात्मक अनुमति नहीं दी गई। इन सबने BSP की महिला और युवा नीति को जमीनी स्तर पर लागू करने में रुकावटें उत्पन्न कीं।

इसके अतिरिक्त, एक बड़ी चुनौती यह भी रही कि समाज के भीतर ही कई बार जातिगत असमानताओं और आपसी प्रतिद्वंद्विताओं के चलते बहुजन युवा और महिला कार्यकर्ता एकजुट नहीं हो पाए। कुछ विशेष जातियों या समुदायों के नेताओं का प्रभुत्व संगठन में बढ़ने से अन्य उपेक्षित वर्गों में असंतोष पनपता गया, जिससे संगठनात्मक एकता पर असर पड़ा। इन आंतरिक विरोधाभासों ने भी BSP की महिला और युवा रणनीति को पूरी शक्ति के साथ लागू करने में अड़चनें डालीं।

फिर भी, इन तमाम बाधाओं के बावजूद BSP ने अपने वैचारिक आंदोलन को पीछे नहीं हटने दिया। यह पार्टी का साहस ही था कि उसने हर चुनौती को सामाजिक जागरूकता, संगठनात्मक दृढ़ता और वैचारिक स्पष्टता के ज़रिए जवाब दिया। BSP की महिला और युवा नीति ने यह सिद्ध किया कि सत्ता की राजनीति केवल संख्या या जातिगत गणित का खेल नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया है, जिसमें हर वंचित को भागीदार बनाना ज़रूरी है।

BSP की महिला और युवा नीति का भविष्य

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की महिला और युवा नीति का भविष्य उस दृष्टिकोण पर निर्भर करता है, जिसमें सामाजिक न्याय, समान प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण को केवल चुनावी आवश्यकता नहीं बल्कि सामाजिक क्रांति के लिए एक दीर्घकालिक परियोजना के रूप में देखा जाता है। कांशीराम और मायावती द्वारा शुरू की गई इस वैचारिक यात्रा को केवल अतीत की उपलब्धियों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। अब यह अनिवार्य हो गया है कि BSP भविष्य की राजनीति में महिलाओं और युवाओं को पहले से अधिक निर्णायक भूमिका में स्थापित करे-न केवल संख्या के रूप में बल्कि रणनीति, विचार और नेतृत्व के केंद्र में।

महिलाओं के संदर्भ में BSP को अब उस दायरे से आगे बढ़ना होगा जो मायावती जैसे एकल नेतृत्व तक सीमित रहा। पार्टी को चाहिए कि वह विभिन्न बहुजन जातियों और समुदायों की महिलाओं को पंचायत से लेकर संसद तक नेतृत्व की ज़िम्मेदारी सौंपे। इससे न केवल नेतृत्व का विकेंद्रीकरण होगा, बल्कि स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में भी महिला सशक्तिकरण को मजबूती मिलेगी। इसके लिए पार्टी को महिला कार्यकर्ताओं के लिए नियमित प्रशिक्षण शिविर, नेतृत्व विकास

कार्यशालाएँ और नीति निर्माण की प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। डिजिटल युग में BSP को महिला मतदाताओं और कार्यकर्ताओं को तकनीकी रूप से सशक्त करने की दिशा में भी काम करना होगा, ताकि वे राजनैतिक संचार और संगठन निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा सकें।

युवाओं के संदर्भ में BSP के सामने अवसर और चुनौती दोनों हैं। अवसर इस रूप में है कि भारत की जनसंख्या में युवाओं का अनुपात सर्वाधिक है, और यही वर्ग बेरोज़गारी, शिक्षा की असमानता और सामाजिक अन्याय का सबसे अधिक शिकार भी है। इसके लिए पार्टी को छात्र संगठन, कैम्पस आधारित इकाइयाँ और डिजिटल प्लेटफॉर्म पर युवा नीति के तहत नियमित संवाद स्थापित करना होगा। BSP को चाहिए कि वह युवाओं के लिए नीति निर्माण, प्रशासनिक नेतृत्व, स्थानीय निकायों में भागीदारी, और तकनीकी-सामाजिक नवाचार जैसे क्षेत्रों में प्रशिक्षण और मार्गदर्शन के लिए संरचित कार्यक्रम शुरू करे।

इसके अलावा, BSP को महिला और युवा नेतृत्व को केवल संगठनात्मक इकाइयों तक सीमित नहीं रखना चाहिए। उन्हें नीति निर्माण, गठबंधन रणनीति, मीडिया संवाद और कानूनी-सामाजिक संघर्षों में भी आगे लाना होगा। पार्टी के घोषणापत्र में महिलाओं और युवाओं की प्राथमिकताओं को प्रमुख स्थान देना चाहिए-जैसे महिला सुरक्षा, लड़कियों की शिक्षा, कैम्पस में लैंगिक समानता, युवाओं के लिए स्टार्टअप और स्किलिंग योजनाएँ, और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध प्रभावी कार्यनीति।

BSP के सामने एक और महत्वपूर्ण कार्य यह भी होगा कि वह महिला और युवा नेतृत्व को वंशवाद या जाति विशेष के वर्चस्व से मुक्त रखते

हुए एक समावेशी नेतृत्व मॉडल विकसित करें। पार्टी को इस नीति के माध्यम से केवल राजनैतिक सफलता की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि इसे भारत के लोकतांत्रिक ढांचे में बहुजन समाज की निर्णायक उपस्थिति सुनिश्चित करने की योजना के रूप में विकसित करना चाहिए।

इस प्रकार, BSP की महिला और युवा नीति का भविष्य तब ही सशक्त बन सकता है जब यह विचारधारा, संगठनात्मक मजबूती और जनसंपर्क के आधुनिक साधनों के माध्यम से समाज के हर वंचित को नेतृत्व का अवसर दे। यदि यह रणनीति सतत और सशक्त रूप में लागू की गई, तो यह बहुजन राजनीति को नई ऊँचाइयों पर पहुँचा सकती है—जहाँ महिलाएँ केवल मंच की शोभा न होकर नीति निर्माण की रीढ़ बनें और युवा केवल नारे लगाने वाले न होकर बदलाव के संवाहक बनें।

अध्याय 20:

सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीति का विकास

सामाजिक इंजीनियरिंग की अवधारणा और इसकी प्रासंगिकता

भारतीय राजनीति में सामाजिक इंजीनियरिंग की अवधारणा को एक ऐसे नवाचार के रूप में देखा गया जिसने परंपरागत जातिगत सत्ता संतुलनों को चुनौती दी और वंचित समुदायों को एकजुट करके उन्हें निर्णायक राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित करने का प्रयास किया। सामाजिक इंजीनियरिंग का मूल विचार यह था कि भारतीय समाज में जातिगत, वर्गीय, और धार्मिक स्तर पर जो गहरे विभाजन मौजूद हैं, उन्हें रणनीतिक ढंग से जोड़कर एक राजनैतिक संकल्प के रूप में रूपांतरित किया जा सकता है। कांशीराम द्वारा प्रवर्तित इस अवधारणा को उन्होंने एक क्रांतिकारी उपकरण के रूप में देखा, जो केवल चुनावी सफलता तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में एक स्थायी आंदोलन की नींव था। उनके अनुसार, यदि अनुसूचित जातियों, अन्य पिछड़ा वर्गों, जनजातीय समूहों और अल्पसंख्यकों को एक समान मंच पर संगठित किया जाए, तो यह गठबंधन सत्ता में वर्चस्वशाली जातियों के प्रभुत्व को सीधी चुनौती देने में सक्षम होगा।

भारत में जाति आधारित भेदभाव और संसाधनों के असमान वितरण की गहराई बहुत पुरानी है। राजनैतिक दृष्टिकोण से देखें तो संसदीय लोकतंत्र की स्थापना के बावजूद सत्ता-संसाधनों का नियंत्रण कुछ ऊँची जातियों के हाथों में बना रहा। इस असमानता को तोड़ने के लिए BSP ने सामाजिक इंजीनियरिंग को एक सशक्त हथियार के रूप में विकसित

किया। मायावती के नेतृत्व में इस रणनीति को और भी परिष्कृत किया गया, जिसमें उन्होंने 'सर्वजन' की अवधारणा को बढ़ावा दिया-जो ब्राह्मण, बनिया और अन्य सवर्ण वर्गों को बहुजन मंच में शामिल करने का प्रयास था। इस सोच का उद्देश्य केवल अधिक सीटें जीतना नहीं था, बल्कि व्यापक समाज में समरसता और सत्ता-साझेदारी की नई राजनैतिक संस्कृति को स्थापित करना था।

BSP की सामाजिक इंजीनियरिंग और इसकी राजनैतिक रणनीति का विकास

BSP की सामाजिक इंजीनियरिंग की शुरुआत उत्तर प्रदेश में हुई, जहाँ पर कांशीराम ने BAMCEF और DS4 जैसे मंचों के माध्यम से पहले सामाजिक जागरूकता फैलाई और बाद में राजनैतिक एकता का निर्माण किया। पार्टी की रणनीति यह थी कि SC, ST, OBC और मुस्लिम समुदाय जैसे बहुजन वर्गों को एकजुट करके सत्ता की निर्णायक ताकत बनाई जाए। पार्टी ने जातिगत वर्चस्व के विरुद्ध 'बहुजन बनाम मनुवाद' का विमर्श खड़ा किया। जैसे-जैसे BSP का विस्तार हुआ, मायावती ने देखा कि सत्ता प्राप्ति के लिए केवल बहुजन मतों पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं है। उन्होंने ऊँची जातियों, विशेष रूप से ब्राह्मणों को जोड़ने की योजना बनाई। इसके तहत "ब्राह्मण शंख बजाएगा, हाथी बढ़ता जाएगा" जैसे नारों के माध्यम से एक सकारात्मक संदेश दिया गया कि सत्ता में सवर्णों और बहुजनों की साझेदारी एक स्थायी राजनीति बना सकती है।

इस रणनीति के तहत BSP ने उन क्षेत्रों में भी सवर्ण उम्मीदवार उतारे जहाँ उनका सामाजिक प्रभाव अधिक था, लेकिन उन्हें बहुजन संगठनात्मक समर्थन से जीत दिलाई गई। इसके फलस्वरूप 2007 के चुनाव में BSP

को पूर्ण बहुमत मिला। यह भारत के लोकतंत्र में पहली बार हुआ कि एक दल ने बहुजन और सबर्णों को एक मंच पर लाकर सत्ता प्राप्त की और उसे स्थिर सरकार में बदल दिया। यही वह क्षण था जब सामाजिक इंजीनियरिंग महज एक रणनीति नहीं रही, बल्कि यह उत्तर भारत की राजनीति में नया प्रतिमान बन गई।

सामाजिक इंजीनियरिंग के प्रमुख घटक और संगठनात्मक विस्तार

BSP की सामाजिक इंजीनियरिंग को व्यवहारिक बनाने के लिए संगठनात्मक ढांचे में व्यापक परिवर्तन किए गए। पार्टी ने प्रत्येक क्षेत्र और जातीय समूह को ध्यान में रखते हुए बूथ स्तर पर कार्यकर्ता नियुक्त किए और जातिगत संतुलन को बनाए रखने के लिए संगठनात्मक जिम्मेदारियाँ बाँटीं। पार्टी ने यह सुनिश्चित किया कि हर क्षेत्र में जातिगत विविधता को समझकर स्थानीय नेतृत्व विकसित किया जाए। उदाहरणस्वरूप, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में दलित-जाट गठजोड़, पूर्वी उत्तर प्रदेश में कुशवाहा, निषाद और पासी समुदायों को केंद्र में रखा गया।

इसके अतिरिक्त, BSP ने केवल चुनाव के समय जातियों को ध्यान में रखने की प्रवृत्ति को त्याग कर उन्हें स्थायी रूप से संगठन में स्थान देने की नीति अपनाई। पार्टी ने टिकट वितरण और मंत्रिमंडल में नियुक्तियों में भी सामाजिक संतुलन बनाए रखा। उदाहरणस्वरूप, 2007 की सरकार में ब्राह्मण, दलित, ओबीसी और मुस्लिम सभी वर्गों को मंत्री बनाया गया। यह समावेशिता ही सामाजिक इंजीनियरिंग का उद्देश्य था-जहाँ प्रतिनिधित्व प्रतीकात्मक न होकर वास्तविक सशक्तिकरण का माध्यम बने।

सामाजिक इंजीनियरिंग की सीमाएँ और राजनैतिक चुनौतियाँ

BSP की सामाजिक इंजीनियरिंग को जितनी सफलता उत्तर प्रदेश में मिली, उतनी दूसरे राज्यों में नहीं मिल पाई। इसका प्रमुख कारण यह था कि अन्य राज्यों में सामाजिक संरचना भिन्न थी और वहाँ जातिगत राजनीति के पुराने समीकरणों ने BSP को जड़ें जमाने से रोका। इसके अलावा, कुछ सामाजिक समूहों के बीच पारंपरिक द्वेष, राजनैतिक प्रतिस्पर्धा और नेतृत्व में वर्चस्व की होड़ ने भी इस गठबंधन को टिकाऊ बनने से रोका। कई बार बहुजन समूहों के बीच नेतृत्व को लेकर संघर्ष हुआ, जिससे संगठनात्मक एकता पर प्रभाव पड़ा।

अन्य दलों ने भी BSP की रणनीति को विफल करने के लिए जातिगत ध्रुवीकरण और धार्मिक ध्रुवीकरण का सहारा लिया। भाजपा ने हिंदुत्व की विचारधारा के माध्यम से पिछड़ों और दलितों को धार्मिक एकता की ओर आकर्षित करने की कोशिश की, जिससे बहुजन वोट बैंक में विभाजन हुआ। कांग्रेस ने मुस्लिम और ओबीसी समूहों को सामाजिक न्याय के नाम पर अलग रणनीतियों से साधा। इससे BSP के पारंपरिक समर्थन आधार में दरारें आने लगीं और सामाजिक इंजीनियरिंग की ताकत कमजोर पड़ने लगी।

BSP की सामाजिक इंजीनियरिंग की भविष्य दिशा और संभावनाएँ

वर्तमान राजनीति में जबकि सोशल मीडिया, जातीय ध्रुवीकरण और पहचान की राजनीति और भी तेज हो गई है, BSP के सामने चुनौती है कि वह सामाजिक इंजीनियरिंग को केवल जातिगत समीकरणों तक सीमित न रखे, बल्कि इसे समावेशी विकास, प्रतिनिधित्व और नेतृत्व

विकास से जोड़े। BSP को यह समझना होगा कि युवा और महिलाएँ अब केवल जातिगत प्रतिनिधित्व से संतुष्ट नहीं हैं, बल्कि वे नीतियों, अधिकारों और सशक्तिकरण की माँग करते हैं।

इसलिए BSP को अपनी सामाजिक इंजीनियरिंग रणनीति में आर्थिक मुद्दों को, जैसे शिक्षा, रोजगार, आरक्षण, डिजिटल साक्षरता और ग्रामीण विकास को अधिक स्थान देना होगा। साथ ही पार्टी को नए सामाजिक आंदोलनों, जैसे पर्यावरण, लैंगिक समानता, और छात्र आंदोलनों से जुड़कर सामाजिक इंजीनियरिंग का विस्तार करना चाहिए। पार्टी को अपने संगठनात्मक ढांचे में युवाओं, महिलाओं, आदिवासियों और अन्य पिछड़े वर्गों को नेतृत्व की पहली पंक्ति में लाना होगा।

यदि BSP अपनी सामाजिक इंजीनियरिंग को इन समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप पुनः परिभाषित और सशक्त करती है, तो यह रणनीति भविष्य में एक बार फिर उत्तर भारत की राजनीति में निर्णायक भूमिका निभा सकती है। यह महज गठबंधन नहीं बल्कि एक सामाजिक समझौता होगा-जिसमें सत्ता की साझेदारी, आर्थिक अवसरों की समानता और पहचान की गरिमा सभी के लिए सुनिश्चित हो सकेगी।

अध्याय 21: BSP की राजनीति में ज़मीनी कार्यकर्ताओं की भूमिका

BSP के ज़मीनी कार्यकर्ताओं की राजनैतिक चेतना और नेतृत्व विकास में भूमिका

बहुजन समाज पार्टी का संगठनात्मक आधारशिला उसके ज़मीनी कार्यकर्ता रहे हैं, जो न केवल प्रचारक थे, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के वास्तविक वाहक भी थे। कांशीराम का यह स्पष्ट दृष्टिकोण था कि कोई भी सामाजिक आंदोलन तब तक प्रभावी नहीं बन सकता जब तक उसमें समर्पित, विचारशील और जागरूक कार्यकर्ताओं की भागीदारी न हो। उन्होंने कार्यकर्ता को केवल एक आदेशपालक या चुनावी रणनीति का हिस्सा नहीं माना, बल्कि उन्हें “बहुजन नायक” की भूमिका में देखा जो समाज को जागरूक, संगठित और प्रेरित कर सके। इसी सोच के तहत BSP के कार्यकर्ता गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती जाकर बहुजन समाज को उसके अधिकारों और राजनैतिक अस्तित्व के प्रति सजग करते रहे।

BSP के इन कार्यकर्ताओं की भूमिका केवल पोस्टर लगाने या रैली करने तक सीमित नहीं थी। वे पार्टी की वैचारिक रीढ़ थे, जिनके माध्यम से कांशीराम और मायावती की विचारधारा लोगों तक पहुँची। ये कार्यकर्ता दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों के बीच जाकर न केवल पार्टी का प्रचार करते, बल्कि उन्हें भारतीय संविधान, सामाजिक न्याय, और अधिकारों की जानकारी भी देते। ऐसे कार्यकर्ताओं ने समाज के उस वर्ग में नेतृत्व की नींव रखी, जो दशकों तक सामाजिक और

राजनैतिक रूप से हाशिए पर था। कार्यकर्ताओं को नेतृत्व की पहली पाठशाला पार्टी के भीतर ही मिली, जहाँ उन्हें जनता से संवाद, संगठन की योजनाओं का संचालन और सामाजिक संघर्षों में भागीदारी जैसे गुणों में प्रशिक्षित किया गया।

BSP की कार्यकर्ता-आधारित राजनीति ने पारंपरिक राजनैतिक सोच को चुनौती दी, जिसमें वंशवाद, जातिवाद और पैसे की ताकत से नेताओं को चुना जाता था। BSP ने यह सिद्ध किया कि एक साधारण कार्यकर्ता भी यदि समाज के प्रति समर्पित है और पार्टी की विचारधारा को जीवन में उतारता है, तो वह संगठन में नेतृत्व की भूमिका तक पहुँच सकता है। कई उदाहरण ऐसे हैं जहाँ एक पोस्टर चिपकाने वाला कार्यकर्ता बाद में विधान सभा या पंचायत का उम्मीदवार बना और चुनाव जीतकर समाज के विकास में भागीदार बना। यह परिवर्तन BSP की उस नीति का परिणाम था जिसमें संगठनात्मक पद निष्ठा, त्याग और वैचारिक प्रतिबद्धता के आधार पर दिए जाते थे, न कि धनबल या राजनैतिक विरासत पर।

BSP के कार्यकर्ता किसी भी सामाजिक आंदोलन की तरह न केवल जमीनी मुद्दों से परिचित थे, बल्कि वे उसके समाधान के लिए पार्टी की रीति-नीति को क्रियान्वित करने में भी अग्रणी भूमिका निभाते थे। जब भूमि अधिकार, आरक्षण, सामाजिक भेदभाव या महिला हिंसा जैसे मुद्दे उठते, तो BSP के कार्यकर्ता जनचेतना अभियान चलाते, विरोध प्रदर्शन करते और प्रशासनिक तंत्र पर दबाव बनाते कि बहुजन समाज के हक़ को सुनिश्चित किया जाए। ऐसे प्रयासों से कार्यकर्ता केवल राजनैतिक साधन नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव के प्रतिनिधि बनते गए। उन्होंने न केवल जनता को पार्टी से जोड़ा, बल्कि समाज में आत्मसम्मान, अधिकार और नेतृत्व की चेतना को भी जगाया।

कार्यकर्ताओं को मजबूत करने के लिए BSP की रणनीतियाँ और संगठन का आत्मनिर्भर मॉडल

BSP ने अपनी राजनैतिक सफलता की नींव ज़मीनी कार्यकर्ताओं के समर्पण पर रखी थी, और इसलिए पार्टी की रणनीति का केंद्र हमेशा कार्यकर्ताओं को मजबूत बनाना रहा। कांशीराम इस बात को भलीभांति समझते थे कि यदि कार्यकर्ता आत्मनिर्भर, विचारधारात्मक रूप से स्पष्ट, और जनता से जुड़ा हुआ नहीं होगा, तो पार्टी की कोई भी नीति या कार्यक्रम ज़मीनी स्तर पर प्रभावशाली नहीं बन पाएगा। इसी उद्देश्य से BSP ने एक विशेष संगठनात्मक मॉडल अपनाया, जिसे पूरी तरह आर्थिक, वैचारिक और सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया गया। इस मॉडल में कार्यकर्ता केवल आदेश पालन करने वाला व्यक्ति नहीं था, बल्कि वह स्थानीय समाज के भीतर नेतृत्व की भूमिका निभाने वाला व्यक्ति था, जो अपने क्षेत्र में पार्टी का चेहरा भी था और नीति का वाहक भी।

BSP ने संगठन को आर्थिक रूप से स्वतंत्र और जनसहयोग आधारित बनाने के लिए 'नौटंकी नहीं चंदा चाहिए' जैसे नारे दिए। यह नारा केवल प्रचार नहीं था, बल्कि एक आर्थिक दर्शन का प्रतिबिंब था, जिसके अनुसार पार्टी को कॉर्पोरेट चंदे या बाहरी दानदाताओं पर आश्रित नहीं होना था। इसके बजाय, BSP ने कार्यकर्ताओं और आम समर्थकों से छोटी-छोटी राशियाँ लेकर संगठन को संचालित करने की परंपरा विकसित की। हर कार्यकर्ता न केवल पार्टी के लिए समय देता था, बल्कि आर्थिक सहयोग भी देता था। इस प्रक्रिया ने कार्यकर्ता को केवल प्रचारक नहीं, बल्कि संगठन का भागीदार और मालिक बनाया। यह मॉडल भारतीय राजनीति में अनोखा था, क्योंकि अन्य दलों के कार्यकर्ता अक्सर

केवल भीड़ जुटाने तक सीमित रहते हैं, जबकि BSP का कार्यकर्ता संगठन चलाने की जिम्मेदारी भी निभाता था।

इसके अतिरिक्त, BSP ने स्थानीय नेतृत्व को सशक्त करने के लिए कार्यकर्ताओं को चुनाव लड़ने के लिए प्रेरित किया और कई कार्यकर्ताओं को विधानसभा तथा लोकसभा के लिए टिकट देकर उनके लिए सत्ता के द्वार खोले। मायावती के कार्यकाल में ऐसे कई उदाहरण सामने आए जहाँ बूथ स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्ताओं को पार्टी ने विधायक और मंत्री तक बनाया। इससे कार्यकर्ताओं के बीच यह विश्वास बना कि संगठन केवल वादे नहीं करता, बल्कि योग्य और समर्पित व्यक्तियों को वास्तव में नेतृत्व का अवसर देता है। इस नीति ने कार्यकर्ताओं को और अधिक निष्ठावान और मेहनती बनाया, क्योंकि उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनका परिश्रम केवल संगठनात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी के रूप में भी फलित होगा।

कार्यकर्ताओं को संगठित करने के लिए BSP ने सामाजिक सरोकारों से जुड़े अभियानों को माध्यम बनाया। शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, आरक्षण के समर्थन, महिला अधिकार, किसान मुद्दे और अल्पसंख्यकों की समस्याओं को लेकर कार्यकर्ताओं को स्थानीय स्तर पर सक्रिय किया गया। इन अभियानों में कार्यकर्ता रैलियाँ निकालते, नुक्कड़ सभाएँ करते, घर-घर संपर्क करते और पार्टी साहित्य वितरित करते। इस सतत संपर्क प्रक्रिया ने BSP के कार्यकर्ता को अपने मोहल्ले, गाँव और जिले में एक विचारशील, सक्रिय और जनसमर्पित नेता के रूप में स्थापित किया।

BSP के कार्यकर्ताओं के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ और संगठनात्मक संकट

BSP के संगठनात्मक ढाँचे की नींव ज़मीनी कार्यकर्ताओं पर टिकी रही है, लेकिन बदलते राजनैतिक परिदृश्य, आंतरिक प्रतिस्पर्धा और बाहरी हस्तक्षेपों ने इस संगठनात्मक मज़बूती को कई बार गहरे संकट में डाला है। कार्यकर्ताओं के समक्ष सबसे पहली और गंभीर चुनौती रही है- राजनैतिक दलों द्वारा किए जाने वाले सुनियोजित प्रयास, जो BSP के प्रशिक्षित और समर्पित कार्यकर्ताओं को तोड़कर उन्हें अपने पाले में लाने के लिए चालाक रणनीति अपनाते रहे हैं। कांग्रेस, भाजपा और समाजवादी पार्टी जैसे दलों ने न केवल कार्यकर्ताओं को व्यक्तिगत पद या लाभ का प्रलोभन देकर तोड़ने की कोशिश की, बल्कि उन्हें सामाजिक रूप से अलग-थलग करने के प्रयास भी किए। ये प्रयास सिर्फ राजनैतिक थे ही नहीं, बल्कि सामाजिक मान-अपमान और दमन की भी नीति के तहत किए जाते रहे, जिससे कार्यकर्ता की निष्ठा डगमगाने लगती थी।

BSP की दूसरी बड़ी चुनौती रही है-संगठन के भीतर की गुटबाज़ी और सत्ता संघर्ष। जब पार्टी उत्तर प्रदेश या अन्य राज्यों में सत्ता में आई, तो कार्यकर्ताओं के बीच पद, टिकट और राजनैतिक लाभ को लेकर आंतरिक प्रतिस्पर्धा तेज़ हो गई। यह प्रतिस्पर्धा कई बार विचारधारा से अधिक व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पर आधारित हो गई, जिससे पार्टी की एकजुटता को नुकसान पहुँचा। स्थानीय नेतृत्व में संघर्ष ने ज़मीनी कार्यकर्ताओं को भ्रमित किया और कई बार वे उस नेतृत्व से विमुख हो गए जिसे वे अपना प्रेरणास्त्रोत मानते थे। इससे पार्टी के भीतर आपसी विश्वास की कमी और संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हुई, जिसने संगठन की गति को बाधित किया।

तीसरी गंभीर चुनौती रही-जातिगत ध्रुवीकरण और बहुजन एकता में विभाजन। कांशीराम और मायावती ने जिस सामाजिक समरसता की नींव रखी थी, उसे तोड़ने के लिए विरोधी दलों ने OBC, SC, ST और मुस्लिम समुदायों के बीच कृत्रिम वैचारिक मतभेद और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न की। उदाहरण के लिए, कुछ दलों ने पिछड़े वर्गों को यह अहसास दिलाने की कोशिश की कि BSP केवल दलितों की पार्टी है, और दलितों को यह बताया कि पार्टी का झुकाव अब पिछड़ों की ओर ज्यादा है। इस रणनीति ने संगठन में न केवल वैचारिक अस्पष्टता पैदा की, बल्कि ज़मीनी कार्यकर्ताओं के सामने यह चुनौती खड़ी की कि वे किस सामाजिक समूह के भीतर प्रभावी रूप से कार्य करें, बिना किसी वर्ग को उपेक्षित महसूस कराए। इससे कार्यकर्ताओं का मनोबल प्रभावित हुआ और उन्हें नीतिगत स्पष्टता के लिए संघर्ष करना पड़ा।

इसके अलावा, चुनावी असफलताओं के दौरान कार्यकर्ताओं को अक्सर सामाजिक अपमान, आर्थिक तंगी और मानसिक थकावट का सामना करना पड़ा। जब BSP सत्ता से बाहर होती, तब कार्यकर्ताओं को न केवल पार्टी के अंदर अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ता, बल्कि समाज में विरोधी विचारधारा वालों से आलोचना, हँसी और बहिष्कार जैसी स्थितियों का भी सामना करना पड़ता था। उनके पास न कोई सरकारी सुरक्षा थी, न कोई आर्थिक संसाधन-फिर भी वे विचारधारा से जुड़े रहने की कोशिश करते रहे। इन कठिन परिस्थितियों में कार्यकर्ता केवल वैचारिक आस्था के आधार पर संगठन से जुड़े रहते, लेकिन पार्टी की ओर से उचित संवाद और मनोबल-संवर्धन न होने पर वे धीरे-धीरे निष्क्रिय होने लगे।

BSP कार्यकर्ताओं की भूमिका: बहुजन आंदोलन की आत्मा

बहुजन समाज पार्टी के ज़मीनी कार्यकर्ताओं को केवल एक राजनैतिक दल के प्रचारक के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति के वाहक के रूप में देखा गया है। कांशीराम ने कार्यकर्ता को सिर्फ पोस्टर चिपकाने वाला या नारे लगाने वाला नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का “संगठित सैनिक” कहा था, जो अन्याय, शोषण और जातिगत उत्पीड़न के विरुद्ध लड़ाई लड़ता है। BSP के कार्यकर्ता ही वह रीढ़ थे, जिन्होंने कांशीराम और मायावती की विचारधारा को गाँव-गाँव, बस्ती-बस्ती, और दलित-बहुजन समुदायों के हर दरवाज़े तक पहुँचाया। वे राजनीति के प्रचारक से ज़्यादा, जन-जागरूकता के अग्रदूत थे।

BSP के कार्यकर्ताओं की भूमिका को समझने के लिए सबसे पहले यह स्वीकार करना आवश्यक है कि यह आंदोलन अपने प्रारंभिक वर्षों में संसाधनों और सत्ता से वंचित था। ऐसे में पार्टी के पास न तो पैसा था, न मीडिया का समर्थन, और न ही बड़े प्रचार अभियान चलाने की क्षमता। इन सभी की भरपाई BSP के कार्यकर्ताओं ने अपने पसीने, समर्पण और साहस से की। वे ट्रेनों में बैठकर अपने पैसे से प्रचार सामग्री लेकर दूरदराज़ के जिलों में पहुँचे, वे साइकिलों पर जनसंपर्क के लिए निकलते थे, और अक्सर प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों में भी बहुजन समाज को जागरूक करने का काम करते थे।

BSP के कार्यकर्ता सामाजिक स्तर पर भी एक महत्वपूर्ण बदलाव का प्रतीक बने। उन्होंने दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों में आत्मसम्मान और अधिकार-चेतना की भावना को जगाया। “हम शासन करने आए हैं, भीख माँगने नहीं”-जैसे नारे सिर्फ शब्द नहीं थे, बल्कि कार्यकर्ताओं द्वारा

गाँव-गाँव जाकर प्रचारित किए गए संकल्प थे। कार्यकर्ता यह विश्वास दिलाते थे कि सत्ता केवल सवर्णों की जागीर नहीं, बल्कि बहुजन वर्ग का भी अधिकार है। वे राजनैतिक चेतना को दलित समाज में इस तरह स्थापित करते थे कि यह चेतना आने वाले वर्षों में मतदान व्यवहार, सामाजिक संवाद और सामूहिक संगठन निर्माण का आधार बन गई।

राजनैतिक दृष्टि से कार्यकर्ताओं की भूमिका उस समय और भी महत्वपूर्ण हो गई जब BSP ने विभिन्न क्षेत्रों में चुनावी सफलता पाई। सत्ता में आने के बाद भी कार्यकर्ता ही वे लोग थे, जिन्होंने प्रशासन और जनता के बीच संवाद कायम रखा। वे यह सुनिश्चित करते थे कि सरकार की योजनाओं का लाभ वंचित वर्गों तक पहुँचे और स्थानीय समस्याओं को पार्टी नेतृत्व तक पहुँचाया जाए। कार्यकर्ता सत्ता और जनता के बीच एक सेतु की तरह काम करते रहे, जिससे पार्टी का जनाधार कायम रहा।

इन कार्यकर्ताओं की निष्ठा की परख तब होती थी जब BSP सत्ता से बाहर होती। उस समय न कोई पद मिलता था, न लाभ, न पहचान-लेकिन फिर भी कार्यकर्ता विचारधारा के प्रति अडिग रहते थे। यही कारण था कि मायावती स्वयं अपने सार्वजनिक भाषणों में बार-बार “छोटे-छोटे कार्यकर्ताओं” को धन्यवाद देती थीं, क्योंकि वही BSP की आत्मा थे। वे किसी बाहरी प्रचार या लाभ की अपेक्षा से नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव की आस्था से काम करते थे।

BSP का बहुजन आंदोलन कार्यकर्ता-आधारित इसलिए भी रहा क्योंकि यह एक ऐसा आंदोलन था जिसे कोई ठोस सामाजिक मीडिया या कॉर्पोरेट फंडिंग नहीं संभाल रही थी। यह दलित-बहुजन चेतना पर आधारित था, और इस चेतना को जीवित रखने और फैलाने का कार्य

केवल ज़मीनी कार्यकर्ता ही कर सकते थे। वे “बहुजन समाज का मिशन” लेकर घर-घर जाते थे, किताबें बाँटते थे, भीमराव अंबेडकर और काशीराम के विचार सुनाते थे, और लोगों को समझाते थे कि वोट केवल अधिकार नहीं, बल्कि परिवर्तन का माध्यम है।

भविष्य की दिशा: कार्यकर्ताओं को और सशक्त बनाने की रणनीति

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की राजनैतिक ताकत उसके नेतृत्व से उतनी नहीं आई, जितनी ज़मीनी कार्यकर्ताओं के समर्पण, त्याग और कठोर श्रम से। काशीराम ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों से ही यह बात स्पष्ट कर दी थी कि यदि दलित, पिछड़े और वंचित वर्गों को सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करनी है, तो उन्हें एक मज़बूत संगठन और समर्पित कार्यकर्ता वर्ग की आवश्यकता होगी। अब, जबकि देश का सामाजिक, राजनैतिक और तकनीकी परिदृश्य तेजी से बदल रहा है, BSP को अपने कार्यकर्ता तंत्र को भी नई दिशा में पुनर्गठित और सशक्त करने की आवश्यकता है, ताकि वह आने वाली चुनौतियों का न केवल सामना कर सके बल्कि एक बार फिर बहुजन राजनीति को निर्णायक मोड़ पर पहुँचा सके।

भविष्य में BSP की सबसे बड़ी प्राथमिकता यही होगी कि वह युवाओं को अपने संगठन से जोड़कर एक नई पीढ़ी के कार्यकर्ता तैयार करे, जो न केवल विचारधारा से प्रेरित हों बल्कि तकनीकी रूप से सशक्त भी हों। बीते कुछ वर्षों में यह देखा गया है कि सोशल मीडिया, डिजिटल संवाद और डेटा आधारित चुनावी रणनीति भारतीय राजनीति में निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं। BSP अब इस बात को समझ रही है कि उसके पारंपरिक तरीकों के साथ-साथ डिजिटल संगठनात्मक ढाँचा भी विकसित करना अनिवार्य हो गया है। इसी उद्देश्य से पार्टी ने WhatsApp

ग्रुपों, फेसबुक पेजों और ट्विटर अभियानों के माध्यम से कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने और संगठन को डिजिटल रूप में विस्तारित करने की पहल की है।

भविष्य की रणनीति यह भी होगी कि BSP अपने ज़मीनी कार्यकर्ताओं को एक सुसंगठित और शिक्षित कैडर में बदले, जो केवल प्रचारक न होकर सामाजिक न्याय के वास्तविक योद्धा हों। इसके लिए कार्यकर्ताओं को संविधान, दलित इतिहास, सामाजिक न्याय की अवधारणाओं, चुनावी प्रक्रियाओं और राजनैतिक विमर्श की समझ से लैस किया जाएगा। पार्टी का मानना है कि एक शिक्षित कार्यकर्ता ही जनता को बेहतर ढंग से समझ सकता है कि BSP क्यों आवश्यक है और क्यों यह आंदोलन किसी भी अन्य राजनैतिक दल से भिन्न है।

इसके अतिरिक्त, BSP ने यह भी महसूस किया है कि अब समय आ गया है जब कार्यकर्ताओं को सिर्फ नारे लगाने या झंडा उठाने की भूमिका से ऊपर उठाकर नीति निर्माण और प्रशासनिक संवाद की प्रक्रियाओं में भी शामिल किया जाए। इसके लिए पार्टी ग्राम, ब्लॉक, ज़िला और राज्य स्तर पर प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन कर रही है, जहाँ कार्यकर्ताओं को न केवल विचारधारा का ज्ञान दिया जाएगा, बल्कि उन्हें शासन-प्रशासन से जुड़ी जानकारी भी दी जाएगी, जिससे वे जनसमस्याओं को बेहतर ढंग से समझ सकें और उनके समाधान के लिए ठोस प्रयास कर सकें।

BSP की भविष्य रणनीति में यह भी शामिल है कि कार्यकर्ताओं के बीच गुटबाज़ी, जातिगत पूर्वाग्रह और नेतृत्व संघर्ष की प्रवृत्तियों पर सख्ती से नियंत्रण रखा जाए। पार्टी अब संगठनात्मक अनुशासन को मज़बूत करने की दिशा में बढ़ रही है और ऐसा तंत्र विकसित किया जा रहा है जिसमें

कार्यकर्ता केवल व्यक्तिगत लाभ या चुनावी अवसरों की उम्मीद में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के संकल्प के साथ काम करें। संगठन की एकता, अनुशासन और वैचारिक प्रतिबद्धता को बनाए रखने के लिए नेतृत्व अब सख्त निगरानी और मूल्यांकन की प्रणाली लागू कर रहा है, जिससे कोई भी कार्यकर्ता यदि पार्टी लाइन से भटकता है तो उसे समय रहते पुनर्प्रशिक्षित किया जा सके या आवश्यक कार्रवाई की जा सके।

BSP यह भी समझ रही है कि बदलते सामाजिक समीकरणों में कार्यकर्ताओं का काम सिर्फ दलित या बहुजन समाज तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उन्हें समाज के अन्य वंचित समूहों जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े सवर्णों, महिलाओं, विकलांगों और अल्पसंख्यकों तक भी पहुँचना होगा। इसके लिए BSP एक समावेशी संगठनात्मक दृष्टिकोण विकसित कर रही है, जिसमें हर कार्यकर्ता को समाज के व्यापक हिस्से को जोड़ने की जिम्मेदारी दी जाएगी। यह केवल चुनावी रणनीति नहीं होगी, बल्कि सामाजिक समरसता और प्रतिनिधित्व की दिशा में एक नये युग की शुरुआत होगी।

इस प्रकार, BSP की कार्यकर्ता-नीति अब केवल पारंपरिक तरीकों तक सीमित नहीं रहकर एक व्यापक, आधुनिक और सशक्त जनांदोलन का रूप ले रही है। कांशीराम द्वारा रखी गई उस नींव को अब मायावती नेतृत्व और आने वाली पीढ़ी के युवा कार्यकर्ता एक नई दिशा और उन्नत साधनों के साथ आगे बढ़ाने के लिए तैयार हो रहे हैं। यदि BSP इन रणनीतियों को व्यवस्थित रूप में लागू कर पाती है, तो कार्यकर्ताओं की यह नई पीढ़ी न केवल पार्टी को फिर से सत्ता में ला सकती है, बल्कि बहुजन आंदोलन को भारतीय राजनीति का स्थायी और निर्णायक स्तंभ भी बना सकती है।

अध्याय 22: उत्तर प्रदेश में BSP की पहली जीत और कांशीराम की ऐतिहासिक भूमिका

उत्तर प्रदेश की राजनीति में BSP की उभरती ताकत

उत्तर प्रदेश की राजनीति भारतीय लोकतंत्र का केंद्रबिंदु रही है, क्योंकि यह राज्य लोकसभा की सर्वाधिक सीटें (80) प्रदान करता है और इसकी जनसंख्या अनेक जातीय, धार्मिक और सामाजिक विविधताओं को समेटे हुए है। स्वतंत्रता के बाद से दशकों तक यह राज्य कांग्रेस पार्टी के प्रभुत्व में रहा, जहाँ शासन व्यवस्था मुख्य रूप से ऊँची जातियों-विशेषकर ब्राह्मणों, ठाकुरों और बनियों-के नियंत्रण में थी। इन जातियों का सत्ता पर वर्चस्व केवल प्रशासनिक पदों तक सीमित नहीं था, बल्कि राजनैतिक प्रतिनिधित्व और संसाधनों के वितरण पर भी उनका नियंत्रण बना रहा। यह जातिगत वर्चस्व ही उत्तर प्रदेश की उस सामाजिक संरचना की नींव बना, जिसने शेष समाज, विशेषकर बहुजन, पिछड़ा, दलित और मुस्लिम समुदायों को लंबे समय तक राजनैतिक निर्णय प्रक्रिया से बाहर रखा।

1970 और 1980 के दशक में जब देशभर में सामाजिक न्याय की चेतना फैल रही थी, तब भी उत्तर प्रदेश की राजनीति में सत्ता का चरित्र अपरिवर्तित था। यही वह समय था जब कांशीराम, जो पहले से ही BAMCEF और DS-4 जैसे संगठनों के माध्यम से बहुजन समाज के भीतर जागरूकता फैला रहे थे, ने एक स्पष्ट राजनैतिक संगठन की आवश्यकता महसूस की। 1984 में BSP की स्थापना के पीछे यही उद्देश्य

था कि दलितों, पिछड़ों और अन्य वंचित वर्गों की राजनैतिक भागीदारी सुनिश्चित की जाए। कांशीराम का दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट था-बहुजन समाज को सत्ता में भागीदारी दिलाए बिना सामाजिक समानता संभव नहीं।

कांशीराम ने उत्तर प्रदेश को अपनी राजनैतिक प्रयोगशाला के रूप में चुना क्योंकि यहाँ की जातिगत संरचना और आबादी BSP की विचारधारा के लिए सबसे उपयुक्त आधार देती थी। उन्होंने समझा कि यदि उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज को संगठित किया जाए, तो यह न केवल राज्य में सत्ता परिवर्तन ला सकता है, बल्कि देश की राजनीति की दिशा भी बदल सकता है। इसलिए उन्होंने 'वोट हमारा, राज तुम्हारा – नहीं चलेगा' जैसे नारों से दलित-पिछड़े समाज को राजनैतिक रूप से जागरूक किया और यह भावना फैलाई कि सत्ता केवल शोषक वर्ग की बपौती नहीं है।

BSP ने धीरे-धीरे गाँवों से लेकर शहरों तक अपना संगठनात्मक ढाँचा फैलाया और प्रत्येक क्षेत्र में कार्यकर्ताओं की एक मजबूत फौज खड़ी की। कांशीराम ने 'कैडर आधारित राजनीति' की एक नई मिसाल पेश की, जहाँ नेताओं के बजाय कार्यकर्ताओं की भूमिका को प्राथमिकता दी गई। इस रणनीति के तहत बहुजन समाज को केवल मतदान के समय ही नहीं, बल्कि पूरे चुनावी चक्र में सक्रिय भूमिका निभाने की प्रेरणा दी गई। इसी प्रक्रिया में BSP उत्तर प्रदेश में एक शक्तिशाली राजनैतिक ताकत के रूप में उभरी-एक ऐसा दल जो न तो केवल दलित हितों तक सीमित था, न ही ऊँची जातियों के वर्चस्व को स्वीकार करता था।

उत्तर प्रदेश में BSP की उभरती ताकत केवल चुनावी आँकड़ों तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक चेतना और आत्म-सम्मान की

एक लहर थी। यह वही लहर थी जो आने वाले वर्षों में उत्तर प्रदेश की सत्ता की चाबी अपने हाथों में लेने वाली थी, और जिसमें कांशीराम का योगदान निर्णायक और ऐतिहासिक था।

BSP की शुरुआती चुनौतियाँ और राजनैतिक संघर्ष

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना भले ही एक वैचारिक आंदोलन के रूप में हुई थी, लेकिन इसे उत्तर प्रदेश की सत्ता तक पहुँचने के रास्ते में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। उत्तर प्रदेश की राजनीति 1980 और 1990 के दशक तक पूरी तरह ऊँची जातियों के नियंत्रण में थी, जहाँ ब्राह्मण, ठाकुर और बनिया समुदाय न केवल सत्ता के केंद्र में थे, बल्कि प्रशासन, मीडिया और पुलिस तंत्र में भी उनका गहरा प्रभाव था। इन वर्गों के प्रभुत्व ने बहुजन समाज और पिछड़े वर्गों को लंबे समय तक राजनैतिक रूप से हाशिए पर रखा। ऐसे वातावरण में BSP का राजनैतिक रूप से उभरना स्वयं में एक असाधारण चुनौती थी।

कांशीराम जब उत्तर प्रदेश में अपनी विचारधारा लेकर उतरे, तब उनका सीधा मुकाबला उन दलों से था, जिन्होंने दशकों तक सत्ता पर एकाधिकार बनाए रखा था—जैसे कि कांग्रेस, जो लंबे समय तक दलितों और अल्पसंख्यकों की हितैषी बनने का दावा करती रही, लेकिन वास्तविक प्रतिनिधित्व देने से हमेशा चूकती रही। समाजवादी पार्टियाँ जैसे लोकदल, जनता दल और बाद में समाजवादी पार्टी (SP) ने भी पिछड़ों के नाम पर राजनीति की, लेकिन वे भी दलितों और आदिवासियों को सिर्फ वोट बैंक तक सीमित रखती रहीं। इस द्वैधता और दिखावटी प्रतिनिधित्व के बीच, BSP को असली राजनैतिक वैकल्पिक शक्ति बनने के लिए जमीनी संघर्ष करना पड़ा।

सबसे बड़ी चुनौती थी-जातिगत ध्रुवीकरण को तोड़ना। उत्तर प्रदेश की चुनावी राजनीति में जातियों के आधार पर वोटिंग पैटर्न गहराई से जड़े हुए थे। यहाँ ब्राह्मण कांग्रेस के साथ, यादव SP के साथ और बनिया वर्ग भाजपा के साथ खड़ा रहता था। ऐसे में कांशीराम को एक नई सामाजिक एकता गढ़नी थी, जो दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यकों को एक मंच पर ला सके। यह कोई आसान कार्य नहीं था, क्योंकि इन वर्गों के बीच भी ऐतिहासिक सामाजिक दूरी, आपसी अविश्वास और संसाधनों की असमानता मौजूद थी।

इसके अलावा, BSP को संगठनात्मक रूप से भी खुद को खड़ा करना था। संसाधनों की कमी, मीडिया में स्थान की अनुपस्थिति, चुनावी खर्च का दबाव और विपक्षी दलों द्वारा कार्यकर्ताओं को तोड़ने की साजिशें- इन सबने पार्टी के शुरुआती वर्षों को बेहद कठिन बना दिया। सत्ता में भागीदारी का सपना लेकर आगे बढ़ने वाली BSP को एक-एक गाँव में कार्यकर्ता खड़ा करना पड़ा, वोटर्स को अपनी विचारधारा समझानी पड़ी और “हम सत्ता के लिए नहीं, समाज परिवर्तन के लिए हैं” का नारा देकर भरोसा जीतना पड़ा।

इन सबके बीच सबसे बड़ा योगदान कांशीराम का था, जिन्होंने ‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’ को केवल नारा नहीं रहने दिया, बल्कि उसे एक संगठनात्मक सिद्धांत बनाया। उन्होंने कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया, साहित्य प्रकाशित करवाया और गाँव-गाँव जाकर सम्मेलन आयोजित किए। यह वैचारिक सघनता और जमीनी मेहनत ही थी, जिसने BSP को उत्तर प्रदेश की मुख्यधारा राजनीति में खड़ा कर दिया।

इस प्रकार, BSP की प्रारंभिक यात्रा संघर्षों, बाधाओं और चुनौतियों से भरी रही। लेकिन यही संघर्ष उसे एक आंदोलनात्मक पार्टी के रूप में स्थापित करने में सहायक बना। इन संघर्षों से निकली राजनैतिक चेतना ने ही आगे चलकर 1993 और फिर 1995 में सत्ता के शिखर तक पहुँचने की नींव रखी।

1993 का विधानसभा चुनाव और BSP-SP गठबंधन

1993 का उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव भारतीय राजनीति में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ, जहाँ मंडल बनाम कमंडल की वैचारिक लड़ाई पूरी स्पष्टता से सामने आई। एक ओर भारतीय जनता पार्टी राम मंदिर आंदोलन और हिंदुत्व की राजनीति के सहारे जनमानस को भावनात्मक रूप से अपने पक्ष में करने में लगी थी, वहीं दूसरी ओर बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी ने सामाजिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित गठबंधन करके इतिहास रच दिया। यह गठबंधन महज दो दलों की राजनैतिक मजबूरी नहीं था, बल्कि पिछड़े, दलितों और अल्पसंख्यकों के साझा सामाजिक-राजनैतिक संघर्ष का परिणाम था।

गठबंधन का नेतृत्व मुलायम सिंह यादव और कांशीराम ने किया। दोनों नेताओं ने मिलकर हिंदुत्व की राजनीति के उभार को रोकने के लिए नारा दिया-“जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी।” यह नारा वास्तव में मंडल आयोग की सिफारिशों के बाद सामाजिक न्याय की नई राजनैतिक चेतना को दर्शा रहा था। 1993 के चुनाव में BSP-SP गठबंधन ने BJP को रोका और यह साबित किया कि बहुजन और पिछड़े वर्ग यदि संगठित हो जाएं, तो वे सत्ता के केंद्र तक पहुँच सकते हैं।

चुनावी नतीजों में गठबंधन को उल्लेखनीय सफलता मिली। SP को 109 सीटें और BSP को 67 सीटें मिलीं, जिससे दोनों दलों को बहुमत के करीब पहुँचने में मदद मिली। BJP को 177 सीटें मिलीं, लेकिन गठबंधन ने उसे सत्ता से बाहर रखा। यह घटना महज चुनावी गणित नहीं थी, बल्कि सामाजिक समीकरणों की दिशा को बदलने वाली एक रणनीतिक जीत थी। पहली बार ऐसा हुआ कि उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में ब्राह्मण, ठाकुर और बनिया प्रभुत्व वाली राजनीति को हाशिये पर कर दलित-पिछड़ा गठजोड़ सत्ता के केंद्र में पहुँचा।

हालाँकि यह गठबंधन अधिक समय तक नहीं टिक सका। 2 जून 1995 को “गेस्ट हाउस कांड” नामक घटना ने इस गठबंधन को समाप्त कर दिया। लखनऊ में स्थित राज्य अतिथि गृह (स्टेट गेस्ट हाउस) में BSP प्रमुख मायावती और उनके समर्थकों पर SP कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया हमला इस गठबंधन के अंत की शुरुआत बना। मायावती ने इसके बाद SP से समर्थन वापस ले लिया और BJP के समर्थन से अपनी सरकार बनाई। यह घटना भारतीय राजनीति में उस समय की जातिगत, वैचारिक और सत्ता की जटिलता को उजागर करती है।

1995: BSP की पहली सरकार और कांशीराम की निर्णायक भूमिका

1995 का वर्ष उत्तर प्रदेश की राजनीति में एक ऐतिहासिक परिवर्तन का प्रतीक बन गया, जब बहुजन समाज पार्टी ने पहली बार सत्ता प्राप्त की और मायावती राज्य की मुख्यमंत्री बनीं। यह केवल दलित राजनीति की नहीं, बल्कि स्वतंत्र भारत के लोकतांत्रिक इतिहास की एक क्रांतिकारी घटना थी-क्योंकि पहली बार किसी अनुसूचित जाति की महिला ने सबसे बड़े राज्य की कमान संभाली। इस उपलब्धि के पीछे जो व्यक्ति सबसे

प्रभावशाली और निर्णायक भूमिका में थे, वह थे कांशीराम, जिन्होंने न केवल इस आंदोलन की नींव रखी थी, बल्कि एक ठोस रणनीति और संगठन तैयार करके बहुजन राजनीति को सत्ता के दरवाजे तक पहुँचाया।

कांशीराम का मानना था कि सत्ता सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र प्रभावी माध्यम है। इस सिद्धांत को केंद्र में रखते हुए उन्होंने 1995 की राजनीति को एक अवसर के रूप में देखा और SP-BSP गठबंधन के टूटने के बाद BJP के समर्थन से मायावती की सरकार बनवाई। यह निर्णय कई आलोचनाओं का कारण बना, क्योंकि BJP और BSP की वैचारिक दिशाएँ एक-दूसरे के विरोध में थीं। लेकिन कांशीराम के लिए यह केवल सत्ता का सौदा नहीं था, बल्कि एक गहरी राजनैतिक रणनीति थी-जिसके माध्यम से उन्होंने बहुजन समाज को यह संदेश दिया कि यदि दलित समाज एकजुट हो जाए, तो वह किसी भी सत्ता समीकरण का केंद्र बिंदु बन सकता है।

इस सरकार का गठन 3 जून 1995 को हुआ, और यद्यपि इसका कार्यकाल केवल चार महीने (18 अक्टूबर 1995 तक) रहा, लेकिन इसने भारतीय राजनीति में दूरगामी प्रभाव छोड़ा। कांशीराम ने मायावती को नेतृत्व के लिए तैयार किया था और उनके द्वारा दलित समुदाय में आत्मविश्वास भरने का कार्य किया गया। मायावती ने स्वयं कहा था कि यह सरकार कांशीराम की दूरदृष्टि और संगठित रणनीति का परिणाम है।

इस कालखंड में सरकार ने कई प्रतीकात्मक और प्रशासनिक कदम उठाए, जिनमें प्रमुख थे-दलित प्रतीकों, स्मारकों, और नेताओं को सम्मान देना, दलित बस्तियों को विशेष योजनाओं से जोड़ना, प्रशासनिक सेवाओं में बहुजन प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना, और सरकारी नीति निर्माण में दलित हितों को प्राथमिकता देना। यह वह समय

था जब पहली बार दलितों को लगा कि सरकार उनकी है, और वे भी सत्ता के साझीदार हो सकते हैं।

BSP की पहली सरकार में कांशीराम की जो रणनीति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, वह थी सत्ता का प्रयोग सामाजिक चेतना बढ़ाने के लिए करना। वह जानते थे कि सत्ता में आने के बाद संगठन को और मजबूत करने, दलित-पिछड़े समाज को प्रशासनिक भागीदारी का अनुभव देने, और राजनैतिक प्रशिक्षण देने का समय मिलेगा। यही कारण था कि उन्होंने एक अल्पकालिक लेकिन सशक्त सरकार बनाकर बहुजन राजनीति की नींव को न केवल वैधता दी, बल्कि उसे निर्णायक मोड़ पर ला खड़ा किया।

यह स्पष्ट है कि 1995 की BSP सरकार केवल एक प्रशासनिक प्रयोग नहीं था, बल्कि यह उस दशकों पुराने संघर्ष का परिणाम था, जिसमें कांशीराम और उनके हज़ारों ज़मीनी कार्यकर्ताओं ने एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन का सपना देखा था। मायावती का मुख्यमंत्री बनना इस सपने की पहली वास्तविक परिणति थी। यह जीत सत्ताभोग की नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान और न्याय की जीत थी।

BSP की पहली सरकार की प्रमुख नीतियाँ और राजनैतिक प्रभाव

BSP की 1995 की पहली सरकार का कार्यकाल यद्यपि अल्पकालिक था, परन्तु इसका राजनैतिक और सामाजिक प्रभाव दूरगामी रहा। यह सरकार मात्र चार महीने (3 जून 1995 से 18 अक्टूबर 1995 तक) रही, लेकिन इस अवधि में बहुजन समाज के आत्मबल और आत्मगौरव को जो नई पहचान मिली, उसने पूरे उत्तर भारत की राजनीति को झकझोर कर रख दिया। इस सरकार ने साबित किया कि यदि राजनैतिक इच्छाशक्ति हो तो वंचित समाज भी सत्ता की भागीदारी सुनिश्चित कर सकता है।

सरकार बनते ही मायावती ने स्पष्ट कर दिया कि यह सरकार दलितों, पिछड़ों और वंचितों की होगी, और उसका प्राथमिक उद्देश्य सामाजिक न्याय को संस्थागत रूप देना होगा। सरकार ने प्रशासन में प्रतिनिधित्व बढ़ाने हेतु निचले स्तर से लेकर उच्च प्रशासनिक सेवाओं तक बहुजन समाज के लोगों को प्राथमिकता देना शुरू किया। उन्होंने SC/ST आरक्षण के अनुपालन की सख्ती से निगरानी की, और यह सुनिश्चित किया कि आरक्षित पद खाली न रहें। साथ ही, दलित बस्तियों में बुनियादी सुविधाओं के विकास-जैसे सड़कों, बिजली, स्कूल, और स्वास्थ्य सेवाओं-के लिए विशेष योजनाएँ आरंभ की गईं।

BSP सरकार ने पहली बार सार्वजनिक रूप से दलित महापुरुषों-जैसे डॉ. भीमराव अंबेडकर, संत रविदास, कबीर, और नारायण गुरु-की स्मृति में स्मारक, पार्क, और सांस्कृतिक संस्थान बनाने की घोषणा की। इससे दलित समाज को प्रतीकात्मक स्वाभिमान प्राप्त हुआ, जो वर्षों तक उपेक्षित रहा था। यह सत्ता की भाषा में दलित गौरव का उद्घोष था। मायावती ने प्रशासनिक कार्य संस्कृति को भी प्रभावित किया-पुलिस और नौकरशाही को स्पष्ट निर्देश दिए गए कि दलितों के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव या अत्याचार बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। इन निर्देशों का असर यह हुआ कि ग्रामीण स्तर तक दलितों ने पहली बार अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाना शुरू किया।

राजनैतिक दृष्टि से यह सरकार विपक्षी दलों के लिए एक चेतावनी थी कि बहुजन समाज अब केवल मतदाता नहीं, बल्कि निर्णायक सत्ता शक्ति बन चुका है। BJP, कांग्रेस और समाजवादी पार्टी जैसे दलों ने इस परिवर्तन को गंभीरता से लिया और अपने सामाजिक समीकरणों पर पुनर्विचार शुरू कर दिया। BSP की इस सरकार ने साबित कर दिया कि

दलित-पिछड़ा गठजोड़ यदि संगठित हो, तो वह किसी भी सत्ता को चुनौती देने की क्षमता रखता है।

हालाँकि इस अल्पकालिक सरकार की आलोचना भी हुई। विपक्ष ने आरोप लगाए कि BSP केवल दलितों के प्रतीकों पर ध्यान दे रही है और प्रशासनिक दक्षता पर कम। लेकिन इन आरोपों के बावजूद बहुजन समाज में जो ऊर्जा और आत्मसम्मान इस सरकार ने पैदा किया, वह आलोचनाओं से कहीं अधिक प्रभावशाली और प्रेरणादायक सिद्ध हुआ।

इस प्रकार, BSP की पहली सरकार ने यह सिद्ध किया कि सत्ता प्राप्त कर लेने मात्र से बदलाव नहीं आता-बल्कि सत्ता का प्रयोग यदि नीतिगत, संगठनात्मक और सामाजिक दृष्टि से सही दिशा में किया जाए, तो वह हाशिए के समाज को केंद्र में ला सकता है। यह सरकार भले ही संख्यात्मक रूप से अल्प रही हो, लेकिन राजनैतिक रूप से यह एक दीर्घकालिक सामाजिक क्रांति का प्रारंभ बन गई।

BSP की पहली जीत के बाद कांशीराम की भविष्य की रणनीति

1995 में BSP की ऐतिहासिक जीत के बाद कांशीराम ने यह भलीभांति समझ लिया कि यह मात्र एक शुरुआत है-सत्ता में प्रवेश तो हुआ है, लेकिन उसे स्थायी बनाने के लिए एक दीर्घकालिक रणनीति की आवश्यकता है। उनकी दृष्टि सिर्फ सरकार चलाने तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह सत्ता के सामाजिक पुनर्वितरण और प्रशासनिक ढांचे के पुनर्गठन की ओर केंद्रित थी। उनका लक्ष्य एक ऐसी राजनैतिक संस्कृति विकसित करना था जिसमें बहुजन समाज केवल सत्ता के सहभागी नहीं, बल्कि नीति निर्धारक बनें।

इस लक्ष्य को पाने के लिए कांशीराम ने संगठनात्मक दृष्टि से BSP को और सुदृढ़ किया। उन्होंने पार्टी कैडर को निर्देश दिया कि वह हर जिले, हर गाँव, और हर समुदाय में बहुजन चेतना को और तेज़ करे। इसके लिए “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” के नारे को केवल प्रचार तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि इसे व्यवहार में बदलने के प्रयास शुरू किए गए। पार्टी के कार्यकर्ताओं को पुनः संगठित किया गया, प्रशिक्षित किया गया और उन्हें दीर्घकालिक आंदोलन का हिस्सा बनाने की दिशा में प्रेरित किया गया।

कांशीराम ने एक और बड़ी रणनीति पर कार्य शुरू किया-अन्य राज्यों में BSP का विस्तार। उनका मानना था कि यदि उत्तर प्रदेश में बहुजन राजनीति स्थिर और प्रभावशाली बनानी है, तो यह जरूरी है कि पड़ोसी राज्यों में भी ऐसा ही सामाजिक-राजनैतिक वातावरण विकसित किया जाए। उन्होंने मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब, दिल्ली और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में संगठन को फैलाने के लिए वरिष्ठ नेताओं और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को भेजा। यह प्रयास इस विचार से प्रेरित था कि यदि बहुजन समाज का राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक दबदबा बनेगा, तभी उत्तर प्रदेश में भी सत्ता पर स्थायी पकड़ संभव होगी।

उन्होंने महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने पर भी विशेष ध्यान दिया। कांशीराम मानते थे कि बहुजन आंदोलन तब तक अधूरा रहेगा जब तक महिलाएँ-विशेषतः दलित और पिछड़ी महिलाएँ-संगठन की धुरी नहीं बनतीं। इसी नीति का परिणाम था कि मायावती को उत्तर प्रदेश की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री के रूप में सामने लाया गया, जो स्वयं एक रणनीतिक कदम था-प्रतीकात्मक और व्यावहारिक दोनों ही स्तरों पर।

कांशीराम के नेतृत्व में BSP की ऐतिहासिक सफलता

1995 में उत्तर प्रदेश में BSP की पहली सरकार का गठन केवल एक राजनैतिक घटना नहीं था, बल्कि यह भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय की एक निर्णायक विजय थी। कांशीराम के नेतृत्व में यह सफलता न केवल दलित, पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए प्रेरणा बनी, बल्कि इसने यह भी सिद्ध कर दिया कि भारत जैसे जातिगत रूप से विभाजित समाज में संगठित सामाजिक चेतना सत्ता के समीकरण बदल सकती है। यह वह दौर था जब पहली बार किसी दलित नेतृत्व ने एक विशाल और रणनीतिक रूप से जटिल राज्य की सत्ता को अपने विचारधारा-आधारित आंदोलन के बल पर प्राप्त किया।

कांशीराम ने यह साबित कर दिया कि राजनीति केवल संख्या के खेल से नहीं, बल्कि संगठनात्मक अनुशासन, वैचारिक स्पष्टता और सामाजिक प्रतिबद्धता से जीती जाती है। उन्होंने जाति-आधारित उत्पीड़न के विरुद्ध एक वैचारिक ढांचा प्रस्तुत किया जो न केवल चुनावों तक सीमित था, बल्कि शिक्षा, आत्मसम्मान और सशक्तिकरण के माध्यम से समाज के पुनर्निर्माण की योजना लेकर आया। BSP की इस सफलता ने उस मिथक को भी तोड़ दिया कि सत्ता में केवल ऊँची जातियों की भागीदारी स्वाभाविक है।

यह जीत उस दीर्घकालिक संघर्ष का परिणाम थी जिसमें कांशीराम ने वर्षों तक बहुजन समाज को यह विश्वास दिलाया कि सत्ता केवल प्रतीकात्मक नहीं, वास्तविक हो सकती है। उन्होंने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” के सिद्धांत को जमीनी राजनीति में स्थापित कर दिया। उन्होंने यह भी दिखाया कि यदि दलित, पिछड़े और मुस्लिम

समुदायों को एक साझा मंच पर संगठित किया जाए तो वे न केवल सरकार बना सकते हैं, बल्कि नीतियों को भी दिशा दे सकते हैं।

कांशीराम के नेतृत्व की सफलता इसलिए भी ऐतिहासिक थी क्योंकि उन्होंने राजनैतिक जागरूकता को केवल दलित आंदोलन तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने बहुजन समाज में नए राजनैतिक नेतृत्व को जन्म दिया, उसे प्रशिक्षित किया और उसे नीतिगत व प्रशासनिक संरचनाओं में भागीदार बनाया। इस रणनीति का परिणाम था कि बहुजन समाज पहली बार न केवल चुनावों में उम्मीदवार बना, बल्कि विधायक, मंत्री, और मुख्यमंत्री के रूप में सत्ता में भागीदार भी बना।

1995 की सरकार के गठन ने कांशीराम की उस भविष्यदृष्टि को भी सिद्ध किया, जिसमें उन्होंने कहा था कि “हम सिर्फ विरोध नहीं करेंगे, हम शासन भी करेंगे” इस विचार ने भारत की राजनीति में एक नई धारा की शुरुआत की, जिसमें सत्ता केवल उच्च जातियों के विशेषाधिकार से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता के आधार पर परिभाषित की गई।

कांशीराम की यह सफलता मायावती के नेतृत्व में आगे बढ़ी, जिन्होंने बाद में पूर्ण बहुमत की सरकार बनाकर उस वैचारिक आंदोलन को और मजबूत किया। लेकिन इस पूरे राजनैतिक नवाचार की आधारशिला 1995 में कांशीराम ने ही रखी थी। यही कारण है कि भारतीय राजनीति में कांशीराम का योगदान केवल एक राजनैतिक नेता के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांतिकारी के रूप में याद किया जाता है।

अध्याय 23:

मुलायम सिंह यादव के साथ गठबंधन – समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी का मिलन

उत्तर प्रदेश की राजनीति में 1980 और 1990 के दशकों तक कांग्रेस पार्टी का प्रभाव धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा था। इसके साथ ही राज्य की राजनीति में एक तीव्र जातिगत ध्रुवीकरण देखने को मिला, जिससे दो मुख्य विचारधाराएं उभरीं-समाजवादी विचारधारा और बहुजन विचारधारा। समाजवादी विचारधारा का नेतृत्व मुलायम सिंह यादव कर रहे थे, जो पिछड़े वर्गों को सत्ता में उचित प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए प्रतिबद्ध थे। दूसरी ओर, बहुजन विचारधारा का नेतृत्व कांशीराम ने संभाला, जो दलितों, पिछड़ों और अन्य वंचित समुदायों को एकजुट कर उन्हें राजनैतिक और सामाजिक अधिकार दिलाने के लिए संघर्षरत थे। भाजपा की आक्रामक हिंदुत्ववादी राजनीति और कांग्रेस की ब्राह्मणवादी नीतियों के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा खड़ा करने के उद्देश्य से, 1993 में बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी के बीच ऐतिहासिक गठबंधन हुआ। यह गठबंधन न केवल जातिगत वर्चस्व को चुनौती देने के लिए बना, बल्कि इसने उत्तर प्रदेश की सत्ता संरचना और राजनैतिक संतुलन को पूरी तरह से पुनर्परिभाषित कर दिया।

गठबंधन की पृष्ठभूमि और कांशीराम की रणनीति

कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी को एक वैचारिक और सांगठनिक आंदोलन के रूप में स्थापित किया था, जिसका उद्देश्य बहुजन हिताय,

बहुजन सुखाय था। वे प्रारंभ से ही इस बात पर बल देते थे कि दलितों और पिछड़ों को एकजुट कर ही सामूहिक शक्ति बनाई जा सकती है। कांशीराम की रणनीति में यह स्पष्ट था कि बहुजन और पिछड़े वर्गों की साझा राजनैतिक चेतना ही उन्हें सत्ता के केंद्र तक पहुँचा सकती है। इसके लिए उन्होंने पिछड़ों के साथ सामाजिक और राजनैतिक साझेदारी बनाने की दिशा में लगातार प्रयास किए। उनका यह मानना था कि भाजपा की सांप्रदायिक राजनीति और कांग्रेस की जातिवादी व्यवस्था का मुकाबला केवल एक सशक्त सामाजिक-राजनैतिक गठबंधन से ही किया जा सकता है। इस सोच को साकार करने के लिए 1993 में उन्होंने समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन का निर्णय लिया, जिसमें समान विचारधारा और सामाजिक सरोकारों के आधार पर मिलकर चुनाव लड़ने की योजना बनाई गई।

गठबंधन की शर्तें और बहुजन समाज पार्टी की भागीदारी

गठबंधन के दौरान समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के बीच यह समझौता हुआ कि सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी और दोनों दल संयुक्त रूप से सरकार चलाएँगे। कांशीराम इस बात पर विशेष ध्यान दे रहे थे कि बहुजन समाज पार्टी की स्वतंत्र पहचान और वैचारिक मूल्यों से कोई समझौता न हो। इसीलिए उन्होंने गठबंधन की शर्तों में यह शामिल किया कि नीतिगत फैसलों में बहुजन हितों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। सरकार की नीतियाँ दलितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और अन्य वंचित वर्गों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान को ध्यान में रखकर बनाई जाएँगी। इस गठबंधन में बहुजन समाज पार्टी को सत्ता में भागीदारी मिली, जिससे पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं में एक नई ऊर्जा का संचार हुआ। यह भागीदारी दलित आंदोलन के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि

थी, क्योंकि पहली बार उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुजन प्रतिनिधित्व सरकार के स्तर पर दिखाई दे रहा था।

चुनावी प्रदर्शन और राजनैतिक प्रभाव

1993 के विधानसभा चुनावों में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के गठबंधन को अप्रत्याशित सफलता मिली। यह गठबंधन भाजपा को बहुमत से दूर रखने में सफल रहा और उत्तर प्रदेश में एक साझा सरकार का गठन हुआ। समाजवादी पार्टी को 109 सीटें और बहुजन समाज पार्टी को 67 सीटें प्राप्त हुईं। यह जीत केवल सत्ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं थी, बल्कि इसने सामाजिक न्याय की राजनीति को एक नई दिशा दी। बहुजन और पिछड़े वर्गों के राजनैतिक एकीकरण ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि संगठित किया जाए, तो ये वर्ग सत्ता के समीकरण को बदल सकते हैं। इस जीत ने जातिगत राजनीति में एक निर्णायक मोड़ लाया और भाजपा तथा कांग्रेस जैसे दलों की पारंपरिक रणनीतियों को अप्रासंगिक बना दिया। यह समय उत्तर प्रदेश में सामाजिक-राजनैतिक चेतना के विस्तार का युग बन गया।

गठबंधन में बढ़ते मतभेद और कांशीराम का निर्णय

हालाँकि गठबंधन ने चुनावी सफलता दिलाई और सरकार का गठन हुआ, लेकिन सरकार चलाने की प्रक्रिया में दोनों दलों के बीच विचारधारात्मक और कार्यशैली से जुड़े मतभेद सामने आने लगे। समाजवादी पार्टी, जो कि OBC केंद्रित राजनीति कर रही थी, सत्ता में अधिक प्रभावशाली होती दिखी, जबकि बहुजन समाज पार्टी को सहयोगी की तरह देखा जाने लगा। कांशीराम को यह महसूस हुआ कि बहुजन समाज पार्टी की मूल पहचान और उद्देश्य इस गठबंधन में दबने

लगे हैं। समाजवादी पार्टी के कुछ नीतिगत निर्णयों से यह संकेत मिलने लगे कि वह बहुजन हितों की अपेक्षा अपने संगठनात्मक प्रभुत्व को प्राथमिकता दे रही है। इन परिस्थितियों में कांशीराम ने अपने नेताओं और कार्यकर्ताओं से चर्चा कर यह निर्णय लिया कि बहुजन समाज पार्टी को अपनी स्वतंत्र पहचान बनाए रखते हुए आगामी राजनैतिक रणनीति तय करनी चाहिए। उनका यह निर्णय आगामी वर्षों में पार्टी की आत्मनिर्भरता का आधार बना।

गठबंधन का टूटना और कांशीराम की प्रतिक्रिया

1995 में यह गठबंधन पूरी तरह से टूट गया। यह टूटन न केवल राजनैतिक स्तर पर थी, बल्कि वैचारिक असहमति का भी परिणाम थी। गठबंधन टूटने के बाद कांशीराम ने अपने निर्णय को सार्वजनिक करते हुए कहा कि बहुजन समाज पार्टी अब किसी भी दल के साथ समझौता तभी करेगी जब बहुजन हित सुरक्षित हों और पार्टी की स्वायत्तता बनी रहे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि दलितों और पिछड़ों को स्थायी राजनैतिक अधिकार तभी मिल सकते हैं जब वे सत्ता में अपनी स्वतन्त्र भागीदारी सुनिश्चित करें। इस दिशा में उन्होंने संगठन को और अधिक मजबूत करने तथा पार्टी को पूरे प्रदेश में विस्तार देने के लिए व्यापक योजना बनाई। इस निर्णय के बाद बहुजन समाज पार्टी ने अपनी स्वतंत्र राजनीति की दिशा में गंभीरतापूर्वक कदम उठाने शुरू किए।

गठबंधन के बाद बहुजन समाज पार्टी की नई रणनीति

गठबंधन टूटने के बाद कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की स्वतंत्र रणनीति पर गंभीरता से काम किया। उन्होंने कार्यकर्ताओं को निर्देश दिया कि वे गाँव-गाँव जाकर बहुगुण-पिछड़ा एकता का संदेश फैलाएँ और

संगठन को बूथ स्तर तक मज़बूत करें। पार्टी के कैडर को प्रशिक्षित किया गया कि वे केवल चुनावी राजनीति तक सीमित न रहें, बल्कि सामाजिक चेतना और राजनैतिक आत्मनिर्भरता को भी जन-जन तक पहुँचाएँ। इस रणनीति में मीडिया, जनसभाओं, सामाजिक संगठनों और छात्र-युवा इकाइयों को विशेष भूमिका दी गई। बहुजन समाज पार्टी ने अब यह स्पष्ट कर दिया कि वह किसी अन्य दल के सहारे सत्ता में नहीं आएगी, बल्कि अपने दम पर सरकार बनाने का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ेगी।

उत्तर प्रदेश की राजनीति पर समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी गठबंधन का प्रभाव

1993 का SP-BSP गठबंधन केवल एक राजनैतिक गठबंधन नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक क्रांति की नींव था। इसने यह साबित किया कि बहुगुण और पिछड़े वर्ग यदि एकजुट हो जाएँ, तो वे किसी भी वर्चस्वशाली दल को सत्ता से बाहर कर सकते हैं। इस गठबंधन ने कांग्रेस और भाजपा जैसी राष्ट्रीय पार्टियों की पकड़ को कमजोर किया और राज्य की राजनीति को क्षेत्रीय सामाजिक मुद्दों के आधार पर पुनर्गठित किया। हालाँकि गठबंधन ज्यादा समय तक नहीं टिक सका, लेकिन इसके प्रभाव दीर्घकालिक रहे। इसने बहुजन समाज पार्टी को यह सीख दी कि उसे अपनी वैचारिक पहचान को बनाए रखते हुए ही सत्ता की ओर बढ़ना है। गठबंधन के विघटन के बावजूद, इसने उत्तर प्रदेश की राजनीति को सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भर दलित राजनीति की ओर मोड़ा।

काशीराम की राजनैतिक दूरदृष्टि और गठबंधन की भूमिका

काशीराम की राजनैतिक दृष्टि ने यह सिद्ध कर दिया कि दलित और पिछड़े वर्गों को केवल सामाजिक आंदोलनों से नहीं, बल्कि सत्ता की निर्णायक

प्रक्रिया में भागीदारी से ही न्याय दिलाया जा सकता है। SP-BSP गठबंधन उनके इसी दृष्टिकोण का प्रतीक था। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि समझौतावादी राजनीति से ऊपर उठकर सैद्धांतिक राजनीति भी सत्ता प्राप्त कर सकती है। जब उन्हें लगा कि बहुजन हितों को खतरा है, तो उन्होंने गठबंधन तोड़ने में भी संकोच नहीं किया। उन्होंने राजनीति को एक मिशन के रूप में लिया और उसी मिशन भावना से संगठन को आगे बढ़ाया। यह गठबंधन भले ही अल्पकालिक रहा हो, लेकिन इसने बहुजन राजनीति की दिशा को हमेशा के लिए बदल दिया और एक आत्मनिर्भर, विचारधारात्मक राजनीति की नींव रखी।

अध्याय 24: 1995 का गेस्ट हाउस कांड और राजनैतिक असर

उत्तर प्रदेश की राजनीति में 2 जून 1995 की तारीख एक निर्णायक मोड़ बनकर उभरी। यह दिन केवल एक हिंसक घटना का प्रतीक नहीं था, बल्कि उसने राज्य की सत्ता संरचना और जातिगत राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। 'गेस्ट हाउस कांड' नाम से प्रसिद्ध इस घटना ने बहुजन समाज पार्टी और समाजवादी पार्टी के बीच दशकों तक चलने वाली कट्टर शत्रुता को जन्म दिया। इस कांड ने न केवल तत्कालीन सरकार को अस्थिर किया, बल्कि दलित राजनीति की दिशा और आत्मनिर्भरता को भी नई ऊर्जा प्रदान की। यह अध्याय न केवल उस दिन की घटनाओं को विस्तार से दर्शाता है, बल्कि इसके दीर्घकालिक राजनैतिक और सामाजिक प्रभावों की भी गंभीर व्याख्या करता है।

गेस्ट हाउस कांड की पृष्ठभूमि और BSP-SP संबंधों में बढ़ता तनाव

1993 में BSP और SP ने भाजपा को रोकने के लिए एक ऐतिहासिक गठबंधन किया था। इस गठबंधन ने विधानसभा चुनावों में सफलता प्राप्त की और मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व में सरकार बनी, जिसमें BSP भी भागीदार रही। शुरुआत में यह गठबंधन एक राजनैतिक प्रयोग के रूप में देखा गया, जो पिछड़े और बहुजन समाज की साझेदारी को सशक्त बना सकता था। लेकिन सरकार बनने के बाद दोनों दलों के बीच आपसी अविश्वास, विचारधारा में टकराव और राजनैतिक वर्चस्व की होड़ शुरू

हो गई। BSP नेतृत्व को यह महसूस होने लगा कि समाजवादी पार्टी सरकार में एकछत्र प्रभाव जमाने की कोशिश कर रही है, और बहुजन समाज पार्टी की स्वतंत्र पहचान को सीमित कर रही है। कांशीराम को यह शंका सताने लगी कि समाजवादी पार्टी केवल बहुजन वोट बैंक का इस्तेमाल कर रही है लेकिन उन्हें राजनैतिक निर्णयों में उचित भागीदारी नहीं दे रही। ऐसी स्थितियों में BSP के भीतर असंतोष बढ़ने लगा और पार्टी नेतृत्व ने समर्थन वापसी का मन बना लिया।

गेस्ट हाउस कांड: 2 जून 1995 की घटना

2 जून 1995 को लखनऊ के मीराबाई मार्ग स्थित स्टेट गेस्ट हाउस में BSP विधायकों की एक बैठक चल रही थी, जिसमें समाजवादी सरकार से समर्थन वापस लेने का औपचारिक निर्णय लिया गया। जैसे ही यह समाचार समाजवादी पार्टी तक पहुँचा, पार्टी समर्थकों में आक्रोश की लहर दौड़ गई। दोपहर बाद, SP के सैकड़ों समर्थक और कुछ विधायक गेस्ट हाउस के बाहर इकट्ठा हो गए और देखते ही देखते भीड़ ने हिंसक रूप धारण कर लिया। BSP विधायकों को गेस्ट हाउस के भीतर से बाहर घसीटने की कोशिश की गई। महिला नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ दुर्व्यवहार की घटनाएँ सामने आईं। मायावती जिस कमरे में बैठक कर रही थीं, उसका दरवाजा तोड़ने की कोशिश की गई। उन्हें गालियाँ दी गईं और शारीरिक नुकसान पहुँचाने की धमकियाँ दी गईं। स्थिति इतनी भयावह हो गई कि पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा और तत्कालीन डीएम व वरिष्ठ अधिकारियों ने किसी तरह मायावती को वहां से सुरक्षित बाहर निकाला। इस हिंसा ने न केवल उत्तर प्रदेश की राजनीति को झकझोर कर रख दिया, बल्कि पूरे देश में राजनैतिक नैतिकता पर सवाल खड़े कर दिए।

गेस्ट हाउस कांड के बाद BSP-SP गठबंधन का अंत

गेस्ट हाउस की घटना के बाद BSP और SP का गठबंधन पूरी तरह से समाप्त हो गया। यह केवल राजनैतिक अलगाव नहीं था, बल्कि इसके पीछे एक गहरी वैचारिक खाई बन चुकी थी। मायावती और कांशीराम ने इस घटना को दलित अस्मिता और बहुजन अपमान के रूप में प्रस्तुत किया। BSP ने SP पर दलित विरोधी होने का आरोप लगाया और यह संकल्प लिया कि भविष्य में कभी भी SP के साथ गठबंधन नहीं किया जाएगा। इस घटनाक्रम के तुरंत बाद मायावती ने भाजपा के समर्थन से सरकार बनाई, जिससे उत्तर प्रदेश की सत्ता संरचना में एक नया समीकरण जन्मा। यह निर्णय भले ही विरोधाभासी प्रतीत हुआ हो, लेकिन मायावती और कांशीराम का उद्देश्य था BSP को सत्ता में लाकर एक मजबूत संदेश देना कि दलित समाज अब खुद निर्णय ले सकता है और सत्ता तक पहुँचने के लिए उसे किसी एक दल के मोहताज होने की ज़रूरत नहीं है।

कांशीराम की प्रतिक्रिया और BSP की नई रणनीति

गेस्ट हाउस कांड के बाद कांशीराम ने इसे बहुजन समाज के खिलाफ सुनियोजित राजनैतिक साजिश बताया। उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं को स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब समय आ गया है जब बहुजन समाज को अपनी राजनैतिक शक्ति को आत्मनिर्भर बनाना होगा। उन्होंने इस घटना को दलित राजनीति के पुनर्जागरण के रूप में प्रस्तुत किया और संगठन को मजबूती देने के लिए व्यापक अभियान शुरू किया। BSP ने राज्यभर में यह प्रचारित किया कि यह हमला केवल मायावती पर नहीं, बल्कि पूरे बहुजन समाज की गरिमा पर हमला था। इस संदेश के साथ पार्टी कार्यकर्ताओं ने गाँव-गाँव जाकर जन जागरण शुरू किया और गेस्ट हाउस कांड को एक राजनैतिक प्रतीक के रूप में बहुजन चेतना का हिस्सा

बनाया। कांशीराम ने यह भी सुनिश्चित किया कि पार्टी अब किसी भी गठबंधन से पहले अपने हितों और स्वायत्तता को सर्वोच्च प्राथमिकता देगी।

गेस्ट हाउस कांड का ऐतिहासिक महत्व और BSP की राजनीति पर असर

गेस्ट हाउस कांड ने उत्तर प्रदेश में केवल राजनैतिक समीकरण नहीं बदले, बल्कि दलित राजनीति के भविष्य को भी नई दिशा दी। इस घटना ने बहुजन समाज में यह धारणा प्रबल की कि सत्ता तक पहुँचने के लिए आत्मनिर्भरता ही एकमात्र विकल्प है। मायावती ने इस घटना को एक अवसर के रूप में लिया और संगठनात्मक पुनर्गठन शुरू किया। BSP ने अपने कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया कि वे दलित बहुजन वोट बैंक को संगठित करें और पार्टी को सत्ता के केंद्र तक ले जाएं। इस घटना का दीर्घकालिक परिणाम यह हुआ कि 2007 में बहुजन समाज पार्टी ने पूर्ण बहुमत के साथ उत्तर प्रदेश में सरकार बनाई, जिसमें मायावती मुख्यमंत्री बनीं। इस सफलता की नींव कहीं न कहीं गेस्ट हाउस कांड के बाद पड़ी उस आत्मनिर्भर राजनैतिक सोच में थी, जो कांशीराम और मायावती ने पार्टी के भीतर विकसित की थी।

गेस्ट हाउस कांड के बाद SP-BSP संबंधों का भविष्य

इस घटना के बाद SP और BSP के बीच अविश्वास की दीवार खड़ी हो गई। राजनैतिक दृष्टि से दोनों दल एक-दूसरे के विरोधी ध्रुव बन गए। हालाँकि समय-समय पर चुनावी मजबूरियों के तहत कुछ गठबंधन प्रयास हुए, जैसे 2019 का लोकसभा चुनाव, लेकिन गेस्ट हाउस कांड की स्मृति ने किसी भी स्थायी समझौते को असंभव बना दिया। यह घटना आज भी

बहुजन समाज पार्टी की राजनीति में एक भावनात्मक और वैचारिक धुरी बनी हुई है। मायावती ने इसे बार-बार सार्वजनिक मंचों से याद किया और इसे दलित अस्मिता के प्रतीक के रूप में स्थापित किया।

अध्याय 25: मायावती का कांशीराम के नेतृत्व में उभार

मायावती का BSP में प्रवेश और प्रारंभिक संघर्ष

मायावती का राजनीति में प्रवेश भारतीय दलित आंदोलन के इतिहास में एक क्रांतिकारी मोड़ था। एक साधारण परिवार से आने वाली मायावती, दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद सिविल सेवा की तैयारी कर रही थीं। वे दिल्ली के इंद्रपुरी क्षेत्र में एक स्कूल में शिक्षिका थीं। इसी दौरान 1977 में दिल्ली में हुए एक सम्मेलन में उनकी भेंट कांशीराम से हुई। कांशीराम, जो उस समय BAMCEF के माध्यम से सामाजिक चेतना फैला रहे थे, उन्होंने मायावती के आत्मविश्वास, तर्कशील सोच, और संवाद कौशल को तुरंत पहचान लिया। उन्होंने समझ लिया कि यह महिला केवल पढ़ाने और नौकरी करने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें नेतृत्व करने की क्षमता है। इस पहली मुलाकात के बाद, कांशीराम ने मायावती को राजनैतिक प्रशिक्षण देना शुरू किया और उन्हें बताया कि अगर वे वाकई बदलाव लाना चाहती हैं, तो उन्हें सिविल सेवा के बजाय सामाजिक सेवा और राजनीति के माध्यम से संघर्ष करना चाहिए।

कांशीराम ने मायावती को BAMCEF और बाद में DS4 (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) के माध्यम से सक्रिय भूमिका दी। इन संगठनों के माध्यम से मायावती को दलित समाज के जमीनी मुद्दों को समझने और उन्हें संगठित करने का व्यावहारिक अनुभव मिला। 1984 में जब कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की, तो उन्होंने मायावती को पार्टी के प्रमुख नेताओं में शामिल किया। मायावती को

उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से दलित और बहुजन महिलाओं को संगठित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। उस दौर में BSP एक नवोदित दल था, जिसकी न तो आर्थिक ताकत थी, न कोई बड़ा संगठनात्मक तंत्र। ऐसे में मायावती ने पैदल यात्रा, छोटी सभाएं, झुग्गी-झोपड़ी में रुककर संवाद जैसे तरीकों से दलित समाज में राजनैतिक जागरूकता फैलानी शुरू की।

मायावती के राजनैतिक संघर्ष का आरंभिक दौर अत्यंत कठिन था। वे अक्सर विरोध, उपहास, और सामाजिक अवहेलना का सामना करती थीं। उच्च जातियों द्वारा उन्हें तिरस्कृत किया गया, तो कई बार उन्हें महिला होने के नाते भी अपमानित किया गया। लेकिन मायावती की सबसे बड़ी शक्ति उनका आत्मबल और कांशीराम का अटूट विश्वास था। उन्होंने न केवल अपनी राजनैतिक समझ को गहराई दी, बल्कि भाषण कला, जनसंपर्क, और रणनीतिक संगठन निर्माण में भी दक्षता प्राप्त की।

1989 के लोकसभा चुनाव में मायावती को पहली बार BSP के उम्मीदवार के रूप में उत्तर प्रदेश से चुनाव लड़ने का अवसर मिला। भले ही उन्हें उस चुनाव में जीत नहीं मिली, लेकिन उनके उग्र और तथ्यात्मक भाषणों ने दलित समाज के बीच उन्हें एक प्रखर और निर्भीक नेता के रूप में स्थापित कर दिया। उनके भाषणों में साहसिक आलोचना, सामाजिक चेतना और वर्गीय संघर्ष की तीव्रता थी, जो बहुजन समाज को गहराई से प्रभावित करती थी। मायावती धीरे-धीरे पार्टी कार्यकर्ताओं और समर्थकों के बीच लोकप्रिय होने लगीं। उन्होंने महिलाओं को पार्टी से जोड़ने का विशेष अभियान चलाया, जिससे BSP का सामाजिक आधार और मजबूत हुआ।

कांशीराम ने मायावती को राजनीति के गहरे जल में तैरना सिखाया, और मायावती ने भी स्वयं को पूर्णतः संगठन, विचारधारा, और आंदोलन के

लिए समर्पित कर दिया। वह समय था जब कांशीराम ने बार-बार यह घोषणा की कि “मैं एक नहीं, कई मायावती बनाऊँगा,” और यही संकेत था कि मायावती को वे अपने उत्तराधिकारी के रूप में तैयार कर रहे थे। इस समय तक मायावती केवल एक राजनैतिक नेता नहीं, बल्कि एक आंदोलन की आवाज बन चुकी थीं, जो दलित समाज की मुक्ति और राजनैतिक सत्ता में हिस्सेदारी की लड़ाई लड़ रही थीं।

कांशीराम का नेतृत्व और मायावती का राजनैतिक प्रशिक्षण

कांशीराम, भारतीय दलित राजनीति के सबसे सशक्त रणनीतिकारों में से एक थे, जिन्होंने न केवल सामाजिक आंदोलन को राजनैतिक मंच तक पहुँचाया, बल्कि उस आंदोलन को नेतृत्व देने के लिए मायावती जैसी नेता को तैयार किया। मायावती को राजनीति में लाने के बाद, कांशीराम ने उन्हें एक छात्र की तरह राजनीति की बारीकियाँ सिखाईं। यह प्रशिक्षण केवल भाषण देने या चुनाव लड़ने तक सीमित नहीं था, बल्कि इसमें रणनीतिक सोच, संगठन निर्माण, वैचारिक प्रतिबद्धता, विरोधियों की चाल को समझना, प्रशासनिक सोच विकसित करना, और नेतृत्व क्षमता को निखारना शामिल था। कांशीराम ने मायावती को सिखाया कि राजनीति एक दीर्घकालिक सामाजिक संघर्ष है, न कि तात्कालिक सत्ता प्राप्त करने का साधन। उन्होंने यह भी समझाया कि एक दलित महिला नेता के लिए समाज में जगह बनाना और उसे टिकाए रखना आसान नहीं होगा, इसलिए संयम, अनुशासन और विचारधारा के प्रति अटल रहना अनिवार्य होगा।

मायावती को कांशीराम ने BAMCEF और DS4 के संगठनात्मक ढांचे के भीतर लोगों से मिलना, उन्हें प्रशिक्षित करना, दलित बस्तियों में जागरूकता फैलाना, और छोटे-छोटे कार्यक्रमों को संचालित करना

सिखाया। उन्होंने मायावती को ज़मीनी स्तर से नेतृत्व करना सिखाया, ताकि वे किसी भी परिस्थिति में जनता से सीधे जुड़ी रह सकें। कांशीराम के प्रशिक्षण का एक बड़ा हिस्सा इस पर केंद्रित था कि कैसे एक नेता अपने कार्यकर्ताओं के साथ संबंध बनाए रखे, उन्हें प्रेरित करे, और विचारधारा से भटकने न दे। कांशीराम मायावती से कहते थे कि “सत्ता की चाबी समाज के सबसे पिछड़े हाथों में जाए, यह तभी संभव होगा जब तुम हर हाल में ज़मीन से जुड़ी रहोगी।” मायावती ने इस शिक्षा को पूरी तरह आत्मसात किया।

कांशीराम ने मायावती को राजनैतिक विमर्श में ‘बहुजन’ शब्द के महत्व और उसकी सामाजिक शक्ति के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी भागीदारी” का सिद्धांत बार-बार दोहराया, और मायावती को यह समझाया कि भारतीय राजनीति में संख्या बल को संगठन शक्ति में बदलने की कला ही सामाजिक न्याय की कुंजी है। मायावती ने यह सीखा कि यदि बहुजन वर्ग, जिसमें दलित, पिछड़े, अल्पसंख्यक और वंचित शामिल हैं, को एक मंच पर संगठित किया जाए, तो वे न केवल सामाजिक दृष्टि से जागरूक बनेंगे बल्कि सत्ता में भागीदारी भी सुनिश्चित कर सकते हैं।

कांशीराम का प्रशिक्षण अत्यंत कठोर और अनुशासित था। मायावती को सुबह-सुबह कार्यालय आना पड़ता, बैठकें आयोजित करनी पड़तीं, गांव-गांव जाकर लोगों से मिलना होता, और लगातार वैचारिक पुस्तकें पढ़नी पड़तीं। कांशीराम का मानना था कि एक नेता को केवल जनसमूह की तालियों से उत्साहित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसे आत्ममंथन और वैचारिक प्रशिक्षण के लिए भी समय देना चाहिए। उन्होंने मायावती को डॉ. आंबेडकर की रचनाओं, फुले और पेरियार की विचारधारा को पढ़ने

और उसे जनमानस में प्रचारित करने की जिम्मेदारी दी। मायावती ने धीरे-धीरे इन सभी ज्ञान-स्रोतों को आत्मसात किया और उन्हें अपनी भाषण कला और रणनीति में समाहित किया।

राजनैतिक प्रशिक्षण के इस दौरान कांशीराम ने मायावती को समझाया कि समय आने पर उन्हें अकेले भी नेतृत्व करना पड़ेगा, और इसके लिए उन्हें हर स्तर पर तैयार रहना होगा – मानसिक, वैचारिक, सामाजिक और प्रशासनिक रूप से। मायावती के लिए यह प्रशिक्षण एक तपस्या जैसा था, जिसमें उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन, आराम, परिवार, यहां तक कि विवाह और निजी स्वतंत्रता को भी त्याग दिया, और पूर्णतः संगठन व विचारधारा को समर्पित हो गईं। वे धीरे-धीरे कांशीराम की सबसे विश्वासपात्र और प्रमुख सहयोगी बन गईं।

कांशीराम और मायावती का संबंध केवल गुरु-शिष्य तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय दलित आंदोलन के राजनैतिक नेतृत्व की नींव थी। कांशीराम ने उन्हें यह स्पष्ट रूप से बता दिया था कि वे पार्टी के उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें तैयार कर रहे हैं और संगठन की बागडोर एक दिन उनके हाथ में सौंप दी जाएगी। मायावती ने भी इस विश्वास को कभी तोड़ा नहीं। उन्होंने न केवल कांशीराम की राजनैतिक दूरदृष्टि को साकार किया, बल्कि स्वयं को एक ताकतवर, आत्मनिर्भर और वैचारिक रूप से स्पष्ट नेता के रूप में स्थापित किया, जो सत्ता प्राप्ति के लिए किसी भी राजनैतिक दल या दबाव के आगे झुकने को तैयार नहीं थी।

मायावती का BSP के प्रमुख चेहरे के रूप में उभरना

1990 के दशक की शुरुआत भारतीय राजनीति में एक बड़े बदलाव की भूमिका थी, विशेषकर उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में जहाँ जातिगत और वर्गीय

समीकरण तेज़ी से पुनर्गठित हो रहे थे। इसी समय मायावती, जो अब तक संगठन के भीतर एक कर्मठ और दृढ़ नेता के रूप में अपनी पहचान बना चुकी थीं, पहली बार जननेताओं की श्रेणी में प्रवेश कर रही थीं। उत्तर प्रदेश की राजनीति में बहुजन समाज पार्टी की बढ़ती ताकत और उसकी वैचारिक स्पष्टता को सामने रखने के लिए कांशीराम ने मायावती को पार्टी के सबसे आगे रखने का निर्णय लिया। मायावती ने भी यह जिम्मेदारी उसी निष्ठा और संगठनात्मक दृढ़ता से निभाई, जो उन्हें राजनैतिक प्रशिक्षण के दौरान सिखाई गई थी।

1993 में समाजवादी पार्टी और बहुजन समाज पार्टी के बीच जो ऐतिहासिक गठबंधन हुआ, वह उत्तर प्रदेश की सत्ता संरचना में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। इस गठबंधन की राजनीति में मायावती की भूमिका केवल एक भागीदार की नहीं थी, बल्कि वह निर्णय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्तंभ बनकर उभरीं। कांशीराम ने उन्हें गठबंधन वार्ताओं का हिस्सा बनाया, जिससे यह संकेत स्पष्ट हो गया कि BSP में नेतृत्व अब केवल कांशीराम तक सीमित नहीं रहेगा। मायावती ने विभिन्न सभाओं में अपने प्रभावशाली भाषणों से जनता को न केवल भाजपा और कांग्रेस की राजनीति से सावधान किया, बल्कि बहुजन और पिछड़े वर्गों को संगठित राजनैतिक चेतना से जोड़ने का भी कार्य किया।

मायावती की राजनैतिक शैली में दो बड़े गुण प्रमुख रूप से दिखने लगे थे—एक, अत्यंत स्पष्ट और आक्रामक भाषण शैली, और दूसरा, वैचारिक प्रतिबद्धता से समझौता न करने की दृढ़ता। उन्होंने गठबंधन की राजनीति में भी अपनी स्वतंत्र सोच को बनाए रखा और समाजवादी पार्टी के दबाव में आने से इनकार किया। यही कारण था कि जब 1995 में गेस्ट हाउस कांड हुआ और समाजवादी पार्टी से रिश्ता समाप्त हुआ, तब पार्टी के

अंदर और बाहर सभी कार्यकर्ताओं ने उन्हें BSP का स्वाभाविक और सर्वमान्य नेता स्वीकार किया।

गेस्ट हाउस कांड के बाद बहुजन समाज पार्टी में यह विचार प्रबल हुआ कि पार्टी को अब किसी गठबंधन या बाहरी समर्थन की आवश्यकता नहीं है, और मायावती इस आत्मनिर्भर राजनीति की प्रतीक बनकर उभरीं। कांशीराम ने औपचारिक रूप से मायावती को उत्तर प्रदेश में पार्टी का प्रमुख चेहरा घोषित कर दिया, और सार्वजनिक मंचों पर यह कहा कि “अब मेरी जिम्मेदारी मायावती के कंधों पर है।” इस घोषणा के बाद न केवल पार्टी कार्यकर्ताओं बल्कि विरोधी दलों के बीच भी यह स्पष्ट हो गया कि मायावती अब केवल कांशीराम की सहयोगी नहीं हैं, बल्कि वे BSP की विचारधारा, रणनीति और नेतृत्व की असली धुरी बन चुकी हैं।

मायावती ने इस नई भूमिका को अत्यंत प्रभावशाली तरीके से निभाया। उन्होंने पार्टी के संगठनात्मक विस्तार को नए स्तर तक पहुँचाया। बूथ स्तर तक कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना, महिलाओं को नेतृत्व में लाना, दलित और पिछड़े वर्गों के युवाओं को पार्टी में जोड़ना, और ब्राह्मण, मुसलमान, कायस्थ जैसे अन्य समुदायों को भी ‘सर्वजन’ की राजनीति के अंतर्गत जोड़ना-इन सभी में मायावती ने निर्णायक भूमिका निभाई। उनका प्रभाव केवल उत्तर प्रदेश तक ही सीमित नहीं रहा; अन्य राज्यों में भी BSP को विस्तार देने की योजना इसी चरण में शुरू हुई, जिसमें मायावती ने स्वयं नेतृत्व किया।

इस प्रकार 1995 के बाद मायावती की छवि एक सशक्त, विचारधारा-निष्ठ, और आत्मनिर्भर दलित महिला नेता के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हो गई। वे अब केवल कांशीराम की शिष्या नहीं थीं, बल्कि एक

ऐसे राजनैतिक आंदोलन की नेता थीं, जो समाज के सबसे वंचित वर्गों को न केवल आवाज़ दे रही थी, बल्कि उन्हें सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ाने का कार्य भी कर रही थी। मायावती का BSP के प्रमुख चेहरे के रूप में उभार, भारतीय राजनीति में दलित नेतृत्व के उत्थान का प्रतीक बन चुका था।

उत्तर प्रदेश में BSP की राजनीति और मायावती की भूमिका

गेस्ट हाउस कांड के बाद बहुजन समाज पार्टी ने राजनैतिक आत्मनिर्भरता की दिशा में निर्णायक क़दम उठाया, और मायावती इस बदलाव की सबसे मजबूत आवाज़ बनकर उभरीं। इस घटना ने मायावती को न केवल पार्टी का निर्विवाद नेता बना दिया, बल्कि उन्हें मुख्यमंत्री पद तक पहुँचाने का रास्ता भी साफ़ कर दिया। जब 1995 में BSP ने भाजपा के समर्थन से सरकार बनाई, तब मायावती उत्तर प्रदेश की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री बनीं। यह घटना भारतीय राजनीति के इतिहास में ऐतिहासिक थी-एक ऐसी सामाजिक श्रेणी से आने वाली महिला, जिसे दशकों तक हाशिये पर रखा गया था, अब देश के सबसे बड़े राज्य की सत्ता की बागडोर संभाल रही थी।

मुख्यमंत्री बनने के बाद मायावती ने शासन में स्पष्ट रूप से बहुजन हितैषी नीतियों को प्राथमिकता दी। उन्होंने अपने कार्यकाल की शुरुआत में ही स्पष्ट कर दिया कि यह सरकार केवल सत्ता भोग के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और समानता को ज़मीन पर उतारने के लिए कार्य करेगी। मायावती ने बहुजन समाज के लिए नीतियाँ बनाते समय प्रशासनिक मशीनरी में मौजूद जातीय असंतुलन को पहचानते हुए उसमें सुधार लाने का प्रयास शुरू किया। उन्होंने सरकारी सेवाओं में आरक्षण लागू करने को केवल एक संवैधानिक अधिकार नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्वितरण का साधन माना और इसे कठोरता से लागू कराया।

उनकी सरकार ने बहुजन बस्तियों में बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने के लिए विशेष योजनाएँ शुरू कीं, जैसे कि दलित बस्तियों में सड़क, बिजली, पानी और स्कूल जैसी सुविधाओं का विस्तार। शिक्षा के क्षेत्र में, उन्होंने बालिकाओं की शिक्षा पर विशेष जोर दिया और छात्रवृत्तियाँ, मुफ्त किताबें और पोषण योजना जैसी योजनाओं को लागू किया। स्वास्थ्य सेवाओं के मामले में भी उन्होंने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की संख्या बढ़ाई और ग्रामीण इलाकों में मातृ-शिशु स्वास्थ्य पर केंद्रित कार्यक्रम शुरू किए।

इसके अतिरिक्त मायावती ने प्रशासनिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध सख्त रुख अपनाया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अधिकारियों को निर्देश दिए कि वे किसी भी जातीय पक्षपात या भेदभाव की शिकायत पर त्वरित और निष्पक्ष कार्यवाही सुनिश्चित करें। उनके कार्यकाल के दौरान कई बड़े अफसरों को पदों से हटाया गया या स्थानांतरित किया गया, जिन्होंने बहुजन हितों की उपेक्षा की थी या भ्रष्टाचार में लिप्त पाए गए थे। इससे बहुजन समाज के भीतर प्रशासन के प्रति विश्वास भी बढ़ा।

मायावती की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक थी- 'राजकीय गौरव का निर्माण।' उन्होंने बहुजन नायकों की स्मृति को सामाजिक चेतना का हिस्सा बनाने के लिए लखनऊ और नोएडा में अनेक स्मारक, पार्क और संग्रहालय बनवाए। अंबेडकर स्मारक, कांशीराम स्मृति स्थल, और बहुजन नायक उद्यान जैसे प्रकल्प न केवल राजनैतिक प्रतीक थे, बल्कि वे सामाजिक चेतना, आत्मगौरव और दलित इतिहास के पुनर्लेखन का प्रयास भी थे। इन प्रयासों से यह संदेश गया कि बहुजन समाज को अब न केवल सत्ता में हिस्सेदारी मिल रही है, बल्कि वह अपने इतिहास, संस्कृति और विचारधारा को संस्थागत रूप दे रहा है।

हालांकि उनके शासन पर आर्थिक खर्चों को लेकर विपक्षी दलों और मीडिया ने कई बार सवाल उठाए, लेकिन बहुजन समाज के लिए यह एक आत्मसम्मान और आत्मगौरव का क्षण था। मायावती की यह रणनीति साफ़ तौर पर यह दर्शाती थी कि सत्ता केवल सरकारी योजनाओं से नहीं, बल्कि प्रतीकों और सांस्कृतिक दावों से भी सामाजिक बदलाव लाती है।

इस प्रकार मायावती ने अपने शासनकाल में उत्तर प्रदेश की राजनीति को सामाजिक न्याय के नए ढांचे में ढालने का कार्य किया। उन्होंने बहुजन समाज को यह विश्वास दिलाया कि सत्ता में उनकी भागीदारी केवल एक अवसर नहीं, बल्कि एक संवैधानिक और नैतिक अधिकार है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि अब राजनीति केवल ऊँची जातियों के दबदबे का मंच नहीं रहेगी, बल्कि इसमें दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों की निर्णायक भागीदारी होगी।

BSP कार्यकर्ताओं में मायावती की लोकप्रियता और कांशीराम का समर्थन

गेस्ट हाउस कांड और 1995 में मुख्यमंत्री बनने के बाद मायावती न केवल बहुजन समाज पार्टी की सबसे ताकतवर नेता बन गईं, बल्कि उन्होंने पार्टी के प्रत्येक कार्यकर्ता के दिल में एक सशक्त और प्रेरणादायक नेतृत्व की छवि भी स्थापित की। कांशीराम ने उन्हें जिस विश्वास और प्रशिक्षण के साथ आगे बढ़ाया था, वह अब संगठन के स्तर पर स्पष्ट दिखाई देने लगा। BSP के ज़मीनी कार्यकर्ताओं में यह भावना गहराई से बैठ चुकी थी कि मायावती अब केवल एक नेता नहीं, बल्कि बहुजन आंदोलन की प्रतीक हैं—एक ऐसी महिला जिन्होंने पुरुष प्रधान राजनैतिक ढांचे को चुनौती दी और सत्ता के केंद्र में पहुंचीं।

मायावती की लोकप्रियता का प्रमुख कारण था उनका आक्रामक, स्पष्टवादी और आत्मनिर्भर नेतृत्व। उन्होंने अपने कार्यकर्ताओं से सीधा संवाद बनाए रखा, जिलास्तरीय बैठकें कीं, हर जिले में संगठनात्मक ढांचे को मजबूत किया और जाति आधारित उत्पीड़न के मामलों में हस्तक्षेप कर संगठन की विश्वसनीयता को बढ़ाया। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि BSP केवल चुनावों में सक्रिय रहने वाली पार्टी न बने, बल्कि समाज के हर स्तर पर बहुजन चेतना फैलाने का एक आंदोलनात्मक मंच बने। यही कारण था कि पार्टी के कार्यकर्ता मायावती को केवल एक मुख्यमंत्री नहीं, बल्कि “बहुजन समाज की बहन” के रूप में देखने लगे।

कांशीराम का मायावती में विश्वास लगातार मजबूत होता गया। उन्होंने मायावती को पार्टी का उत्तराधिकारी घोषित करने के पीछे यही तर्क दिया कि वह न केवल सत्ता की भाषा समझती हैं, बल्कि संगठन और सिद्धांतों की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जाने का माद्दा रखती हैं। कांशीराम ने उन्हें बार-बार सार्वजनिक मंचों से “बहनजी” कहकर संबोधित किया और कार्यकर्ताओं को स्पष्ट निर्देश दिए कि मायावती ही अब आंदोलन की अगुआ होंगी। इससे पार्टी की पूरी संरचना में एक नेतृत्वात्मक स्पष्टता आई और अनुशासन मजबूत हुआ।

मायावती ने भी इस भरोसे को कभी टूटने नहीं दिया। उन्होंने कांशीराम के ‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’ के सिद्धांत को केंद्र में रखकर राजनीति की। संगठन के भीतर जो छोटे नेता और कार्यकर्ता थे, उन्हें वे सम्मान देती थीं और व्यक्तिगत मुद्दों पर भी उनकी सुनवाई करती थीं। कार्यकर्ता यह महसूस करने लगे कि सत्ता का रास्ता केवल चुनावी जनाधार से नहीं, बल्कि पार्टी की भीतरी संरचना में विश्वास और मेहनत से भी तय होता है—और मायावती इस परंपरा की सच्ची संरक्षक थीं।

इसके अतिरिक्त, मायावती ने पार्टी के आंतरिक प्रशिक्षण सत्रों, रैलियों, और बहुजन साहित्य के प्रचार के माध्यम से कार्यकर्ताओं की वैचारिक प्रतिबद्धता भी मजबूत की। उन्होंने “बहुजन नायक” और “बहुजन चेतना अभियान” जैसे आयोजनों के माध्यम से कार्यकर्ताओं को जातिगत चेतना और राजनैतिक संगठन के महत्त्व को समझाया। इन अभियानों में मायावती की उपस्थिति और भाषण अत्यधिक प्रभावशाली होते थे, जिनमें वे बार-बार संविधान, अंबेडकरवाद और कांशीराम की शिक्षाओं को दोहराती थीं। इससे पार्टी में एक प्रकार की विचारधारात्मक एकता बनी, जो अन्य दलों में विरल थी।

इस सबके चलते BSP एक कैडर आधारित पार्टी के रूप में विकसित हुई, जिसमें कार्यकर्ताओं की निष्ठा मायावती के नेतृत्व के प्रति अडिग हो गई। कांशीराम द्वारा सौंपा गया यह दायित्व मायावती ने न केवल निभाया, बल्कि उसे विस्तार भी दिया और संगठन को एक अनुशासित, सशक्त और वैचारिक रूप से स्पष्ट दल में बदल दिया।

मायावती का राष्ट्रीय स्तर पर उभरना और BSP की राजनीतिक स्थिति

1990 के दशक के उत्तरार्ध में मायावती केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित नेता नहीं रहीं। गेस्ट हाउस कांड और 1995 में मुख्यमंत्री बनने के बाद उन्हें देशभर में एक तेज़, निडर और वैचारिक रूप से स्पष्ट दलित नेता के रूप में पहचाना जाने लगा। कांशीराम ने जिस उद्देश्य के साथ उन्हें राजनीति में आगे बढ़ाया था-यानी ‘बहुजन की बेटी’ को सत्ता के केंद्र में पहुँचाना-वह अब राष्ट्रीय मंच पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने लगा। मायावती ने स्वयं को उत्तर प्रदेश के बहुजन समाज की सीमाओं से बाहर

निकाल कर एक अखिल भारतीय नेता के रूप में स्थापित करने की रणनीति अपनाई।

उन्होंने BSP का विस्तार उत्तर प्रदेश से बाहर उन राज्यों में करना शुरू किया जहाँ अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों की आबादी अपेक्षाकृत अधिक थी-जैसे कि मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, पंजाब और दिल्ली। इन राज्यों में पार्टी के संगठनात्मक ढांचे की नींव डाली गई। ज़िला इकाइयाँ बनाई गईं, मंडल प्रभारी नियुक्त किए गए और क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किए गए। मायावती ने स्वयं इन राज्यों का दौरा किया और जनसभाओं को संबोधित करते हुए यह संदेश दिया कि BSP केवल उत्तर प्रदेश की पार्टी नहीं है, बल्कि यह देशभर के बहुजन समाज की एकमात्र राजनैतिक आवाज़ है।

BSP के इस राष्ट्रीय विस्तार के पीछे कांशीराम की दीर्घकालिक रणनीति भी सक्रिय थी। वे हमेशा कहा करते थे कि “हम केवल उत्तर प्रदेश में सरकार बनाने के लिए राजनीति नहीं कर रहे, बल्कि हम भारत की सत्ता के केंद्र को बदलने की लड़ाई लड़ रहे हैं।” मायावती ने इस बात को गहराई से समझा और अपनी राजनैतिक गतिविधियों को केवल एक राज्य की सीमाओं तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना तब तक नहीं हो सकती जब तक बहुजन समाज को पूरे देश में राजनैतिक भागीदारी न मिले।

BSP ने 1996 और 1998 के लोकसभा चुनावों में उत्तर प्रदेश के बाहर से भी प्रत्याशी उतारने शुरू किए। यद्यपि प्रारंभ में सफलता सीमित रही, लेकिन मायावती के प्रचार और नेतृत्व शैली ने पार्टी को एक संगठित और अनुशासित विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने दलित समाज की समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श में लाने का प्रयास किया-जैसे शिक्षा,

आरक्षण के विस्तार, निजी क्षेत्र में भागीदारी, तथा अनुसूचित जाति उत्पीड़न कानून को और सख्ती से लागू करने की माँग।

इसके साथ ही, मायावती ने संसद में भी अपनी सक्रियता से ध्यान खींचा। उन्होंने कई मुद्दों पर केंद्र सरकार की आलोचना की, विशेषकर जब वह दलितों और पिछड़ों के अधिकारों की उपेक्षा करती दिखी। उन्होंने खुले तौर पर कहा कि “BSP सत्ता की दलाली नहीं करती, वह बहुजन समाज को सत्ता में हिस्सेदारी दिलाने के लिए लड़ती है।” यह बयान उनके संघर्षशील और वैचारिक राजनीति के प्रतीक बन गए।

BSP के विस्तार की रणनीति में एक और अहम पहलू था-पार्टी की वैचारिक स्पष्टता और अनुशासित संगठन। मायावती ने कभी भी पार्टी की विचारधारा से समझौता नहीं किया, चाहे वह गठबंधन की राजनीति हो या चुनावी लाभ का अवसर। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि पार्टी किसी भी राज्य में तभी विस्तार करे जब वहाँ संगठनात्मक मजबूती हो। इस कारण से BSP की हर राज्य में उपस्थिति भले ही धीरे-धीरे बढ़ी हो, लेकिन वह मजबूत और टिकाऊ बनी रही।

इस समय तक मायावती भारतीय राजनीति में ऐसी महिला नेता बन चुकी थीं, जो न केवल सामाजिक न्याय की बात करती थीं, बल्कि उस पर अमल करके दिखाती भी थीं। उनका यह उभार विशेषकर महिलाओं और वंचित वर्गों के लिए प्रेरणा बन गया, जो अब उन्हें एक आंदोलन की प्रतीक के रूप में देखने लगे थे। बहुजन समाज में यह विश्वास पुख्ता हो चुका था कि मायावती केवल एक नेता नहीं हैं, बल्कि वे बहुजन राजनीति की “विकास पुरुष” कांशीराम की सबसे सफल राजनैतिक विरासत हैं।

कांशीराम की रणनीति के तहत मायावती का नेतृत्व विकास

कांशीराम के नेतृत्व और विचारधारा के केंद्र में सदैव यह लक्ष्य रहा कि बहुजन समाज को न केवल सामाजिक चेतना मिले, बल्कि वह राजनैतिक रूप से संगठित होकर सत्ता में निर्णायक भूमिका निभाए। इस दृष्टि से मायावती का उभार केवल एक व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं था, बल्कि वह एक सुनियोजित सामाजिक क्रांति की परिणति थी, जिसे कांशीराम ने वर्षों की मेहनत और संगठन निर्माण के ज़रिए संभव बनाया। मायावती को उन्होंने बचपन से ही राजनैतिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रशिक्षित किया था। यह प्रशिक्षण केवल चुनावी राजनीति तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें संगठन निर्माण, जनसंपर्क, सत्ता की रणनीति, वैचारिक संघर्ष, और प्रशासनिक कुशलता तक सभी पहलुओं को शामिल किया गया था।

कांशीराम ने मायावती को सिखाया कि राजनीति केवल सिद्धांतों से नहीं चलती, बल्कि उसमें समयानुकूल समझदारी और सामरिक लचीलापन भी ज़रूरी होता है। उदाहरण के लिए, उन्होंने उन्हें यह समझाया कि किसी भी वर्ग को सत्ता में लाने के लिए यदि वैचारिक रूप से भिन्न दलों के साथ समझौता करना पड़े तो वह किया जा सकता है—लेकिन अपने मूल विचारों से कभी समझौता नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि मायावती ने समय-समय पर भाजपा जैसी पार्टी के साथ समर्थन लिया, लेकिन बहुजन हितों को कभी दरकिनार नहीं किया।

मायावती ने कांशीराम की इस रणनीति को अपनाते हुए ‘सामाजिक इंजीनियरिंग’ की एक नई राजनीति को जन्म दिया। उन्होंने दलितों के साथ-साथ ब्राह्मण, ठाकुर और बनियों जैसे ऊँची जातियों को भी पार्टी

में जोड़ने की पहल की। यह वही दौर था जब ‘बहुजन से सर्वजन’ की राजनीति की नींव पड़ी। मायावती ने बहुजन राजनीति को एक व्यापक सामाजिक समर्थन में बदलने के लिए इस नई रणनीति को अपनाया ताकि स्थायी सत्ता प्राप्त की जा सके। यह सब कांशीराम की दीर्घकालिक दृष्टि और रणनीतिक प्रशिक्षण का परिणाम था।

कांशीराम ने मायावती को दलित चेतना के प्रतीक से एक सशक्त प्रशासक और रणनीतिक नेता में बदलने के लिए उन्हें हर मौके पर आगे बढ़ाया। जब मायावती पहली बार मुख्यमंत्री बनीं, तो कांशीराम ने उन्हें न केवल शुभकामनाएँ दीं, बल्कि उन्हें यह भी समझाया कि दलित समाज अब केवल नारों से संतुष्ट नहीं होगा, उसे प्रशासनिक परिणाम चाहिए। मायावती ने भी इस चुनौती को स्वीकार किया और सरकार में रहते हुए ऐसे निर्णय लिए जो सामाजिक न्याय और प्रशासनिक पारदर्शिता की दिशा में मील का पत्थर साबित हुए।

कांशीराम ने मायावती को सिखाया कि राजनैतिक आंदोलन को जीवित रखने के लिए केवल सत्ता में बने रहना पर्याप्त नहीं होता, बल्कि संगठन को ज़मीनी स्तर पर जीवंत और सक्रिय बनाए रखना ज़रूरी है। मायावती ने इस बात को गंभीरता से लिया और सत्ता में रहते हुए भी संगठन को कभी उपेक्षित नहीं किया। उन्होंने कार्यकर्ताओं से सीधा संवाद बनाए रखा, ज़िलों में सम्मेलन आयोजित किए और हर चुनाव में पार्टी की वैचारिक प्रतिबद्धता को दोहराया।

जब कांशीराम ने स्वास्थ्य कारणों से राजनीति से दूरी बनाई, तब उन्होंने बिना किसी भ्रम के मायावती को पार्टी का संपूर्ण उत्तराधिकारी घोषित किया। उन्होंने सार्वजनिक रूप से कहा, “अब मायावती ही मेरी

राजनैतिक वारिस हैं और वही इस आंदोलन को आगे बढ़ाएंगी।” यह घोषणा न केवल संगठनात्मक रूप से मायावती को सर्वमान्य नेता बनाती थी, बल्कि यह कांशीराम के उस विश्वास का प्रमाण भी थी कि बहुजन समाज का भविष्य अब सुरक्षित हाथों में है।

इस प्रकार मायावती का नेतृत्व, कांशीराम की दूरदृष्टि और प्रशिक्षण का परिणाम था। उन्होंने केवल सत्ता प्राप्त करने तक सीमित राजनीति नहीं की, बल्कि बहुजन चेतना को समाज के हर कोने तक पहुँचाने का प्रयास किया। उनके नेतृत्व में BSP न केवल एक दलित पार्टी के रूप में स्थापित हुई, बल्कि एक संगठित और वैचारिक रूप से स्पष्ट राष्ट्रीय दल के रूप में उभरी।

अध्याय 26: 1995 में मायावती का पहली बार मुख्यमंत्री बनना और कांशीराम की भूमिका

उत्तर प्रदेश में BSP की पहली सरकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1995 का वर्ष भारतीय राजनीति के इतिहास में सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से एक निर्णायक मोड़ लेकर आया। इस वर्ष बहुजन समाज पार्टी (BSP) की नेता मायावती ने उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली, जो न केवल एक राजनैतिक उपलब्धि थी बल्कि सामाजिक समावेश और दलित चेतना के इतिहास में एक बड़ी छलांग थी। भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में सत्ता संभालने वाली पहली दलित महिला के रूप में मायावती का उदय एक संकेत था कि लोकतंत्र की सीमाओं में रहकर भी हाशिए पर खड़े समुदाय सशक्तिकरण की ओर बढ़ सकते हैं। BSP की यह ऐतिहासिक उपलब्धि दरअसल कांशीराम के दशकों लंबे संघर्ष, संगठनात्मक कौशल और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता का प्रतिफल थी। कांशीराम ने 1980 के दशक में 'जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी' के नारे के साथ जो आंदोलन शुरू किया, वह 1995 में सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़कर अपने पहले लक्ष्य तक पहुँचा।

कांशीराम की रणनीति और सत्ता प्राप्त करने की योजना

कांशीराम का मानना था कि दलितों, पिछड़ों और अन्य वंचित समुदायों का उत्थान केवल सामाजिक सुधारों से नहीं हो सकता, जब तक कि वे स्वयं सत्ता की भागीदारी न करें। इस सोच के तहत उन्होंने बहुजन समाज

पार्टी को महज एक राजनैतिक दल नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन का राजनैतिक मंच बनाया। कांशीराम ने तीन प्रमुख रणनीतिक चरणों में पार्टी को आगे बढ़ाया-पहला, राजनैतिक जागरूकता फैलाना; दूसरा, गठबंधनों के माध्यम से सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करना; और तीसरा, स्वतंत्र रूप से सत्ता में आने का लक्ष्य। 1995 तक BSP ने उत्तर प्रदेश की राजनीति में पर्याप्त जनाधार बना लिया था, लेकिन SP से गठबंधन टूटने और गेस्ट हाउस कांड के बाद कांशीराम ने तय किया कि अब पार्टी को स्वतंत्र ताकत के रूप में उभरना होगा। उसी समय भाजपा ने BSP को समर्थन देने का प्रस्ताव रखा ताकि समाजवादी पार्टी को सत्ता से बाहर किया जा सके।

BSP और भाजपा का गठबंधन: सत्ता में पहुँचने की रणनीति

BSP और भाजपा का गठबंधन भारतीय राजनीति में एक असहज लेकिन रणनीतिक समीकरण था। विचारधारा के स्तर पर दोनों दलों में गहरी खाई थी-BSP जहाँ दलितों और पिछड़ों के सामाजिक न्याय की बात करती थी, वहीं भाजपा हिंदुत्व की राजनीति को आगे बढ़ा रही थी। लेकिन उस समय दोनों दलों का साझा लक्ष्य समाजवादी पार्टी को सत्ता से बाहर करना था। कांशीराम ने भाजपा के साथ इस गठबंधन को केवल एक 'टैक्टिकल मूव' के रूप में देखा, जिसका उद्देश्य तत्कालिक सत्ता प्राप्त करना था, न कि दीर्घकालिक वैचारिक मेल। उन्होंने अपने समर्थकों को भी यही समझाया कि यह समर्थन अस्थायी है और BSP का अंतिम लक्ष्य अपने बलबूते सत्ता प्राप्त करना है। भाजपा ने भी यह गठबंधन इसलिए किया क्योंकि उन्हें आशंका थी कि SP फिर से सत्ता में आ सकती है। इस गठबंधन की वजह से 3 जून 1995 को मायावती ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ली, जो एक ऐतिहासिक क्षण बन गया।

मायावती का मुख्यमंत्री पद की शपथ लेना और बहुजन राजनीति में परिवर्तन

3 जून 1995 को मायावती ने उत्तर प्रदेश की 18वीं मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली। वह केवल भारत की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री ही नहीं बनीं, बल्कि उत्तर प्रदेश की सत्ता में प्रवेश करने वाली पहली ऐसी नेता बनीं, जो हाशिए के समाज से थीं। शपथग्रहण समारोह में उन्होंने डॉ. भीमराव अंबेडकर और कांशीराम का आभार जताते हुए यह स्पष्ट किया कि यह जीत केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पूरे बहुजन समाज की है। उनके मुख्यमंत्री बनने से दलित समाज को एक नई पहचान मिली और उन्हें यह विश्वास हुआ कि वे केवल वोट बैंक नहीं, बल्कि सत्ता का नेतृत्व भी कर सकते हैं। कांशीराम ने इसे बहुजन सशक्तिकरण का स्वर्ण क्षण कहा और इसे सामाजिक क्रांति की अगली कड़ी के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यह BSP की असली परीक्षा की शुरुआत है-जहाँ पार्टी को सत्ता में रहते हुए अपने मूल विचारों को लागू करना होगा।

कांशीराम की भूमिका: मायावती को मुख्यमंत्री बनाने की रणनीति

कांशीराम की दीर्घकालिक रणनीति का केंद्र बिंदु मायावती को पार्टी नेतृत्व में लाना था। उन्होंने न केवल मायावती को एक सक्षम राजनैतिक नेता के रूप में प्रशिक्षित किया, बल्कि उन्हें सामाजिक बदलाव की प्रतीक के रूप में स्थापित करने का हर प्रयास किया। 1990 के दशक में मायावती को पार्टी का चेहरा बनाकर कांशीराम ने सत्ता की राजनीति में उनकी भूमिका को गहराई दी। 1995 की परिस्थितियों में उन्होंने यह निर्णय लिया कि अगर सत्ता में बहुजन हितों को लेकर कोई व्यक्ति नेतृत्व

कर सकता है, तो वह केवल मायावती हैं। उन्होंने पार्टी कैडर को यह भी स्पष्ट निर्देश दिया कि मायावती का नेतृत्व पूरी तरह पार्टी लाइन के अनुसार चले और उन्हें कार्यान्वयन की पूरी स्वतंत्रता दी जाए। इस फैसले से BSP कार्यकर्ताओं में नई ऊर्जा का संचार हुआ और संगठनात्मक ताकत और भी मजबूत हुई।

मायावती के पहले कार्यकाल की प्राथमिकताएँ

मुख्यमंत्री बनने के बाद मायावती ने तेजी से प्रशासनिक निर्णय लेने शुरू किए। उन्होंने सरकारी सेवाओं में आरक्षण की स्थिति की समीक्षा कर उसे सख्ती से लागू किया। बहुजन बस्तियों में विकास योजनाओं की घोषणा की गई, जिनमें शिक्षा, स्वच्छता और स्वास्थ्य सेवाओं को प्राथमिकता दी गई। उन्होंने कानून-व्यवस्था को लेकर भी सख्त रुख अपनाया, जिससे दलित और पिछड़े समुदायों को सुरक्षा का अनुभव हुआ। कई विवादास्पद IAS और IPS अधिकारियों को स्थानांतरित कर उनकी जगह संवेदनशील अधिकारियों की नियुक्ति की गई। मायावती का यह स्पष्ट संदेश था कि उनका शासन केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि क्रियाशील होगा और प्रशासनिक निर्णय भी उनकी सामाजिक दृष्टि से प्रेरित होंगे।

BSP सरकार की अवधि और चुनौतियाँ

हालाँकि मायावती की पहली सरकार लंबे समय तक नहीं चली। भाजपा ने कुछ ही महीनों में BSP से समर्थन वापस ले लिया और सरकार गिर गई। इस अल्पकालिक सरकार ने प्रशासनिक मोर्चे पर जितनी तेजी से काम किया, उतनी ही तेजी से राजनैतिक विरोध भी शुरू हो गया। मीडिया

और विरोधी दलों ने आरोप लगाए कि BSP ने जातिवादी एजेंडा लागू करने की कोशिश की, जबकि BSP समर्थकों का कहना था कि पहली बार सरकार ने उनके जीवन को केंद्र में रखकर फैसले लिए। सरकार भले ही केवल कुछ महीनों की रही, लेकिन इसने बहुजन समाज को यह आत्मविश्वास दिया कि वे सत्ता में आ सकते हैं, और राज्य की नीतियाँ उनकी ज़रूरतों के अनुसार बदल सकती हैं। मायावती की सरकार भले ही गिर गई, लेकिन राजनैतिक रूप से यह एक स्थायी प्रभाव छोड़ गई।

कांशीराम की भविष्य की योजना और BSP का पुनर्गठन

सरकार गिरने के बाद कांशीराम ने यह महसूस किया कि पार्टी को अब दीर्घकालिक राजनैतिक ताकत बनाकर उत्तर प्रदेश की स्थायी सत्ता प्राप्त करनी चाहिए। उन्होंने BSP कार्यकर्ताओं को गाँव-गाँव जाकर संगठन को मजबूत करने का निर्देश दिया। क्षेत्रीय इकाइयों को फिर से सक्रिय किया गया और पार्टी लाइन को स्पष्ट करते हुए प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए गए। कांशीराम ने यह भी कहा कि अब BSP को अपनी संगठनात्मक शक्ति से भाजपा और SP दोनों का विकल्प बनना है। उन्होंने मायावती से आग्रह किया कि वह अगले चुनावों के लिए एक स्पष्ट रोडमैप तैयार करें और पार्टी की नीतियों को आमजन तक ले जाएँ।

BSP कार्यकर्ताओं के लिए मायावती की सरकार का संदेश

मायावती की पहली सरकार के बाद पार्टी कार्यकर्ताओं को यह समझ में आया कि केवल आंदोलन से नहीं, सत्ता प्राप्त कर ही समाज की दिशा बदली जा सकती है। उन्होंने सरकार के अनुभवों से यह सीखा कि सत्ता में आना जितना कठिन है, सत्ता को बनाए रखना उससे कहीं कठिन है।

कांशीराम ने कार्यकर्ताओं से कहा कि अब उन्हें आंदोलन और प्रशासन, दोनों में संतुलन बनाना होगा। मायावती ने इस दिशा में कदम उठाते हुए पार्टी को न केवल उत्तर प्रदेश में बल्कि अन्य राज्यों में भी मजबूत करने का अभियान चलाया। इस पूरी प्रक्रिया ने BSP को सिर्फ एक क्षेत्रीय दल न रखकर, एक राष्ट्रीय स्तर पर उभरती शक्ति बना दिया, जिसकी जड़ें समाज के सबसे वंचित तबकों में थीं।

अध्याय 27: राजनैतिक उथल-पुथल के दौरान कांशीराम की भूमिका

उत्तर प्रदेश की राजनैतिक अस्थिरता और बहुजन समाज पार्टी की स्थिति

1995 में उत्तर प्रदेश की राजनीति में वह ऐतिहासिक मोड़ आया जब बहुजन समाज पार्टी (BSP) ने पहली बार सत्ता की बागडोर संभाली। मायावती के मुख्यमंत्री बनने के साथ ही यह सिद्ध हुआ कि अब सत्ता पर उन वर्गों का भी अधिकार बन सकता है जो सदियों से वंचित थे। लेकिन यह सरकार अधिक समय तक टिक नहीं सकी। भाजपा द्वारा समर्थन वापस लेने के बाद BSP सरकार कुछ ही महीनों में गिर गई, जिससे प्रदेश में राजनैतिक अस्थिरता की शुरुआत हुई। इस अस्थिरता ने न केवल शासन में विघटन पैदा किया बल्कि सामाजिक समीकरणों को भी पूरी तरह बदल दिया। भाजपा और BSP के गठबंधन में निहित वैचारिक विरोधाभास जल्द ही सतह पर आ गए। भाजपा के लिए एक बहुजन महिला का मुख्यमंत्री बनना, खासकर मायावती जैसी नेता जो ब्राह्मणवाद और वर्ण व्यवस्था की मुखर आलोचक थीं, एक असहज परिस्थिति बन गई। ऊँची जातियों के बीच इस बदलाव को लेकर असंतोष बढ़ा, जो अंततः गठबंधन के पतन का कारण बना।

इस राजनैतिक घटनाक्रम के दौरान समाजवादी पार्टी, कांग्रेस और भाजपा सहित अन्य दलों ने यह अनुभव किया कि BSP एक स्थायी राजनैतिक शक्ति बनकर उभर रही है। ऐसे में इन दलों ने BSP के प्रसार को रोकने के

लिए रणनीतिक गठबंधन, जातिगत ध्रुवीकरण और नकारात्मक प्रचार जैसी नई रणनीतियों को अपनाया। इस गहराते राजनैतिक संघर्ष और अस्थिर माहौल में कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की भूमिका को केवल सत्ता तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने इसे एक विचारधारा आधारित आंदोलन के रूप में पुनः परिभाषित किया।

कांशीराम ने साफ शब्दों में कहा कि सत्ता का आना-जाना तात्कालिक घटनाएँ हैं, लेकिन जो पार्टी दीर्घकालीन सामाजिक परिवर्तन के लिए समर्पित है, वही स्थायी राजनैतिक ताकत बन सकती है। उन्होंने पार्टी कार्यकर्ताओं से अपील की कि वे मायूसी में न डूबें, बल्कि इस राजनैतिक संकट को संगठनात्मक सुदृढ़ीकरण का अवसर मानें। कांशीराम का यह दृष्टिकोण सामान्य राजनैतिक नेताओं से एकदम भिन्न था-वे चुनावी राजनीति के बजाय वैचारिक निर्माण, संगठनात्मक अनुशासन और बहुजन चेतना के प्रसार को प्राथमिकता देते थे।

उन्होंने कहा कि अब समय है जब पार्टी को हर गाँव, हर गली, हर मोहल्ले में अपने कैडर तैयार करने चाहिए। कांशीराम ने बहुजन समाज को जागरूक करने और उन्हें केवल वोट बैंक नहीं, बल्कि राजनैतिक भागीदार बनाने का जो सपना देखा था, वह इस अस्थिरता के दौर में और भी मजबूती से सामने आया। उन्होंने सत्ता से बाहर रहते हुए भी पार्टी को जनता के बीच ज़मीन से जोड़े रखने के लिए प्रत्येक कार्यकर्ता को प्रेरित किया कि वे नारे, संघर्ष, संगठन और वैचारिक प्रचार से पार्टी को आगे बढ़ाएँ।

इस प्रकार, 1995 के बाद का राजनैतिक अस्थिरता का समय, कांशीराम के लिए एक चेतावनी नहीं, बल्कि एक अवसर था। उन्होंने इस दौर को बहुजन आंदोलन के विस्तार और विचारधारा की पुनर्स्थापना का माध्यम

बनाया। उनकी दूरदर्शिता ने पार्टी को संकट में भी बिखरने नहीं दिया, बल्कि उसे और अधिक सशक्त करने की दिशा में अग्रसर किया।

BSP के लिए कांशीराम की रणनीति: सत्ता से बाहर रहते हुए संगठन को मज़बूत करना

कांशीराम ने 1995 में मायावती सरकार के गिरने के बाद जिस दृष्टिकोण से परिस्थितियों का मूल्यांकन किया, वह विशुद्ध रूप से एक दूरदर्शी संगठनकर्ता की सोच को दर्शाता है। उन्होंने इस राजनैतिक पराजय को न तो विफलता माना और न ही हतोत्साहजनक घटना-बल्कि इसे एक ऐसे अवसर के रूप में देखा जहाँ पार्टी को आत्मावलोकन का समय मिला। उन्होंने साफ कहा कि सत्ता में रहना लक्ष्य नहीं है, बल्कि सत्ता को चलाने योग्य संगठन खड़ा करना सबसे बड़ी उपलब्धि है। सत्ता में आने और गिरने की घटनाओं से कार्यकर्ता विचलित न हों, बल्कि इस अस्थायी सत्ता की हानि से सीख लेकर स्थायी संगठन की बुनियाद को मज़बूत करें। कांशीराम की रणनीति इस मूलमंत्र पर आधारित थी कि अगर संगठन मज़बूत हो, विचारधारा स्पष्ट हो, और जनाधार सशक्त हो, तो सत्ता स्वतः ही आएगी और उसे कोई छीन नहीं सकता।

उन्होंने बहुजन समाज पार्टी को पुनः जमीनी स्तर पर सक्रिय करने के लिए राज्यभर में कैडर पुनर्गठन की प्रक्रिया शुरू की। हर जिले, हर मंडल और हर विधानसभा में समर्पित कार्यकर्ताओं की पहचान कर उन्हें प्रशिक्षण दिया गया। उन्होंने कार्यकर्ताओं से आग्रह किया कि वे जनता के बीच जाएँ, बहुजन समाज के लोगों को राजनैतिक रूप से शिक्षित करें, उन्हें वोट के महत्व को समझाएँ, और जातिगत गौरव तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा को गहराई से आत्मसात कराएँ। कांशीराम ने अपने कई भाषणों में इस बात को बार-बार दोहराया कि सत्ता को साध्य नहीं बल्कि

साधन के रूप में देखें, जिससे हम अपने समाज की पीढ़ियों को आगे बढ़ा सकें।

सत्ता से बाहर रहते हुए संगठन निर्माण की यह रणनीति इसलिए भी महत्वपूर्ण थी क्योंकि उन्होंने देखा था कि बिना स्थायी जनाधार के सत्ता कभी भी छिन सकती है, जैसा कि भाजपा के समर्थन वापसी के कारण मायावती सरकार के साथ हुआ था। उन्होंने बहुजन राजनीति को अल्पकालिक सत्ता की तुलना में दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई माना और उसी अनुसार योजना बनाई। उनका विश्वास था कि एक मजबूत संगठन, जो विचारधारा और अनुशासन दोनों पर टिका हो, किसी भी राजनैतिक संकट का सामना कर सकता है। इसी सोच के अंतर्गत उन्होंने कार्यकर्ताओं को यह संदेश दिया कि अगली बार सत्ता में तभी आना है जब हम अपने बलबूते बहुमत प्राप्त कर सकें, और इसके लिए हर गाँव, हर बूथ और हर वर्ग में बहुजन चेतना को जगाना अनिवार्य है।

यह रणनीति संगठनात्मक रूप से भी कारगर सिद्ध हुई। कांशीराम ने आर्थिक संसाधनों की कमी के बावजूद पार्टी के प्रचार और प्रसार के लिए वैकल्पिक साधनों का उपयोग किया-छोटे-छोटे पैदल मार्च, जागरूकता रथ, प्रशिक्षण शिविर और पथ प्रदर्शन यात्राएँ। उन्होंने पोस्टरों, पर्चों, पुस्तिकाओं और स्थानीय भाषणों के माध्यम से पार्टी की विचारधारा को जनमानस तक पहुँचाया। यह सब सत्ता से बाहर रहते हुए किया गया, जिसने यह साबित किया कि यदि नेतृत्व संकल्पित हो और संगठन जुझारू हो, तो सत्ता केवल एक चरण होती है, आंदोलन ही उसकी आत्मा है।

भाजपा और अन्य दलों के साथ BSP के संबंधों में बदलाव

1995 में भाजपा और बहुजन समाज पार्टी (BSP) के बीच जो गठबंधन हुआ था, वह भारतीय राजनीति में एक अप्रत्याशित लेकिन रणनीतिक प्रयोग था। इस गठबंधन के तहत मायावती उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं, जिससे बहुजन समाज में भारी उत्साह की लहर दौड़ गई थी। परंतु यह उत्साह बहुत अधिक समय तक नहीं टिक सका क्योंकि भाजपा ने कुछ ही महीनों में अपना समर्थन वापस ले लिया। यह घटना केवल एक सरकार के गिरने तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसने गठबंधन राजनीति की कमजोरियों, वैचारिक असंतुलन, और सामाजिक-सांस्कृतिक टकरावों को उजागर कर दिया।

कांशीराम के लिए यह अनुभव निर्णायक और शिक्षाप्रद था। उन्होंने महसूस किया कि भाजपा जैसे उच्च जातीय वर्चस्व वाले दल, जो बहुजन नेतृत्व को केवल तात्कालिक राजनैतिक लाभ के लिए स्वीकार करते हैं, दीर्घकालिक रूप से न तो भरोसेमंद हैं और न ही वैचारिक रूप से समानधर्मी। भाजपा के लिए मायावती के नेतृत्व को स्वीकार करना एक “राजनैतिक समझौता” था, न कि सामाजिक न्याय के समर्थन का प्रमाण। जैसे ही भाजपा को यह लगा कि बहुजन नेतृत्व उनके परंपरागत वोट बैंक को चुनौती दे रहा है, उन्होंने समर्थन वापसी का निर्णय लेकर यह स्पष्ट कर दिया कि यह गठबंधन सतही और अल्पकालिक था।

कांशीराम ने इस संकट को केवल एक राजनैतिक पराजय के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्होंने इसे एक चेतावनी के रूप में लिया। उन्होंने अपने कैडर को स्पष्ट निर्देश दिए कि भविष्य में किसी भी गठबंधन की नींव केवल सत्ता की आवश्यकता पर नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और विचारधारात्मक समानता पर आधारित होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि

BSP को किसी अन्य दल की बैसाखी पर सत्ता में आने के बजाय अपने संगठन की ताकत से स्थायी आधार पर सत्ता प्राप्त करने की योजना बनानी चाहिए। इस अनुभव के बाद, उन्होंने गठबंधन को एक अस्थायी युक्ति माना, लेकिन संगठनात्मक स्वायत्तता को सर्वोपरि रखा।

इस घटना ने कांशीराम की दूरदृष्टि को और भी स्पष्ट कर दिया कि भारतीय राजनीति में बहुजन नेतृत्व को आत्मनिर्भर बनाना ही एकमात्र विकल्प है। उन्होंने यह निर्णय लिया कि BSP को एक राष्ट्रीय पार्टी में परिवर्तित करना होगा, जो किसी गठबंधन पर निर्भर न रहकर बहुजन समाज के आधार पर स्थायी रूप से सत्ता में भागीदारी कर सके। इसके लिए उन्होंने गहन संगठनात्मक पुनर्गठन की शुरुआत की और कार्यकर्ताओं में यह आत्मविश्वास भरने का प्रयास किया कि सत्ता का स्थायित्व तभी संभव है जब बहुजन समाज खुद सत्ता का केंद्र बने।

इस प्रकार, भाजपा के साथ BSP के संबंधों में यह बदलाव एक मोड़ साबित हुआ-जहाँ से कांशीराम ने न केवल भविष्य की राजनीति के लिए स्पष्ट दिशा तय की, बल्कि पार्टी को वैचारिक दृढ़ता और संगठनात्मक आत्मनिर्भरता की राह पर भी अग्रसर किया।

BSP कार्यकर्ताओं को प्रेरित करने में कांशीराम की भूमिका

1995 में बहुजन समाज पार्टी की सरकार गिरने के बाद कार्यकर्ताओं और समर्थकों के बीच गहरा मनोवैज्ञानिक संकट उत्पन्न हुआ। वर्षों की मेहनत और आंदोलन के बाद जो सत्ता हासिल हुई थी, वह कुछ ही महीनों में छिन गई। इससे न केवल कार्यकर्ताओं के आत्मबल पर असर पड़ा, बल्कि पार्टी के अंदर भ्रम और अस्थिरता की स्थिति भी बनने लगी। राजनैतिक विरोधियों ने इसे BSP की विफलता के रूप में प्रचारित किया,

जिससे जमीनी कार्यकर्ताओं के मन में यह शंका उठने लगी कि क्या बहुजन राजनीति वाकई दीर्घकालिक बदलाव का माध्यम बन सकती है या यह एक क्षणिक प्रयोग मात्र था।

ऐसे विकट समय में कांशीराम ने संगठन को टूटने से बचाने के लिए व्यक्तिगत स्तर पर कमान संभाली। उन्होंने मायावती की मुख्यमंत्री पद पर नियुक्ति को एक ऐतिहासिक उपलब्धि बताते हुए इसे 'सत्ता में बहुजन प्रतीक की स्थापना' कहा, न कि केवल एक राजनैतिक पद प्राप्ति। उन्होंने कार्यकर्ताओं को यह समझाने का प्रयास किया कि यह सरकार भले अल्पकालिक रही हो, लेकिन इसने बहुजन समाज को भारतीय राजनीति में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास दिया है। उन्होंने इसे 'क्रांति की शुरुआत' बताया, और कहा कि संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है, बल्कि असली लड़ाई तो अब शुरू हुई है।

कांशीराम ने निराश कार्यकर्ताओं को प्रेरित करने के लिए लगातार जिलावार बैठकें, प्रशिक्षण शिविर और कैडर कैंप आयोजित कराए। इन आयोजनों में वे स्वयं शामिल होते, भाषण देते, सवालों का उत्तर देते और यह सुनिश्चित करते कि कार्यकर्ताओं को यह संदेश जाए कि पार्टी केवल सरकार बनाने का माध्यम नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति का विस्तार है। उन्होंने साफ शब्दों में कहा कि सत्ता मिलना एक साधन है, साध्य नहीं। अगर संगठन मजबूत होगा, कार्यकर्ता प्रतिबद्ध रहेंगे और विचारधारा पर अडिग रहेंगे, तो सत्ता बार-बार आएगी और लंबे समय तक टिकेगी।

उन्होंने पार्टी के विचारधारात्मक कैडर को पुनः संगठित करने पर विशेष ध्यान दिया और कहा कि सत्ता के गिरने से आत्मबल नहीं गिरना चाहिए। "सत्ता तो आती-जाती रहती है, लेकिन आंदोलन और संगठन को जीवित

रखना ही कांशीरामी राजनीति की आत्मा है,” यह उनका केंद्रीय संदेश था। उन्होंने यह भी कहा कि हर हार एक सीख है, और यह अनुभव कार्यकर्ताओं को रणनीतिक रूप से और परिपक्व बनाएगा। इस प्रेरणा ने पार्टी में नए उत्साह का संचार किया और कार्यकर्ताओं को आंदोलन के मूल उद्देश्य की ओर लौटने के लिए प्रेरित किया।

इस पूरे दौर में कांशीराम ने केवल भाषण नहीं दिए, बल्कि व्यक्तिगत स्तर पर भी कार्यकर्ताओं से संवाद किया। उन्होंने नेतृत्व की वह मिसाल पेश की जिसमें नेता संकट के समय अपने कार्यकर्ताओं के साथ खड़ा होता है। उनका यह व्यवहार संगठन में नई ऊर्जा का संचार करता गया और BSP ने आगामी चुनावों में और अधिक संगठित और आत्मविश्वास से लैस होकर भागीदारी की। उनके इस प्रेरक और सक्रिय नेतृत्व ने यह सिद्ध कर दिया कि विचारधारा, संगठन और कार्यकर्ता यदि एकजुट हों तो सत्ता का अस्थायी नुकसान भी आंदोलन की शक्ति को कमजोर नहीं कर सकता।

BSP की नई रणनीति और कांशीराम की भविष्य की योजना

1995 में बनी पहली बहुजन समाज पार्टी (BSP) की सरकार के अल्पकालिक पतन के बाद कांशीराम ने जिस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियों का मूल्यांकन किया, वह उनकी असाधारण दूरदृष्टि का प्रमाण था। उन्होंने इस पराजय को हार के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे एक संगठनात्मक सुधार और दीर्घकालिक रणनीति निर्माण का अवसर माना। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि केवल सत्ता प्राप्त करना ही उद्देश्य नहीं है, बल्कि सत्ता को आत्मनिर्भरता के साथ हासिल करना ही बहुजन राजनीति की असली सफलता होगी। इसी सोच के साथ उन्होंने पार्टी की रणनीति का एक व्यापक पुनर्गठन आरंभ किया।

कांशीराम ने तय किया कि BSP अब उत्तर प्रदेश तक सीमित नहीं रहेगी। पार्टी को राष्ट्रीय स्तर पर विस्तारित किया जाएगा ताकि बहुजन समाज की आवाज देश भर में गूँज सके। इसके लिए उन्होंने 1996 के आम चुनावों को केंद्र में रखकर एक मिशन मोड में कार्य शुरू किया। उन्होंने मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार और पंजाब जैसे राज्यों में BSP की सांगठनिक इकाइयों को सक्रिय करने का निर्देश दिया और वहाँ के स्थानीय सामाजिक समीकरणों के अनुसार रणनीतियाँ गढ़ी। उनका मानना था कि यदि उत्तर भारत में बहुजन समाज का राजनैतिक आधार मजबूत होता है, तो उसका असर पूरे देश की राजनीति पर पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त कांशीराम ने मुस्लिम समुदाय और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को भी बहुजन एजेंडा के तहत एक साथ लाने की योजना तैयार की। उनका विचार था कि यदि इन वर्गों को साझा सामाजिक न्याय की विचारधारा के आधार पर जोड़ा जाए, तो एक शक्तिशाली जनाधार तैयार हो सकता है जो किसी भी दल के समर्थन के बिना सरकार बना सकता है। उन्होंने कहा कि सत्ता तक पहुँचने का रास्ता बूथ स्तर की ताकत से होकर जाता है। इसलिए हर विधानसभा क्षेत्र में संगठन को पुनर्गठित करने और हर बूथ पर बहुजन प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

उन्होंने कार्यकर्ताओं को यह सिखाया कि संगठनात्मक कार्य सत्ता प्राप्ति से अधिक महत्वपूर्ण होता है, और इसके लिए अनुशासन, समर्पण और विचारधारा के प्रति निष्ठा आवश्यक है। उनका स्पष्ट निर्देश था कि कोई भी कार्यकर्ता केवल चुनावी उद्देश्य से नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति के वाहक के रूप में पार्टी से जुड़ा रहे। इस उद्देश्य को साकार करने के लिए

उन्होंने कैडर कैम्प, प्रशिक्षण सत्र, जनसभाएँ और बहुजन चेतना यात्रा जैसे कार्यक्रम आरंभ किए।

BSP की इस नई रणनीति के पीछे कांशीराम की स्पष्ट समझ थी कि जब तक पार्टी आत्मनिर्भर नहीं होगी, तब तक वह किसी भी गठबंधन पर निर्भर रहेगी और इससे विचारधारा में विचलन की संभावना बनी रहेगी। उन्होंने एक सशक्त संगठन की नींव डालकर यह सुनिश्चित किया कि भविष्य में कोई भी सरकार बहुजन जनाधार के बिना टिक न सके। यही कारण था कि 1996 के बाद BSP ने अपने बलबूते सरकार बनाने की दिशा में गंभीर प्रयास शुरू कर दिए, जो आगे चलकर 2007 में पूर्ण बहुमत की सरकार के रूप में साकार भी हुए।

इस प्रकार, कांशीराम की यह रणनीति केवल चुनावी गणना नहीं थी, बल्कि एक व्यापक सामाजिक आंदोलन को सत्ता तक पहुँचाने की योजना थी-जो बहुजन समाज को न केवल राजनैतिक प्रतिनिधित्व दिलाए, बल्कि उन्हें सत्ता का स्वाभाविक धुरी बनाए। उनका यह दृष्टिकोण बहुजन राजनीति को भावनात्मक और वैचारिक आधार से निकालकर संगठनात्मक और रणनीतिक परिपक्वता की ओर ले गया।

उत्तर प्रदेश की राजनीति में BSP की नई भूमिका

1995 में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की पहली सरकार के पतन के बाद राज्य की राजनीति में अस्थिरता तो आई ही, लेकिन साथ ही BSP के लिए एक नई वैकल्पिक भूमिका की भी आवश्यकता उत्पन्न हुई। कांशीराम ने इस मौके को केवल हार या संकट के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे पार्टी के राजनैतिक परिपक्वता और दीर्घकालिक रणनीति के लिहाज से एक अहम मोड़ माना। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह घोषणा की कि

अब पार्टी को सत्ता में टिकने के लिए किसी अन्य दल की बैसाखी की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसके बजाय, संगठन को इतना मजबूत और आत्मनिर्भर बनाया जाए कि वह स्वतंत्र रूप से सरकार बना सके और अपने नीतिगत एजेंडे को लागू कर सके। कांशीराम के इसी विचार से प्रेरित होकर BSP ने “स्वनिर्भर सत्ता” का लक्ष्य निर्धारित किया, जिसमें किसी गठबंधन पर निर्भर हुए बिना पूर्ण बहुमत प्राप्त करने की रणनीति तैयार की गई।

उत्तर प्रदेश की राजनीति में BSP की इस नई भूमिका का आधार संगठनात्मक ढाँचे को गाँव-स्तर से लेकर जिला और राज्य स्तर तक और अधिक मजबूत बनाना था। कांशीराम और मायावती दोनों ने इस दिशा में मिलकर काम किया। हर जिले में ज़मीनी कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए गए, जहाँ उन्हें राजनैतिक शिक्षा, विचारधारा और चुनावी रणनीतियों का प्रशिक्षण दिया गया। पार्टी की बैठकों और रैलियों में यह स्पष्ट संदेश दिया गया कि अब BSP सत्ता की दौड़ में केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि एक प्रमुख शक्ति बनकर उभरेगी।

संगठन के पुनर्गठन के साथ-साथ पार्टी ने वैकल्पिक सामाजिक समूहों तक भी अपनी पहुँच बढ़ानी शुरू की। दलित, पिछड़ा, मुस्लिम और वंचित वर्गों को एक साझा “बहुजन सामाजिक गठबंधन” में लाने की कोशिश की गई। इसके अलावा, BSP ने अपने पुराने वोट बैंक को पुनः सक्रिय करने के लिए विशेष संपर्क अभियान चलाए। मायावती और अन्य वरिष्ठ नेताओं ने राज्य भर में रथ यात्राएँ, जनसभाएँ और सम्मेलन आयोजित किए, जिनका मुख्य उद्देश्य यह दिखाना था कि BSP अब किसी भी राजनैतिक सौदेबाज़ी से परे, एक सशक्त और आत्मनिर्भर सत्ता विकल्प के रूप में उभरी है।

इस प्रक्रिया में BSP ने विपक्ष की भूमिका भी जिम्मेदारी से निभाई। विधानसभा में सरकार की जनविरोधी नीतियों का पुरजोर विरोध किया गया और जनता से सीधे संवाद कर उनके मुद्दों को राजनैतिक मंच तक पहुँचाया गया। कांशीराम की प्रेरणा से, यह रणनीति राजनैतिक दृष्टिकोण से बेहद प्रभावशाली साबित हुई और 1996 के विधानसभा चुनावों की तैयारी में पार्टी को एक मजबूत ज़मीन मिली। उन्होंने कार्यकर्ताओं से कहा कि “हर बूथ पर हमारा स्वयं का पहरा हो, और हर मतदाता तक हमारी विचारधारा पहुँचे”, ताकि सत्ता किसी समझौते से नहीं, जनता की इच्छाशक्ति से प्राप्त हो।

इस तरह कांशीराम ने BSP की भूमिका को केवल एक दलित हितैषी पार्टी से आगे बढ़ाकर एक वैचारिक और राजनैतिक आंदोलन का रूप दिया, जो उत्तर प्रदेश की राजनीति में निर्णायक स्थिति में आ सके। उनका यह प्रयास न केवल तत्कालीन परिस्थितियों के लिए रणनीतिक था, बल्कि आगे आने वाले दशकों की बहुजन राजनीति की नींव भी बन गया।

कांशीराम का नेतृत्व और BSP का प्रभाव

1995 में बनी पहली बहुजन समाज पार्टी की सरकार के पतन के बाद जब मायावती को मुख्यमंत्री पद से हटना पड़ा, तब बहुजन समाज के भीतर गहरी निराशा फैल गई। बहुत से लोगों को यह आशंका होने लगी कि क्या यह आंदोलन केवल कुछ महीनों की सत्ता के लिए था या क्या इसके पीछे कोई दीर्घकालिक योजना थी। ठीक इसी समय कांशीराम का नेतृत्व सामने आया, जिसने पार्टी के भीतर विश्वास को पुनर्स्थापित किया। वे केवल संस्थापक नेता नहीं थे, बल्कि एक वैचारिक संरक्षक और कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने इस कठिन दौर में पार्टी की

बागडोर अपने हाथ में ली और यह स्पष्ट संदेश दिया कि बहुजन समाज पार्टी सत्ता के लोभ से नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की भावना से प्रेरित होकर बनी है।

काशीराम का नेतृत्व इस संकट की घड़ी में संगठन का भावनात्मक आधार बन गया। उन्होंने कार्यकर्ताओं से निरंतर संवाद बनाए रखा, जहाँ उन्होंने सत्ता को साधन बताया, न कि अंतिम लक्ष्य। वे बार-बार दोहराते कि मायावती का मुख्यमंत्री बनना एक प्रतीकात्मक क्रांति थी, लेकिन यह तभी सार्थक होगी जब संगठन वैचारिक रूप से सशक्त और चुनावी रूप से आत्मनिर्भर हो। उन्होंने पार्टी कार्यकर्ताओं को समझाया कि सत्ता से हटना कोई हार नहीं है, बल्कि यह अवसर है यह सोचने का कि संगठन में कहाँ-कहाँ और मजबूती की आवश्यकता है।

काशीराम की एक और विशिष्टता थी-उनका ज़मीनी कार्यकर्ताओं के साथ सीधा संबंध। उन्होंने इस संकट को कैडर-निर्माण के एक नए चरण के रूप में देखा। उन्होंने कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के लिए कैडर कैंपों और संगठनात्मक शिविरों की व्यवस्था की। इन आयोजनों में केवल पार्टी लाइन ही नहीं सिखाई जाती थी, बल्कि सामाजिक चेतना, इतिहास, संविधान और बहुजन आंदोलन की व्याख्या भी की जाती थी। उन्होंने यह प्रयास किया कि प्रत्येक कार्यकर्ता केवल पोस्टर चिपकाने वाला कार्यकर्ता न हो, बल्कि एक विचारधारा-प्रेरित सामाजिक परिवर्तनकर्मी बने।

उन्होंने पार्टी के मूलमंत्र-“शिक्षित बनो, संगठित बनो, संघर्ष करो” और “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”-को दोहराते हुए यह स्पष्ट किया कि यह केवल नारे नहीं हैं, बल्कि सामाजिक न्याय के लिए एक क्रांतिकारी योजना है। उनके नेतृत्व में BSP का आंदोलन फिर

से जीवन्त हो गया और मायावती के नेतृत्व को जनसमर्थन मिलने लगा। कांशीराम ने संगठन के हर स्तर पर यह सुनिश्चित किया कि कार्यकर्ता खुद को केवल कार्यकर्ता नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के सिपाही समझें। उनका नेतृत्व न केवल BSP को फिर से चुनावी मंच पर लाने में सफल रहा, बल्कि बहुजन समाज को आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और राजनैतिक चेतना से भी परिपूर्ण किया। इस प्रकार कांशीराम का यह नेतृत्व काल केवल राजनैतिक रणनीति का नहीं, बल्कि वैचारिक पुनरुत्थान का युग बन गया, जिसने पार्टी को न केवल पुनर्जीवित किया, बल्कि उसे नई दिशा, ऊर्जा और संकल्प के साथ आगामी चुनावों के लिए तैयार किया।

BSP के बढ़ते प्रभाव और कांशीराम की दूरदर्शिता

1995 में गठबंधन सरकार के पतन के बाद का समय बहुजन समाज पार्टी (BSP) के लिए केवल एक राजनैतिक झटका नहीं, बल्कि आत्ममंथन, पुनर्गठन और नए राजनैतिक क्षितिज की तलाश का काल था। यह वह दौर था जब अधिकांश राजनैतिक विश्लेषकों ने BSP के भविष्य पर संदेह जताया, लेकिन कांशीराम की राजनैतिक दूरदर्शिता ने इस अस्थिरता को एक अवसर में बदल दिया। उन्होंने न केवल पार्टी को हिम्मत दी, बल्कि एक ऐसा बहुजन रोडमैप तैयार किया जिसमें सत्ता की राजनीति को सामाजिक क्रांति के लिए माध्यम के रूप में देखा गया।

कांशीराम ने स्पष्ट कर दिया कि अगर BSP को दीर्घकालिक सफलता पानी है, तो उसे केवल उत्तर प्रदेश की जातीय समीकरणों पर निर्भर नहीं रहना होगा। उन्होंने बहुजन आंदोलन को राष्ट्रीय रूप देने की योजना बनाई, जिसमें दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों को

एक राजनैतिक मंच पर संगठित किया जा सके। इसके तहत उन्होंने मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब और हरियाणा जैसे राज्यों में पार्टी का सांगठनिक विस्तार शुरू कराया। पार्टी के लिए स्पष्ट निर्देश था कि हर बूथ, हर पंचायत, हर ज़िले में बहुजन प्रतिनिधित्व मजबूत किया जाए, जिससे BSP चुनावी आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सके।

इस काल में BSP के कार्यक्रमों, रैलियों और नीतिगत घोषणाओं में कांशीराम की वैचारिक स्पष्टता झलकती थी। उन्होंने बहुजन जनगणना आधारित प्रतिनिधित्व की मांग को राजनैतिक विमर्श का केंद्र बना दिया। उनका कहना था कि जब तक सत्ता की चाभी बहुजन समाज के हाथों में नहीं होगी, तब तक न तो सामाजिक न्याय सुनिश्चित किया जा सकता है, और न ही आर्थिक समानता प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने यह भी महसूस कराया कि राजनीति केवल संख्या का खेल नहीं है, बल्कि संगठित चेतना और वैचारिक प्रतिबद्धता से ही सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकता है।

BSP के बढ़ते जनाधार ने विपक्षी दलों को भी मजबूर किया कि वे बहुजन समाज को लेकर अपनी रणनीति बदलें। कांग्रेस और भाजपा जैसे दलों ने बहुजन कल्याण की योजनाओं को प्राथमिकता में लाना शुरू किया, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि कांशीराम की राजनैतिक रणनीति ने भारत की मुख्यधारा राजनीति की दिशा ही बदल दी है। BSP अब केवल एक क्षेत्रीय दल नहीं रह गया था; यह एक वैचारिक आंदोलन बन चुका था, जिसने दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को एक नई पहचान और आत्मविश्वास दिया।

कांशीराम की दूरदर्शिता का परिणाम यह था कि पार्टी के नेता और कार्यकर्ता केवल चुनावी जीत तक सीमित नहीं रहे, बल्कि सामाजिक आंदोलनों, शैक्षिक जागरूकता, और प्रशासनिक भागीदारी में भी सक्रिय

हो गए। उन्होंने दलित-ब्राह्मण गठजोड़ जैसी नई चुनावी रणनीतियों को भी अपनाया, जो 2007 में पार्टी की पूर्ण बहुमत की सरकार बनाने में सहायक बनीं। यही वह बौद्धिक परिपक्वता और संगठनात्मक विवेक था, जिसने BSP को सामाजिक न्याय की लड़ाई के केंद्र में स्थापित कर दिया।

इस प्रकार कांशीराम की दूरदर्शिता केवल राजनैतिक कार्यक्रमों तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने बहुजन राजनीति को एक दीर्घकालिक विचारधारा और आंदोलन के रूप में स्थापित किया। उनके नेतृत्व में BSP एक ऐसा मंच बन गई, जहाँ केवल सत्ता नहीं, बल्कि परिवर्तन का सपना भी पलता था। यही उनका सबसे बड़ा योगदान था-राजनीति को बहुजन मुक्ति का उपकरण बनाना और उसे राष्ट्रीय पहचान देना।

अध्याय 28:

उत्तर प्रदेश के बाहर बीएसपी का प्रभाव (मध्य प्रदेश, पंजाब, बिहार)

बीएसपी का उत्तर प्रदेश से बाहर विस्तार: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना कांशीराम द्वारा केवल उत्तर प्रदेश के संदर्भ में नहीं, बल्कि समूचे भारत में सामाजिक-राजनैतिक क्रांति के लक्ष्य के साथ की गई थी। यद्यपि उत्तर प्रदेश शुरू में पार्टी का मजबूत आधार रहा, परंतु कांशीराम की दृष्टि कहीं अधिक व्यापक थी। वे मानते थे कि भारत भर में फैले बहुजन समुदाय-जिसमें दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल हैं-अगर एक मंच पर संगठित हो जाएँ, तो वे किसी भी राज्य में सत्ता प्राप्त कर सकते हैं। उनका स्पष्ट मत था कि “हम केवल उत्तर प्रदेश में नहीं, बल्कि पूरे देश में सत्ता के हिस्सेदार बनेंगे।” उत्तर प्रदेश में सत्ता प्राप्त करने के बाद, कांशीराम और मायावती दोनों ने बीएसपी के संगठनात्मक विस्तार की दिशा में कार्य किया। इसके तहत मध्य प्रदेश, पंजाब और बिहार जैसे राज्यों को प्राथमिकता दी गई, जहाँ सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाएँ बीएसपी की विचारधारा से मेल खाती थीं।

मध्य प्रदेश में बीएसपी का प्रभाव और राजनैतिक रणनीति

मध्य प्रदेश में बीएसपी ने 1990 के दशक से ही सक्रियता दिखानी शुरू कर दी थी। यहाँ अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भारी जनसंख्या

के कारण यह राज्य बीएसपी के लिए रणनीतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण था। ग्वालियर, चंबल, विंध्य और बुंदेलखंड क्षेत्र में बहुजन आबादी का अच्छा खासा प्रभाव था, जिसे पार्टी ने पहचानकर वहाँ संगठन खड़ा करने का प्रयास किया। बीएसपी ने इन क्षेत्रों में दलित-आदिवासी गठजोड़ की एक नयी राजनैतिक रणनीति बनाई और स्थानीय मुद्दों को लेकर जनसभाओं के माध्यम से जनता तक अपनी बात पहुँचाई। हालांकि प्रारंभिक दौर में सफलता सीमित रही, लेकिन धीरे-धीरे पार्टी ने जमीनी पकड़ बनाई। 1993 के विधानसभा चुनावों में 2 सीटें जीतकर बीएसपी ने दस्तक दी, जबकि 2003 में यह संख्या 7 हो गई और वोट प्रतिशत भी बढ़कर लगभग 7% पहुँचा। 2018 में बीएसपी ने फिर से 5 सीटें जीतकर यह संकेत दिया कि राज्य में उसका एक स्थायी आधार मौजूद है। हालांकि बीएसपी वहाँ कांग्रेस और बीजेपी के प्रभुत्व से पूरी तरह टक्कर नहीं ले पाई, परंतु एक वैकल्पिक बहुजन नेतृत्व के रूप में उसकी भूमिका बनी रही।

पंजाब में बीएसपी की राजनीति और सिख बहुजनों के साथ गठजोड़

कांशीराम पंजाब के निवासी थे और उन्हें इस राज्य की सामाजिक संरचना की गहरी समझ थी। पंजाब भारत का एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ दलितों की आबादी लगभग 32% है, फिर भी लंबे समय तक उनका राजनैतिक प्रतिनिधित्व बहुत सीमित रहा। कांशीराम ने इस स्थिति को चुनौती देने का बीड़ा उठाया और मजहबी सिख, रामदासिया सिख और हिंदू दलितों को एकजुट कर सशक्त राजनैतिक ताकत बनाने की दिशा में काम किया। बीएसपी ने 1992 में जब पंजाब विधानसभा चुनाव में 9 सीटें जीत लीं और 16% से अधिक वोट प्राप्त किए, तब यह स्पष्ट हो गया कि पार्टी

राज्य में मजबूत पकड़ बना सकती है। हालाँकि बाद के वर्षों में यह गति धीमी पड़ी। 1996 में अकाली दल के साथ किया गया गठबंधन अपेक्षित परिणाम नहीं दे सका। 2017 और 2022 के चुनावों में बीएसपी का प्रदर्शन कमजोर रहा, लेकिन सिख बहुजन समाज में पार्टी की वैचारिक स्वीकार्यता बनी रही। पंजाब में जातीय और धार्मिक समीकरणों की जटिलता ने बीएसपी की स्वतंत्र राजनीति के विस्तार को सीमित किया, फिर भी कांशीराम की पंजाब रणनीति एक ऐतिहासिक प्रयोग के रूप में जानी जाती है।

बिहार में बीएसपी का प्रभाव और संघर्ष

बिहार में मंडल आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद सामाजिक न्याय की राजनीति को नया उभार मिला। लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में आरजेडी ने यादव, मुस्लिम और अन्य पिछड़े वर्गों को संगठित कर व्यापक समर्थन हासिल किया। इस स्थिति में बीएसपी को अपने लिए स्थान बनाना कठिन रहा, क्योंकि बहुजन वोट पहले से आरजेडी और जेडीयू के बीच बाँटे हुए थे। कांशीराम ने हालाँकि यह स्पष्ट किया कि “बहुजन राजनीति किसी एक जाति विशेष के नेतृत्व तक सीमित नहीं रह सकती।” उन्होंने बिहार में गैर-यादव दलित और पिछड़े वर्गों को एकजुट करने की कोशिश की, लेकिन जमीनी स्तर पर संगठन मजबूत नहीं हो पाया। 1995 में बीएसपी ने बिहार में 6 सीटें जीतकर यह दिखाया कि संभावनाएँ हैं, लेकिन 2000 के बाद से पार्टी लगातार पिछड़ती गई। 2015 में केवल 2% वोट मिलना इस बात का प्रमाण था कि बिहार में बीएसपी की रणनीति पुनः चिंतन की माँग करती है। बिहार में बीएसपी के कमजोर प्रदर्शन का मुख्य कारण क्षेत्रीय दलों की गहरी पैठ, जातिगत समीकरणों की जटिलता और नेतृत्व का स्थानीय न होना रहा।

बीएसपी की उत्तर प्रदेश से बाहर विस्तार की सीमाएँ और चुनौतियाँ

बीएसपी के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि उत्तर प्रदेश से बाहर उसके पास वैसा सशक्त संगठन और 3स्थानीय नेतृत्व नहीं था जैसा वहाँ था। पार्टी के कार्यों और निर्णयों का अत्यधिक केंद्रीकरण मायावती तक सीमित हो गया, जिससे स्थानीय नेताओं को निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं मिली। इससे राज्यों में संगठनात्मक विकास बाधित हुआ। साथ ही, बिहार और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में जहाँ पिछड़ा वर्ग राजनैतिक रूप से पहले से संगठित था, वहाँ बीएसपी की जातिगत राजनीति सीमित प्रभाव डाल पाई। पंजाब में धार्मिक और जातीय विभाजन ने बीएसपी को पूर्ण बहुजन समर्थन से वंचित रखा। इन सभी राज्यों में क्षेत्रीय दलों का गहरा जनाधार, संसाधनों की कमी, और मीडिया-प्रभाव का अभाव बीएसपी के लिए अतिरिक्त चुनौतियाँ बनकर उभरा।

भविष्य की संभावनाएँ और बीएसपी की रणनीति

यदि बीएसपी को उत्तर प्रदेश के बाहर अपनी पकड़ मजबूत करनी है तो उसे सबसे पहले राज्यवार संगठनात्मक ढाँचा विकसित करना होगा। स्थानीय नेतृत्व को निर्णायक भूमिका देनी होगी, और युवाओं को जोड़ने के लिए समकालीन माध्यमों का इस्तेमाल करना होगा। मध्य प्रदेश में एससी-एसटी गठजोड़ को सशक्त कर वोट बैंक को संगठित करना होगा। पंजाब में मजहबी सिखों और रामदासिया समुदाय के बीच जनसंपर्क अभियान तेज करना होगा और स्थानीय धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकों को शामिल करते हुए समावेशी राजनीति अपनानी होगी। बिहार में गैर-यादव ओबीसी और दलित समुदाय को एकजुट करने की आवश्यकता है, साथ ही मुस्लिम वर्गों को भी वैकल्पिक प्रतिनिधित्व का आश्वासन देना होगा। बीएसपी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने राजनैतिक मॉडल को

लचीला बनाए, नेतृत्व को विकेंद्रित करे, और सामाजिक न्याय को एक व्यवहारिक एजेंडा बनाकर प्रस्तुत करे। तभी वह उत्तर प्रदेश से बाहर सशक्त उपस्थिति बना सकेगी और कांशीराम के अखिल भारतीय बहुजन आंदोलन के सपने को साकार कर पाएगी।

अध्याय 29:

राष्ट्रीय राजनीति में स्थान बनाने की चुनौतियाँ और कांशीराम की रणनीति

राष्ट्रीय राजनीति में बीएसपी की महत्वाकांक्षा

बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) की स्थापना केवल एक राज्य तक सीमित आंदोलन के रूप में नहीं, बल्कि भारत के सामाजिक-राजनैतिक ढांचे को बदलने के उद्देश्य से की गई थी। कांशीराम का प्रारंभ से ही यह मत था कि जब तक बहुजन समुदाय-जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यक शामिल हैं-देशभर में राजनैतिक शक्ति प्राप्त नहीं करेगा, तब तक शोषण और जातिवाद समाप्त नहीं हो सकता। उन्होंने बार-बार कहा कि बहुजन समाज का सशक्तिकरण केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित रहने से नहीं होगा, बल्कि इसकी पहुंच हर राज्य तक होनी चाहिए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने बीएसपी को एक ऐसे राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में विकसित करने की नींव रखी जो सामाजिक न्याय की विचारधारा पर टिका था।

उत्तर प्रदेश में सत्ता प्राप्त करने के बाद, कांशीराम ने पार्टी को पंजाब, मध्य प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान और हरियाणा जैसे राज्यों में विस्तारित करने की दिशा में कार्य शुरू किया। हालांकि यह मार्ग आसान नहीं था। राष्ट्रीय राजनीति में प्रवेश के प्रयासों को कांग्रेस और बीजेपी जैसे शक्तिशाली दलों के प्रभुत्व, क्षेत्रीय दलों की गहरी जड़ें और बीएसपी के सीमित संगठनात्मक ढांचे जैसी अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा।

कांशीराम के नेतृत्व में बीएसपी की राष्ट्रीय रणनीति

कांशीराम की रणनीति स्पष्ट थी-पहले बहुजन समाज को संगठित करना और फिर इस संगठन को राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित करना। उन्होंने बीएसपी को एक बहुजन-आधारित संगठन के रूप में खड़ा किया, जो शोषित, वंचित और हाशिए पर खड़े समुदायों की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करे। कांशीराम ने इन वर्गों को जागरूक करने और राजनैतिक रूप से सशक्त बनाने के लिए देशभर में 'ब्रेन वॉशिंग' मिशन और 'दीक्षा' अभियान चलाया। उनके प्रयासों से बीएसपी की पहुँच पंजाब से लेकर महाराष्ट्र तक फैली, और पार्टी ने कई राज्यों में चुनाव लड़े।

बाद में, मायावती के नेतृत्व में बीएसपी ने "सर्वजन" की रणनीति अपनाई, जिसमें सभी जातियों को शामिल करने का प्रयास किया गया। इसका उद्देश्य उच्च जातियों को भी बीएसपी के साथ जोड़कर व्यापक जनाधार खड़ा करना था। यह रणनीति चुनावी दृष्टि से कारगर भी रही, विशेषकर तब जब बीएसपी ने उत्तर प्रदेश में बहुमत से सरकार बनाई। कांशीराम ने यह महसूस किया कि कांग्रेस और बीजेपी जैसी राष्ट्रीय पार्टियों को टक्कर देने के लिए गठबंधन भी एक आवश्यक रणनीति है। इसी क्रम में 1996 में कांग्रेस के साथ गठबंधन किया गया, जो कुछ समय बाद टूट गया। 1999 और 2004 में बीएसपी ने बीजेपी के साथ गठबंधन किया, जिससे पार्टी को संसद में उपस्थिति और संसदीय अनुभव प्राप्त हुआ। इन गठबंधनों ने बीएसपी को राष्ट्रीय राजनैतिक विमर्श में प्रमुखता दिलाई।

बीएसपी के राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार की चुनौतियाँ

बीएसपी के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह थी कि राष्ट्रीय राजनीति पहले से ही कांग्रेस, बीजेपी और क्षेत्रीय दलों के प्रभाव में थी। बिहार में आरजेडी और जेडीयू ने सामाजिक न्याय की राजनीति पर पहले से पकड़ बना रखी थी। महाराष्ट्र में एनसीपी और शिवसेना की गहरी जड़ें थीं। पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस का प्रभुत्व था। इन सभी राज्यों में बीएसपी को वैकल्पिक स्थान बनाना चुनौतीपूर्ण रहा। इन दलों ने पहले से जातीय, भाषाई और क्षेत्रीय पहचान के आधार पर मतदाताओं को संगठित कर रखा था, जिससे बीएसपी के लिए अपने बहुजन मॉडल को लागू करना आसान नहीं था।

इसके अलावा, कांग्रेस ने अपने लंबे शासनकाल में सामाजिक योजनाओं के माध्यम से बहुजन वर्गों के बीच अपनी पकड़ मजबूत की थी, वहीं बीजेपी ने हिंदुत्व और पिछड़ा वर्ग राजनीति के नए समीकरण बनाए। इस वजह से बीएसपी को कई मोर्चों पर एकसाथ संघर्ष करना पड़ा। दूसरी ओर, बीएसपी का संगठनात्मक ढाँचा उत्तर प्रदेश के बाहर कमजोर था। कई राज्यों में स्थानीय नेतृत्व का अभाव, कार्यकर्ता प्रशिक्षण की कमी और संसाधनों का सीमित वितरण पार्टी के विस्तार में बाधक रहा। मायावती का अत्यधिक केंद्रीकृत नेतृत्व भी एक कारण रहा कि अन्य राज्यों में स्थानीय नेतृत्व को स्वतंत्र रूप से विकसित होने का अवसर नहीं मिला।

लोकसभा और राज्यसभा में बीएसपी की स्थिति

बीएसपी ने लोकसभा में अपनी उपस्थिति धीरे-धीरे मजबूत की। 1989 में पहली बार लोकसभा चुनाव लड़ने के बावजूद कोई सीट नहीं मिली,

लेकिन 1991 में पार्टी ने 3 सीटें जीतकर संसद में प्रवेश किया। 1996 में यह संख्या बढ़कर 6 हुई, और 1998-1999 में पार्टी ने 14 सीटों पर जीत दर्ज की। यह एक ऐतिहासिक मोड़ था, जिसने बीएसपी को राष्ट्रीय राजनीति में एक स्थायी उपस्थिति दी। 2004 में बीएसपी ने 19 सीटें जीतीं और 2009 में पार्टी ने 21 सांसद लोकसभा में भेजे, जो अब तक का सर्वाधिक प्रदर्शन था। इससे बीएसपी को संसदीय अनुभव, नीति निर्माण में भागीदारी और एक वैकल्पिक शक्ति के रूप में पहचान मिली।

राज्यसभा में भी बीएसपी ने अपने प्रभाव का विस्तार किया। मायावती ने उत्तर प्रदेश के साथ-साथ दूसरे राज्यों से भी अपने नेताओं को राज्यसभा में भेजकर पार्टी की उपस्थिति को राष्ट्रव्यापी रूप दिया। 2012 तक पार्टी के पास राज्यसभा में भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व था, जिससे वह संसद की कार्यवाही में प्रभावशाली भूमिका निभा सकी। हालांकि 2014 के बाद से, लोकसभा में बीएसपी की सीटें घट गईं और राज्यसभा में भी पार्टी की उपस्थिति कमजोर होने लगी। इसका मुख्य कारण उत्तर प्रदेश में संगठनात्मक कमजोरी, दल-बदल और गठबंधन रणनीतियों में अस्थिरता था।

भविष्य की रणनीति: राष्ट्रीय राजनीति में बीएसपी की संभावनाएँ

बीएसपी यदि भविष्य में राष्ट्रीय राजनीति में अपनी भूमिका को पुनर्स्थापित करना चाहती है, तो उसे कई महत्वपूर्ण रणनीतियों पर एक साथ कार्य करना होगा। सबसे पहले, उसे अपने मूल वोट बैंक-बहुजन समाज-के साथ-साथ अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों के साथ मजबूत गठबंधन बनाना होगा। 2019 में समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन ने यह संभावना दर्शाई कि रणनीतिक सहयोग से वोटों का समेकन किया जा सकता है। हालाँकि, इन गठबंधनों को केवल चुनावी

उद्देश्य तक सीमित न रखकर वैचारिक और जमीनी स्तर पर भी मज़बूत करना होगा।

दूसरा, बीएसपी को डिजिटल युग के अनुकूल बनना होगा। आज की राजनीति में सोशल मीडिया, डेटा एनालिटिक्स और डिजिटल प्रचार अत्यंत प्रभावी साधन बन चुके हैं। बीएसपी को नए मतदाताओं-खासकर शहरी युवा, छात्रों और मध्यम वर्ग-को आकर्षित करने के लिए अपनी छवि और संदेश को तकनीकी रूप से सशक्त करना होगा।

तीसरा, पार्टी को विभिन्न राज्यों में स्थानीय नेतृत्व को स्वतंत्रता और सशक्तिकरण देना होगा। केवल मायावती पर निर्भर संगठनात्मक ढाँचा अब पर्याप्त नहीं है। राज्यों में स्थानीय मुद्दों पर आधारित रणनीतियाँ, स्थानीय नेताओं की विश्वसनीयता और जमीनी स्तर पर गठबंधन आवश्यक हैं। मध्य प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, बिहार और पंजाब जैसे राज्यों में बीएसपी को सामाजिक समीकरणों को समझते हुए नए क्षेत्रीय गठजोड़ों का निर्माण करना होगा।

अंततः, बीएसपी को कांशीराम की मूल विचारधारा-बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय-को फिर से मुख्यधारा में लाना होगा और उसे समकालीन सामाजिक-राजनैतिक संदर्भों में ढालना होगा। तभी वह राष्ट्रीय राजनीति में फिर से एक निर्णायक भूमिका निभा सकेगी।

अध्याय 30: मुख्यधारा की पार्टियों से आलोचना और विरोध

कांशीराम का उदय और बहुजन समाज पार्टी (BSP) का उत्थान

कांशीराम का भारतीय राजनीति में आगमन एक ऐसी विचारधारा लेकर हुआ जो अब तक की राजनैतिक मुख्यधारा को असहज करने वाली थी। उन्होंने न केवल दलितों के अधिकारों की बात की, बल्कि उन्हें सत्ता के केंद्र तक पहुँचाने की ठोस योजना बनाई। बहुजन समाज पार्टी का गठन इस उद्देश्य से किया गया था कि देश के उस वर्ग को राजनैतिक प्रतिनिधित्व मिले जो सदियों से सत्ता की मुख्यधारा से बाहर रखा गया। BSP का उदय उन शक्तिशाली राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दलों के लिए एक चुनौती बन गया जो वर्षों से सामाजिक वर्चस्व बनाए हुए थे। विशेषकर जब BSP ने ऊँची जातियों की सत्ता को सीधी चुनौती दी, तब इन दलों में घबराहट और विरोध की भावना तेज़ हो गई। कांशीराम ने बिना किसी संकोच के यह स्पष्ट किया कि उनकी पार्टी का उद्देश्य ब्राह्मणवाद के प्रभुत्व को समाप्त कर बहुजन वर्ग की सत्ता स्थापित करना है।

कांग्रेस पार्टी की आलोचना

कांग्रेस पार्टी, जिसने स्वतंत्रता के बाद दशकों तक भारत पर शासन किया, ने BSP पर सामाजिक विभाजन और जातिवाद को बढ़ावा देने का आरोप लगाया। कांग्रेस का यह तर्क था कि BSP केवल बहुजन वर्ग पर केंद्रित होकर समाज में वर्ग संघर्ष को जन्म दे रही है और राष्ट्रीय एकता को खतरे में डाल रही है। लेकिन कांशीराम ने कांग्रेस पर करारा पलटवार करते हुए आरोप लगाया कि यह वही पार्टी है जिसने वर्षों तक बहुजन

समाज को सिर्फ वोट बैंक की तरह इस्तेमाल किया और कभी भी उन्हें सत्ता में भागीदारी नहीं दी। उन्होंने कहा कि कांग्रेस केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व देती है, लेकिन हकीकत में सत्ता का केंद्र आज भी सवणों के हाथों में ही है। कांशीराम के अनुसार, यदि BSP सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष कर रही है, तो उसे जातिवाद कहकर कुचलना असल में कांग्रेस की सत्ता संरचना को बनाए रखने की रणनीति है।

भा.ज.पा. का विरोध

भारतीय जनता पार्टी ने भी BSP पर कड़ी आलोचना करते हुए इसे हिंदू समाज को बाँटने वाली पार्टी करार दिया। भाजपा ने आरोप लगाया कि कांशीराम जातिगत विद्वेष फैला रहे हैं और दलितों को मुख्यधारा से दूर कर रहे हैं। लेकिन कांशीराम ने भाजपा की “हिंदू एकता” की परिभाषा पर सवाल उठाते हुए कहा कि यह एक दिखावा है, जिसमें ब्राह्मण, बनिया और ठाकुरों को ही नेतृत्व में रखा गया है जबकि बहुजन समाज को केवल अनुयायी की भूमिका दी जाती है। उन्होंने साफ कहा कि जब तक जातिवादी सामाजिक व्यवस्था बनी रहेगी, तब तक हिंदू एकता केवल एक मिथ्या नारा है। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि भाजपा की राजनीति असल में बहुजन समाज को सत्ता से दूर रखने की रणनीति है, जिसमें धार्मिक पहचान का उपयोग कर वास्तविक सामाजिक बराबरी से ध्यान भटकाया जाता है।

समाजवादी पार्टी (SP) की आलोचना

समाजवादी पार्टी, जो खुद को पिछड़े वर्गों की पार्टी कहती थी, BSP के उदय से असहज हो गई। SP ने यह आरोप लगाया कि BSP केवल बहुजन समुदाय, विशेषकर अनुसूचित जातियों के लिए काम कर रही है, जबकि अन्य पिछड़ी जातियों को नज़रअंदाज़ कर रही है। इस आलोचना

के पीछे SP का यह भय था कि यादवों के वर्चस्व वाली राजनीति को BSP द्वारा चुनौती दी जा रही है। कांशीराम ने SP पर यह कहते हुए कटाक्ष किया कि समाजवादी पार्टी असल में “यादववादी पार्टी” बन चुकी है, जो अन्य पिछड़ी जातियों और दलितों को केवल वोट के रूप में देखती है, नेतृत्व देने में नहीं। 1993 में जब SP और BSP का गठबंधन बना और 1995 में उसका टूटना हुआ, तो “गेस्ट हाउस कांड” जैसी घटनाएँ इस राजनैतिक दुश्मनी को और तीव्र कर गईं। कांशीराम ने इसे सामाजिक न्याय की राजनीति में अवसरवाद का उदाहरण बताया और स्पष्ट किया कि उनकी पार्टी बहुजन समाज को टिकाऊ और स्थायी राजनैतिक ताकत देना चाहती है।

मीडिया और बौद्धिक वर्ग की आलोचना

मुख्यधारा का मीडिया और तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग भी BSP की तीव्र आलोचना करता रहा। अधिकांश पत्रकारों और राजनैतिक विश्लेषकों ने BSP को केवल एक जातिवादी पार्टी बताया और यह तर्क दिया कि यह दल राष्ट्रीय स्तर के मुद्दों पर बात नहीं करता। लेकिन कांशीराम ने इस आलोचना को जातीय भेदभाव के चश्मे से देखे जाने वाला दृष्टिकोण बताया। उन्होंने बार-बार कहा कि जिन वर्गों ने सदियों तक सत्ता पर अधिकार बनाए रखा, वे आज बहुजन वर्ग के सशक्तिकरण की हर कोशिश को ‘जातिवाद’ कहकर खारिज कर देते हैं। कांशीराम ने यह स्पष्ट किया कि जातिवाद का खात्मा केवल बहुजन समाज को सत्ता में भागीदारी देने से ही होगा, केवल भाषणों और प्रतीकों से नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि जब सवर्णों की पार्टियाँ अपने हितों के लिए संगठित हो सकती हैं, तो बहुजन समाज को क्यों नहीं संगठित किया जा सकता?

BSP की चुनावी सफलता और आलोचनाओं का जवाब

सभी आलोचनाओं और हमलों के बावजूद BSP ने चुनावी राजनीति में लगातार सफलता हासिल की। 1993 और 1995 में उत्तर प्रदेश में BSP ने सत्ता में हिस्सेदारी ली और 1995 में मायावती के मुख्यमंत्री बनने से यह स्पष्ट हो गया कि पार्टी अब प्रतीकात्मक नहीं, वास्तविक सत्ता की दावेदार बन चुकी है। 2007 में BSP ने पूर्ण बहुमत के साथ सरकार बनाकर सभी आलोचकों को चुप करा दिया। इस सफलता के साथ ही BSP ने यह सिद्ध कर दिया कि जाति-आधारित सशक्तिकरण को समाज में व्यापक समर्थन प्राप्त है। पार्टी ने उत्तर प्रदेश के बाहर भी अपने पाँव फैलाए और पंजाब, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार जैसे राज्यों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। 2009 के लोकसभा चुनावों में BSP ने 21 सीटें जीतकर खुद को एक मजबूत राष्ट्रीय पार्टी के रूप में स्थापित किया।

BSP ने अपने संघर्ष के माध्यम से यह सिद्ध किया कि जब कोई दल हाशिये पर पड़े समाज के अधिकारों के 3लिए प्रतिबद्ध हो, तो वह तमाम आलोचनाओं और विरोधों के बावजूद सत्ता तक पहुँच सकता है। कांशीराम ने जातिवाद को राजनैतिक चुनौती दी और एक नया विमर्श खड़ा किया, जिसमें बहुजन समाज को केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि सत्ता में भागीदारी की बात की गई। मीडिया, मुख्यधारा की पार्टियों और बुद्धिजीवियों की आलोचना के बावजूद BSP ने अपनी विचारधारा से कभी समझौता नहीं किया। भविष्य में पार्टी को यही चुनौती रहेगी कि वह बहुजन, पिछड़ा, और अल्पसंख्यक वर्गों के बीच व्यापक एकता स्थापित करे और सामाजिक न्याय की राजनीति को आगे बढ़ाए। यही कांशीराम की असली विरासत है – सत्ता की चाबी उस हाथ में सौंपना, जो सदियों से दरवाजे के बाहर खड़ा रहा।

अध्याय 31: राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन राजनीति में बीएसपी की भूमिका

बीएसपी और राष्ट्रीय गठबंधन राजनीति का उदय

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की राजनीति केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित नहीं थी; कांशीराम की दृष्टि हमेशा राष्ट्रीय स्तर पर बहुजन समाज को राजनैतिक शक्ति दिलाने की रही। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने गठबंधन राजनीति को एक रणनीतिक हथियार की तरह अपनाया। कांशीराम ने साफ शब्दों में कहा था कि “हम सत्ता के बिना सामाजिक परिवर्तन नहीं ला सकते।” उनके लिए गठबंधन केवल सत्ता प्राप्त करने का साधन नहीं, बल्कि बहुजन हितों को स्थापित करने का एक यथार्थवादी मार्ग था। वे मानते थे कि विचारधारात्मक पवित्रता को व्यावहारिक राजनीति से संतुलित करना ही सही रणनीति होगी। यही कारण था कि BSP ने 1990 के दशक से ही विभिन्न राष्ट्रीय दलों के साथ गठबंधन कर राजनैतिक प्रयोग शुरू कर दिए। यह लचीलापन पार्टी की राजनैतिक परिपक्वता और व्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रमाण था।

गठबंधन राजनीति की शुरुआत और कांशीराम की रणनीति

कांग्रेस के साथ पहला गठबंधन (1996)

1996 के लोकसभा चुनावों में BSP ने कांग्रेस के साथ गठबंधन कर राष्ट्रीय स्तर पर अपनी उपस्थिति को मान्यता दिलाने की कोशिश की। हालांकि यह गठबंधन ज्यादा समय तक नहीं चला, लेकिन इसने BSP

को राष्ट्रीय राजनीति के मंच पर स्थापित करने की दिशा में पहला ठोस कदम दिया। कांग्रेस और BSP के बीच सीटों का बँटवारा हुआ, लेकिन जल्द ही मतभेद उभर आए। कांशीराम ने इस गठबंधन को “अस्थायी” बताते हुए कांग्रेस की जातिवादी मानसिकता पर तीखा प्रहार किया। उन्होंने कहा कि कांग्रेस बहुजन समाज को केवल चुनावी मोहरे के रूप में देखती है, जबकि BSP उन्हें सत्ता में भागीदारी देना चाहती है। यह अनुभव कांशीराम के लिए एक सबक भी था कि गठबंधन करते समय सैद्धांतिक समझौते के साथ-साथ सतर्क रणनीति भी ज़रूरी है।

बीजेपी के साथ गठबंधन और सत्ता में भागीदारी (1995, 1997, 2002)

उत्तर प्रदेश की राजनीति में 1995 में BSP ने बीजेपी के साथ गठबंधन कर पहली बार सरकार बनाई, जिसमें मायावती मुख्यमंत्री बनीं। यह एक ऐतिहासिक क्षण था क्योंकि पहली बार एक दलित महिला प्रदेश की सर्वोच्च कुर्सी पर पहुँची थी। हालांकि यह गठबंधन अल्पकालिक रहा, लेकिन राजनैतिक महत्व के लिहाज से अत्यंत निर्णायक था। 1997 और 2002 में भी BSP ने बीजेपी के साथ मिलकर सत्ता में भागीदारी की, परंतु गठबंधनों की उम्र छोटी ही रही। कांशीराम ने हमेशा स्पष्ट किया कि ये गठबंधन बहुजन समाज की राजनैतिक भागीदारी के लिए थे, न कि हिंदुत्व की राजनीति को समर्थन देने के लिए। उन्होंने बीजेपी नेतृत्व से बार-बार आग्रह किया कि बहुजन हितों को केवल सांकेतिक न रखकर ठोस नीतियों के ज़रिए साकार किया जाए। जब ऐसा नहीं हुआ, तो BSP ने संबंध तोड़ लिए।

समाजवादी पार्टी (SP) के साथ गठबंधन और टूटन (1993)

1993 में SP और BSP का गठबंधन मंडल राजनीति के विस्तार का प्रतीक बनकर उभरा। यादव और दलित वोट बैंक के इस संयोजन को सामाजिक न्याय की राजनीति का अगला चरण माना गया। लेकिन यह गठबंधन लंबे समय तक टिक नहीं पाया। 1995 में “गेस्ट हाउस कांड” के बाद BSP ने गठबंधन तोड़ दिया और यह घटना दोनों दलों के बीच स्थायी विभाजन का कारण बन गई। कांशीराम ने SP पर आरोप लगाया कि वह केवल यादव वर्चस्व की राजनीति करती है और अन्य पिछड़ी जातियों व अनुसूचित जातियों को सत्ता से बाहर रखना चाहती है। यह गठबंधन-विच्छेद केवल राजनैतिक नहीं था, बल्कि एक विचारधारात्मक असहमति भी था, जिसने BSP की आगे की रणनीति को अधिक सतर्क और आत्मनिर्भर बना दिया।

2000 के दशक में बीएसपी की राष्ट्रीय गठबंधन रणनीति

यूपीए और एनडीए के बीच संतुलन बनाना

2004 के आम चुनावों में BSP ने यूपीए सरकार को बाहर से समर्थन दिया, जिससे यह संदेश गया कि पार्टी अब एक “पावर ब्रोकर” की भूमिका में आ सकती है। इस समय मायावती और पार्टी नेतृत्व ने “मूल्य आधारित समर्थन” की रणनीति अपनाई, जिससे उन्होंने अपनी स्वतंत्र राजनैतिक पहचान को बनाए रखा। 2008 में BSP ने यूपीए सरकार के खिलाफ संसद में विश्वास मत के दौरान वोट देकर यह संकेत दिया कि BSP कोई स्थायी सहयोगी नहीं, बल्कि अपनी शर्तों पर समर्थन देने वाली स्वायत्त शक्ति है। इस रणनीति ने पार्टी को गठबंधन राजनीति में

एक ऐसा खिलाड़ी बना दिया, जिसे नज़रअंदाज़ करना किसी भी बड़े गठबंधन के लिए कठिन था।

2009 लोकसभा चुनाव: BSP का स्वतंत्र रुख

2009 में BSP ने यह तय किया कि वह किसी भी गठबंधन का हिस्सा नहीं बनेगी और स्वतंत्र रूप से चुनाव लड़ेगी। इस निर्णय के पीछे विचार यह था कि पार्टी अब इतनी परिपक्व हो चुकी है कि उसे सत्ता के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। चुनावों में BSP ने 21 लोकसभा सीटें जीतीं और यह तीसरी सबसे बड़ी पार्टी बन गई। मायावती ने इस समय यह भी स्पष्ट किया कि पार्टी अब सत्ता में साझेदारी से आगे बढ़कर सत्ता को स्वयं हासिल करने की तैयारी में है। यह रुख कांशीराम की मूल रणनीति - “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” - के बिल्कुल अनुरूप था।

BSP की गठबंधन राजनीति की चुनौतियाँ

अस्थायी गठबंधन और विश्वास की कमी

BSP द्वारा किए गए अधिकांश गठबंधन अल्पकालिक रहे, जिससे पार्टी पर “अवसरवादी” होने का आरोप लगा। विरोधियों और यहाँ तक कि कुछ समर्थकों का भी मानना था कि बार-बार की रणनीति में फेरबदल से पार्टी की स्थिरता और वैचारिक स्पष्टता पर असर पड़ा। गठबंधन सहयोगियों के साथ स्पष्ट दीर्घकालिक एजेंडा और वैचारिक समन्वय की कमी ने BSP की विश्वसनीयता पर कई बार सवाल खड़े किए। कई गठबंधनों के विफल हो जाने से पार्टी को यह सीख मिली कि रणनीति में लचीलापन आवश्यक है, लेकिन सिद्धांतों की बलि नहीं दी जा सकती।

बहुजन एकता के सिद्धांत से समझौता?

BSP के कुछ पुराने समर्थकों और बहुजन चिंतकों ने यह तर्क दिया कि बार-बार बीजेपी या कांग्रेस जैसी सवर्ण-प्रधान पार्टियों से गठबंधन करके BSP ने बहुजन एकता के मूल सिद्धांत से समझौता किया है। इस पर कांशीराम ने बार-बार कहा कि “गठबंधन सत्ता प्राप्त करने का एक साधन है, लेकिन नीतियों और विचारधारा में समझौता नहीं किया जाएगा।” उन्होंने इसे एक रणनीतिक जरूरत बताया, न कि विचारधारात्मक पतन। फिर भी, समय के साथ पार्टी को अपने कोर वोटबैंक को यह विश्वास दिलाना आवश्यक हो गया कि ये समझौते केवल तात्कालिक हैं और दीर्घकालिक लक्ष्य बहुजन हित ही है।

राष्ट्रीय स्तर पर गठबंधन की सीमाएँ

BSP की सबसे बड़ी बाधा यह रही कि पार्टी का संगठनात्मक ढांचा उत्तर प्रदेश के बाहर बहुत मज़बूत नहीं हो पाया। यही कारण रहा कि जब BSP ने राष्ट्रीय गठबंधनों में हिस्सेदारी की कोशिश की, तो बड़े दलों ने उसे केवल क्षेत्रीय दल समझकर हाशिए पर रखा। BSP का विस्तार दक्षिण और पूर्वोत्तर भारत जैसे क्षेत्रों में सीमित रहा, जिससे पार्टी को राष्ट्रीय राजनीति में निर्णायक स्थिति में आने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। यह सीमाएँ आज भी पार्टी की राष्ट्रीय संभावनाओं के सामने एक चुनौती के रूप में मौजूद हैं।

BSP के गठबंधन राजनीति का भविष्य

संभावित गठबंधनों की रणनीति

भविष्य में BSP को बहुजन-मुस्लिम एकता जैसे सामाजिक समीकरणों की संभावनाओं को गंभीरता से तलाशना होगा। आज के राजनैतिक

परिदृश्य में मुस्लिम समुदाय भी राजनैतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय की खोज में है, और BSP का सामाजिक न्याय का एजेंडा इस वर्ग के साथ स्वाभाविक गठबंधन बना सकता है। इसके साथ ही BSP को उत्तर भारत से बाहर तमिलनाडु, तेलंगाना, ओडिशा, और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में छोटे लेकिन प्रभावशाली क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन करके अपने संगठन का विस्तार करना होगा। 2024 और उसके आगे के चुनावों में BSP यदि अपनी गठबंधन रणनीति को विचारधारा और सामाजिक प्रतिनिधित्व के साथ जोड़ सके, तो वह न केवल सत्ता में भागीदारी कर सकती है, बल्कि बहुजन राजनीति को राष्ट्रव्यापी आयाम भी दे सकती है।

अध्याय 32: स्वास्थ्य समस्याएँ और सक्रिय राजनीति से कांशीराम की दूरी

कांशीराम की राजनैतिक यात्रा और स्वास्थ्य पर प्रभाव

कांशीराम की राजनैतिक यात्रा केवल एक विचारधारा या आंदोलन भर नहीं थी, बल्कि यह एक सतत संघर्ष था, जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं और स्वास्थ्य की परवाह किए बिना देश के करोड़ों वंचित, दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों की राजनैतिक चेतना को जगाने का काम किया। 1960 के दशक के अंत में उन्होंने सरकारी सेवा छोड़कर सामाजिक जागरूकता की राह पकड़ी और बामसेफ जैसे संगठनों के माध्यम से एक विचारशील आंदोलन की नींव रखी। इसके बाद डीएस-4 (DS-4) और बहुजन समाज पार्टी की स्थापना कर उन्होंने अपने आंदोलन को ज़मीनी राजनैतिक ताकत में परिवर्तित किया। इस पूरे दौर में वे देश के सैकड़ों शहरों, गांवों और राज्यों में भ्रमण करते रहे, रेलगाड़ियों से लेकर ट्रकों तक में यात्रा की, हजारों सभाओं को संबोधित किया, सड़कों पर रातें बिताई और लगातार जनसंपर्क में जुटे रहे।

इस सतत संघर्ष और जनक्रांति ने भले ही बहुजन समाज को आत्मसम्मान और प्रतिनिधित्व की दिशा में आगे बढ़ाया, लेकिन इसका गहरा प्रभाव उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ा। उन्हें आराम का समय नहीं मिला। लगातार यात्राएं, भीड़भाड़ वाले कार्यक्रम, मानसिक तनाव, नींद की कमी और असंतुलित आहार ने धीरे-धीरे उनके शरीर को थका दिया। वे अक्सर अपने करीबी साथियों को बताते थे कि वे “अपने शरीर

को एक औज़ार की तरह इस्तेमाल कर रहे हैं, जब तक यह चलेगा, तब तक संघर्ष जारी रहेगा।” लेकिन यह अत्यधिक समर्पण और कार्यभार धीरे-धीरे उनके स्वास्थ्य के लिए चुनौती बनता गया।

1990 के दशक के अंत तक, जब राजनैतिक संघर्ष और पार्टी विस्तार अपने चरम पर था, कांशीराम की तबीयत धीरे-धीरे खराब होनी शुरू हो गई। उन्हें उच्च रक्तचाप, मधुमेह और थकान जैसी गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने इन समस्याओं को कभी सार्वजनिक रूप से प्राथमिकता नहीं दी। वे मानते थे कि बहुजन समाज की मुक्ति का सपना उनके जीवन का अंतिम लक्ष्य है, और जब तक वह सपना पूरा नहीं हो जाता, तब तक वे रुकने वाले नहीं हैं। यही कारण था कि जब उनके स्वास्थ्य में गिरावट आई, तब भी वे पार्टी की रैलियों, रणनीतिक बैठकों और नेताओं के चयन जैसे सभी कार्यों में प्रत्यक्ष भूमिका निभाते रहे। यह उनकी संघर्षशीलता और त्याग का परिचायक था, जिसने उन्हें केवल एक नेता नहीं बल्कि एक आंदोलन की आत्मा बना दिया था। लेकिन इसी संघर्ष ने उनके शरीर को थका दिया और उन्हें धीरे-धीरे सक्रिय राजनीति से दूर होने के लिए मजबूर कर दिया।

बढ़ती उम्र और बीमारियों की शुरुआत

कांशीराम का जीवन लगातार संघर्ष, यात्रा और सामाजिक क्रांति के लिए समर्पित था, लेकिन जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गई, उनका शरीर इस सतत मेहनत और तनाव को सहन नहीं कर सका। तीन दशकों तक दिन-रात समाज के अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए उन्होंने अपने स्वास्थ्य की कभी परवाह नहीं की। निरंतर जनसभाएँ, सघन दौरे, बौद्धिक विमर्श, संगठन निर्माण और नेतृत्व के भार ने उनके शरीर को समय से पहले थका दिया। जहाँ एक सामान्य व्यक्ति

अपनी उम्र के तीसरे दशक में जीवन की स्थिरता ढूँढता है, वहीं कांशीराम चौथे और पाँचवें दशक तक भी देश के कोने-कोने में साइकिल यात्रा, पैदल यात्रा और रात्रिकालीन बैठकों में लगे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके शरीर में थकावट, कमजोरी और कई स्वास्थ्य समस्याएँ लगातार घर करने लगीं।

1990 के दशक के मध्य तक उन्हें उच्च रक्तचाप (हाई ब्लड प्रेशर) की शिकायत रहने लगी थी। इसके साथ ही, अनियमित दिनचर्या और तनाव के कारण उन्हें मधुमेह (डायबिटीज़) की भी शुरुआत हो गई। इन बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए चिकित्सकों ने उन्हें बार-बार सलाह दी कि वे अब अपनी सक्रिय राजनैतिक भूमिकाओं को कम करें, विश्राम करें, नियमित दवाएँ लें और मानसिक तनाव से दूरी बनाएं। लेकिन कांशीराम जैसे व्यक्ति के लिए विश्राम का अर्थ था आंदोलन से दूरी, और यह उनके स्वभाव के विपरीत था।

उनकी पार्टी के वरिष्ठ नेताओं, चिकित्सकों और निकट सहयोगियों ने उन्हें सलाह दी कि वे मायावती को और अधिक ज़िम्मेदारियाँ सौंपकर खुद थोड़ा विराम लें, लेकिन कांशीराम ने बार-बार कहा कि “जब तक बहुजन समाज को सत्ता की चाबी नहीं मिल जाती, तब तक मेरा विश्राम अधूरा है।” यही समर्पण उनके जीवन की सबसे बड़ी ताकत और सबसे बड़ी चुनौती बन गया। वे यह मानने को तैयार ही नहीं थे कि उनका स्वास्थ्य गिर रहा है या उन्हें पीछे हटने की ज़रूरत है।

उनकी बीमारियाँ धीरे-धीरे गंभीर रूप लेती गईं। उच्च रक्तचाप और मधुमेह का नियंत्रण कठिन होता गया, और थकावट के कारण उनका चेहरा मुरझाने लगा, चाल धीमी हो गई, और बोलने में भी थोड़ी कठिनाई आने लगी। लेकिन फिर भी वे सभाओं में जाते रहे, कार्यकर्ताओं से मिलते

रहे, और नए नेताओं को प्रशिक्षित करते रहे। यह वह समय था जब उनके अनुयायियों को समझ आने लगा कि कांशीराम अब धीरे-धीरे राजनीति से दूर हो रहे हैं, लेकिन वे खुद इस बदलाव को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। बहुजन आंदोलन की ज्वाला उनके भीतर इतनी प्रबल थी कि वे अपनी बीमारी को स्वीकार करना आंदोलन की हार मानते थे।

1999 के बाद कांशीराम की सक्रियता में कमी

1999 के लोकसभा चुनावों के बाद कांशीराम की सार्वजनिक सक्रियता में स्पष्ट रूप से कमी आने लगी थी। यह वही समय था जब उनका स्वास्थ्य स्थायी रूप से कमजोर पड़ चुका था और उनका शरीर अब निरंतर दौरे, भाषणों और संगठनात्मक कार्यों का बोझ सहने में असमर्थ हो गया था। जहाँ पहले वे पार्टी के हर स्तर के निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभाते थे और व्यक्तिगत रूप से कार्यकर्ताओं से मिलते-जुलते थे, वहीं अब उन्होंने सार्वजनिक मंचों पर जाना लगभग बंद कर दिया। पार्टी की बड़ी बैठकों, प्रेस वार्ताओं और राजनैतिक सभाओं से वे धीरे-धीरे अनुपस्थित रहने लगे।

यही वह समय था जब कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की जिम्मेदारियाँ धीरे-धीरे मायावती को सौंपनी शुरू कर दीं। उन्होंने यह महसूस कर लिया था कि अब आंदोलन को एक नया नेतृत्व चाहिए जो न सिर्फ उनके दृष्टिकोण को समझता हो बल्कि उसे राजनैतिक सफलता में बदलने की क्षमता भी रखता हो। मायावती वर्षों से कांशीराम की निकटतम सहयोगी थीं और पार्टी के हर स्तर पर काम कर चुकी थीं। कांशीराम ने उन्हें प्रशिक्षण देने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी, और यही विश्वास उन्हें मायावती को पार्टी की कमान सौंपने की ओर ले गया।

साल 2001 में कांशीराम की तबीयत अचानक इतनी खराब हुई कि उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। यह पहला सार्वजनिक संकेत था कि अब वे गंभीर बीमारियों से जूझ रहे हैं। अस्पताल से लौटने के बाद उनकी गतिविधियाँ और भी सीमित हो गईं। अब वे ज्यादातर समय दिल्ली या लखनऊ स्थित अपने आवास पर बिताने लगे। कार्यकर्ता और नेता उनसे मिलने आते थे, लेकिन वे लंबे समय तक बातचीत करने में असमर्थ रहते। मीडिया से उन्होंने दूरी बना ली थी, और पार्टी की रणनीति बनाने का काम मायावती ने पूरी तरह संभाल लिया था।

उनकी अनुपस्थिति में भी बसपा का संगठन मजबूत बना रहा, जो इस बात का संकेत था कि उन्होंने न केवल संगठन को एक मजबूत आधार दिया था, बल्कि भविष्य के नेतृत्व के लिए भी उपयुक्त तैयारी कर दी थी। कांशीराम अब राजनीति में “मार्गदर्शक” की भूमिका में आ गए थे, जबकि मायावती “निर्णायकता” बन चुकी थीं।

2002 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव और सीमित भूमिका

2002 का उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव कांशीराम के राजनैतिक जीवन में एक निर्णायक मोड़ साबित हुआ। इस चुनाव तक आते-आते उनका स्वास्थ्य इस स्थिति में नहीं था कि वे पूरी तरह से सक्रिय चुनाव प्रचार या संगठनात्मक भागीदारी निभा सकें। इसलिए उन्होंने बहुजन समाज पार्टी की पूरी जिम्मेदारी औपचारिक रूप से मायावती को सौंप दी। यह निर्णय उन्होंने सार्वजनिक रूप से भी घोषित किया, जब उन्होंने कहा, “अब मेरा मिशन पूरा हो चुका है, अब मायावती इसे आगे बढ़ाएँगी।” इस कथन में न केवल आत्मविश्वास झलकता था, बल्कि यह एक सोच-समझकर

लिया गया राजनैतिक निर्णय भी था, जो नेतृत्व की स्पष्टता और उत्तराधिकार की योजना को दर्शाता था।

इस चुनाव के दौरान मायावती ने पूर्ण नियंत्रण के साथ पार्टी का नेतृत्व किया और कांशीराम केवल नाममात्र के संरक्षक की भूमिका में रहे। उन्होंने प्रचार रैलियों में भाग नहीं लिया, न ही वे पार्टी की किसी प्रमुख बैठक में दिखाई दिए। इसके बावजूद पार्टी के नेता और कार्यकर्ता उनकी उपस्थिति को नैतिक बल के रूप में महसूस करते थे। चुनावी रैलियों में मायावती लगातार कांशीराम के विचारों और नेतृत्व का उल्लेख करती रहीं, जिससे पार्टी के जनाधार को भावनात्मक रूप से एकजुट रखा जा सका।

2002 के चुनाव परिणामों ने साबित किया कि कांशीराम द्वारा मायावती को दी गई नेतृत्व की जिम्मेदारी एक सही कदम थी। बहुजन समाज पार्टी ने उस चुनाव में महत्वपूर्ण सीटें जीतीं और मायावती एक बार फिर उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं। यह सफलता कांशीराम के लिए दोहरी उपलब्धि थी - एक तो उन्होंने राजनैतिक रूप से एक मजबूत उत्तराधिकारी तैयार किया, और दूसरा यह कि उनके जीवन का मिशन आगे बढ़ाने वाला नेतृत्व अब स्थापित हो चुका था।

हालाँकि इस समय तक कांशीराम सार्वजनिक जीवन से लगभग पूरी तरह अलग हो चुके थे, लेकिन उनके विचार और उनके द्वारा बनाए गए संगठनात्मक ढाँचे की गूंज हर BSP कार्यकर्ता और नेता की भाषा में स्पष्ट सुनाई देती थी। उनका स्वास्थ्य उन्हें सक्रिय राजनीति से दूर रखे हुए था, फिर भी वे हर निर्णय और रणनीति में एक प्रेरक शक्ति बने रहे।

2003 के बाद कांशीराम की गंभीर स्वास्थ्य स्थिति

2003 के बाद कांशीराम की स्वास्थ्य स्थिति अत्यंत गंभीर होने लगी। राजनैतिक गतिविधियों से उनकी दूरी अब केवल सीमित भागीदारी तक नहीं रही, बल्कि उन्होंने सार्वजनिक जीवन से लगभग पूर्ण रूप से संन्यास ले लिया। इसी वर्ष उन्हें पहला ब्रेन स्ट्रोक हुआ, जिसने उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को बुरी तरह प्रभावित किया। स्ट्रोक के बाद उनके शरीर का बायाँ हिस्सा लकवाग्रस्त हो गया और वे स्वतंत्र रूप से चलने-फिरने में असमर्थ हो गए। इसके साथ ही उनकी संवाद क्षमता भी कम हो गई, जिससे वे लंबे संवाद या निर्देश देने में असमर्थ हो गए।

इस कठिन समय में उन्हें कई बार अस्पताल में भर्ती कराया गया और डॉक्टर्स ने उन्हें पूर्ण विश्राम की सलाह दी। कांशीराम अब व्हीलचेयर पर आ गए थे और सार्वजनिक मंचों पर दिखाई देना पूरी तरह बंद हो गया था। उनकी राजनैतिक सक्रियता, जो कभी जनसभाओं और पद यात्राओं में सबसे आगे रहती थी, अब एक कमरे तक सीमित हो चुकी थी। पार्टी में अब हर निर्णय मायावती द्वारा लिया जाने लगा, जबकि कांशीराम का नाम केवल प्रेरणास्त्रोत और मार्गदर्शक के रूप में रह गया।

2004 और 2005 में उन्हें दोबारा ब्रेन स्ट्रोक आया, जिससे उनकी हालत और अधिक बिगड़ गई। इस बार उनकी बोलने की क्षमता पर भी गहरा असर पड़ा, और वे केवल इशारों और संकेतों से ही संवाद कर पाते थे। पार्टी कार्यकर्ताओं और उनके पुराने सहयोगियों के अनुसार, इन अंतिम वर्षों में वे बेहद कमजोर हो गए थे और सामान्य दैनिक कार्यों के लिए भी उन्हें दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस अवस्था में भी, जब वे किसी को पहचान पाते थे, तो उनकी आँखों में अपने आंदोलन के प्रति वही प्रतिबद्धता झलकती थी, जो उन्होंने अपने युवा दिनों में दिखाई थी।

इस समय मायावती ने न केवल पार्टी का संपूर्ण संचालन संभाला बल्कि कांशीराम की व्यक्तिगत देखभाल की भी जिम्मेदारी निभाई। पार्टी कार्यालय में कोई बड़ा निर्णय हो या कोई बयान देना हो, मायावती पहले कांशीराम को सूचित करती थीं और उनका आशीर्वाद लेना नहीं भूलती थीं। इससे यह स्पष्ट था कि भले ही कांशीराम अब सक्रिय रूप से कुछ कहने की स्थिति में नहीं थे, परन्तु उनका नाम और व्यक्तित्व बसपा की राजनीति में केंद्रीय बना रहा।

अंतिम दौर: 2005–2006

2005 में कांशीराम का स्वास्थ्य पूरी तरह से चरमरा चुका था। वे अब बोलने और चलने में असमर्थ हो चुके थे, और व्हीलचेयर तक सीमित थे। उनका अधिकांश समय बिस्तर पर ही बीतता था। डॉक्टरों की एक टीम लगातार उनकी देखभाल में लगी रहती थी, और पार्टी की तरफ से उनके स्वास्थ्य को लेकर कोई भी जानकारी बेहद नियंत्रित रूप से सार्वजनिक की जाती थी। यह वह समय था जब भारतीय राजनीति में कांशीराम की अनुपस्थिति को गंभीरता से महसूस किया जाने लगा, क्योंकि उन्होंने जिस सामाजिक आंदोलन को जन्म दिया था, उसकी चेतना अब एक पीढ़ी को दिशा दे रही थी।

मायावती ने न केवल राजनैतिक उत्तराधिकार संभाला, बल्कि एक पुत्री की तरह उनकी सेवा में भी स्वयं को समर्पित कर दिया। पार्टी कार्यकर्ताओं और नेताओं को उनसे मिलने की अनुमति बहुत सीमित कर दी गई थी, ताकि उन्हें अधिक मानसिक या शारीरिक तनाव न हो। हालांकि अब वह किसी भी सार्वजनिक मंच पर दिखाई नहीं देते थे, लेकिन बसपा के हर

महत्वपूर्ण फैसले में उनका विचार 'प्रत्यक्ष रूप से नहीं, तो अप्रत्यक्ष रूप से' मायावती के माध्यम से शामिल होता था।

इस अवधि में बसपा के सभी औपचारिक दस्तावेजों में कांशीराम को "मार्गदर्शक" और "प्रेरणास्त्रोत" के रूप में उल्लेखित किया जाता रहा। पार्टी द्वारा यह भी सुनिश्चित किया गया कि कांशीराम का योगदान केवल स्मृति में सिमटकर न रह जाए, बल्कि उसे हर कार्यकर्ता के व्यवहार और नीतियों में जीवित रखा जाए। यह भी उल्लेखनीय है कि इस दौरान मायावती ने कांशीराम के नाम पर कई योजनाएँ और स्मारक आरंभ किए, ताकि उनके योगदान को इतिहास में स्थायी रूप से दर्ज किया जा सके।

2006 की शुरुआत में उनकी हालत और अधिक बिगड़ गई। उन्हें कई बार अस्पताल में भर्ती कराया गया, लेकिन उनकी स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। अब वे बोलने में पूरी तरह असमर्थ हो गए थे, और केवल आंखों के इशारे से ही प्रतिक्रिया दे पाते थे। उनके करीबी बताते हैं कि इस अवस्था में भी जब कोई कार्यकर्ता मिलने आता था और "जय भीम" कहता था, तो कांशीराम अपनी आंखों से हल्का सा इशारा करके उसका उत्तर देते थे। यह उनकी अटूट चेतना और समर्पण का प्रतीक था कि जीवन के अंतिम समय में भी वे अपने मिशन से मानसिक रूप से जुड़े हुए थे।

कांशीराम के स्वास्थ्य संकट का बसपा पर प्रभाव

कांशीराम के बिगड़ते स्वास्थ्य का प्रभाव बहुजन समाज पार्टी (BSP) की संरचना, नेतृत्व और कार्यप्रणाली पर गहरा पड़ा। जिस राजनैतिक आंदोलन को उन्होंने अपने संघर्ष, विचार और सांगठनिक कौशल से खड़ा किया था, वह अब एक ऐसे मोड़ पर था जहाँ नेतृत्व की बागडोर

मायावती के हाथों में पूर्णतः हस्तांतरित हो चुकी थी। 2003 के बाद से ही पार्टी के भीतर एक व्यापक स्वीकार्यता बन गई थी कि कांशीराम अब सक्रिय भूमिका नहीं निभा पाएँगे, और मायावती ही उनकी वैचारिक विरासत को आगे ले जाएँगी।

कांशीराम के स्वास्थ्य संकट के बाद BSP के सामने दो प्रमुख चुनौतियाँ उभरीं-पहली, संगठन में वैचारिक स्थिरता बनाए रखना; और दूसरी, आम जनता में यह विश्वास कायम करना कि पार्टी केवल कांशीराम के नेतृत्व से जुड़ी नहीं थी, बल्कि अब एक संस्थागत ताकत बन चुकी है। मायावती ने इन दोनों मोर्चों पर रणनीतिक रूप से काम किया। उन्होंने न केवल कांशीराम के विचारों को पुस्तिकाओं, भाषणों, और सार्वजनिक कार्यक्रमों के माध्यम से प्रसारित किया, बल्कि उन्हें पार्टी के हर निर्णय का आधार बनाते हुए यह संदेश भी दिया कि पार्टी का मार्गदर्शन अभी भी कांशीराम के सिद्धांतों पर आधारित है।

राजनैतिक दृष्टि से देखा जाए, तो कांशीराम की बीमारी और फिर धीरे-धीरे सक्रियता से हटना, BSP के लिए एक भावनात्मक क्षण था, लेकिन यह परिवर्तन एक योजनाबद्ध राजनैतिक उत्तराधिकार का भी प्रतीक था। मायावती ने कांशीराम की बीमारी के दौरान पार्टी की पूरी जिम्मेदारी उठाई और 2007 के विधानसभा चुनावों में BSP को पूर्ण बहुमत दिलाकर यह साबित किया कि कांशीराम का मिशन अब एक नेतृत्व आधारित आंदोलन के बजाय एक व्यापक सामाजिक आधार और राजनैतिक ढांचे में बदल चुका है।

इस प्रकार, कांशीराम का स्वास्थ्य संकट BSP के संगठनात्मक और वैचारिक विकास की एक निर्णायक कसौटी बन गया। यह पार्टी के लिए उस परीक्षा का समय था, जिसमें यह सिद्ध करना था कि आंदोलन अब

किसी एक नेता पर नहीं, बल्कि बहुजन समाज की चेतना और संगठन की सामूहिक शक्ति पर आधारित है। कांशीराम की विरासत मायावती के नेतृत्व में आगे बढ़ी, जिसने यह दर्शाया कि विचार और संगठन यदि मजबूत हों, तो एक नेता की अनुपस्थिति भी आंदोलन को रोक नहीं सकती।

अध्याय 33: मायावती को नेतृत्व सौंपने का निर्णय

कांशीराम की राजनैतिक दृष्टि और उत्तराधिकारी चुनने की आवश्यकता

कांशीराम का राजनैतिक जीवन एक क्रांतिकारी आंदोलन की तरह था, जिसकी नींव उन्होंने 1960 के दशक में डाली थी। वे भारतीय लोकतंत्र में हाशिए पर खड़े बहुजन समाज-जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक आते हैं-को संगठित कर सत्ता की मुख्यधारा में लाना चाहते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि सामाजिक बदलाव का वास्तविक मार्ग राजनैतिक सत्ता से होकर ही गुजरता है। वे बार-बार कहते थे, “हमारा संघर्ष केवल सीटों या पहचान के लिए नहीं है, हमारा संघर्ष सत्ता पर कब्जे के लिए है।” उनके लिए सत्ता न तो अंत था और न ही सुविधा का साधन, बल्कि वह सामाजिक न्याय, प्रतिनिधित्व और आत्म-सम्मान का एक उपकरण थी।

1970 के दशक में BAMCEF के माध्यम से उन्होंने सामाजिक जागरूकता फैलाने का कार्य शुरू किया और फिर 1984 में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की। यह पार्टी केवल चुनाव लड़ने का मंच नहीं थी, बल्कि यह एक विचारधारा थी-एक सामाजिक क्रांति की राजनैतिक शाखा। उन्होंने एक ऐसी संरचना बनाई जिसमें शिक्षित, जागरूक और प्रतिबद्ध बहुजन युवा नेतृत्व की ओर बढ़ सकें। लेकिन 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध तक उनके शरीर ने उनके मस्तिष्क और संकल्प की गति का साथ छोड़ना शुरू कर दिया। थकावट, मधुमेह, उच्च

रक्तचाप और अन्य बीमारियों ने उनके स्वास्थ्य को कमजोर करना शुरू कर दिया।

इस स्थिति में कांशीराम को यह स्पष्ट हो गया कि BSP के आंदोलन की स्थिरता के लिए एक योग्य, प्रतिबद्ध और दूरदर्शी उत्तराधिकारी की आवश्यकता है, जो न केवल संगठनात्मक कुशलता रखता हो, बल्कि विचारधारा को भी पूरी ईमानदारी से आगे बढ़ा सके। यह निर्णय उन्होंने केवल अपनी बीमारी के चलते नहीं लिया था, बल्कि यह उनके लंबे राजनैतिक प्रशिक्षण और रणनीतिक दृष्टिकोण का हिस्सा था। वे मानते थे कि हर क्रांतिकारी आंदोलन को एक मजबूत नेतृत्व की निरंतरता की ज़रूरत होती है, ताकि उसकी ऊर्जा और उद्देश्य पीढ़ी दर पीढ़ी बहते रहें।

इस बिंदु पर मायावती का नाम स्वाभाविक रूप से सामने आया। उन्होंने मायावती को न केवल एक राजनैतिक उत्तराधिकारी के रूप में देखा, बल्कि एक ऐसे सामाजिक प्रतीक के रूप में भी जो दलित, वंचित और महिला नेतृत्व का समुचित प्रतिनिधित्व करती थीं। मायावती की सामाजिक पृष्ठभूमि, भाषण शैली, प्रशासनिक क्षमता और संगठनात्मक दृढ़ता ने कांशीराम को यह विश्वास दिलाया कि वही BSP की विचारधारा को राजनैतिक सफलता में रूपांतरित कर सकती हैं।

इसलिए, कांशीराम ने उत्तराधिकारी चुनने का निर्णय केवल परिस्थितिजन्य या मजबूरी में नहीं लिया, बल्कि यह उनके रणनीतिक चिंतन का सटीक निष्कर्ष था। उन्होंने मायावती को दीर्घकालिक प्रशिक्षण, संगठनात्मक जिम्मेदारियाँ और जनसम्पर्क का व्यावहारिक अनुभव देकर तैयार किया। यह उत्तराधिकार केवल औपचारिक नहीं था—यह एक सामाजिक आंदोलन को एक नए नेतृत्व के माध्यम से नई ऊँचाइयों तक ले जाने की गूढ़ योजना थी। यही कारण था कि जब

कांशीराम ने उन्हें अपनी उत्तराधिकारी घोषित किया, तो न केवल पार्टी बल्कि पूरे बहुजन समाज ने इसे एक ऐतिहासिक और सशक्त निर्णय के रूप में स्वीकार किया।

मायावती का कांशीराम के राजनैतिक आंदोलन में प्रवेश

मायावती का राजनीति में प्रवेश भारतीय राजनीति के इतिहास में एक अद्वितीय परिवर्तन का प्रतीक था, और इसके पीछे सबसे बड़ा हाथ कांशीराम का था। वे मूल रूप से एक सामान्य दलित परिवार से थीं, जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में एम.ए. और बी.एड. की डिग्री लेकर दिल्ली में शिक्षक के रूप में करियर की शुरुआत की थी। लेकिन यह केवल एक संयोग नहीं था कि वे राजनीति में आई-यह एक गहराई से सोच-समझ कर तैयार की गई प्रक्रिया थी जिसमें कांशीराम की दृष्टि और रणनीति निर्णायक थीं।

1980 के दशक की शुरुआत में, जब कांशीराम दिल्ली में एक बैठक के लिए पहुँचे, उन्होंने मायावती को एक सभा में धाराप्रवाह, निर्भीक और तार्किक ढंग से बोलते देखा। उस समय उन्होंने महसूस किया कि यह महिला सामान्य नहीं है; उसमें नेतृत्व करने की विलक्षण क्षमता है। उन्होंने तुरंत यह तय किया कि इस युवती को केवल संगठन की कार्यकर्ता के रूप में नहीं, बल्कि एक भावी नेता के रूप में तैयार किया जाना चाहिए। मायावती की भाषण शैली, दृढ़ इच्छाशक्ति और सामाजिक मुद्दों पर स्पष्ट सोच ने कांशीराम को प्रभावित किया।

कांशीराम ने मायावती को न केवल प्रशिक्षित किया, बल्कि उन्हें पार्टी के आंतरिक कार्यों में शामिल किया और संगठनात्मक जिम्मेदारियाँ सौंपीं। उन्होंने मायावती को सामाजिक न्याय के मुद्दों, दलित चेतना,

बहुजन विचारधारा और संविधान की व्याख्या में गहराई से प्रशिक्षित किया। यह प्रशिक्षण केवल वैचारिक नहीं था, बल्कि व्यावहारिक था- मायावती को पार्टी चलाने, रैलियाँ संबोधित करने, कैडिडेट चयन करने और जनता के साथ संवाद साधने की हर विधा सिखाई गई।

जब BSP की स्थापना हुई, मायावती पहले दिन से ही इसकी महत्वपूर्ण स्तंभ बनीं। वे पार्टी की पहली महिला प्रमुख वक्ता और रणनीतिकार बनीं। 1989 में उन्होंने पहली बार लोकसभा चुनाव जीता और उसके बाद तो उनकी राजनैतिक यात्रा ने एक रफ्तार पकड़ ली। 1993 में जब BSP-SP गठबंधन हुआ और उत्तर प्रदेश की राजनीति में भूचाल आया, मायावती उस आंदोलन का प्रमुख चेहरा बन गईं। 1995 में जब BSP ने पहली बार सरकार बनाई, तो कांशीराम ने उन्हें उत्तर प्रदेश की पहली दलित महिला मुख्यमंत्री के रूप में पद की शपथ दिलवाई। यह केवल एक राजनैतिक निर्णय नहीं था-यह एक प्रतीकात्मक सामाजिक क्रांति थी।

इस प्रकार, मायावती का BSP में प्रवेश एक साधारण घटना नहीं थी। वह कांशीराम की दूरदर्शी योजना और नेतृत्व निर्माण रणनीति का परिणाम थी। उन्होंने मायावती को एक नेता के रूप में नहीं, बल्कि बहुजन आंदोलन की उत्तराधिकारी के रूप में तैयार किया था। यह सुनिश्चित किया गया था कि जब भी वह स्वयं सक्रिय राजनीति से पीछे हटें, पार्टी की विचारधारा और संगठनात्मक ढांचा किसी मजबूत हाथों में सुरक्षित रहे। मायावती उसी भविष्य की योजना का मूर्त रूप थीं।

नेतृत्व सौंपने की प्रक्रिया और कांशीराम की भूमिका

1990 के दशक के उत्तरार्ध तक कांशीराम को यह स्पष्ट हो गया था कि उनकी सेहत अब लंबे समय तक सक्रिय राजनीति की अनुमति नहीं दे

रही है। उनकी राजनैतिक दृष्टि कभी केवल अपने इर्द-गिर्द केंद्रित नहीं रही, बल्कि वे एक संस्थागत व्यवस्था बनाना चाहते थे जो उनके विचारों को उनके बाद भी आगे बढ़ा सके। ऐसे में मायावती को उत्तराधिकारी बनाना उनके उस दीर्घकालिक रणनीतिक दर्शन का हिस्सा था, जिसमें सत्ता केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं थी, बल्कि बहुजन समाज की सामूहिक शक्ति को प्रणाली के माध्यम से स्थापित करने का साधन थी।

नेतृत्व सौंपने की प्रक्रिया एकाएक नहीं हुई, बल्कि यह चरणबद्ध ढंग से कई वर्षों में पूरी हुई। कांशीराम ने मायावती को संगठनात्मक कार्यों में धीरे-धीरे प्रमुख भूमिका देना शुरू किया। पहले उन्होंने उन्हें दल के निर्णय लेने वाले निकायों में प्रतिनिधित्व दिया, फिर महत्वपूर्ण चुनावों में टिकट वितरण, कैडर नियुक्ति, और चुनाव प्रचार की जिम्मेदारी सौंपी। मायावती न केवल इन जिम्मेदारियों को सफलतापूर्वक निभा रही थीं, बल्कि उन्होंने BSP की कार्यशैली को भी अधिक अनुशासित और केंद्रीकृत रूप देने में भूमिका निभाई।

1999 के लोकसभा चुनाव के बाद, जब कांशीराम की सार्वजनिक सक्रियता घटने लगी, तब उन्होंने कई अवसरों पर सार्वजनिक मंच से यह स्पष्ट करना शुरू कर दिया था कि अब पार्टी की जिम्मेदारी मायावती पर है। उनका यह सार्वजनिक संकेत एक तरह से कार्यकर्ताओं और नेताओं को यह बताने का तरीका था कि अब नेतृत्व परिवर्तन का समय आ चुका है और पार्टी को नए चेहरे को पूरी स्वीकृति देनी चाहिए।

2001 में, लखनऊ में BSP के एक विशाल जनसभा में, कांशीराम ने औपचारिक रूप से मायावती को अपनी उत्तराधिकारी घोषित किया। यह घोषणा केवल औपचारिकता नहीं थी, बल्कि एक भावनात्मक और वैचारिक क्षण था। उन्होंने अपने भाषण में कहा “—अब से बहुजन समाज

पार्टी की पूरी जिम्मेदारी बहन मायावती जी संभालेंगी। मैंने जो आंदोलन शुरू किया था, उसे अब यह मजबूत हाथ आगे ले जाएंगे। मैं अब मार्गदर्शक की भूमिका में रहूँगा।” इस वक्तव्य के साथ उन्होंने न केवल नेतृत्व का हस्तांतरण किया, बल्कि बहुजन आंदोलन को भविष्य के लिए सुरक्षित भी किया।

इस निर्णय की पृष्ठभूमि में कांशीराम की दूरदर्शिता स्पष्ट दिखाई देती है। वे जानते थे कि कोई भी आंदोलन तब तक स्थायी नहीं हो सकता जब तक उसमें उत्तराधिकार की स्पष्ट नीति न हो। मायावती को उत्तराधिकारी बनाना केवल उनकी व्यक्तिगत पसंद नहीं थी, बल्कि उन्होंने वर्षों के अनुभव, प्रशिक्षण और परिक्षण के आधार पर यह फैसला लिया था। यह भी महत्वपूर्ण था कि यह घोषणा सार्वजनिक रूप से की गई, ताकि संगठन में नेतृत्व को लेकर कोई भ्रम या आंतरिक संघर्ष उत्पन्न न हो।

इस प्रकार, नेतृत्व सौंपने की प्रक्रिया कांशीराम के पूरे राजनैतिक जीवन की सबसे रणनीतिक और निर्णायक पहल थी। इससे यह सुनिश्चित हो गया कि बहुजन आंदोलन एक व्यक्ति पर आधारित नहीं, बल्कि एक विचार और संगठनात्मक व्यवस्था पर आधारित रहेगा, जो भविष्य में भी राजनीतिक, सामाजिक और वैचारिक संघर्षों को मजबूती से आगे बढ़ा सकेगा।

मायावती के नेतृत्व में BSP की नई दिशा

कांशीराम द्वारा औपचारिक रूप से पार्टी की कमान सौंपने के बाद मायावती ने न केवल नेतृत्व की बागडोर संभाली, बल्कि पार्टी की कार्यप्रणाली, रणनीति और विचारधारा को भी एक नए रूप में ढालने का प्रयास किया। कांशीराम की विचारधारा स्पष्ट रूप से “बहुजन” केंद्रित

थी-उनका लक्ष्य दलितों, पिछड़ों और अल्पसंख्यकों को एकजुट कर सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करना था। मायावती ने इस बहुजन राजनीति की नींव पर ही एक व्यापक सामाजिक समीकरण तैयार करने की कोशिश की जिसे उन्होंने “सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय” की राजनीति कहा।

इस नई दिशा का उद्देश्य यह था कि BSP केवल बहुजन समाज की पार्टी बनकर सीमित न रह जाए, बल्कि समाज के हर वर्ग-ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, मुस्लिम और अन्य समुदायों को भी साथ लेकर एक बड़ा सामाजिक गठबंधन बनाकर स्थायी सत्ता में पहुँचा जाए। यह दृष्टिकोण 2007 के विधानसभा चुनाव में पूरी तरह परिलक्षित हुआ, जब मायावती ने ‘ब्राह्मण-दलित’ सोशल इंजीनियरिंग का प्रयोग करते हुए पूर्ण बहुमत की सरकार बनाई। यह पहला अवसर था जब BSP अकेले अपने बल पर उत्तर प्रदेश की सत्ता में आई, और वह भी बहुजन से आगे बढ़कर सर्वजन की रणनीति के बलबूते।

मायावती के नेतृत्व में BSP का संगठनात्मक ढांचा भी अधिक अनुशासित और केंद्रीकृत हुआ। उन्होंने पार्टी की निर्णय प्रक्रिया को तेज, नियंत्रित और रणनीतिक बनाया। कांशीराम की विकेन्द्रीकृत और जमीनी कैडर आधारित संरचना को मायावती ने अधिक शीर्ष-केंद्रित प्रणाली में बदला। उन्होंने अपने विश्वस्त अधिकारियों और नेताओं की एक कोर टीम बनाकर निर्णय लेना प्रारंभ किया, जिससे पार्टी की दिशा तय करने में विलंब कम हुआ, लेकिन आलोचकों के अनुसार इससे भीतरी संवाद में कमी आई।

इसके अतिरिक्त, मायावती ने पार्टी को आधुनिक तकनीकी उपकरणों और चुनावी रणनीतियों से भी लैस किया। उन्होंने चुनावी प्रचार में

हेलीकॉप्टर, डिजिटल माध्यमों, मीडिया प्रबंधन और निर्वाचन विश्लेषण का उपयोग बढ़ाया, जिससे BSP की राजनैतिक पहुँच तेज़ी से बढ़ी। BSP अब एक आंदोलन से आगे बढ़कर एक सशक्त चुनावी मशीन बन चुकी थी।

हालाँकि मायावती की यह रणनीति कई मायनों में सफल रही, लेकिन इससे पार्टी के मूल “बहुजन” दर्शन से कुछ दूरी भी दिखाई दी। कुछ पुराने कार्यकर्ताओं और नेताओं को यह बदलाव असहज लगा, क्योंकि उन्हें लगने लगा कि अब पार्टी का झुकाव मूल मुद्दों और संघर्ष की जगह सत्ता केंद्रित हो गया है। फिर भी यह निर्विवाद है कि मायावती ने BSP को कांशीराम की वैचारिक नींव पर आधारित रखते हुए व्यावहारिक राजनीति की नई दिशा दी।

इस प्रकार मायावती के नेतृत्व में BSP ने संगठनात्मक, वैचारिक और रणनीतिक स्तर पर एक नया रूप लिया-जिसमें सत्ता की ओर स्पष्ट झुकाव था, लेकिन सामाजिक न्याय की मूल चेतना अभी भी मौजूद थी। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि कांशीराम का सपना महज़ आंदोलन तक सीमित न रह जाए, बल्कि उसे सत्ता में परिणत किया जाए और उसे क्रियान्वित किया जाए।

BSP कार्यकर्ताओं और नेताओं की प्रतिक्रिया

कांशीराम द्वारा मायावती को राजनैतिक उत्तराधिकारी घोषित करने के निर्णय पर BSP के भीतर मिश्रित प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलीं। पार्टी के अधिकतर युवा कार्यकर्ताओं, समर्पित कैडर, और ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले लोगों ने इस निर्णय को खुले दिल से स्वीकार किया, क्योंकि मायावती पहले से ही एक प्रभावशाली नेता के रूप में स्थापित हो चुकी

थीं और कांशीराम के साथ लंबे समय तक कार्य कर चुकी थीं। उन्होंने न केवल संगठनात्मक कार्यों में महारत हासिल की थी, बल्कि उत्तर प्रदेश की सत्ता में बहुजन प्रतिनिधित्व को स्थापित करने में भी निर्णायक भूमिका निभाई थी।

हालाँकि, पार्टी के कुछ वरिष्ठ और पुराने नेताओं में इस नेतृत्व परिवर्तन को लेकर चिंता और असंतोष भी देखा गया। वे मानते थे कि मायावती का नेतृत्व कांशीराम की तुलना में अधिक केंद्रीकृत है और उन्होंने पार्टी के निर्णयों को कम पारदर्शी बना दिया है। कई पुराने कार्यकर्ताओं को यह भी लगा कि पार्टी अब एक सामाजिक आंदोलन के बजाय एक राजनैतिक मशीन बनती जा रही है, जहाँ संघर्ष की जगह सत्ता-प्राप्ति को अधिक महत्व दिया जा रहा है। यह परिवर्तन उन्हें कांशीराम की मूल “बहुजन” नीति से थोड़ा विचलन प्रतीत हुआ।

कुछ आलोचकों ने यह भी कहा कि मायावती के कार्यकाल में दलित आंदोलन की वह ऊर्जा और वैचारिक स्पष्टता नहीं रही, जो कांशीराम के समय थी। मायावती के “सर्वजन” नीति की ओर बढ़ते रुझान को कुछ लोगों ने राजनैतिक अवसरवादिता माना, जबकि अन्य ने इसे दलित राजनीति को व्यापक बनाने की सकारात्मक रणनीति के रूप में देखा।

लेकिन इन आलोचनाओं के बावजूद, यह तथ्य भी सामने आया कि पार्टी का संगठनात्मक ढांचा मायावती के नेतृत्व में और अधिक मजबूत हुआ। उन्होंने अनुशासन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और पार्टी में किसी भी प्रकार की विद्रोही प्रवृत्ति को प्रारंभिक स्तर पर ही रोक दिया। उनके शासन में पार्टी अधिक चुनाव-केंद्रित और प्रशासनिक रूप से संगठित हुई, जिससे BSP को बार-बार सत्ता में आने का अवसर मिला।

इस प्रतिक्रिया का निष्कर्ष यही था कि भले ही कुछ विचारधारात्मक असहमतियाँ रही हों, लेकिन अधिकतर कार्यकर्ताओं और जनता ने मायावती को कांशीराम की योग्य उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार कर लिया। उनका नेतृत्व धीरे-धीरे कांशीराम के संघर्षों की निरंतरता का प्रतीक बन गया, भले ही उसकी शैली और दिशा पहले से कुछ भिन्न थी।

कांशीराम की उत्तराधिकारी के रूप में मायावती के चयन का महत्व

कांशीराम द्वारा मायावती को अपनी राजनैतिक विरासत सौंपने का निर्णय केवल संगठनात्मक मजबूरी या स्वास्थ्यगत कारणों की उपज नहीं था, बल्कि यह एक गहन राजनैतिक दृष्टिकोण और दीर्घकालिक रणनीति का हिस्सा था। कांशीराम ने प्रारंभ से ही यह विचार प्रस्तुत किया था कि बहुजन समाज को यदि वास्तव में सामाजिक न्याय और राजनैतिक ताकत प्राप्त करनी है, तो उसका नेतृत्व उसी समाज से निकलने वाले प्रतिनिधियों के हाथ में होना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा था कि “हमारा नेता हमारे समाज से होना चाहिए, न कि बाहर से थोपा गया कोई शासक।” इसी विचारधारा के अनुरूप उन्होंने मायावती को तैयार किया, जो एक दलित महिला होने के साथ-साथ राजनैतिक तौर पर तेज, प्रतिबद्ध और संगठनात्मक रूप से सक्षम थीं।

कांशीराम का यह फैसला उस समय सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से ऐतिहासिक था। भारतीय राजनीति में यह पहली बार हुआ कि किसी बहुजन दल ने नेतृत्व की बागडोर पूरी तरह एक दलित महिला को सौंपी, और उसे देश के सबसे बड़े राज्य में सत्ता की बागडोर भी सौंपी गई। इससे न केवल बहुजन समाज को एक सशक्त प्रतीक मिला, बल्कि महिलाओं, विशेषकर दलित महिलाओं को यह संदेश भी गया कि वे न केवल संघर्ष कर सकती हैं, बल्कि शासन भी कर सकती हैं।

इस चयन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि मायावती न केवल विचारधारा में निपुण थीं, बल्कि उन्होंने जमीनी स्तर पर कार्य कर के पार्टी के ढांचे को समझा था। उन्होंने संगठन की कमजोरियों और ताकतों को करीब से देखा था, जिससे वे पार्टी को आगे ले जाने के लिए एक व्यवहारिक योजना बना सकीं। कांशीराम ने उन्हें केवल उत्तराधिकारी नहीं बनाया, बल्कि वर्षों तक उन्हें प्रशिक्षित भी किया, जिससे उनका यह चयन स्वाभाविक, औपचारिक और राजनैतिक रूप से परिपक्व सिद्ध हुआ।

कांशीराम का यह निर्णय इसलिए भी महत्वपूर्ण था क्योंकि उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि आंदोलन केवल उनके नाम पर नहीं, बल्कि एक विचारधारा और संगठनात्मक ढांचे पर आधारित है। मायावती को उत्तराधिकारी घोषित करके उन्होंने यह दिखाया कि यह आंदोलन एक व्यक्ति-आधारित नहीं, बल्कि बहुजन समाज के नेतृत्व का प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि उनके जाने के बाद आंदोलन समाप्त न हो, बल्कि एक सशक्त और स्वायत्त नेतृत्व के माध्यम से आगे बढ़े।

इस निर्णय ने भारतीय राजनीति में दलित नेतृत्व को वैधानिक और वैचारिक स्वीकृति दिलाने का मार्ग प्रशस्त किया। मायावती का चयन, कांशीराम की दृष्टि में, न केवल BSP की स्थिरता के लिए, बल्कि पूरे बहुजन आंदोलन की दीर्घकालिक सफलता के लिए एक निर्णायक मोड़ था। उन्होंने यह बताया कि परिवर्तनशील राजनीति में केवल नेतृत्व परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उत्तराधिकारी की वैचारिक प्रतिबद्धता और संगठनात्मक दक्षता भी उतनी ही आवश्यक होती है।

मायावती के नेतृत्व का प्रभाव और कांशीराम की विरासत

मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी (BSP) का जो राजनैतिक विस्तार हुआ, वह कांशीराम की दूरदृष्टि और रणनीतिक परिपक्वता का प्रमाण था। जब उन्होंने मायावती को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, तब उन्होंने केवल पार्टी की कमान किसी को नहीं सौंपी थी, बल्कि अपनी संपूर्ण राजनैतिक विरासत, विचारधारा, संगठनात्मक ढांचा और सामाजिक आंदोलन का उत्तरदायित्व सौंपा था। यह उत्तराधिकार केवल एक औपचारिक प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक क्रांति का उत्तरदायित्व था, जो भारत की दलित राजनीति को एक निर्णायक दिशा देने वाला साबित हुआ।

2007 में मायावती ने उत्तर प्रदेश में पूर्ण बहुमत की सरकार बनाकर न केवल कांशीराम के सपने को साकार किया, बल्कि यह भी सिद्ध किया कि एक दलित महिला के नेतृत्व में भी बहुजन समाज राजनैतिक सत्ता प्राप्त कर सकता है। इस सफलता ने भारतीय राजनीति में बहुजन नेतृत्व की वैधता को स्थापित किया और यह संदेश दिया कि अब दलित समाज केवल विरोध या प्रतीकात्मक राजनीति तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि नीतियों और सत्ता-निर्माण की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाएगा।

हालाँकि, मायावती के नेतृत्व में BSP की कार्यशैली में कुछ परिवर्तन भी आए। जहाँ कांशीराम आंदोलन और वैचारिक प्रशिक्षण पर अधिक बल देते थे, वहीं मायावती ने सत्ता-प्राप्ति को प्राथमिकता दी। उन्होंने “बहुजन से सर्वजन” तक की रणनीति अपनाई, जिससे पार्टी की पहुँच व्यापक हुई, परंतु कुछ पुराने नेताओं और कार्यकर्ताओं को यह भय भी सताने लगा कि कहीं पार्टी अपने मूल सिद्धांतों से विचलित न हो जाए। इसके बावजूद,

मायावती ने यह सुनिश्चित किया कि कांशीराम की शिक्षाओं और संघर्षों का आदर्श पार्टी की मूल आत्मा बना रहे।

मायावती के नेतृत्व ने दलित और पिछड़े समाज की नई पीढ़ी को एक राजनैतिक मंच प्रदान किया, जो न केवल जागरूक था, बल्कि राजनैतिक रूप से संगठित भी था। उन्होंने महिलाओं को भी राजनैतिक नेतृत्व की दिशा में प्रेरित किया और यह बताया कि बहुजन आंदोलन लिंग आधारित सीमाओं को लांघकर समानता और समावेशन की ओर अग्रसर हो सकता है।

अध्याय 34: 9 अक्टूबर 2006 को निधन

कांशीराम के अंतिम दिन और स्वास्थ्य स्थिति

कांशीराम, जिन्होंने भारतीय राजनीति में बहुजन समाज के लिए एक नई दिशा और चेतना पैदा की, अपने जीवन के अंतिम वर्षों में गम्भीर स्वास्थ्य समस्याओं से जूझ रहे थे। 1999 के बाद से उनकी सार्वजनिक उपस्थिति धीरे-धीरे कम होती चली गई। उन्होंने लंबे समय तक देशभर में यात्राएँ कीं, हजारों रैलियाँ और जनसभाएँ संबोधित कीं, जिससे उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 2003 में उन्हें ब्रेन स्ट्रोक हुआ, जिसके बाद उनकी स्थिति तेजी से बिगड़ने लगी। उनकी भाषण देने की क्षमता प्रभावित हो गई और वे शारीरिक रूप से भी कमजोर होते चले गए। धीरे-धीरे वे व्हीलचेयर पर निर्भर हो गए और सार्वजनिक जीवन से लगभग पूरी तरह कट गए।

2004 और 2005 के वर्षों में उनकी हालत और भी गंभीर हो गई। वे लगभग बोलने में असमर्थ हो गए थे और उन्हें दैनिक कार्यों के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था। मधुमेह, उच्च रक्तचाप और ब्रेन स्ट्रोक के परिणामस्वरूप उनकी किडनी भी प्रभावित हो चुकी थी। यह वह समय था जब उनके सबसे नज़दीकी सहयोगी, विशेष रूप से मायावती, उनकी देखभाल में लगातार लगे हुए थे। इसके बावजूद, उनकी हालत में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। कांशीराम का शरीर कमजोर होता गया, लेकिन उनका आत्मबल और समाज के प्रति समर्पण बना रहा। वे भले ही

सार्वजनिक मंच पर न दिखते हों, परंतु वे पार्टी के लिए एक आदर्श और प्रेरणा बने रहे।

कांशीराम का निधन

9 अक्टूबर 2006 को सुबह लगभग 4:00 बजे दिल्ली स्थित उनके आवास पर कांशीराम का निधन हो गया। उनके निधन की खबर ने न केवल बहुजन समाज पार्टी को, बल्कि समस्त भारतीय राजनीति को शोक में डुबो दिया। उनके जाने से एक ऐसे युग का अंत हो गया जिसने बहुजन समाज को राजनैतिक सत्ता का सपना देखने की शक्ति दी थी। मायावती, जो उनके उत्तराधिकारी के रूप में पार्टी का नेतृत्व संभाल रही थीं, ने कांशीराम के निधन की औपचारिक घोषणा की और पूरे देश को उनके योगदान की महत्ता से अवगत कराया।

मायावती ने अपने भावुक वक्तव्य में कहा, “कांशीराम जी का जीवन बहुजन समाज के लिए एक आंदोलन था, उन्होंने जो सपना देखा था, हम उसे पूरा करने के लिए संकल्पबद्ध हैं।” पार्टी के कार्यकर्ताओं में शोक की लहर दौड़ गई। देश के अलग-अलग हिस्सों में श्रद्धांजलि सभाएँ आयोजित की गईं, और लाखों लोग अपने नेता को अंतिम विदाई देने के लिए इकट्ठा हुए। यह क्षण भारतीय राजनीति में न केवल भावनात्मक, बल्कि ऐतिहासिक था, क्योंकि वह व्यक्तित्व चला गया था जिसने सत्ता की भाषा को दलित और वंचित समाज की आवाज़ में बदल दिया था।

अंतिम संस्कार और कांशीराम की अंतिम इच्छा

कांशीराम का अंतिम संस्कार उनकी इच्छा के अनुसार बौद्ध परंपराओं के अनुरूप किया गया। उन्होंने जीवनभर बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा का अनुसरण किया और मृत्यु के बाद भी उसी

परंपरा को निभाना चाह। 10 अक्टूबर 2006 को दिल्ली के यमुना टट पर उनका अंतिम संस्कार किया गया। इस अवसर पर मायावती ने नेतृत्व किया और उन्होंने कांशीराम को बौद्ध रीति से अंतिम विदाई दी। हजारों की संख्या में लोग इस ऐतिहासिक क्षण के साक्षी बने।

इस अवसर पर मायावती ने सार्वजनिक रूप से पार्टी कार्यकर्ताओं और समर्थकों से अपील की कि वे कांशीराम के दिखाए रास्ते पर चलने का संकल्प लें। उन्होंने कहा, “कांशीराम जी का आंदोलन कभी खत्म नहीं होगा। यह आंदोलन तब तक जीवित रहेगा जब तक बहुजन समाज को पूर्ण सामाजिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते।” यह अंतिम विदाई केवल एक नेता के पार्थिव शरीर को अग्नि देने की प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह उनके विचारों की विरासत को जनमानस में स्थायी रूप से प्रतिष्ठित करने का समारोह था।

कांशीराम के निधन का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

कांशीराम के निधन ने भारतीय राजनीति में एक विचारधारा शून्यता उत्पन्न की। वे केवल एक नेता नहीं थे, बल्कि एक युग, एक आंदोलन, और एक वैकल्पिक राजनैतिक विचार के प्रतीक बन चुके थे। उनके जाने के बाद बहुजन राजनीति में नेतृत्व और वैचारिक दिशा को लेकर सवाल उठने लगे। मायावती ने उनकी राजनैतिक विरासत को आगे बढ़ाने की कोशिश की और कुछ हद तक इसमें सफल भी रहीं, लेकिन कांशीराम की सहज जनसंपर्क शैली, वैचारिक प्रशिक्षण का आग्रह, और जमीनी स्तर पर कैडर निर्माण की प्रक्रिया को उसी प्रबलता से दोहराया नहीं जा सका।

2007 में BSP ने उत्तर प्रदेश में पूर्ण बहुमत की सरकार बनाकर यह साबित किया कि कांशीराम के द्वारा निर्मित आधार अभी भी मजबूत है। लेकिन समय के साथ पार्टी के भीतर वैचारिक परिवर्तन दिखाई देने लगे। पुराने कार्यकर्ता यह अनुभव करने लगे कि पार्टी अब “बहुजन” की बजाय “सर्वजन” की ओर झुकाव दिखा रही है, जिससे मूल लक्ष्य थोड़ा अस्पष्ट होता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप 2012 के बाद BSP का राजनैतिक प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। कांशीराम के विचार और रणनीति का सम्यक और कठोर पालन नए नेतृत्व में स्पष्ट नहीं दिखा।

उनके निधन के बाद की स्मृति और सम्मान

कांशीराम के निधन के बाद, उनकी स्मृति को संरक्षित रखने और उनके योगदान को नई पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए अनेक प्रयास किए गए। उत्तर प्रदेश की तत्कालीन सरकार द्वारा लखनऊ में भव्य “श्री कांशीराम स्मारक स्थल” का निर्माण कराया गया, जहाँ उनकी प्रतिमा और आंदोलन के इतिहास को शिलालेखों के माध्यम से दर्शाया गया। इसी प्रकार, कानपुर, मेरठ, और अन्य स्थानों पर भी कांशीराम के नाम पर पार्क, पुस्तकालय, और शिक्षण संस्थान स्थापित किए गए।

हर वर्ष 9 अक्टूबर को “कांशीराम परिनिर्वाण दिवस” के रूप में मनाया जाता है। इस दिन देशभर में उनके अनुयायी, पार्टी कार्यकर्ता और सामाजिक संगठन श्रद्धांजलि सभाएँ आयोजित करते हैं। इस दिन को केवल एक शोक सभा नहीं बल्कि एक वैचारिक जागरूकता दिवस के रूप में स्थापित किया गया है, जहाँ कांशीराम के विचार, उनके भाषण, और उनकी नीतियों पर चर्चा की जाती है। उनकी किताबें जैसे “द चमचा

युग” और “हम बहुजन हैं” आज भी बहुजन आंदोलन के कार्यकर्ताओं के लिए विचारशील ग्रंथ की तरह मानी जाती हैं।

काशीराम का योगदान भारतीय राजनीति में केवल दलितों के हितों तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने यह सिद्ध किया कि सत्ता-विहीन समाजों को केवल संख्या के बल पर ही नहीं, बल्कि संगठित नेतृत्व और वैचारिक स्पष्टता के साथ सत्ता के केंद्र तक पहुँचाया जा सकता है। उनका निधन निश्चित रूप से एक अपूरणीय क्षति थी, परंतु उनकी विचारधारा, संघर्ष, और सिद्धांत आज भी बहुजन आंदोलन की चेतना में जीवित हैं - प्रेरणा देते हुए, दिशा दिखाते हुए।

अध्याय 35

: कांशीराम के निधन के बाद बहुजन राजनीति में शून्यता

कांशीराम के निधन से उत्पन्न शून्यता

कांशीराम के निधन ने बहुजन राजनीति में एक ऐसा शून्य उत्पन्न किया, जिसे आज तक कोई नेता या संगठन पूरी तरह भर नहीं सका है। यह शून्यता केवल एक नेता की अनुपस्थिति नहीं थी, बल्कि वह वैचारिक स्पष्टता, रणनीतिक दिशा और नेतृत्व की शक्ति भी थी, जो कांशीराम जैसे परिवर्तनकामी नेता के साथ जुड़ी थी। कांशीराम ने बहुजन राजनीति को केवल एक चुनावी विकल्प नहीं बनाया, बल्कि उसे एक सामाजिक क्रांति का रूप दिया था। उन्होंने जाति व्यवस्था के खिलाफ निर्णायक संघर्ष छेड़ा था, जिसमें उन्होंने बहुजन, दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्गों को एक साझा राजनैतिक मंच पर संगठित कर सत्ता के केन्द्रों तक पहुँचाने का काम किया। उनके नेतृत्व ने एक वैकल्पिक चेतना विकसित की थी, जिसमें सामाजिक न्याय, आत्म-सम्मान और सत्ता में भागीदारी को केंद्रीय मूल्य बनाया गया था। जब 9 अक्टूबर 2006 को उनका निधन हुआ, तब केवल एक व्यक्ति नहीं गया, बल्कि बहुजन आंदोलन का वह आधारभूत स्तंभ हिल गया, जिस पर एक लंबे समय तक चली रणनीतिक तैयारी टिकी थी।

कांशीराम ने अपने जीवनकाल में “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” जैसे नारों के माध्यम से एक राजनैतिक दर्शन गढ़ा था, जो केवल दलित मुक्ति आंदोलन तक सीमित नहीं था, बल्कि पूरे बहुजन

समाज को संगठित कर शासन व्यवस्था को लोकतांत्रिक और समावेशी बनाने की कोशिश थी। उनका जाना इस बात का संकेत था कि अब बहुजन राजनीति को वैचारिक और रणनीतिक दृष्टि से एक बार फिर से पुनर्स्थापित करने की ज़रूरत है। लेकिन कांशीराम के जाने के बाद वह वैचारिक नेतृत्व गायब हो गया, जो यह दिशा दे सकता था कि बहुजन समाज को अगले चरण में किस रणनीति के तहत आगे बढ़ना है। इस विचारधारा की केंद्रीयता में जो स्पष्टता और स्थिरता थी, वह धीरे-धीरे कमजोर होती गई।

उनके निधन के साथ ही बहुजन आंदोलन के कार्यकर्ताओं और समर्थकों में जो भावनात्मक लगाव था, वह असमंजस और भ्रम में बदल गया। यह भावनात्मक शून्यता इतनी गहरी थी कि BSP के भीतर भी कांशीराम के आंदोलनात्मक स्वरूप की जगह एक अधिक सत्ता-केंद्रित संरचना ने ले ली। मायावती ने संगठन की कमान तो संभाली, लेकिन वह कांशीराम जैसी वैचारिक प्रतिबद्धता और रणनीतिक धैर्य नहीं दिखा सकीं। परिणामस्वरूप, संगठन में ऊपर से नीचे तक जो जीवंत संवाद, वैचारिक प्रशिक्षण और दीर्घकालीन लक्ष्य के लिए काम करने की भावना थी, वह धीरे-धीरे निष्क्रिय होती गई।

कांशीराम के जाने से यह भी सिद्ध हुआ कि बहुजन आंदोलन एक व्यक्ति पर अत्यधिक केंद्रित था और उस व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसे बनाए रखने के लिए कोई वैकल्पिक नेतृत्व या संस्थागत व्यवस्था तैयार नहीं की गई थी। यही कारण था कि उनका निधन न केवल राजनैतिक परिदृश्य को बदल गया, बल्कि एक पूरे वैकल्पिक आंदोलन की गति को धीमा कर दिया। बहुजन समाज के सामने अब यह चुनौती खड़ी हो गई थी कि क्या वे उस वैचारिक आंदोलन को फिर से संगठित कर सकते हैं, या वह

आंदोलन अब केवल सत्ता के समीकरणों और गठबंधनों में सीमित रह जाएगा।

कांशीराम के नेतृत्व की विशिष्टता

कांशीराम का नेतृत्व भारतीय राजनीति में एक अनूठा और वैचारिक रूप से समर्पित मॉडल प्रस्तुत करता था, जो अपने युग में किसी भी राजनैतिक नेता से बिल्कुल भिन्न था। वह पद, सत्ता या निजी लाभ की राजनीति नहीं करते थे, बल्कि उन्हें राजनीति एक सामाजिक क्रांति का माध्यम लगती थी। कांशीराम ने बहुजन समाज के सबसे निचले तबकों-जैसे दलित, पिछड़े और आदिवासी-को यह एहसास दिलाया कि वे केवल मतदाता नहीं, बल्कि शासक वर्ग बनने की सामर्थ्य रखते हैं। उन्होंने भारतीय राजनीति में पहली बार यह विचार मजबूत किया कि सामाजिक न्याय तभी संभव है जब सत्ता के केंद्रों पर वही वर्ग पहुंचे जो संख्या में अधिक हैं लेकिन परंपरागत रूप से वंचित रहे हैं।

उनका प्रसिद्ध नारा, “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”, सिर्फ नारा नहीं बल्कि एक राजनैतिक दृष्टिकोण था, जो भारत की सामाजिक संरचना को चुनौती देता था। कांशीराम अपने समर्थकों को “नेचुरल बॉर्न रूलर्स” कहते थे और इस विचार को लोगों के मन में इस प्रकार बिठाते थे कि एक राजनैतिक आत्मविश्वास पैदा हो सके। उन्होंने सत्ता की परिभाषा ही बदल दी-जहाँ अन्य दलों के लिए सत्ता साध्य थी, वहीं कांशीराम के लिए सत्ता एक ऐसा माध्यम थी, जिससे बहुजन समाज की सामाजिक स्थिति को बदला जा सकता था।

उनकी रणनीति भी अद्वितीय थी-वह चुनाव हारने को पराजय नहीं, बल्कि संगठन निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा मानते थे। वह बार-बार कहा करते

थे कि “हम अभी चुनाव हारकर जनता को शिक्षित कर रहे हैं, और जब हम जीतेंगे, तो बहुजन समाज पूरी तरह से जागरूक हो चुका होगा।” इस तरह का दीर्घकालिक दृष्टिकोण उस समय दुर्लभ था, जब अधिकतर राजनैतिक दल तात्कालिक चुनावी लाभ के लिए जातीय समीकरण साध रहे थे

कांशीराम का नेतृत्व बहुजन समाज के लिए केवल एक राजनैतिक विकल्प नहीं, बल्कि एक वैचारिक अनुशासन भी था। उन्होंने कार्यकर्ताओं को ‘कैडर’ की तरह प्रशिक्षित किया-BAMCEF, DS4 और बाद में BSP जैसे संगठनों के माध्यम से। उन्होंने बहुजन समाज को बताया कि सत्ता में भागीदारी के बिना सामाजिक बदलाव अधूरा है, और यह भी कि बिना वैचारिक सुदृढ़ता के सत्ता मिल भी जाए तो वह समाज को नहीं बदल सकती। इसीलिए उन्होंने कभी चुनावी गठबंधन के दबाव में विचारधारा को नहीं छोड़ा।

कांशीराम का यह विचार था कि सत्ता तक पहुँचने से पहले संगठन, प्रशिक्षण, विचारधारा और जनता से संवाद जैसे चरणों को दृढ़ता से अपनाना होगा। वे चुनाव को जनशिक्षा का एक माध्यम मानते थे और चुनावी हार को भी अपने आंदोलन की सफलता के रूप में व्याख्यायित करते थे। उनका यही नेतृत्व मॉडल उन्हें उनके बाद के तमाम नेताओं से अलग बनाता है-चाहे वह मायावती हों या रामविलास पासवान, उदित राज या प्रकाश आंबेडकर। कांशीराम के बाद बहुजन राजनीति में विचारधारा की गहराई और संगठनात्मक स्पष्टता दोनों में गिरावट आई, जिससे उनकी नेतृत्व की विशिष्टता और भी अधिक उजागर हो गई।

BSP पर कांशीराम के निधन का प्रभाव

कांशीराम के निधन के पश्चात बहुजन समाज पार्टी (BSP) पर गहरा प्रभाव पड़ा, जो केवल नेतृत्व परिवर्तन का नहीं बल्कि वैचारिक दिशा और संगठनात्मक ढांचे में भी व्यापक बदलाव का कारण बना। कांशीराम के नेतृत्व में BSP एक वैचारिक और आंदोलनात्मक संगठन के रूप में स्थापित हुआ था, जिसकी नींव सामाजिक न्याय, बहुजन एकता, और सशक्तिकरण के सिद्धांतों पर रखी गई थी। वह सत्ता को साध्य नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम मानते थे। उन्होंने जिस राजनैतिक चेतना और जागरूकता की शुरुआत की थी, उसका उद्देश्य केवल चुनाव जीतना नहीं था, बल्कि बहुजन समुदाय को आत्मनिर्भर और राजनैतिक रूप से निर्णायक बनाना था।

कांशीराम के निधन के बाद, मायावती ने पार्टी की कमान संभाली और धीरे-धीरे पार्टी की प्राथमिकताओं में बदलाव आया। उन्होंने सत्ता प्राप्ति को मुख्य लक्ष्य बनाते हुए 'सर्वजन' की नीति को अपनाया, जिसमें सवर्ण जातियों विशेषकर ब्राह्मणों को भी शामिल करने की रणनीति विकसित की गई। 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में यह रणनीति सफल भी रही और BSP पूर्ण बहुमत से सत्ता में आई, लेकिन इस सफलता की कीमत पार्टी की वैचारिक स्पष्टता और मूल बहुजन एजेंडे की नरमी के रूप में चुकानी पड़ी। कांशीराम के समय जो पार्टी अपने जमीनी कैडर पर आधारित थी, वह अब सत्ता की राजनीति में केंद्रीकृत नेतृत्व के इर्द-गिर्द घूमने लगी।

इस परिवर्तन से पार्टी के पुराने समर्पित कार्यकर्ताओं और वैचारिक स्तंभों को असहजता हुई। वे यह महसूस करने लगे कि BSP अब बहुजन आंदोलन से एक चुनावी मशीन में बदल चुकी है, जहां सामाजिक चेतना

की जगह रणनीतिक गठजोड़ों ने ले ली है। पार्टी में भले ही अनुशासन बना रहा, लेकिन उसकी वैचारिक धार और आंदोलन की गहराई कमजोर होती गई। इसके परिणामस्वरूप पार्टी का संगठनात्मक आधार भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगा और वह आंदोलन की जगह पर केवल सत्ता के इर्द-गिर्द केंद्रित एक दल में बदल गई।

इस प्रकार, कांशीराम के निधन के बाद BSP ने सत्ता के मार्ग पर सफलता तो प्राप्त की, लेकिन उसकी विचारधारा, संगठनात्मक ताकत और वैचारिक प्रतिबद्धता में जो क्षरण हुआ, उसने लंबे समय में बहुजन राजनीति को कमजोर किया। यही वह मोड़ था जहां पार्टी अपने जनआंदोलन के स्वरूप से दूर होती गई और एक परंपरागत राजनैतिक दल में परिवर्तित हो गई, जिसकी जड़ें अब पहले जैसी गहराई से समाज में नहीं थीं।

बहुजन राजनीति में नेतृत्व का संकट

कांशीराम के निधन के बाद बहुजन राजनीति सबसे अधिक जिस संकट से गुजरी, वह था नेतृत्व का गहराता हुआ अभाव। कांशीराम ने न केवल एक दल खड़ा किया था बल्कि एक वैचारिक, सामाजिक और संगठनात्मक आधार पर बहुजन राजनीति की एक स्पष्ट दिशा निर्मित की थी, जिसमें राजनैतिक सत्ता को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम माना गया था। उनके जाने के बाद बहुजन समाज के सामने यह प्रश्न खड़ा हो गया कि उनके सिद्धांतों और संघर्ष को वह नेतृत्व कौन देगा, जो वैचारिक रूप से सशक्त, रणनीतिक रूप से कुशल और जनता में व्यापक स्वीकार्यता रखता हो।

मायावती ने भले ही उत्तर प्रदेश में सत्ता हासिल की, परंतु उनका नेतृत्व पूरी तरह क्षेत्रीय रहा और वह उस आंदोलन को राष्ट्रीय स्तर तक नहीं ले जा सकी। मायावती का नेतृत्व सत्ता केंद्रित था जबकि कांशीराम आंदोलन और जनजागरण केंद्रित नेता थे। उनके दौर में बहुजन आंदोलन एक सामाजिक क्रांति के रूप में देखा जाता था, जिसमें दलित, पिछड़े, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक एक साझा मोर्चा बनाते थे। लेकिन कांशीराम के बाद यह मोर्चा बिखर गया।

वहीं दूसरी ओर, अन्य नेताओं जैसे रामविलास पासवान, उदित राज और प्रकाश आंबेडकर ने अलग-अलग क्षेत्रों में राजनैतिक हस्तक्षेप तो किया, परंतु वे एक समग्र और अखिल भारतीय स्तर पर नेतृत्व नहीं दे सके। इनमें से कोई भी कांशीराम जैसा संगठनकर्ता या वैचारिक आंदोलनकर्ता नहीं बन पाया। उदित राज ने बाद में भाजपा का दामन थाम लिया और रामविलास पासवान की राजनीति अवसरवाद और जातीय समीकरणों के इर्द-गिर्द ही घूमती रही। प्रकाश आंबेडकर की राजनीति महाराष्ट्र तक सीमित रही और उनका प्रभाव सीमित वर्गों तक ही सिमटा रहा।

इसके अलावा, जिस सामूहिक एकता और अनुशासन की छवि कांशीराम ने BSP के भीतर बनाई थी, वह उनके जाने के बाद धीरे-धीरे ढहने लगी। पुराने कार्यकर्ता असंतुष्ट होकर पार्टी छोड़ने लगे, और नए नेतृत्व ने जनसंवाद की प्रक्रिया को लगभग विराम दे दिया। स्थानीय स्तर पर नेतृत्व विकसित नहीं हुआ, जिससे पार्टी की जड़ें कमजोर होती गईं। एक समय जो संगठन 'कैडर बेस्ड पार्टी' के रूप में जाना जाता था, वह एक व्यक्ति-आधारित पार्टी में तब्दील हो गया।

इस सबके परिणामस्वरूप बहुजन राजनीति में स्पष्ट नेतृत्व का संकट पैदा हो गया। समाज के भीतर जो राजनैतिक चेतना विकसित हुई थी, वह

नेतृत्वविहीन हो गई और एक शक्तिशाली राजनैतिक आंदोलन धीरे-धीरे बिखरने लगा। आज भी बहुजन समाज के पास व्यापक जनाधार है, परंतु उस आधार को एकजुट करने वाला वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध, संघर्षशील और सशक्त नेतृत्व अभी भी अनुपस्थित है। यह संकट तब तक दूर नहीं होगा, जब तक कोई ऐसा नेतृत्व नहीं उभरेगा जो कांशीराम की तरह सामाजिक न्याय, आत्मसम्मान और राजनैतिक अधिकारों के लिए संपूर्ण बहुजन समाज को संगठित कर सके।

अन्य दलों द्वारा बहुजन वोट बैंक पर पकड़ बनाने का प्रयास

कांशीराम के निधन के पश्चात, बहुजन समाज पार्टी (BSP) के भीतर वैचारिक नेतृत्व की शून्यता और संगठनात्मक ढीलापन स्पष्ट होने लगा, जिसे राष्ट्रीय दलों-विशेष रूप से कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी (BJP)-ने अवसर के रूप में देखा। कांग्रेस ने अपने पारंपरिक सेक्युलर-समाजवादी चरित्र के तहत बहुजन वर्गों को दोबारा आकर्षित करने के प्रयास तेज किए। विशेषकर UPA सरकार के दौरान, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए 'SC Sub Plan', 'Post Matric Scholarship', 'Pre-Matric Hostels', और 'Special Component Plan' जैसी योजनाओं को न केवल दोबारा सक्रिय किया गया बल्कि इन्हें राजनैतिक प्रचार का माध्यम भी बनाया गया। कांग्रेस ने सामाजिक कल्याण की अपनी नीतियों को बार-बार कांशीराम की नीतियों से जोड़कर प्रस्तुत किया, ताकि बहुजन वर्ग को यह विश्वास दिलाया जा सके कि कांग्रेस उनकी प्राथमिक चिंता है।

दूसरी ओर, BJP ने एक अधिक रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने 'सबका साथ, सबका विकास' का नारा देकर एक समावेशी हिंदुत्व का

विमर्श तैयार किया, जिसमें बहुजन समाज को हिंदू एकता के नाम पर अपने साथ जोड़ा गया। 2014 के लोकसभा चुनाव और 2017 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में BJP ने इस रणनीति का भरपूर लाभ उठाया। उन्होंने गैर-यादव पिछड़ों और गैर-जाटव दलितों को अपनी ओर आकर्षित किया और उन्हें प्रतिनिधित्व देने के नाम पर पार्टी संरचना में स्थान भी दिया। इसके अलावा, BJP ने यह प्रचार भी किया कि मायावती और BSP अब केवल चुनावी राजनीति की पार्टी रह गई है और बहुजन समाज के सामाजिक परिवर्तन के आंदोलन से उनका कोई लेना-देना नहीं रहा।

BJP ने विशेष रूप से बहुजन मतदाताओं के बीच यह संदेश भी फैलाया कि कांशीराम का सपना केवल दलित एकता नहीं था, बल्कि संपूर्ण हिंदू समाज की शक्ति बनाना था, और यह काम केवल BJP ही कर सकती है। इसके अतिरिक्त, संघ परिवार से जुड़े संगठनों जैसे कि समरसता मंच और अनुसूचित जाति मोर्चा ने भी गाँवों में जाकर 'दलित सम्मेलनों' के जरिये बहुजन वर्गों को BJP से जोड़ने का काम किया। इस पूरी प्रक्रिया में BSP के पारंपरिक वोट बैंक में गंभीर सेंध लग गई, जिससे पार्टी की सामाजिक और राजनैतिक पकड़ कमजोर हो गई।

इस प्रकार, कांग्रेस ने कल्याणकारी योजनाओं के जरिये और BJP ने रणनीतिक सामाजिक सम्मिलन के माध्यम से बहुजन समाज में अपनी पैठ बनाने की कोशिश की। परिणामस्वरूप BSP का वोट प्रतिशत गिरने लगा, और वह राज्य तथा केंद्र की राजनीति में धीरे-धीरे प्रभावहीन होती चली गई। यह स्पष्ट हो गया कि अगर बहुजन राजनीति में संगठनात्मक और वैचारिक पुनर्गठन नहीं हुआ, तो उसका स्थान मुख्यधारा के दल हथिया लेंगे और बहुजन आंदोलन की स्वायत्तता खो जाएगी।

बहुजन आंदोलन में बिखराव

काशीराम की मृत्यु के बाद बहुजन आंदोलन जिस समर्पित दिशा और एकजुट ताकत के साथ आगे बढ़ रहा था, उसमें गंभीर बिखराव उत्पन्न हो गया। उनका नेतृत्व बहुजन समाज के सभी घटकों-दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों और धार्मिक अल्पसंख्यकों-को एक साझा मंच पर संगठित करता था, जो एक वैचारिक एवं रणनीतिक छतरी के नीचे एक मजबूत राजनैतिक शक्ति बन गया था। लेकिन जैसे ही यह छतरी हटी, आंदोलन में संगठनों की बाढ़ सी आ गई, जिसमें न केवल नेतृत्व का टकराव हुआ, बल्कि विचारधारा भी विविध दिशाओं में बिखरती गई।

आजाद समाज पार्टी (चंद्रशेखर आजाद), वंचित बहुजन आघाड़ी (प्रकाश आंबेडकर), बहुजन मुक्ति पार्टी, भीम आर्मी, और अनेक क्षेत्रीय संगठन-इन सभी ने बहुजन अधिकारों की बात अवश्य की, लेकिन उनके बीच कोई साझा रणनीतिक या वैचारिक समन्वय नहीं बन सका। जहां चंद्रशेखर आजाद ने अधिकतर आंदोलनों और सड़कों पर संघर्ष की राजनीति अपनाई, वहीं वंचित बहुजन आघाड़ी महाराष्ट्र तक सीमित रही। इस टुकड़ापन ने बहुजन आंदोलन की राष्ट्रीय शक्ति को बेहद कमजोर कर दिया। इससे स्पष्ट हो गया कि केवल संगठन खड़ा करना पर्याप्त नहीं होता-एक व्यापक और समेकित नेतृत्व की आवश्यकता होती है, जो न केवल दलों को एकजुट करे बल्कि जनता को एक विचारधारा के अंतर्गत लामबंद कर सके।

इस बिखराव का दूसरा पहलू यह था कि जनता के बीच भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई। अलग-अलग नेताओं द्वारा अलग-अलग मुद्दों पर अलग-अलग तरीके से बात करने के कारण बहुजन समाज के मतदाताओं के

बीच स्पष्टता का अभाव हो गया। कुछ संगठन सामाजिक न्याय की बात करते रहे, कुछ केवल चुनावी राजनीति में उलझे रहे, और कुछ आंदोलन तो केवल सोशल मीडिया तक सीमित रह गए। परिणामस्वरूप, जहां एक ओर आंदोलन की जमीनी पकड़ ढीली हुई, वहीं दूसरी ओर बहुजन युवाओं में निराशा और असंतोष की भावना गहराती गई।

सबसे गंभीर बात यह रही कि इस बिखराव का लाभ उन शक्तियों ने उठाया, जिनके खिलाफ कांशीराम ने आंदोलन खड़ा किया था। विभाजित बहुजन राजनीति ने भाजपा, कांग्रेस और क्षेत्रीय दलों को बहुजन वोट बैंक को अपने पक्ष में खींचने का अवसर दे दिया। जहां भाजपा ने हिंदू एकता और योजनाओं के माध्यम से दलितों और पिछड़ों को जोड़ने की कोशिश की, वहीं कांग्रेस ने कल्याणकारी योजनाओं के जरिए इस वर्ग में पुनः स्थान बनाने का प्रयास किया। लेकिन इन प्रयासों के बीच मूल बहुजन आंदोलन की आत्मा-जो सामाजिक बदलाव, समानता, और आत्मसम्मान की लड़ाई थी-धीरे-धीरे खोने लगी।

इसलिए यह स्पष्ट है कि बहुजन आंदोलन में जो बिखराव कांशीराम के बाद आया, वह केवल संगठनों का विभाजन नहीं था, बल्कि वह एक वैचारिक, रणनीतिक और नैतिक संकट भी था। जब तक बहुजन नेतृत्व साझा मंच पर एक संगठित रणनीति के साथ नहीं आएगा, तब तक यह आंदोलन केवल टुकड़ों में बँटकर इतिहास के हाशिए पर ही खड़ा रहेगा- न कि सामाजिक न्याय की उस निर्णायक दिशा की ओर बढ़ेगा, जिसकी नींव कांशीराम ने रखी थी।

कांशीराम के बाद बहुजन राजनीति का भविष्य

कांशीराम के निधन के बाद बहुजन राजनीति की दिशा में जो परिवर्तन आया, उसने एक सामाजिक आंदोलन को धीरे-धीरे सत्ता केंद्रित राजनैतिक परियोजना में बदल दिया। कांशीराम के रहते बहुजन राजनीति का मूल लक्ष्य केवल चुनाव जीतना या सरकार बनाना नहीं था, बल्कि सामाजिक न्याय की स्थापना और ऐतिहासिक वंचित समुदायों को जागरूक, संगठित और सशक्त करना था। उन्होंने राजनीति को सामाजिक परिवर्तन का एक साधन माना था, न कि अंतिम लक्ष्य। लेकिन उनके जाने के बाद यह लक्ष्य धीरे-धीरे कमजोर होने लगा और बहुजन राजनीति चुनावी आंकड़ों और जातीय समीकरणों में सिमटकर रह गई।

आज भी बहुजन समाज की जनसंख्या भारत में इतनी अधिक है कि यदि वह संगठित हो तो निर्णायक शक्ति बन सकती है, लेकिन यह ताकत तब तक प्रभावी नहीं हो सकती जब तक इसे एक स्पष्ट वैचारिक दिशा, संगठित नेतृत्व और दीर्घकालिक रणनीति प्राप्त न हो। कांशीराम के बाद नेतृत्व का जो संकट पैदा हुआ, उसने बहुजन आंदोलन को खंडित कर दिया। नए संगठन और नेता उभरे जरूर, लेकिन वे न तो कांशीराम जैसी रणनीतिक गहराई रखते थे, न ही वैचारिक स्पष्टता और संगठनात्मक अनुशासन। इसके चलते बहुजन आंदोलन न तो राष्ट्रीय विमर्श का केंद्र बन पाया, और न ही वह अपने समर्थकों के मन में वह भरोसा जगा सका, जो कांशीराम के समय हुआ करता था।

भविष्य की बहुजन राजनीति के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसे नेतृत्व की है जो न केवल कांशीराम की तरह निःस्वार्थ और आंदोलनकारी हो, बल्कि आधुनिक राजनैतिक यथार्थ को भी समझता हो। उसे यह समझना होगा कि केवल जातिगत गोलबंदी अब पर्याप्त नहीं,

बल्कि शिक्षा, रोजगार, संवैधानिक अधिकारों और सामाजिक न्याय के मुद्दों को बहुजन राजनीति के केंद्र में रखना होगा। इसके साथ ही, बहुजन युवाओं को संगठनात्मक जिम्मेदारियों में शामिल करना, जमीनी आंदोलनों को पुनर्जीवित करना और बहुजन संस्कृति और इतिहास का प्रचार-प्रसार करना भी अनिवार्य होगा।

यदि बहुजन राजनीति को फिर से कांशीराम के मूल सिद्धांतों पर खड़ा करना है, तो केवल स्मारकों या चुनावी रणनीतियों से काम नहीं चलेगा। इसके लिए वैचारिक प्रशिक्षण, सामाजिक चेतना और दीर्घकालिक संगठनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी। कांशीराम ने जिस आंदोलन की नींव रखी थी, वह अब एक निर्णायक मोड़ पर है—जहाँ या तो उसे पुनर्जीवित किया जा सकता है, या फिर वह केवल अतीत की स्मृति बनकर रह जाएगा। इसलिए आने वाली पीढ़ियों का यह कर्तव्य है कि वे न केवल कांशीराम को स्मरण करें, बल्कि उनके अधूरे सपनों को साकार करने के लिए संघर्ष का पुनः आरंभ करें। यही कांशीराम को सच्ची श्रद्धांजलि होगी और बहुजन राजनीति का भविष्य भी इसी पर निर्भर करेगा।

अध्याय 36: मायावती के नेतृत्व में कांशीराम की विचारधारा का विस्तार

कांशीराम की विचारधारा का उद्देश्य

कांशीराम की विचारधारा भारतीय समाज के उस ऐतिहासिक यथार्थ की प्रतिक्रिया थी जिसमें सदियों से दलित, पिछड़े और आदिवासी वर्गों को सत्ता, संसाधनों और सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया था। उन्होंने इस बहुजन समाज को केवल पीड़ित या वंचित के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी जनसंख्या और नैतिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। कांशीराम ने अपने राजनैतिक दर्शन में साफ कहा था कि भारत का असली लोकतंत्र तभी साकार होगा जब जिनके पास जनसंख्या है, उनके पास सत्ता भी होगी-यानी “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी।” यह कथन मात्र नारा नहीं था, बल्कि उनकी समूची वैचारिक रणनीति का मूल स्तंभ था।

कांशीराम ने महसूस किया कि केवल सामाजिक चेतना और आंदोलन से बदलाव संभव नहीं है, जब तक कि वंचित वर्ग सत्ता संरचनाओं में भागीदार नहीं बनते। इसीलिए उन्होंने अपनी राजनैतिक यात्रा की शुरुआत BAMCEF से की, जहाँ उन्होंने बहुजन वर्ग के शिक्षित युवाओं और सरकारी कर्मचारियों को संगठित किया और उन्हें समझाया कि नौकरी केवल आजीविका नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का औजार है। इसके बाद उन्होंने DS4 के माध्यम से एक व्यापक सामाजिक

आंदोलन खड़ा किया, जिसने सीधे जनसंपर्क के माध्यम से वंचित समाज में राजनैतिक जागरूकता फैलाई।

BAMCEF और DS4 का अंतिम राजनैतिक परिणति थी – बहुजन समाज पार्टी, जिसकी स्थापना 1984 में की गई। BSP कांशीराम की उस विचारधारा का मूर्त रूप थी जिसमें दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों और मुसलमानों को एक राजनैतिक मंच पर लाकर उन्हें सत्ता की ओर अग्रसर करने की योजना थी। यह पहली बार था कि किसी नेता ने बहुजन समाज को ‘मास बेस’ नहीं, बल्कि ‘पावर बेस’ में बदलने की ठोस रणनीति बनाई थी। उनका मानना था कि सामाजिक न्याय, आरक्षण और संविधान में निहित अधिकार तभी पूर्णतः कार्यान्वित होंगे जब खुद बहुजन समाज सत्ता में होगा और नीतियाँ बनाएगा।

कांशीराम की विचारधारा में एक और विशेषता थी कि उन्होंने वंचित समाज को आत्मनिर्भर और आत्मसम्मान के साथ जीने की प्रेरणा दी। उन्होंने दलितों को यह कहकर उकसाया कि वे सिर्फ वोटर नहीं, बल्कि शासक बनें। उन्होंने सवर्ण राजनैतिक दलों को ‘दुश्मन नंबर वन’ कहकर पुकारा और बहुजन समाज को अपने आत्म-हितों की रक्षा के लिए संगठित रहने की चेतावनी दी। उनका यह दृष्टिकोण केवल प्रतिक्रियावादी नहीं था, बल्कि उसमें नकारात्मकता से अधिक रचनात्मकता थी। वह बहुजन समाज को सत्ता तक पहुंचाने के लिए प्रत्येक माध्यम का प्रयोग करने के पक्षधर थे-चाहे वह संगठन निर्माण हो, वैचारिक प्रशिक्षण हो या चुनावी राजनीति।

उनकी विचारधारा के केंद्र में यह स्पष्ट था कि जब तक सत्ता में भागीदारी नहीं होगी, तब तक सामाजिक न्याय केवल एक अवधारणा बनी रहेगी।

उन्होंने बहुजन समाज को “समर्थक” से “निर्णायक” बनाने का सपना देखा और यह समझाया कि यदि वंचित वर्ग राजनैतिक रूप से संगठित हो जाए, तो वह किसी भी सरकार को बनाने या गिराने की ताकत रखता है। इसीलिए कांशीराम केवल नेता नहीं थे, बल्कि एक वैचारिक क्रांति के सूत्रधार थे। उन्होंने दलितों को केवल एक जाति नहीं, बल्कि एक राजनैतिक वर्ग में परिवर्तित किया।

इस प्रकार, कांशीराम की विचारधारा का उद्देश्य केवल सामाजिक न्याय की बात करना नहीं था, बल्कि उसे व्यवहार में लाने के लिए राजनैतिक सशक्तिकरण को अनिवार्य मानना था। यह विचारधारा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, खासकर जब बहुजन समाज की राजनैतिक चेतना को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। उनके द्वारा शुरू की गई यह वैचारिक यात्रा मायावती के नेतृत्व में आगे बढ़ी, लेकिन उसमें कई परिवर्तन और दिशा-परिवर्तन भी हुए, जिन्हें अगले बिंदुओं में विस्तार से समझाया जाएगा।

मायावती के नेतृत्व में विचारधारा में बदलाव

कांशीराम के निधन के बाद बहुजन समाज पार्टी का नेतृत्व मायावती के हाथों में आ गया। यद्यपि मायावती स्वयं कांशीराम की शिष्या थीं और राजनीति में उनका उदय कांशीराम की वैचारिक और रणनीतिक दिशा-निर्देशन के अंतर्गत हुआ था, लेकिन पार्टी का नेतृत्व संभालने के बाद उन्होंने कई ऐसे बदलाव किए जो कांशीराम की मूल विचारधारा से अलग प्रतीत होते हैं। यह बदलाव आवश्यकता, रणनीति और सत्ता प्राप्ति के व्यावहारिक दबावों का परिणाम था, किंतु इसका प्रभाव पार्टी की वैचारिक दिशा पर गहराई से पड़ा।

कांशीराम की राजनीति आंदोलनधर्मी थी - उनका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति नहीं बल्कि सामाजिक चेतना का निर्माण करना था, जिससे बहुजन समाज दीर्घकालिक रूप से आत्मनिर्भर और सत्ता का स्वाभाविक उत्तराधिकारी बन सके। दूसरी ओर, मायावती की प्राथमिकता सत्ता प्राप्त करना और उसे स्थायित्व देना बन गई। उन्होंने यह समझा कि जब तक पार्टी सत्ता में नहीं आएगी, तब तक नीतियों और योजनाओं के माध्यम से बहुजन समाज के लिए ठोस काम नहीं किया जा सकता। इसी यथार्थवादी सोच ने उन्हें पार्टी के रणनीतिक विस्तार की ओर उन्मुख किया।

इस प्रक्रिया में उन्होंने 'बहुजन से सर्वजन' की ओर एक वैचारिक बदलाव किया। कांशीराम की विचारधारा विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, मुसलमानों और अन्य वंचित तबकों के एकीकरण पर केंद्रित थी। लेकिन मायावती ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया और अन्य सवर्ण जातियों को भी पार्टी में सम्मिलित करने की नीति अपनाई, जिसे सर्वजन नीति कहा गया। उन्होंने महसूस किया कि चुनावी लोकतंत्र में बहुमत प्राप्त करने के लिए केवल बहुजन समाज पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि समाज के सभी वर्गों को साथ लेकर चलना आवश्यक है।

यह नीति 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में अत्यंत सफल रही, जहाँ BSP को पूर्ण बहुमत मिला और मायावती ने चौथी बार मुख्यमंत्री पद की शपथ ली। यह पहली बार था जब पार्टी ने बिना गठबंधन के पूर्ण बहुमत से सरकार बनाई। ब्राह्मणों के साथ गठबंधन, जिन्हें पार्टी में 'भ्रातृत्व भाव से जोड़ने' की कोशिश की गई थी, ने बहुजन राजनीति को एक नया सामाजिक समीकरण दिया। लेकिन आलोचकों का यह मानना

था कि इससे पार्टी अपनी मूल विचारधारा से भटक गई और आंदोलनधर्मिता के स्थान पर सत्ता केंद्रित हो गई।

इसके अलावा, मायावती के नेतृत्व में BSP का संगठनात्मक ढांचा भी बदलने लगा। कांशीराम ने पार्टी को एक कैडर-आधारित संगठन के रूप में खड़ा किया था, जहाँ कार्यकर्ताओं की वैचारिक प्रशिक्षण और प्रतिबद्धता को प्राथमिकता दी जाती थी। मायावती के नेतृत्व में यह ढांचा एक 'उपरी नेतृत्व केंद्रित मशीनरी' में बदल गया, जहाँ निर्णय लेने की शक्ति सीमित व्यक्तियों तक सिमट गई। इससे पार्टी के भीतर लोकतांत्रिक संवाद और वैचारिक बहसों का स्थान कम हो गया।

विचारधारा के स्तर पर यह भी देखा गया कि जहाँ कांशीराम ने कभी भी 'ब्राह्मणवादी व्यवस्था' के खिलाफ संघर्ष को अपने आंदोलन का आधार माना था, वहीं मायावती ने उसी वर्ग को पार्टी में आमंत्रित करके अपने रुख में लचीलापन दिखाया। यह बदलाव कुछ हद तक व्यावहारिक था, लेकिन इससे उन कार्यकर्ताओं में असंतोष भी फैला जो कांशीराम की कट्टर वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ जुड़े हुए थे।

मायावती के नेतृत्व में BSP ने सत्ता प्राप्ति और शासन में स्थायित्व को प्राथमिकता दी, जिसके लिए उन्हें अपने वैचारिक फ्रेमवर्क में परिवर्तन करना पड़ा। यह बदलाव उन्हें एक कुशल प्रशासक और राजनीतिज्ञ के रूप में तो स्थापित करता है, लेकिन साथ ही यह बहुजन आंदोलन की मूल आत्मा - जनजागरण, वैचारिक क्रांति, और दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन - से कुछ दूरी बना लेता है।

सर्वजन नीति का प्रचार और ब्राह्मण-बहुजन गठबंधन

कांशीराम की बहुजन राजनीति एक स्पष्ट सामाजिक विभाजन के आधार पर विकसित हुई थी, जिसमें शोषित, वंचित, पिछड़े, अनुसूचित जातियों और जनजातियों को संगठित करके उन्हें राजनैतिक रूप से सशक्त बनाने की कोशिश की गई थी। उनके लिए 'बहुजन' शब्द ही एक वैचारिक उद्घोषणा था, जो ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रतिरोध का प्रतीक था। उन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया कि ब्राह्मणवादी शक्तियाँ ही दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों के शोषण की जड़ हैं, और जब तक सत्ता बहुजन समाज के हाथों में नहीं आएगी, तब तक कोई भी स्थायी सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता।

लेकिन कांशीराम की मृत्यु के बाद मायावती ने सत्ता प्राप्ति की व्यावहारिक रणनीति को अपनाया और इसी क्रम में 2007 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों से पूर्व एक नई वैचारिक दिशा की घोषणा की - "सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय"। यह नारा परंपरागत बहुजन राजनीति से एक निर्णायक बदलाव का प्रतीक था। इस नीति के तहत मायावती ने सामाजिक समरसता और सभी जातियों की भागीदारी की बात की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि अब पार्टी केवल दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों की नहीं, बल्कि समस्त समाज की भलाई के लिए कार्य करेगी।

इस नई नीति का सबसे स्पष्ट और क्रांतिकारी पहलू था, ब्राह्मण-बहुजन गठबंधन। इस गठबंधन की रणनीति बेहद सुनियोजित थी और, इसका नेतृत्व खुद मायावती के प्रमुख रणनीतिकार सतीश चंद्र मिश्रा ने किया। उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों में ब्राह्मण सम्मेलनों का आयोजन किया गया, जहाँ ब्राह्मण समुदाय को यह संदेश दिया गया कि वे अब BSP के

साथ सत्ता में भागीदार बन सकते हैं। इन सम्मेलनों में मायावती ने खुद भाग लिया और ब्राह्मण समाज को यह भरोसा दिलाया कि उन्हें सरकार में उचित सम्मान और भूमिका दी जाएगी। इसका नतीजा यह हुआ कि बड़ी संख्या में ब्राह्मण मतदाताओं ने BSP को समर्थन दिया, जिससे 2007 में पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ।

यह रणनीतिक गठबंधन मायावती की सबसे बड़ी चुनावी विजय में तब्दील हुआ, जिसने उत्तर प्रदेश की राजनीति को बदल दिया। परंतु इसके दूरगामी प्रभाव गहरे और विरोधाभासी थे। जहाँ एक ओर इस गठबंधन ने दलित और ब्राह्मण समुदाय को एक ही मंच पर लाकर एक नई सामाजिक संरचना की शुरुआत की, वहीं दूसरी ओर पार्टी के मूल समर्थकों में वैचारिक असंतोष भी फैलने लगा। पार्टी के कुछ पुराने और कट्टर बहुजन समर्थकों ने यह माना कि ब्राह्मणों को पार्टी में लाने का प्रयास कांशीराम की मूल विचारधारा - ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रतिरोध - का कमजोर होना था।

इस नीति के आलोचक यह भी कहते हैं कि यह गठबंधन असमान था, क्योंकि ब्राह्मण समुदाय ने तो BSP को समर्थन देकर सत्ता दिलाई, लेकिन सत्ता में आने के बाद भी बहुजन समाज की मूल समस्याएँ - भूमि सुधार, शिक्षा, रोजगार में हिस्सेदारी - पूरी तरह हल नहीं हो सकीं। कुछ ब्राह्मण नेताओं को पार्टी में महत्वपूर्ण पद अवश्य मिले, परंतु व्यापक सामाजिक न्याय की दिशा में बहुजन समाज की अपेक्षाएँ अधूरी रहीं।

इसके अतिरिक्त, इस गठबंधन की एक और सीमा यह रही कि यह एक आवश्यकतावादी राजनैतिक समझौता था, जिसमें सामाजिक समानता की वैचारिक जमीन की अपेक्षा, केवल सत्ता की गणितीय जरूरतें प्राथमिक थीं। जैसे-जैसे यह गठबंधन आगे बढ़ा, पार्टी में कैडर आधारित

राजनीति की जगह जातीय समीकरणों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। इससे BSP का वैचारिक आधार कमजोर हुआ और पार्टी की पहचान धीरे-धीरे बहुजन आंदोलन के प्रतिनिधि के स्थान पर वोट-बैंक मैनेजमेंट पार्टी की तरह स्थापित होने लगी।

इस प्रकार, “सर्वजन” नीति और ब्राह्मण-बहुजन गठबंधन एक ओर जहाँ मायावती को सत्ता दिलाने में अत्यंत सफल रणनीति सिद्ध हुई, वहीं दूसरी ओर यह कांशीराम की सामाजिक क्रांति की दृष्टि से एक वैचारिक विचलन भी साबित हुआ। बहुजन राजनीति को सत्ता में स्थापित करने की इस रणनीति ने चुनावी लाभ तो दिलाया, लेकिन इसकी कीमत आंदोलन की तीव्रता और वैचारिक प्रतिबद्धता में गिरावट के रूप में चुकानी पड़ी।

गठबंधन राजनीति और सत्ता प्राप्ति की रणनीति

कांशीराम के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी (BSP) एक वैचारिक आंदोलन के रूप में विकसित हुई थी, जिसका लक्ष्य था सत्ता के केंद्रों से बहुजन समाज की ऐतिहासिक अनुपस्थिति को खत्म करना। उन्होंने सत्ता को ‘मुख्य चाबी’ बताया था, जिससे सामाजिक परिवर्तन के सभी दरवाजे खुल सकते हैं। लेकिन उन्होंने गठबंधन राजनीति से आमतौर पर दूरी बनाए रखी, क्योंकि उनका मानना था कि स्वतंत्र राजनैतिक शक्ति के बिना बहुजन समाज की आकांक्षाएं दब जाएंगी। वे अक्सर कांग्रेस और बीजेपी जैसी राष्ट्रीय पार्टियों को मनुवादी व्यवस्था का अंग मानते थे, जिससे दूरी बनाए रखना उन्होंने जरूरी समझा।

लेकिन कांशीराम की मृत्यु के बाद मायावती ने एक व्यावहारिक और लचीली राजनैतिक दृष्टिकोण अपनाया। उनके नेतृत्व में BSP ने सत्ता

प्राप्ति को प्राथमिक लक्ष्य बनाते हुए कई बार गठबंधन की रणनीति अपनाई - भले ही वह वैचारिक रूप से असहज क्यों न हो। यह रणनीति आंदोलन से सत्ता की ओर संक्रमण का स्पष्ट संकेत था। मायावती ने स्वीकार किया कि सत्ता में आए बिना सामाजिक न्याय की योजनाओं को लागू नहीं किया जा सकता, इसलिए उन्होंने गठबंधन को एक आवश्यक साधन माना।

सन् 1995 में BSP ने पहली बार बीजेपी के समर्थन से उत्तर प्रदेश में सरकार बनाई, जिसमें मायावती मुख्यमंत्री बनीं। यह गठबंधन बहुजन राजनीति के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ था। हालांकि यह सरकार केवल चार महीने चली, लेकिन इसने BSP को पहली बार सत्ता के केंद्र में पहुँचाया। यह प्रयोग अस्थायी रहा, लेकिन रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण था।

सन् 1997 में एक बार फिर बीजेपी के साथ गठबंधन कर मायावती ने उत्तर प्रदेश की सत्ता में वापसी की। इस बार सरकार कुछ अधिक समय तक चली, और मायावती ने प्रशासनिक स्तर पर कई निर्णय लेकर अपने नेतृत्व की छाप छोड़ने की कोशिश की। हालाँकि यह गठबंधन भी बहुत स्थिर नहीं रहा और जल्द ही राजनैतिक मतभेदों के कारण समाप्त हो गया।

सन् 2002 में मायावती ने फिर से बीजेपी के साथ मिलकर सरकार बनाई। यह तीसरा प्रयोग दर्शाता है कि मायावती सत्ता में आने के लिए गठबंधन को एक रणनीतिक उपकरण के रूप में नियमित तौर पर इस्तेमाल करने लगी थीं। यह तीनों अवसरों पर हुआ गठबंधन, वैचारिक विरोधाभासों के बावजूद, BSP की सत्ता में उपस्थिति को लगातार बनाए रखने का ज़रिया बना।

लेकिन 2009 के लोकसभा चुनाव के दौरान मायावती ने गठबंधन न करने का फैसला किया और पार्टी को एक स्वतंत्र ताकत के रूप में प्रस्तुत किया। उनका उद्देश्य था BSP को राष्ट्रीय विकल्प के रूप में पेश करना। हालाँकि यह प्रयोग चुनावी दृष्टि से सफल नहीं रहा, लेकिन इसने मायावती की महत्वाकांक्षा को स्पष्ट किया कि BSP अब केवल उत्तर प्रदेश तक सीमित दल नहीं रहना चाहती थी।

इन सभी राजनैतिक प्रयोगों का उद्देश्य था - स्थायी सत्ता का निर्माण। मायावती ने समझ लिया था कि अगर सत्ता को बार-बार खोना पड़ा, तो बहुजन समाज की आकांक्षाओं को ज़मीनी स्तर पर लागू करना मुश्किल होगा। इसलिए, उन्होंने गठबंधन और वैचारिक लचीलापन अपनाकर सत्ता में टिके रहने की रणनीति बनाई।

हालाँकि, इस गठबंधन राजनीति की आलोचना भी हुई। BSP के कई पुराने कार्यकर्ताओं और नेताओं ने इसे पार्टी की मूल विचारधारा से विचलन माना। उनका तर्क था कि कांशीराम ने जिस स्वतंत्र बहुजन राजनैतिक शक्ति का सपना देखा था, वह बार-बार वैचारिक विरोधियों के साथ गठबंधन करने से कमजोर हो रहा है। लेकिन मायावती ने इसे एक ज़रूरी व्यावहारिक समझौता बताया, जिससे बहुजन समाज को सशक्तिकरण का अवसर मिला।

इस प्रकार, मायावती की गठबंधन रणनीति ने BSP को सत्ता में आने और प्रशासनिक स्तर पर कई ऐतिहासिक फैसले लेने का अवसर दिया। परंतु इसके साथ ही पार्टी की वैचारिक दृढ़ता, जन आंदोलन की धार और संगठन की स्वतंत्र पहचान को लेकर गंभीर सवाल भी खड़े हुए। यह संतुलन - सत्ता और सिद्धांत के बीच - मायावती के नेतृत्व का स्थायी द्वंद्व बना रहा।

प्रशासनिक फैसलों के माध्यम से बहुजन सशक्तिकरण

मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी ने जब सत्ता हासिल की, तो उन्होंने शासन के माध्यम से बहुजन समाज को सशक्त करने के कई प्रयास किए। उनका मानना था कि केवल राजनैतिक भाषणों या आंदोलन से बदलाव संभव नहीं, बल्कि जब बहुजन समाज की अपनी सरकार होगी, तभी वे ठोस नीतियाँ बनाकर उन्हें लागू कर सकेंगे। इसी सोच के तहत उन्होंने शासन में आते ही प्रशासनिक स्तर पर कई ऐतिहासिक और प्रतीकात्मक निर्णय लिए, जो न सिर्फ नीतिगत परिवर्तन थे, बल्कि बहुजन समाज की प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान को बढ़ाने के प्रयास भी थे।

मायावती के शासनकाल की सबसे चर्चित विशेषता थी स्मारकों और संस्थागत ढांचे का निर्माण, जो बहुजन समाज के महापुरुषों और विचारधाराओं को भौतिक रूप में प्रस्तुत करता था। लखनऊ और नोएडा में डॉ. अंबेडकर स्मारक, काशीराम स्मृति स्थल, बहुजन प्रेरणा केंद्र और कई अन्य स्थलों का निर्माण किया गया, जो सामाजिक न्याय, संघर्ष और समानता के प्रतीकों के रूप में स्थापित किए गए। इन स्मारकों का उद्देश्य केवल स्थापत्य कला नहीं था, बल्कि यह उन समुदायों के ऐतिहासिक योगदान को सम्मान देना था जिन्हें सदियों तक दरकिनार किया गया।

इसके अलावा मायावती सरकार ने प्रशासनिक स्तर पर कई योजनाएँ लागू कीं, जो सीधे तौर पर बहुजन समाज की भलाई के लिए थीं। इनमें शिक्षा के क्षेत्र में छात्रवृत्ति योजनाएँ, पिछड़े वर्गों के लिए विशेष छात्रावास, महिलाओं के लिए सुरक्षा और सहायता केंद्र, तथा ग्रामीण इलाकों में स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार शामिल था। इन योजनाओं का उद्देश्य था कि बहुजन समाज के लोग सिर्फ चुनावी संख्या न रह जाएँ, बल्कि उन्हें शासन के हर स्तर पर भागीदारी का अवसर भी मिले।

नौकरी और सेवा क्षेत्र में आरक्षण को प्रभावी ढंग से लागू करना भी मायावती सरकार की प्राथमिकताओं में शामिल रहा। उन्होंने सरकारी विभागों में आरक्षित सीटों को भरने के लिए विशेष भर्ती अभियानों की शुरुआत की। इन कदमों से बहुजन समाज के हजारों युवाओं को नौकरी का अवसर मिला, जिससे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाया जा सका।

मायावती ने बहुजन महिलाओं को भी राजनीति और प्रशासन में प्रतिनिधित्व देने की दिशा में काम किया। उन्होंने महिलाओं को ग्राम पंचायतों से लेकर शहरी निकायों और पार्टि संगठन में भागीदारी दी। इससे न केवल नेतृत्व की नई पीढ़ी तैयार हुई, बल्कि बहुजन समाज में लैंगिक समानता की दिशा में भी सकारात्मक बदलाव आया।

इन प्रशासनिक फैसलों का दूरगामी प्रभाव रहा। बहुजन समाज के लोग पहली बार खुद को शासन व्यवस्था का भागीदार महसूस करने लगे। परंपरागत रूप से जिन समुदायों को केवल वोट बैंक समझा जाता था, अब वे नीति निर्धारण के केंद्र में आ गए। यह मायावती की रणनीति का हिस्सा था कि समाज में सम्मान तभी मिलेगा, जब वे स्वयं अपनी सरकार चलाएँ और अपनी शर्तों पर नीतियाँ बनाएँ।

हालांकि, विपक्षी दलों ने इन फैसलों की आलोचना की और उन्हें जनता के पैसे की बर्बादी बताया, खासकर स्मारकों और मूर्तियों के निर्माण को लेकर। लेकिन मायावती और BSP समर्थकों ने इसे एक सामाजिक क्रांति का हिस्सा माना, जिसमें प्रतीकात्मक सम्मान को उतनी ही प्राथमिकता दी गई, जितनी आर्थिक योजनाओं को।

इस प्रकार, मायावती के प्रशासनिक फैसले केवल नीतिगत बदलाव नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण थे। उन्होंने सत्ता के माध्यम से सामाजिक न्याय को संस्थागत रूप देने की दिशा में ठोस पहल की, जिससे बहुजन समाज का आत्मविश्वास बढ़ा और वे खुद को राष्ट्र निर्माण में हिस्सेदार मानने लगे।

मायावती और कांशीराम की विचारधारा में अंतर

कांशीराम की विचारधारा का मूल स्वर बहुजन समाज को सामाजिक, राजनैतिक और वैचारिक स्तर पर संगठित करना था। उनका लक्ष्य सत्ता प्राप्ति से अधिक सामाजिक परिवर्तन और चेतना जागृति था। उन्होंने बहुजन समाज पार्टी की स्थापना एक आंदोलन के रूप में की थी, जिसमें सत्ता केवल साधन थी, उद्देश्य नहीं। उनके लिए सत्ता का अर्थ था – व्यवस्था को भीतर से बदलना, जातिगत वर्चस्व को चुनौती देना, और हाशिए पर रहे समुदायों को केंद्र में लाना। वे राजनीति को केवल चुनाव जीतने का ज़रिया नहीं मानते थे, बल्कि सामाजिक न्याय का मंच मानते थे।

मायावती के नेतृत्व में इस विचारधारा में धीरे-धीरे बदलाव आया। उन्होंने चुनावी राजनीति को प्राथमिकता दी और BSP को एक आंदोलन से एक संगठित, चुनाव-लक्षित दल में परिवर्तित कर दिया। यह परिवर्तन आवश्यक भी था क्योंकि सत्ता में आए बिना सामाजिक बदलाव की गति धीमी रहती। लेकिन यह भी सच है कि इस बदलाव के कारण आंदोलन की आत्मा और वैचारिक कट्टरता में कमी आई। कांशीराम के समय कार्यकर्ता जमीनी स्तर पर जनचेतना फैलाने में जुटे रहते थे, जबकि मायावती के काल में वही कार्यकर्ता चुनावी रणनीतियों और टिकट वितरण में उलझने लगे।

कांशीराम के लिए पार्टी का कैडर सिस्टम, यानी संगठन का ढांचा, विचारधारा का विस्तार करने और उसे समाज के सबसे नीचे तक पहुँचाने का जरिया था। उन्होंने शिक्षित बहुजन युवाओं को तैयार किया, उन्हें वैचारिक प्रशिक्षण दिया और आंदोलन से जोड़ा। यह कैडर-आधारित ढांचा BSP की सबसे बड़ी ताकत थी, जिसने हर गाँव और कस्बे तक एक वैचारिक नेटवर्क खड़ा किया। मायावती के नेतृत्व में यह कैडर सिस्टम धीरे-धीरे निष्क्रिय होता चला गया और पार्टी नेतृत्व का केंद्रीकरण बढ़ता गया।

एक और महत्वपूर्ण अंतर था “बहुजन बनाम सर्वजन” नीति में। कांशीराम ने हमेशा कहा कि यह पार्टी केवल बहुजन समाज की है, जो भारत की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा है, और सत्ता उसी की होनी चाहिए। इसके विपरीत, मायावती ने 2007 से “सर्वजन हिताय” की नीति को अपनाया, जिसमें ब्राह्मणों, सवर्णों और अन्य जातियों को भी पार्टी में शामिल करने का प्रयास किया गया। इस नीति से पार्टी को तत्कालिक चुनावी लाभ तो मिला और पूर्ण बहुमत की सरकार बनी, लेकिन इससे पार्टी की वैचारिक स्पष्टता पर असर पड़ा।

इसके अलावा, कांशीराम की राजनीति का एक प्रमुख आधार था निरंतर जनसंपर्क और संवाद। वे खुद पूरे भारत में लगातार दौरे करते, सभाएँ करते, और बहुजन समाज से सीधा संवाद रखते। वे एक प्रेरक वक्ता थे, जो संगठन की आत्मा बने हुए थे। वहीं मायावती ने सत्ता में आने के बाद एक अधिक प्रशासनिक और औपचारिक शैली अपनाई। उन्होंने जनता से सीधा संवाद कम किया और संगठनात्मक दूरी बढ़ती चली गई।

इस प्रकार, कांशीराम और मायावती के नेतृत्व की विचारधारात्मक संरचना में मूलभूत अंतर स्पष्ट दिखाई देते हैं। एक ओर जहाँ कांशीराम का नेतृत्व आंदोलनकारी, वैचारिक और जनसंवाद आधारित था, वहीं मायावती का नेतृत्व रणनीतिक, सत्ता-केंद्रित और प्रशासनिक शैली पर आधारित हो गया। यह परिवर्तन आवश्यकताओं और समय की मांग के अनुरूप था, लेकिन इससे कांशीराम की मूल विचारधारा की तीव्रता और सामाजिक आंदोलन की गति में अवश्य कमी आई।

BSP के संगठनात्मक ढांचे में परिवर्तन

कांशीराम द्वारा स्थापित बहुजन समाज पार्टी का संगठनात्मक ढांचा एक विशिष्ट मॉडल पर आधारित था, जिसे उन्होंने 'कैडर आधारित पार्टी' के रूप में निर्मित किया। इस ढांचे में सबसे अधिक महत्व निचले स्तर के समर्पित कार्यकर्ताओं को दिया गया, जो पार्टी की विचारधारा को गांव-गांव और घर-घर तक पहुँचाते थे। कांशीराम का मानना था कि राजनीति केवल शीर्ष नेताओं की घोषणाओं से नहीं चलती, बल्कि विचारधारा तभी सफल होती है जब वह जनमानस का हिस्सा बन जाए। इसी कारण उन्होंने प्रशिक्षित कैडर तंत्र खड़ा किया, जिसमें पढ़े-लिखे, विचारशील और प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं को तैयार किया जाता था। यह कैडर समाज में बहुजन चेतना का प्रचार करता था, पैथर आंदोलन, बौद्ध दर्शन, फुले-आंबेडकर विचारधारा पर आधारित प्रशिक्षण देता था और पार्टी की रीढ़ की तरह कार्य करता था।

मायावती के नेतृत्व में संगठनात्मक संरचना में गंभीर परिवर्तन हुए। सबसे बड़ा परिवर्तन था निर्णय प्रक्रिया का अत्यधिक केंद्रीकरण। कांशीराम के समय में जहाँ संगठनात्मक निर्णयों में क्षेत्रीय और जिला स्तरीय नेताओं की राय भी मायने रखती थी, वहीं मायावती के नेतृत्व में पार्टी का पूरा

नियंत्रण लगभग एक व्यक्ति में सीमित हो गया। टिकट वितरण, घोषणापत्र निर्माण, रणनीति तय करना और राज्य स्तर की गतिविधियों पर निर्णय – सब कुछ शीर्ष नेतृत्व तक सिमट गया। इससे न केवल पार्टी के निचले स्तर के कार्यकर्ता हतोत्साहित हुए, बल्कि संगठन के अंदर असंतोष भी धीरे-धीरे पनपने लगा।

इसके अलावा, संगठनात्मक पदों पर नियुक्तियाँ भी पहले विचारधारा और योगदान के आधार पर होती थीं, लेकिन बाद के वर्षों में ये नियुक्तियाँ व्यक्तिगत निष्ठा, जातीय समीकरणों और चाटुकारिता पर आधारित होने लगीं। इससे पार्टी की अंदरूनी लोकतांत्रिक संस्कृति पर असर पड़ा। लंबे समय तक जुड़े कई वरिष्ठ कार्यकर्ताओं और नेताओं ने पार्टी छोड़ दी या निष्क्रिय हो गए, जिससे BSP का जमीनी नेटवर्क कमजोर हुआ।

पार्टी में कैडर प्रशिक्षण कार्यक्रम भी पहले जितने प्रभावी नहीं रहे। कांशीराम के समय जो नियमित वैचारिक प्रशिक्षण शिविर लगते थे, जिनमें सामाजिक आंदोलन के इतिहास, संविधान, सामाजिक न्याय, और विचारधारा की शिक्षा दी जाती थी, वे मायावती के शासनकाल में धीरे-धीरे समाप्त हो गए। इससे नई पीढ़ी के कार्यकर्ताओं में वैचारिक स्पष्टता की कमी आई और पार्टी के आंदोलनात्मक स्वरूप को नुकसान पहुँचा।

एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन था कि मायावती ने संगठन को सत्ता केंद्रित दृष्टिकोण के तहत कार्यशील बनाया। कार्यकर्ताओं की भूमिका अब आंदोलन और सामाजिक संवाद से हटकर चुनावी रणनीतियों तक सीमित हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पार्टी अब सामाजिक मुद्दों पर जनआंदोलन खड़ा करने की बजाय केवल चुनाव के समय सक्रिय दिखने लगी।

इस प्रकार, कांशीराम के समय जो संगठनात्मक ढांचा वैचारिक ऊर्जा और जमीनी सक्रियता से भरा हुआ था, वह मायावती के नेतृत्व में एक अधिक प्रशासकीय और केंद्रीकृत ढाँचे में तब्दील हो गया। यह परिवर्तन पार्टी की सत्ता प्राप्ति की रणनीति में सहायक तो रहा, लेकिन इससे संगठनात्मक स्थिरता, कार्यकर्ता संवाद और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता में कमी आई, जिसका असर BSP की दीर्घकालिक जनाधार पर भी पड़ा।

बहुजन सशक्तिकरण की योजनाएँ और उनके प्रभाव

मायावती के शासनकाल में कांशीराम की विचारधारा को आगे बढ़ाने के लिए सबसे बड़ा प्रयास बहुजन सशक्तिकरण की योजनाओं के रूप में सामने आया। उनके नेतृत्व में सरकार ने बहुजन समाज के लिए शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सुरक्षा से जुड़ी अनेक योजनाएँ लागू कीं। इन योजनाओं में प्रमुख थीं छात्रवृत्ति योजनाएँ, प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए मुफ्त कोचिंग, आवास योजनाएँ, और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की प्रभावी निगरानी। मायावती सरकार ने यह प्रयास किया कि बहुजन समाज के युवा शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यधारा से जुड़ें और उनका सामाजिक स्तर ऊँचा उठ सके।

इन योजनाओं के तहत हजारों छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं और कई बहुजन परिवारों को सरकारी योजनाओं का सीधा लाभ मिला। इससे समाज में एक सकारात्मक बदलाव की भावना आई और बहुजन समाज में राजनैतिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक आत्मविश्वास भी मजबूत हुआ। हालांकि, 2012 के बाद जब BSP सत्ता से बाहर हुई, तो इन योजनाओं का क्रियान्वयन धीरे-धीरे कमजोर पड़ गया। लेकिन इन योजनाओं ने यह दिखाया कि अगर सत्ता में इच्छाशक्ति हो, तो बहुजन समाज के उत्थान के लिए ठोस कदम उठाए जा सकते हैं।

कांशीराम के योगदान की सम्मान में स्मारकों का निर्माण

मायावती के शासनकाल में कांशीराम के योगदान को सम्मान देने के लिए कई स्मारकों, उद्यानों और स्थलों का निर्माण कराया गया, जो न केवल बहुजन चेतना को सशक्त करने का प्रतीक बने, बल्कि कांशीराम की विचारधारा को जनता के सामने मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का भी माध्यम बने। लखनऊ में निर्मित कांशीराम स्मारक स्थल, अंबेडकर स्मारक स्थल, प्रेरणा स्थल, और बहुजन नायकों की भव्य मूर्तियाँ-ये सब न केवल वास्तुकला की दृष्टि से भव्य थे, बल्कि बहुजन समाज के ऐतिहासिक गौरव और आत्मसम्मान के प्रतीक के रूप में खड़े किए गए।

इन स्मारकों के माध्यम से मायावती ने यह संदेश देने का प्रयास किया कि बहुजन समाज भी देश के गौरवशाली अतीत का हिस्सा है और उनके नायकों को भी उसी सम्मान के साथ स्मरण किया जाना चाहिए, जैसा अन्य ऐतिहासिक व्यक्तित्वों को प्राप्त है। ये स्थल आज बहुजन युवाओं के लिए प्रेरणा के केंद्र हैं, जहाँ वे अपने इतिहास, संघर्ष और आत्मसम्मान को महसूस कर सकते हैं। हालांकि, विपक्षी दलों ने इन स्मारकों को “संसाधनों की बर्बादी” कहकर आलोचना की, परंतु बहुजन समाज के लिए यह सांस्कृतिक पुनर्जागरण का प्रतीक रहा।

BSP की वर्तमान स्थिति और भविष्य के संकेत

आज की राजनीति में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थिति लगातार चुनौतियों से घिरी हुई दिखाई देती है। जिस विचारधारा और जन आंदोलन के बल पर कांशीराम ने इस पार्टी की नींव रखी थी, वह वर्तमान समय में कमजोर होती प्रतीत होती है। खासकर 2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में पार्टी का प्रदर्शन बहुत निराशाजनक रहा। 2014 में

BSP को देश भर में 4.2% वोट तो मिले, लेकिन एक भी सीट नहीं मिली, जबकि 2019 में पार्टी ने समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन कर 10 सीटें तो जीतीं, पर वह जन समर्थन वापस पाने में असफल रही। यह स्थिति इस बात की ओर संकेत करती है कि BSP को अपने वैचारिक आधार और रणनीतिक दिशा पर गहराई से पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

पार्टी की “सर्वजन” नीति ने एक ओर तो इसे राजनैतिक रूप से अधिक समावेशी बनाने का प्रयास किया, लेकिन दूसरी ओर, बहुजन आंदोलन की धार को कमजोर कर दिया। इससे पार्टी का मूल समर्थन वर्ग-दलित, पिछड़ा और आदिवासी मतदाता-विचलित हुआ और अन्य दलों की ओर आकृष्ट होने लगा। वर्तमान समय में BSP न तो एक तीव्र आंदोलनकारी संगठन की तरह कार्य कर रही है, और न ही प्रभावशाली चुनावी मशीन के रूप में अपनी पहचान बनाए रख पा रही है।

BSP का सांगठनिक ढांचा भी अब पहले की तरह जमीनी कार्यकर्ताओं से नहीं चलता, बल्कि केंद्रीय नेतृत्व पर अत्यधिक निर्भर हो गया है, जिससे जमीनी स्तर पर संवाद और सक्रियता में गिरावट आई है। इस कारण पार्टी का प्रभाव राज्य के बाहर और यहां तक कि उत्तर प्रदेश में भी सिमटता जा रहा है। यदि BSP को फिर से प्रासंगिक बनाना है, तो उसे न केवल अपने वैचारिक मूल की ओर लौटना होगा, बल्कि अपने सांगठनिक ढांचे को भी विकेंद्रीकृत और पुनर्गठित करना होगा।

काशीराम के मिशन को आगे बढ़ाने के प्रयास

काशीराम का मिशन केवल एक राजनैतिक दल की स्थापना तक सीमित नहीं था, बल्कि वह एक सामाजिक क्रांति के माध्यम से बहुजन समाज

को संगठित करने और सत्ता में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने की दीर्घकालिक रणनीति पर आधारित था। उनके इस मिशन को मायावती ने अपने नेतृत्वकाल में कई रूपों में आगे बढ़ाने का प्रयास किया, किंतु ये प्रयास अक्सर सत्ता प्राप्ति की रणनीतियों में उलझकर कांशीराम की मूल सामाजिक परिवर्तनकारी दृष्टि से भटक गए।

मायावती ने अपने शासनकाल में कांशीराम के नाम पर स्मारक, पार्क और संस्थानों का निर्माण करवाया, ताकि उनकी विचारधारा को जनमानस में जीवित रखा जा सके। साथ ही उन्होंने शिक्षा, रोजगार, आरक्षण और सामाजिक कल्याण की योजनाओं के माध्यम से बहुजन समुदाय के लोगों को सशक्त करने की कोशिश की। छात्रवृत्तियाँ, विशेष आवास योजनाएँ, पिछड़े वर्गों के लिए विशिष्ट सरकारी नौकरियों का आरक्षण, और अल्पसंख्यक बहुजन वर्गों के लिए कई कल्याणकारी योजनाएँ लायी गईं। यह सब उस मिशन का हिस्सा माना जा सकता है, जो कांशीराम ने समाज में समता और सत्ता के साझेपन की स्थापना हेतु शुरू किया था।

हालांकि, ये प्रयास तब तक पूर्ण नहीं माने जा सकते जब तक पार्टी अपने मूल आंदोलनकारी रूप में न लौटे। कांशीराम के मिशन की आत्मा बहुजन समाज की व्यापक चेतना को जगाना, उसे राजनैतिक रूप से एकजुट करना और सत्ता का केंद्र बनाना था। मायावती के नेतृत्व में यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चुनावी समीकरणों और जातिगत गठबंधनों की राजनीति में सिमटती चली गई। पार्टी का फोकस विचारधारा के प्रसार से अधिक, सत्ता में आने के लिए रणनीतिक गठबंधनों पर केंद्रित हो गया, जिससे आंदोलन की दिशा कमजोर पड़ गई।

वर्तमान राजनैतिक परिदृश्य में यह स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि BSP को कांशीराम के मिशन को सच्चे अर्थों में आगे बढ़ाना है, तो उसे पुनः वैचारिक आंदोलन की राह पकड़नी होगी। संगठन को जमीनी स्तर से पुनः सक्रिय करना होगा, बहुजन युवाओं को विचारधारा से जोड़ना होगा, और सामाजिक न्याय को केंद्र में रखकर एक दीर्घकालिक संघर्ष की रूपरेखा तैयार करनी होगी।

अध्याय 37: मायावती के नेतृत्व में बदलाव और आलोचनाएँ

कांशीराम के निधन के बाद बदलाव

कांशीराम के निधन के बाद, बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) के राजनैतिक स्वरूप में एक बड़ा और निर्णायक परिवर्तन आया। कांशीराम ने बीएसपी को एक सामाजिक क्रांति के रूप में गढ़ा था, जिसका उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना नहीं बल्कि बहुजन, पिछड़े और वंचित वर्गों को सामाजिक न्याय और राजनैतिक सशक्तिकरण दिलाना था। वे इस आंदोलन को एक वैचारिक मिशन के रूप में देखते थे, जो ब्राह्मणवादी वर्चस्व के खिलाफ एक संगठित चुनौती था। उनके निधन के बाद जब मायावती ने पार्टी की बागडोर संभाली, तब इस आंदोलन की दिशा धीरे-धीरे सत्ता केंद्रित हो गई। मायावती ने बहुजन हितों की राजनीति को एक व्यावहारिक सत्ता रणनीति में बदल दिया, जहाँ “सर्वजन” का नारा देकर ब्राह्मणों और उच्च जातियों को पार्टी में सम्मिलित किया गया। यह रणनीति तत्कालीन राजनीति में सफल रही, लेकिन इसके कारण बीएसपी की मूल वैचारिक पहचान को आघात पहुँचा और बहुजन आंदोलन की गहराई और तीव्रता में कमी आई।

सर्वजन नीति और बहुजन मुद्दों से समझौता

मायावती के नेतृत्व में जब बीएसपी ने “सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय” का नारा अपनाया, तब यह रणनीतिसत्ता प्राप्ति के लिए ब्राह्मणों और अन्य

सवर्ण वर्गों को साथ लाने का प्रयास था। 2007 में इस नारे के तहत बीएसपी ने पूर्ण बहुमत की सरकार बनाई, जिसमें “ब्राह्मण-बहुजन” गठबंधन को निर्णायक माना गया। हालांकि यह राजनैतिक रूप से कारगर साबित हुआ, लेकिन सामाजिक दृष्टि से इसने बहुजन वर्गों में असंतोष पैदा किया। जिन लोगों ने बीएसपी को अपनी आवाज माना था, उन्हें यह महसूस हुआ कि अब पार्टी उनकी प्राथमिकताओं को तिलांजलि दे रही है। इससे बहुजन वर्ग के एक बड़े हिस्से में यह धारणा बनी कि बीएसपी अब सत्ता के लिए अपने मूल सिद्धांतों से समझौता कर चुकी है, और इसका असर पार्टी की सामाजिक जड़ों पर पड़ा।

बहुजन नेतृत्व का संकट

कांशीराम के समय में बीएसपी एक कैडर आधारित संगठन था, जिसमें हर कार्यकर्ता को नेतृत्व की भूमिका में आगे बढ़ने का अवसर मिलता था। लेकिन मायावती के नेतृत्व में पार्टी एक व्यक्ति-केंद्रित संरचना बन गई, जहाँ निर्णयों का अधिकार केवल शीर्ष पर सीमित हो गया। नए नेताओं को उभरने का अवसर नहीं मिला और संगठनात्मक लोकतंत्र क्षीण हो गया। नतीजतन, कई वरिष्ठ नेता पार्टी से अलग हो गए, जिससे न केवल संगठन की ताकत कमजोर हुई, बल्कि जनता के बीच पार्टी की विश्वसनीयता भी प्रभावित हुई। इस स्थिति ने बहुजन राजनीति को एक कुशल और सक्षम नेतृत्व से वंचित कर दिया, जो भविष्य की राह में एक गंभीर चुनौती बन गया।

संगठनात्मक कमजोरी और जमीनी स्तर पर गिरावट

कांशीराम के समय बीएसपी जमीनी स्तर पर मजबूत कैडर पार्टी थी, जहाँ हर कार्यकर्ता सामाजिक न्याय की चेतना से प्रेरित था। लेकिन मायावती

के नेतृत्व में संगठन में केंद्रीयकरण बढ़ा और कार्यकर्ताओं की भूमिका सीमित होती गई। इससे पार्टी की स्थानीय स्तर पर पकड़ ढीली पड़ने लगी। गांव, कस्बों और बूथ स्तर पर जो संगठनात्मक ढाँचा था, वह धीरे-धीरे निष्क्रिय होता गया। 2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में बीएसपी के निराशाजनक प्रदर्शन का प्रमुख कारण यही था कि जमीनी स्तर पर पार्टी का संगठन सक्रिय नहीं रहा। इससे स्पष्ट हुआ कि केवल शीर्ष नेतृत्व की शक्ति पर्याप्त नहीं होती, बल्कि जमीनी नेटवर्क की मजबूती ही पार्टी की वास्तविक ताकत होती है।

चुनावी प्रदर्शन और आलोचनाएँ

2012 के विधानसभा चुनावों में बीएसपी की हार के बाद विश्लेषकों ने यह कहना शुरू किया कि पार्टी की रणनीति में अवसरवादिता और जनसमर्थन के प्रति दूरी बढ़ गई है। 2014 के लोकसभा चुनावों में पार्टी एक भी सीट नहीं जीत सकी, जो बीएसपी के इतिहास में एक बड़ी विफलता थी। 2019 में बीएसपी ने समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन किया, लेकिन यह प्रयोग भी सीमित सफलता के साथ केवल 10 सीटों तक सिमट गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि बीएसपी की राजनीति में वैचारिक स्पष्टता और संगठनात्मक ताकत की कमी है। जनता को यह विश्वास नहीं रहा कि बीएसपी अपने मूल सामाजिक उद्देश्य के प्रति प्रतिबद्ध है। इस विफलता के कारण पार्टी की राष्ट्रीय राजनीति में साख और प्रभाव दोनों कमजोर हो गए।

प्रशासनिक आलोचनाएँ और भ्रष्टाचार के आरोप

मायावती के शासनकाल में स्मारकों और पार्कों के निर्माण को लेकर सरकार पर तीव्र आलोचना हुई। लखनऊ, नोएडा और अन्य शहरों में

बहुजन नायकों की मूर्तियाँ और स्मारक बनवाए गए, जिन्हें मायावती ने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक पहचान के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन विपक्ष ने इन योजनाओं को जनता के पैसों की बर्बादी बताया और आरोप लगाया कि इस धन का उपयोग शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढाँचे में होना चाहिए था। इसके साथ ही नोएडा भूमि घोटाला और अन्य प्रशासनिक अनियमितताओं ने मायावती सरकार की छवि को नुकसान पहुँचाया। इन आरोपों ने बीएसपी की पारदर्शिता और नैतिकता पर सवाल खड़े किए, जिससे पार्टी की विश्वसनीयता को गहरी चोट पहुँची और जनता का भरोसा कमजोर हुआ।

गठबंधन राजनीति और अवसरवादिता के आरोप

बीएसपी ने समय-समय पर भाजपा, कांग्रेस और सपा के साथ गठबंधन किया, लेकिन इन गठबंधनों की स्थायित्वहीनता ने पार्टी की रणनीति को अविश्वसनीय बना दिया। 1995, 1997 और 2002 में भाजपा के साथ सरकार बनाकर बाद में समर्थन वापस लेना और 2019 में सपा के साथ गठबंधन के बाद उसका टूट जाना यह दर्शाता है कि बीएसपी की गठबंधन रणनीति स्पष्ट नहीं थी। इस वजह से बीएसपी पर अवसरवादिता का आरोप लगा कि वह केवल सत्ता में भागीदारी के लिए वैचारिक समझौता करती है। इससे बीएसपी के लंबे समय तक टिके रहने वाले गठबंधन बनाने की क्षमता पर प्रश्नचिह्न लग गया।

बीएसपी के सामने वर्तमान चुनौतियाँ

आज बीएसपी के सामने सबसे बड़ी चुनौती है अपनी सामाजिक जड़ों को पुनर्स्थापित करना और कांशीराम के मूल मिशन को पुनः जीवित करना। पार्टी को अपने वैचारिक आधार की ओर लौटने की आवश्यकता

है और बहुजन समाज, पिछड़ों व अल्पसंख्यकों को संगठित करने की पुरानी शैली को अपनाना होगा। इसके साथ ही युवाओं को नेतृत्व में स्थान देना, संगठनात्मक लोकतंत्र को पुनः स्थापित करना और जमीनी स्तर पर कार्यकर्ताओं को सक्रिय करना अनिवार्य है। यदि बीएसपी को राष्ट्रीय राजनीति में फिर से प्रभावशाली भूमिका निभानी है तो उसे केवल चुनावी रणनीति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और न्याय के आंदोलन के रूप में स्वयं को पुनर्परिभाषित करना होगा।

अध्याय 38: भारतीय राजनीति में बहुजन आंदोलन की नई दिशा

बहुजन आंदोलन का उदय और परिवर्तनशीलता

भारतीय राजनीति में बहुजन आंदोलन का उदय एक क्रांतिकारी क्षण था जिसने दलित, पिछड़े, आदिवासी और अन्य वंचित वर्गों को राजनैतिक अधिकारों की मुख्यधारा में लाने की शुरुआत की। 1990 के दशक में जब बहुजन समाज पार्टी (BSP) ने उत्तर प्रदेश की राजनीति में प्रवेश किया, तो यह केवल एक दल नहीं था, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन था, जिसका उद्देश्य था बहुजन समुदाय को सत्ता में भागीदारी दिलाना। यह आंदोलन कांशीराम जैसे नेताओं द्वारा संचालित किया गया, जिन्होंने संख्या आधारित प्रतिनिधित्व के सिद्धांत “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” को बहुजन सशक्तिकरण का आधार बनाया।

हालांकि 2012 के बाद बहुजन राजनीति की प्रभावशीलता में गिरावट देखी गई। भाजपा जैसे दलों ने 2014 और 2019 में बहुजन मतों को आकर्षित कर, पारंपरिक बहुजन राजनीति को एक नई चुनौती दी। अब यह आंदोलन केवल आरक्षण और चुनावी हिस्सेदारी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने आर्थिक हक, सामाजिक न्याय, डिजिटल सशक्तिकरण, जाति-आधारित अत्याचार के प्रतिकार और वैचारिक पुनर्निर्माण की दिशा में भी गति पकड़ी है।

बहुजन आंदोलन की नई रणनीतियाँ और उभरते मुद्दे

बहुजन आंदोलन अब सिर्फ BSP या किसी एक दल के नेतृत्व तक सीमित नहीं है। 1990 और 2000 के दशकों में जहाँ यह आंदोलन BSP केंद्रित था, वहीं वर्तमान समय में विभिन्न संगठनों, युवा नेताओं, छात्र समूहों, और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इसे अपने-अपने क्षेत्र में आगे बढ़ाया है।

नई रणनीतियों में अब सिर्फ चुनाव जीतना ही लक्ष्य नहीं है, बल्कि सामाजिक जागरूकता फैलाना, शिक्षा में समानता, रोजगार की उपलब्धता, और जातिगत हिंसा का प्रतिकार जैसे मुद्दे भी प्रमुख हैं। दलित स्टूडेंट यूनियन, आजाद समाज पार्टी, भीम आर्मी जैसे संगठनों ने यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक परिवर्तन केवल राजनैतिक सत्ता से नहीं, बल्कि जमीनी आंदोलन, वैचारिक दृढ़ता और डिजिटल जनजागरण से भी संभव है।

अब बहुजन राजनीति में नए नेता उभर रहे हैं, जो केवल जाति समीकरणों पर नहीं, बल्कि नैतिक नेतृत्व, वैचारिक स्पष्टता, और सामाजिक दायित्व के आधार पर अपनी पहचान बना रहे हैं।

सामाजिक और आर्थिक आंदोलनों में बहुजन भागीदारी का बढ़ता दायरा

बहुजन समाज की भागीदारी अब केवल सरकारी नौकरियों में आरक्षण की माँग तक सीमित नहीं है। एक बड़ा वर्ग अब प्राइवेट सेक्टर में आरक्षण, उद्यमिता में भागीदारी, शिक्षा के निजीकरण के खिलाफ प्रतिरोध, और आर्थिक समानता की ओर बढ़ रहा है।

शिक्षा में प्रवेश और उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रतिनिधित्व को लेकर कई आंदोलनों ने जोर पकड़ा है। इसके साथ ही स्टार्टअप, स्वरोजगार, और उद्यम आधारित मॉडल को अपनाने की वकालत की जा रही है। बहुजन युवाओं के लिए यह एक नई दिशा है जिसमें वे केवल नौकरी खोजने वाले नहीं, बल्कि नौकरी देने वाले भी बनना चाहते हैं।

जाति-आधारित हिंसा, जिसमें आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों के खिलाफ अत्याचार होते हैं, के खिलाफ प्रतिरोध तेज हुआ है। इन घटनाओं को केवल ट्वीट या पोस्ट तक सीमित न रखकर, संगठित रूप से आंदोलन के रूप में लिया जा रहा है।

राजनैतिक दलों की नई रणनीतियाँ और बहुजन समाज

2014 और 2019 के बाद बीजेपी ने बहुजन समाज को आकर्षित करने के लिए कई योजनाएँ चलाईं, जैसे मुद्रा योजना, उज्ज्वला योजना, प्रधानमंत्री आवास योजना आदि। इन योजनाओं के माध्यम से भाजपा ने सामाजिक वर्गों के बीच सीधा संपर्क स्थापित करने की कोशिश की, जिससे बहुजन समाज के एक बड़े हिस्से का विश्वास उसने जीत लिया।

कांग्रेस ने भी 2019 में न्याय योजना जैसी आर्थिक सहायता योजना का वादा किया, लेकिन वह बहुजन समाज के बीच अपनी खोई हुई पकड़ को फिर से स्थापित नहीं कर पाई।

वहीं क्षेत्रीय दलों जैसे सपा, RJD, JDU आदि ने भी बहुजन समाज को जोड़ने के लिए सामाजिक न्याय के पुराने नारे दोहराए, लेकिन जनता ने इन्हें गंभीरता से नहीं लिया। इसके परिणामस्वरूप बहुजन समाज में वैकल्पिक राजनीति की ओर झुकाव बढ़ा है।

भविष्य की संभावनाएँ और समकालीन चुनौतियाँ

बहुजन आंदोलन की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह अपनी वैचारिक दिशा को स्पष्ट रखे और एकजुटता बनाए रखे। वर्तमान में आंदोलन कई धाराओं में विभाजित हो गया है-राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक, और डिजिटल-लेकिन यदि ये धाराएँ संगठित होती हैं, तो एक नया सामाजिक-राजनैतिक समीकरण बन सकता है।

सोशल मीडिया के आगमन से बहुजन नेताओं को अब सीधा संवाद का अवसर मिला है। दलित यूट्यूब चैनल्स, फेसबुक पेज, ट्विटर हैंडल्स और इंस्टाग्राम पर जनजागरण ने आंदोलन को नई पीढ़ी तक पहुँचाया है। हालांकि, इस डिजिटल क्रांति को जमीनी संगठनों के साथ जोड़ने की आवश्यकता है ताकि यह आंदोलन केवल वर्चुअल न रह जाए।

भविष्य में अगर बहुजन समाज के विभिन्न वर्ग-दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग-एकजुट होकर वैचारिक स्पष्टता के साथ नेतृत्व उभारते हैं, तो भारतीय राजनीति में एक गहरा परिवर्तन संभव है। परंतु इसके लिए केवल संख्या नहीं, नेतृत्व, नैतिकता, और सामाजिक प्रतिबद्धता भी उतनी ही आवश्यक है।

अध्याय 39: प्रेरणादायक युवा बहुजन नेताओं की भूमिका

भूमिका और पृष्ठभूमि

काशीराम का राजनैतिक जीवन केवल एक संगठन या दल खड़ा करने तक सीमित नहीं था; वह एक सामाजिक चेतना, बौद्धिक क्रांति और वैचारिक पुनरुत्थान का आंदोलन था। उन्होंने भारतीय राजनीति में बहुजन समाज की भूमिका को केवल 'वोट बैंक' तक सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि उन्हें 'शासक वर्ग' के रूप में स्थापित करने की रणनीति बनाई। उन्होंने जिस ऐतिहासिक क्षण में "शासित नहीं, शासक बनो" और "जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी" जैसे नारों को स्थापित किया, वह दरअसल उस समय की बहुजन राजनैतिक चेतना को दिशा देने वाला मोड़ था। यह केवल नारे नहीं थे, बल्कि एक रणनीतिक दृष्टिकोण था, जिसने अनुसूचित जातियों, जनजातियों, पिछड़ों और धार्मिक अल्पसंख्यकों को एक साझा राजनैतिक पहचान के लिए तैयार किया।

काशीराम का नेतृत्व 'बहुजन' शब्द की व्याख्या को नए सामाजिक और राजनैतिक संदर्भ में परिभाषित करता है। उन्होंने BAMCEF, DS-4 और BSP जैसे संगठनों को एक वैचारिक श्रृंखला के रूप में विकसित किया, ताकि बहुजन समाज को केवल वोट डालने वाली भीड़ नहीं, बल्कि निर्णय लेने वाली ताकत में बदला जा सके। उन्होंने उन वर्गों के लिए नेतृत्व की भूमिका बनाई, जिन्हें दशकों से सत्ता, सम्मान और

संसाधनों से वंचित रखा गया था। यह नेतृत्व केवल भाषणों या जनसभाओं में सीमित नहीं था-यह गाँव-गाँव, गलियों, कार्यालयों, कॉलेजों और झुगियों तक फैला हुआ था।

लेकिन 2006 में कांशीराम की मृत्यु के बाद यह वैचारिक यात्रा एक संकट में फँस गई। मायावती के नेतृत्व में भले ही BSP ने कुछ समय तक सत्ता में सफलता प्राप्त की, परंतु समय के साथ नेतृत्व केंद्रीकृत हो गया, कार्यकर्ता हतोत्साहित हुए, और युवाओं की भागीदारी कमजोर पड़ती गई। विचारधारा धीरे-धीरे पोस्टरों, मूर्तियों और चुनावी नारों तक सिमटने लगी, और ज़मीनी संघर्षों की जगह जातीय गणनाओं और सत्ता समीकरणों ने ले ली।

2024 तक आते-आते यह स्थिति और भी गंभीर हो गई। BSP, जो कभी बहुजन राजनीति की धुरी थी, अब राजनैतिक नक्शे पर लगभग निष्क्रिय हो गई। यही वह क्षण था जब राजनैतिक शून्यता के बीच कुछ युवा बहुजन नेताओं ने कांशीराम की अधूरी क्रांति को नए स्वरूप में पुनर्जीवित करने की कोशिश की। चंद्रशेखर आज़ाद, जिग्नेश मेवानी, प्रकाश आंबेडकर, अकाश आनंद, सीमा कुशवाहा, भावना राव और सतीश प्रकाश जैसे नाम सिर्फ व्यक्तिगत पहचान नहीं हैं, बल्कि यह उस नई बहुजन लहर की प्रतीक हैं, जो सत्ता के गलियारों से बाहर खड़े समाज को फिर से एकजुट करने का प्रयास कर रही है।

इन नेताओं का उदय केवल प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि एक संगठित वैचारिक प्रतिक्रिया है, जो आज के समय में नई भाषा, नए माध्यम और नए संघर्षों के ज़रिए सामने आ रही है। यह संघर्ष केवल जाति आधारित अस्मिता की बात नहीं कर रहा, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय, डिजिटल अधिकार, महिला सशक्तिकरण और आर्थिक आत्मनिर्भरता जैसे मुद्दों

को लेकर चल रहा है। यह युवा नेतृत्व बहुजन राजनीति को 21वीं सदी की ज़रूरतों के अनुसार पुनः परिभाषित करने की कोशिश कर रहा है।

इस पृष्ठभूमि को समझना ज़रूरी है, क्योंकि यही वह आधार है जिस पर आज की बहुजन राजनीति का भविष्य खड़ा हो सकता है। यह युवा पीढ़ी न केवल कांशीराम की विचारधारा से प्रेरित है, बल्कि उसमें नवाचार, डिजिटल माध्यमों की समझ, संवैधानिक दृष्टिकोण और बहुआयामी सामाजिक न्याय की नई परिकल्पनाएँ भी शामिल हैं। यदि इन प्रयासों को सही दिशा और साझा मंच मिल सके, तो बहुजन राजनीति केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि भविष्य का मार्गदर्शक आंदोलन बन सकती है।

कांशीराम की विचारधारा और उसका प्रभाव

कांशीराम की विचारधारा भारतीय राजनीति की परंपरागत संरचनाओं के विरुद्ध एक साहसिक और क्रांतिकारी हस्तक्षेप थी। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा था कि “राजनैतिक सत्ता ही सामाजिक परिवर्तन की चाबी है” - और इस मूल मंत्र ने भारतीय लोकतंत्र के भीतर एक ऐसी वैकल्पिक राजनैतिक चेतना को जन्म दिया, जो सदियों से सत्ता से वंचित वर्गों को केंद्र में लाती है। उनकी राजनीति जातिवादी, ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना को चुनौती देती थी, लेकिन वह केवल प्रतिक्रियावादी नहीं, बल्कि वैचारिक और संगठनात्मक रूप से रणनीतिक थी।

कांशीराम ने BAMCEF के ज़रिए सबसे पहले उन सरकारी कर्मचारियों को संगठित किया जो अनुसूचित जातियों, जनजातियों और पिछड़े वर्गों से आते थे, और जिन्हें शिक्षा और नौकरी के माध्यम से सामाजिक सीढ़ी पर ऊपर उठने का अवसर मिला था। उनका तर्क था कि यह वर्ग यदि सामाजिक रूप से सक्रिय हो जाए तो बहुजन समाज के लिए नेतृत्व की

नई पंक्ति तैयार की जा सकती है। इसके बाद DS-4 के ज़रिए उन्होंने युवाओं और छात्रों को आंदोलन से जोड़ा, और अंततः BSP को एक राजनैतिक दल के रूप में स्थापित कर यह सिद्ध किया कि सामाजिक बदलाव केवल सड़कों पर संघर्ष से नहीं, बल्कि सत्ता की कुर्सियों पर पहुँचकर नीतियों को बदलने से संभव है।

कांशीराम की विचारधारा तीन प्रमुख स्तंभों पर आधारित थी -

1. संख्या की ताकत को पहचानो
2. राजनैतिक हिस्सेदारी का अधिकार
3. विचारधारा आधारित संगठन निर्माण

उन्होंने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” जैसे नारों के ज़रिए बहुजन समाज को यह बोध कराया कि लोकतंत्र में संख्या बल सबसे बड़ा हथियार है, लेकिन यदि वह संगठित न हो तो वह केवल भीड़ बनकर रह जाता है। इसीलिए उन्होंने बहुजन समाज से अपील की - “जागो, पढ़ो, संगठित हो, और सत्ता पर क़ब्ज़ा करो।”

कांशीराम ने केवल सत्ता प्राप्त करने की राजनीति नहीं की, बल्कि सत्ता के चरित्र को बदलने का प्रयास किया। उनकी नीतियाँ यह बताती थीं कि समाज की अंतिम पंक्ति में खड़ा व्यक्ति केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि नीति निर्धारक भी बन सकता है। उनके प्रशिक्षण शिविरों में संविधान, अंबेडकरवाद, जाति उन्मूलन, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, और नेतृत्व निर्माण जैसे विषयों पर गहन विमर्श होता था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि एक विचारधारा यदि ज़मीनी कार्यकर्ता के भीतर आत्मसात हो जाए, तो वह सत्ता को झुका सकता है।

आज उनके निधन के दो दशक बाद भी, कांशीराम की विचारधारा युवा बहुजन नेतृत्व के लिए न केवल मार्गदर्शक है, बल्कि आत्मसम्मान और संगठन निर्माण की प्रेरणा भी है। चाहे वह चंद्रशेखर आज़ाद का संविधान-आधारित संघर्ष हो, जिग्नेश मेवानी का दलित-आधारित जनविमर्श हो, या प्रकाश आंबेडकर का गठबंधन आधारित राजनैतिक दृष्टिकोण - सबमें कांशीराम की छाया स्पष्ट दिखाई देती है।

उनके विचार आज के सामाजिक संदर्भ में और भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि अब जाति आधारित अन्याय के साथ-साथ डिजिटल भेदभाव, शिक्षा में असमानता, प्रतिनिधित्व की गिरावट, और अर्थव्यवस्था से बहुजनों की बहिष्कृति जैसी चुनौतियाँ भी सामने हैं। ऐसे में कांशीराम का दर्शन - “विचारधारा के बिना संगठन एक भीड़ है, और संगठन के बिना विचारधारा एक सपना” - एक चेतावनी की तरह सामने आता है।

वास्तव में, कांशीराम की राजनीति ने बहुजन समाज को यह सिखाया कि सत्ता केवल शासन करने का माध्यम नहीं, बल्कि सम्मान और नीति निर्धारण का स्थान है। और जब तक बहुजन समाज स्वयं सत्ता का केंद्र नहीं बनेगा, तब तक सामाजिक न्याय एक घोषणापत्र की भाषा में सिमट कर रह जाएगा।

आधुनिक युवा बहुजन नेताओं पर कांशीराम का प्रभाव

कांशीराम की राजनीति किसी एक युग या सीमित पीढ़ी तक सीमित नहीं थी; वह एक सतत वैचारिक धारा थी, जो हर उस व्यक्ति के भीतर प्रेरणा बनकर बहती है जो सामाजिक न्याय, समानता और सत्ता में सहभागिता की बात करता है। यही कारण है कि उनके निधन के दो दशक बाद भी, देश के विभिन्न हिस्सों में उभरने वाले युवा बहुजन नेताओं की सोच,

संघर्ष और रणनीति में कांशीराम की विचारधारा की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। इन नेताओं ने अपने-अपने क्षेत्रों में न केवल अस्मिता की राजनीति को पुनर्जीवित किया है, बल्कि सामाजिक न्याय की परिकल्पना को आधुनिक संदर्भों में ढालने का प्रयास भी किया है।

चंद्रशेखर आज़ाद 'रावण' शायद इस नई पीढ़ी के सबसे चर्चित और सक्रिय चेहरे हैं। भीम आर्मी और बाद में आजाद समाज पार्टी की स्थापना के माध्यम से उन्होंने कांशीराम के उस मॉडल को दोहराने की कोशिश की है, जिसमें संगठन निर्माण, सड़क पर संघर्ष, शिक्षा का प्रसार और राजनैतिक दल की स्थापना-तीनों साथ-साथ चलते हैं। सहारनपुर के एक छोटे से गाँव से शुरू हुआ उनका संघर्ष अब राष्ट्रीय विमर्श में जगह पा चुका है। वह केवल दलित अस्मिता की बात नहीं करते, बल्कि संविधान, कानून, पुलिस प्रशासन, और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को चुनौती देने वाली ताकतों के खिलाफ खड़े होने का साहसिक उदाहरण बन चुके हैं। उनके आंदोलनों में युवाओं की भागीदारी, दलित प्रतीकों की पुनर्व्याख्या और निडर भाषण शैली-सभी कांशीराम के नेतृत्व की याद दिलाते हैं।

जिग्नेश मेवाणी, एक वकील, सामाजिक कार्यकर्ता और अब विधायक के रूप में, गुजरात में ऊना कांड के बाद बहुजन अधिकारों की आवाज़ बनकर उभरे। उन्होंने केवल जाति आधारित हिंसा का विरोध नहीं किया, बल्कि भूमिहीनता, बेरोजगारी, किसान अधिकार, और दलित गरिमा जैसे बहुआयामी मुद्दों को एकसाथ मंच पर रखा। मेवाणी का यह दृष्टिकोण कांशीराम की उस सोच से मेल खाता है, जिसमें जातिगत उत्पीड़न के साथ-साथ आर्थिक शोषण और प्रशासनिक बहिष्करण के विरुद्ध भी संघर्ष शामिल होता है। उन्होंने चुनावी राजनीति को भी एक आंदोलन

का विस्तार माना और अपने विचारों को विधानसभा तक पहुँचाने का प्रयास किया।

प्रकाश आंबेडकर, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के पोते होने के साथ-साथ एक सक्रिय राजनैतिक रणनीतिकार भी हैं। उन्होंने वंचित बहुजन आघाड़ी (VBA) के माध्यम से महाराष्ट्र में बहुजन-मुस्लिम एकता के विचार को आगे बढ़ाया। उनका राजनैतिक चिंतन 'बहुजन प्लस अल्पसंख्यक' गठबंधन के रूप में सामने आता है, जो कांशीराम की बहुजन राजनीति को साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के विरुद्ध एक समावेशी ढाँचे में प्रस्तुत करता है। प्रकाश आंबेडकर ने उस 'तीसरे मोर्चे' की कल्पना को ज़मीन पर उतारने का प्रयास किया है, जो न तो सांप्रदायिक है, न ही वंशवादी, बल्कि विचार आधारित है।

आकाश आनंद, मायावती के उत्तराधिकारी के रूप में पेश किए जा रहे हैं। उन्होंने पारंपरिक राजनीति की तुलना में डिजिटल मीडिया, युवा संवाद, और नए विचारों को प्राथमिकता दी है। वह सार्वजनिक मंचों से राजनैतिक शिक्षा, संविधान की व्याख्या और आर्थिक सशक्तिकरण पर बात करते हैं। हालाँकि उनकी राजनैतिक पकड़ अभी शुरुआती दौर में है, परंतु उनमें वह संभावना है कि यदि संगठनात्मक स्वतंत्रता और वैचारिक स्पष्टता दी जाए, तो वह BSP को पुनर्जीवित कर सकते हैं। उनके भाषणों और डिजिटल कैम्पेन में कांशीराम के नारों और उद्धरणों का बारंबार प्रयोग यह दर्शाता है कि वह उसी परंपरा से जुड़ना चाहते हैं।

सीमा कुशवाहा, जो निर्भया केस की वकील के रूप में प्रसिद्ध हुईं, उन्होंने कानून के क्षेत्र को सामाजिक परिवर्तन के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया है। उन्होंने महिला अधिकारों, लैंगिक न्याय और दलित महिला

सशक्तिकरण को न्यायिक प्रणाली में स्थान दिलाने का साहसी प्रयास किया। कांशीराम ने हमेशा नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया था, और सीमा उस वैचारिक विस्तार की आधुनिक अभिव्यक्ति हैं। भावना राव, एक शिक्षाविद् और समाजसेवी के रूप में, लड़कियों की शिक्षा, छात्रवृत्ति, डिजिटल प्रशिक्षण और कैरियर मार्गदर्शन जैसे क्षेत्रों में काम कर रही हैं। उन्होंने ग्रामीण बहुजन लड़कियों को स्वावलंबन, आत्मविश्वास और नेतृत्व की दिशा में प्रेरित किया है। कांशीराम के शिक्षित करो, संगठित करो, संघर्ष करो के सिद्धांत की वह मूर्त अभिव्यक्ति हैं।

सतीश प्रकाश, एक उद्यमी और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में, स्टार्टअप संस्कृति, आर्थिक सशक्तिकरण और स्वरोजगार को बहुजन सशक्तिकरण का साधन मानते हैं। वह मानते हैं कि जब तक बहुजन समाज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगा, तब तक उसकी राजनैतिक स्वतंत्रता अधूरी रहेगी। यह सोच कांशीराम के उस विचार का विस्तार है जिसमें उन्होंने कहा था- “सत्ता के बिना सम्मान अधूरा है, और अर्थ के बिना सत्ता अस्थिर।”

इन सभी युवाओं के दृष्टिकोण, संघर्ष और शैली भिन्न हो सकते हैं, लेकिन उनके भीतर एक समान ऊर्जा है - कांशीराम के अधूरे आंदोलन को आज के युग में पुनर्जीवित करना। वे सड़क से लेकर संसद, न्यायालय से लेकर सोशल मीडिया, और शिक्षा से लेकर अर्थनीति तक हर मंच पर बहुजन उपस्थिति दर्ज कराने का प्रयास कर रहे हैं। यह कांशीराम की दी हुई वैचारिक प्रेरणा का ही प्रभाव है कि आज की पीढ़ी सत्ता को केवल लक्ष्य नहीं, बल्कि परिवर्तन का साधन मानती है।

प्रमुख चुनौतियाँ

वर्तमान युवा बहुजन नेताओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती केवल नेतृत्व करना नहीं, बल्कि नेतृत्व को संगठित, प्रभावशाली और टिकाऊ बनाना है। यह नेतृत्व विविध क्षेत्रों में उभर जरूर रहा है-कानून, शिक्षा, आंदोलन, राजनीति और डिजिटल संवाद में - लेकिन इसे एक संयुक्त सामाजिक-राजनैतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित करने की राह में कई गहन बाधाएँ हैं। ये चुनौतियाँ केवल वैचारिक या संगठनात्मक नहीं, बल्कि रणनीतिक, संसाधनगत और जन-विश्वास की भी हैं।

पहली चुनौती है – आंदोलन से सत्ता तक की यात्रा को सार्थक बनाना।

चंद्रशेखर आज़ाद जैसे नेताओं ने ज़मीन पर अस्मिता की राजनीति को जागरूकता और प्रतिरोध का चेहरा दिया है, लेकिन उनकी पार्टी, आज़ाद समाज पार्टी, अभी तक राजनैतिक तौर पर निर्णायक असर छोड़ने में असफल रही है। 2022 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में उनका प्रदर्शन 2% से भी कम रहा, जो यह संकेत देता है कि आंदोलनकारी नेतृत्व को वोट में बदलना इतना सहज नहीं है। बहुजन समाज का बड़ा हिस्सा अब भी BSP जैसी पारंपरिक पार्टियों या अन्य क्षेत्रीय दलों के साथ बना हुआ है।

दूसरी चुनौती है – पुराने बहुजन संगठन की निष्क्रियता और नेतृत्व का जड़त्व।

मायावती के नेतृत्व वाली BSP, जो कभी बहुजन राजनीति की धुरी थी, आज अपने चरम प्रभाव से बहुत नीचे गिर चुकी है। पार्टी के भीतर संवाद, संगठनात्मक प्रशिक्षण और नेतृत्व का विकास लगभग ठप हो गया है।

युवा, महिलाएँ और बुद्धिजीवी वर्ग BSP से दूर हो चुके हैं, लेकिन उनके पास कोई सुव्यवस्थित वैकल्पिक मंच नहीं है। BSP की निष्क्रियता बहुजन समाज में एक वैचारिक और राजनैतिक खालीपन छोड़ रही है, जिसे नए नेता भरना चाहते हैं, लेकिन उनके पास उतना संसाधन, नेटवर्क और अनुभव नहीं है।

तीसरी चुनौती है – बहुजन समाज का विखंडन और जातिगत उप-टकराव।

बहुजन समाज कोई एकीकृत इकाई नहीं है; यह दर्जनों जातियों, उपजातियों, भाषाओं, धर्मों और सामाजिक संस्कृतियों का मिश्रण है। दलित, पिछड़ा, मुस्लिम, आदिवासी, महिलाओं और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के भीतर अलग-अलग प्राथमिकताएँ और असुरक्षाएँ हैं। यह विविधता अगर रणनीतिक रूप से न जोड़ी जाए तो वह टकराव का रूप ले लेती है, जिससे आंदोलन बिखर जाते हैं। कांशीराम इस विविधता को “बहुजन” की सामूहिक पहचान में बदलने में सफल हुए थे, लेकिन आज वह एकता पुनः स्थापित करना अत्यंत कठिन हो गया है।

चौथी चुनौती है – संसाधनों और संरचनाओं की कमी।

अधिकांश युवा बहुजन नेता संसाधनों के अभाव में संघर्ष कर रहे हैं। चुनाव लड़ना, संगठन चलाना, कैडर बनाना, मीडिया में उपस्थिति बनाए रखना-इन सभी के लिए धन, जन, और संस्थागत समर्थन की आवश्यकता होती है। जबकि दूसरी ओर दक्षिणपंथी और क्षेत्रीय सवर्ण नेतृत्व मीडिया, पूँजी और प्रशासनिक सहयोग से सुसज्जित है। यह असमानता बहुजन नेतृत्व को केवल भावनात्मक और वैचारिक मोर्चों तक सीमित कर देती है।

पाँचवीं चुनौती है – विचारधारा की स्पष्टता और साझा रणनीति का अभाव।

कई युवा नेता कांशीराम के नाम का उल्लेख तो करते हैं, लेकिन उनके आंदोलन की रणनीति और संगठन की शैली से अपरिचित हैं। कोई संविधान की भाषा में आंदोलन करता है, तो कोई केवल अस्मिता की राजनीति में उलझा है। कोई चुनावी मंच बनाता है, तो कोई केवल सोशल मीडिया तक सीमित रहता है। यह बिखराव विचारधारा को कमजोर करता है। जब तक यह स्पष्ट नहीं होगा कि “बहुजन राजनीति” का आधुनिक स्वरूप क्या है, तब तक जनता के सामने यह एक स्थायी विकल्प के रूप में नहीं उभर पाएगी।

छठी चुनौती है – जनता के विश्वास को पुनः अर्जित करना।

बहुजन समाज के अंदर यह पीड़ा है कि हर पार्टी उन्हें केवल वोट बैंक मानती है, लेकिन सत्ता में आने के बाद उनके मुद्दे हाशिए पर चले जाते हैं। BSP के शासनकाल में भी भ्रष्टाचार, प्रतिनिधित्व की संकीर्णता, और जनता से संवाद की कमी ने इस विश्वास को तोड़ा था। अब नए नेताओं के सामने यह सबसे कठिन कार्य है कि वे जनता को यह विश्वास दिलाएँ कि यह नेतृत्व उनके लिए है, उनके बीच से निकला है, और उन्हें सम्मान तथा अवसर दिलाने की लड़ाई लड़ रहा है।

इन सभी चुनौतियों के बीच भी यह कहा जा सकता है कि बहुजन राजनीति मृत नहीं है - वह संक्रमण के दौर से गुजर रही है। अगर यह युवा नेतृत्व आत्मनिरीक्षण करे, आपसी समन्वय स्थापित करे, साझा रणनीति बनाए और एक दीर्घकालिक वैचारिक योजना पर काम करे, तो यही संघर्ष बहुजन आंदोलन को पुनः राष्ट्रीय मंच पर पहुँचा सकता है।

नवाचार और नई रणनीतियाँ

21वीं सदी के दूसरे दशक में जब बहुजन राजनीति अपनी परंपरागत संरचना और नेतृत्व से जूझ रही है, तब नई पीढ़ी के युवा बहुजन नेताओं ने पारंपरिक तरीकों से आगे बढ़कर ऐसे नवाचारों और रणनीतियों को अपनाया है, जो कांशीराम के आंदोलन को एक समकालीन आकार दे रहे हैं। ये रणनीतियाँ केवल चुनावी राजनीति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक जागरूकता, डिजिटल क्रांति, वैचारिक पुनर्निर्माण, और आर्थिक सशक्तिकरण को साथ लेकर चल रही हैं।

सबसे पहला नवाचार है-डिजिटल माध्यमों का सशक्त प्रयोग।

चंद्रशेखर आज़ाद, अकाश आनंद, और भावना राव जैसे नेता सोशल मीडिया को केवल प्रचार का नहीं, बल्कि संवाद और संगठन निर्माण का माध्यम बना रहे हैं। फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और टेलीग्राम जैसे प्लेटफॉर्मों के ज़रिए वे लाखों युवाओं से सीधे जुड़ते हैं, उन्हें संविधान, सामाजिक न्याय, और राजनैतिक भागीदारी के मुद्दों पर जागरूक करते हैं। यह रणनीति पारंपरिक रैलियों या सभाओं से कहीं अधिक तेज़ी और गहराई से विचारों का प्रसार करती है।

दूसरी रणनीति है-शिक्षा और वैचारिक प्रशिक्षण को आंदोलन का आधार बनाना।

जहाँ अतीत में बहुजन आंदोलन भावनात्मक और सामूहिक क्रांति पर आधारित था, वहीं नई पीढ़ी के नेता इसे वैचारिक स्पष्टता और बौद्धिक मजबूती से जोड़ रहे हैं। भावना राव, सतीश प्रकाश जैसे कार्यकर्ता गाँवों और छोटे शहरों में कोचिंग सेंटर, डिजिटल कक्षाएं, और बौद्धिक संगोष्ठियाँ आयोजित कर रहे हैं। उनके प्रयासों का उद्देश्य है-बहुजन

युवाओं को केवल नौकरी दिलाना नहीं, बल्कि उन्हें सामाजिक व्यवस्था को समझने वाला जागरूक नागरिक बनाना। इससे एक ऐसा शिक्षित वर्ग उभर रहा है जो आंदोलन को नेतृत्व दे सकता है।

तीसरा नवाचार है-आर्थिक सशक्तिकरण को आंदोलन का केंद्रीय हिस्सा बनाना।

BAMCEF और BSP के शुरुआती दौर में आर्थिक मुद्दे अक्सर छूट जाते थे, लेकिन आज के नेता यह समझ चुके हैं कि जब तक बहुजन समाज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगा, तब तक सामाजिक सम्मान और राजनैतिक प्रभाव सीमित रहेगा। सतीश प्रकाश जैसे नेता स्टार्टअप, स्वरोजगार, वित्तीय साक्षरता और उद्यमिता के ज़रिए बहुजन युवाओं को स्वावलंबी बना रहे हैं। स्वरोजगार शिविर, डिजिटल भुगतान शिक्षा, और महिलाओं के लिए सशक्तिकरण अभियान चलाए जा रहे हैं, जिससे आंदोलन की आर्थिक रीढ़ भी मजबूत हो रही है।

चौथा नवाचार है-कानूनी अधिकारों पर जागरूकता और न्यायिक हस्तक्षेप।

सीमा कुशवाहा जैसी वकील-नेता यह दिखा रही हैं कि न्यायपालिका को भी सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया जा सकता है। उन्होंने निर्भया मामले से लेकर बहुजन महिलाओं के खिलाफ हिंसा के कई मामलों में प्रभावी कानूनी लड़ाई लड़ी है। साथ ही, संविधान की धाराओं, आरक्षण कानूनों और मानवाधिकार कानूनों की शिक्षा भी जन-जागरूकता का हिस्सा बन रही है। यह रणनीति बहुजन आंदोलन को संवैधानिक लड़ाई के रूप में स्थापित कर रही है।

पाँचवाँ नवाचार है-स्थानीय नेतृत्व और क्षेत्रीय मुद्दों को प्राथमिकता देना।

कई युवा नेता यह समझ चुके हैं कि राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में प्रभाव डालने के लिए स्थानीय स्तर पर मज़बूत जड़ें बनाना ज़रूरी है। जिग्नेश मेवानी ने गुजरात के मेहसाणा और ऊना जैसे क्षेत्रों में दलितों के हक्क की लड़ाई को ज़मीन से जोड़ा। इसी तरह चंद्रशेखर आज़ाद ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर और मेरठ में बहुजन जनाधार खड़ा किया। ये सभी नेता अब चुनावी राजनीति के बजाय सामाजिक संस्थाओं के निर्माण और सामाजिक पुनर्जागरण की दिशा में काम कर रहे हैं।

छठा नवाचार है-राजनीति को आंदोलन और विचारधारा से जोड़े रखना।

बहुजन नेताओं का नया वर्ग यह मानता है कि सत्ता प्राप्त करना उद्देश्य नहीं, बल्कि सामाजिक बदलाव का माध्यम है। इसलिए वे राजनीति को आंदोलन का ही एक विस्तार मानते हैं। उनकी रणनीति है कि प्रत्येक चुनाव को संविधान, बहुजन संस्कृति और सामाजिक न्याय के संदर्भ में लड़ा जाए, न कि जातीय समीकरण या व्यक्ति पूजा के आधार पर। यह सोच उन्हें सवर्ण पार्टी मॉडल से अलग करती है और बहुजन राजनीति को एक सिद्धांतवादी विकल्प बनाती है।

इस प्रकार, इन नवाचारों और रणनीतियों ने बहुजन राजनीति को नए युग में प्रवेश दिलाया है। यह नेतृत्व अब पुराने नारों से आगे जाकर शिक्षा, डिजिटल मीडिया, कानून, उद्यमिता और विचारधारा की बहुस्तरीय रणनीति पर काम कर रहा है। हालांकि चुनौतियाँ अभी भी हैं, लेकिन इन नवाचारों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि अगर एक साझा मंच और वैचारिक

समन्वय स्थापित हो जाए, तो यह नेतृत्व कांशीराम की विरासत को 21वीं सदी के भारत में मजबूती से पुनर्स्थापित कर सकता है।

कांशीराम की विरासत का पुनर्जागरण

कांशीराम केवल एक राजनैतिक नेता नहीं थे, वे एक विचारधारा, एक आंदोलन और एक परिवर्तनकारी चेतना के प्रतीक थे। उन्होंने न केवल सामाजिक न्याय का नारा दिया, बल्कि उसे व्यवहार में उतारने के लिए संगठित ढांचा भी खड़ा किया-BAMCEF से लेकर DS4 और अंततः बहुजन समाज पार्टी तक। लेकिन उनके निधन के बाद जिस वैचारिक विरासत को आगे बढ़ाया जाना था, वह समय के साथ या तो सीमित हो गई या सत्ता की राजनीति में विलीन हो गई। ऐसे में आज के युवा बहुजन नेताओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती और जिम्मेदारी यह है कि वे उस विरासत का पुनर्जागरण करें-न केवल नारों और प्रतीकों के ज़रिए, बल्कि विचारों, कार्यक्रमों और संगठनात्मक ढांचे के ज़रिए।

कांशीराम की विरासत का पुनर्जागरण केवल राजनैतिक पुनरुत्थान नहीं है, यह वैचारिक अनुशासन और सामाजिक प्रतिबद्धता का संयोजन है। उन्होंने जिस “बहुजन” की परिभाषा दी थी-SC, ST, OBC, अल्पसंख्यक और अन्य वंचित वर्गों का साझा गठबंधन-उसे आज के परिप्रेक्ष्य में फिर से सक्रिय करना आवश्यक है। यह काम तभी संभव है जब युवा नेता अपने-अपने सीमित दायरे से निकलकर एक राष्ट्रीय मंच पर एकजुट हों, साझा कार्यक्रम बनाएं और संगठनात्मक स्तर पर समन्वय स्थापित करें।

आज जब जातीय पहचान, आर्थिक विषमता, और सांप्रदायिक ध्रुवीकरण फिर से राजनीति में गहराई से प्रवेश कर चुके हैं, तब कांशीराम

की सोच-“राजनैतिक शक्ति सामाजिक परिवर्तन की पूर्वशर्त है”-एक बार फिर अत्यंत प्रासंगिक हो उठी है। वर्तमान युवा बहुजन नेता इस बात को समझ रहे हैं कि केवल आरक्षण की बात करना या संविधान की रक्षा की अपील करना काफी नहीं है, जब तक कि इन विचारों को एक संगठित जनांदोलन में रूपांतरित न किया जाए।

इसके लिए नेतृत्व को केवल चुनावी सफलता पर केंद्रित न होकर एक दीर्घकालिक सामाजिक बदलाव की योजना बनानी होगी-शिक्षा, उद्यमिता, डिजिटल सशक्तिकरण, महिला भागीदारी, और क्षेत्रीय नेतृत्व को लेकर। कांशीराम की रणनीति में यही विशेषता थी कि वे ज़मीन से नेतृत्व खड़ा करते थे, विचार से कार्यकर्ता बनाते थे और संघर्ष से सत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करते थे।

इसलिए आज जरूरत है कि इन युवा नेताओं में विचारधारा की गहराई, संगठन की स्पष्टता, जनता से संवाद की निरंतरता और नेतृत्व में समावेशिता आए। तभी यह कहा जा सकेगा कि कांशीराम की विरासत एक बार फिर जीवित हुई है-न केवल मूर्तियों और स्मारकों में, बल्कि गाँव-गाँव में बहुजन चेतना के रूप में, जो सामाजिक सम्मान, आर्थिक आत्मनिर्भरता और राजनैतिक भागीदारी की त्रयी को व्यवहार में उतारे।

यदि यह पुनर्जागरण सफल होता है, तो यह न केवल उत्तर प्रदेश की राजनीति में बदलाव लाएगा, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर बहुजन राजनीति को एक बार फिर वैचारिक, नैतिक और रणनीतिक शक्ति प्रदान करेगा-एक ऐसी शक्ति जो केवल सत्ता की नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की वाहक होगी।

अध्याय 40:

बहुजन नेतृत्व द्वारा सरकार बनाने का सपना

कांशीराम की कल्पना: बहुजन शासक नहीं, शासक वर्ग बनें

कांशीराम ने भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को गहराई से समझा था। उन्होंने यह भली-भांति देखा कि चुनावों में बहुजन समाज संख्या में तो भारी है, लेकिन सत्ता के वास्तविक केंद्रों से वह दूर है। इसलिए उन्होंने केवल सत्ता परिवर्तन की नहीं, बल्कि सत्ता के चरित्र परिवर्तन की कल्पना की। उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक बहुजन समाज केवल किसी अन्य वर्ग की सरकार बनाने के लिए वोट देता रहेगा, तब तक उसके हितों की अनदेखी होती रहेगी। उन्होंने एक ऐतिहासिक विचार प्रस्तुत किया - “हम शासित नहीं, शासक बनेंगे।” यह नारा सिर्फ जोश भरने के लिए नहीं था, बल्कि यह एक रणनीतिक रोडमैप था, जो बहुजन समाज को सत्ता संचालन की कुर्सियों तक पहुँचाने का सपना संजोए हुए था।

कांशीराम यह मानते थे कि लोकतंत्र में वोट केवल सरकार बनाने का औजार नहीं होना चाहिए, बल्कि इससे नीति निर्माण, प्रशासनिक नेतृत्व, और संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए। उन्होंने देखा कि संविधान में दिए गए आरक्षण और प्रतिनिधित्व के प्रावधान तब तक प्रभावी नहीं हो सकते, जब तक कि निर्णय लेने वाले मंचों पर बहुजन समाज की सीधी और निर्णायक उपस्थिति न हो। इसीलिए उन्होंने कहा कि हमें केवल MLA या MP नहीं बनना है, बल्कि नीति निर्धारण की धुरी पर अपना अधिकार स्थापित करना है।

उन्होंने BAMCEF, DS4 और फिर BSP जैसे संगठनों के माध्यम से यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि बहुजन समाज को केवल वोट बैंक नहीं, बल्कि जागरूक और संगठित राजनैतिक वर्ग के रूप में स्थापित किया जाए। कांशीराम की यह कल्पना थी कि सत्ता को केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि संरचनात्मक रूप से बदलना होगा। उनकी यह सोच भारतीय राजनीति में एक क्रांतिकारी हस्तक्षेप थी, जो सत्ता के केंद्रों में वंचितों की भागीदारी को ही लोकतंत्र की सफलता मानती थी। इसीलिए उन्होंने बहुजन समाज से आह्वान किया कि अब समय आ गया है जब वे न केवल सरकारों को चुनें, बल्कि स्वयं सरकार बनाएं, और समाज के वास्तविक परिवर्तन के वाहक बनें।

उत्तर प्रदेश में बहुजन नेतृत्व की ऐतिहासिक सफलता

कांशीराम की विचारधारा और राजनैतिक रणनीति को सबसे पहले और सबसे गहराई से जमीन मिली उत्तर प्रदेश में, जो भारत का सबसे बड़ा और राजनैतिक रूप से सबसे प्रभावशाली राज्य है। इसी राज्य में बहुजन समाज ने पहली बार सत्ता के शीर्ष पर अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और यह कांशीराम की सोच का जीवंत प्रमाण बना। वर्ष 1995 में जब मायावती पहली बार उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री बनीं, तो यह केवल एक संवैधानिक नियुक्ति नहीं थी, बल्कि सामाजिक न्याय के संघर्ष की ऐतिहासिक जीत थी। एक दलित महिला का देश के सबसे बड़े राज्य की मुख्यमंत्री बनना, उन लाखों लोगों के आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना थी जो सदियों तक सामाजिक और राजनैतिक रूप से हाशिए पर रखे गए थे।

यह क्षण केवल कांशीराम के सपनों की पहली कड़ी था। 1997 और विशेषकर 2007 में जब मायावती पूर्ण बहुमत से सत्ता में आईं, तो यह सिद्ध हो गया कि बहुजन समाज न केवल सत्ता की सीढ़ियाँ चढ़ सकता

है, बल्कि उसे स्थायित्व के साथ चला भी सकता है। इन वर्षों में दलित, पिछड़ा, मुस्लिम और वंचित वर्गों की आवाज सत्ता के गलियारों में सुनाई देने लगी। प्रशासनिक ढांचे में उनकी भागीदारी बढ़ी, कानून-व्यवस्था के मामलों में उनकी बात सुनी जाने लगी, और सरकारी योजनाओं में उनका समावेश अधिक व्यापक हुआ।

2007 का चुनाव इस दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण था कि BSP ने 'बहुजन से सर्वजन' की रणनीति के तहत बहुजन आधार को बनाए रखते हुए व्यापक सामाजिक गठजोड़ तैयार किया और पूर्ण बहुमत हासिल किया। इसने न केवल बहुजन नेतृत्व की परिपक्वता को सिद्ध किया, बल्कि यह भी दिखाया कि यदि राजनैतिक संगठन में अनुशासन, विचारधारा में स्पष्टता, और नेतृत्व में दूरदर्शिता हो, तो सत्ता की चाबी बहुजन समाज के हाथों में आ सकती है।

इस कालखंड में बहुजन समाज ने पहली बार महसूस किया कि वे केवल वोट देने वाले नहीं, बल्कि निर्णय लेने वाले भी बन सकते हैं। सरकारी नीतियों में प्राथमिकता बदली, प्रशासनिक ढांचे में नए प्रतिनिधित्व के रास्ते खुले, और सामाजिक सम्मान की भावना समाज के हर स्तर तक पहुँची। यह सफलता केवल चुनाव जीतने की नहीं थी, बल्कि सामाजिक न्याय की विचारधारा को शासन तंत्र में स्थापित करने की थी।

सत्ता के शिखर से बहुजन राजनीति का पतन

2012 के बाद बहुजन समाज पार्टी (BSP) और उससे जुड़े बहुजन नेतृत्व की राजनैतिक यात्रा में गिरावट स्पष्ट रूप से देखने को मिली। जो पार्टी एक समय उत्तर प्रदेश की सत्ता की धुरी हुआ करती थी, वह धीरे-धीरे विपक्ष तक भी सीमित नहीं रह गई। यह गिरावट केवल चुनावी हार तक

सीमित नहीं थी, बल्कि यह उस मूल वैचारिक और सामाजिक मिशन से विचलन का परिणाम थी, जिसके लिए BSP की स्थापना हुई थी।

मायावती का नेतृत्व अत्यधिक केंद्रीकृत हो गया था। पार्टी में जमीनी स्तर पर संवाद की कमी, कार्यकर्ताओं की उपेक्षा, और निर्णय लेने की प्रक्रिया में एकतरफा रवैये ने संगठन की आंतरिक ताकत को कमजोर कर दिया। कांशीराम के समय की जो कैडर-बेस्ड राजनीति थी, वह एक ठोस वैचारिक प्रशिक्षण और सक्रिय जनसंपर्क पर आधारित थी; लेकिन धीरे-धीरे BSP में यह संरचना ढहने लगी।

इसके साथ-साथ, “सर्वजन” की राजनीति को प्राथमिकता देने के चक्कर में बहुजन आधार खुद को उपेक्षित महसूस करने लगा। पार्टी ने सवर्णों, उच्च जातियों और व्यापारिक वर्गों को साधने की कोशिश की, जिससे उसकी मूल सामाजिक जननीति कमजोर पड़ी। भाजपा और अन्य दलों ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए OBC और SC वर्गों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए नई रणनीतियाँ अपनाईं। विशेष रूप से भाजपा ने बहुजन प्रतीकों, महापुरुषों और योजनाओं को अपनाकर प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के ज़रिए बहुजन वर्गों को अपने पाले में लाने का प्रयास किया-जिसमें वह कुछ हद तक सफल भी रही।

BSP की पराजय सिर्फ संगठन की कमजोरी नहीं थी, बल्कि यह इस बात की चेतावनी भी थी कि यदि बहुजन नेतृत्व अपनी विचारधारा से भटकेगा, कार्यकर्ताओं को अलग-थलग करेगा, और समावेशी संवाद से कटा रहेगा, तो सत्ता की बुनियाद धीरे-धीरे खिसकती चली जाएगी। यह परिघटना एक सीख भी बन गई-कि सत्ता के शिखर पर पहुँच जाना ही पर्याप्त नहीं, वहाँ टिके रहने के लिए निरंतर आत्ममंथन, विचारधारा के प्रति निष्ठा, और संगठनात्मक सक्रियता अनिवार्य होती है।

संगठन, नीति और आंदोलन के समन्वय की आवश्यकता

बहुजन राजनीति के वर्तमान संकट की सबसे बड़ी वजह यह है कि उसने उस त्रिस्तरीय संतुलन को खो दिया है, जो कांशीराम की रणनीति की आत्मा था - संगठन, नीति और आंदोलन का समन्वय। जब तक ये तीनों स्तंभ एक-दूसरे के पूरक रहते हैं, तब तक कोई भी राजनैतिक आंदोलन न केवल जीवित रहता है, बल्कि सत्ता में निर्णायक भूमिका निभाता है। लेकिन वर्तमान परिदृश्य में बहुजन राजनीति केवल चुनावी अवसरों तक सीमित होती जा रही है, नीतियों की स्पष्ट दिशा नहीं दिखती, और ज़मीनी आंदोलनों का स्वर लगभग लुप्त हो चुका है।

सबसे पहले, संगठन की बात करें - BSP जैसे दलों में आंतरिक संगठन अब केवल औपचारिक ढाँचा बनकर रह गया है। कैडर-आधारित सांगठनिक ढाँचा, जो पहले गाँव-गाँव में सक्रिय था, अब निष्क्रिय हो चुका है। कार्यकर्ताओं से संवाद टूट गया है, और युवाओं के लिए संगठन में कोई स्थान दिखाई नहीं देता। विचारधारा आधारित प्रशिक्षण शिविर अब नहीं होते, जिससे नया नेतृत्व उभर नहीं पा रहा।

नीति निर्माण की दिशा में भी बहुजन राजनीति ठहराव की स्थिति में है। शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, प्रशासनिक प्रतिनिधित्व, भूमि अधिकार, और सामाजिक सुरक्षा जैसे सवाल बहुजन समाज के सामने पहले से ज्यादा विकराल हो चुके हैं, लेकिन इन मुद्दों पर कोई ठोस नीति दस्तावेज़ या दीर्घकालिक रोडमैप सामने नहीं आता। यह स्पष्ट नीति विहीनता बहुजन समाज के उस हिस्से को भ्रमित कर रही है, जो अपने भविष्य को लेकर बेचैन है।

और सबसे अंत में आंदोलन - जो किसी भी सामाजिक राजनैतिक चेतना को जीवंत बनाता है - वह पूरी तरह से निष्क्रिय होता जा रहा है। बहुजन राजनीति अब न तो सड़कों पर संघर्ष करती दिखाई देती है, न ही संवैधानिक मुद्दों को लेकर जनचेतना अभियान चलाती है। विरोध प्रदर्शन, सत्याग्रह, जनसभा, संवाद यात्रा जैसे कार्यक्रम अब लगभग समाप्त हो चुके हैं, जबकि दूसरी ओर दक्षिणपंथी ताकतें अपने विमर्श को लगातार गाँव-गाँव में फैला रही हैं।

इस स्थिति को पलटने के लिए ज़रूरी है कि बहुजन राजनीति केवल चुनावी समीकरणों पर निर्भर रहना छोड़कर पुनः संगठन को जीवित करे, नीति निर्माण में जनभागीदारी को शामिल करे, और ज़मीनी आंदोलन को पुनर्जीवित करे। कांशीराम की राजनैतिक विरासत का यही सार था - विचारधारा, संरचना और संघर्ष का त्रिभुज। जब तक यह संतुलन बहाल नहीं होता, तब तक बहुजन समाज सत्ता के गलियारों से लगातार दूर होता जाएगा।

भविष्य की रणनीति: समावेशी नेतृत्व और विचारधारा की वापसी

बहुजन राजनीति के पुनर्जीवन की दिशा में सबसे निर्णायक भूमिका उस “भविष्य की रणनीति” की होगी, जिसमें नेतृत्व की समावेशिता, विचारधारा की स्पष्टता, और संगठन की लोकतांत्रिक पुनर्रचना शामिल हो। कांशीराम का सपना केवल सरकार बनाना नहीं था, बल्कि एक वैकल्पिक शासन प्रणाली विकसित करना था - जिसमें बहुजन समाज न केवल सत्ता में हो, बल्कि सत्ता के चरित्र को ही बदलने वाला वर्ग बन जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति केवल चुनावी गठजोड़ या सवर्णों को साथ लाने से नहीं होगी, बल्कि उसे बहुजन आत्मबल, आत्मसम्मान और आत्मविचार से ही ताकत मिल सकती है।

सबसे पहले नेतृत्व की बात करें - वर्तमान बहुजन राजनीति नेतृत्व के अत्यधिक केंद्रीकरण और वंशवाद के संकट से जूझ रही है। कांशीराम का सपना था कि नेतृत्व विचारधारा से पैदा हो, न कि पदों की विरासत से। आज ज़रूरत है कि नेतृत्व में युवाओं, महिलाओं, ग्रामीण बुद्धिजीवियों, अल्पसंख्यकों और मजदूर संगठनों को वास्तविक भागीदारी दी जाए। नेतृत्व में लोकतंत्र लाना अब महज़ एक नैतिक मांग नहीं, बल्कि रणनीतिक अनिवार्यता है।

दूसरी सबसे अहम बात है - विचारधारा की वापसी। “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”, “शासक बनो, शासित नहीं”, “राजनैतिक सत्ता ही सामाजिक परिवर्तन की चाबी है” - ये सिर्फ नारे नहीं थे, बल्कि बहुजन राजनीति की दिशा निर्धारित करने वाले मूल मंत्र थे। आज इन विचारों को केवल पोस्टर और भाषणों तक सीमित कर दिया गया है। ज़रूरत है इन्हें नीतिगत दस्तावेजों, शिक्षा संस्थानों, सोशल मीडिया विमर्श और संगठनात्मक प्रशिक्षण में जीवंत किया जाए। विचारधारा को व्यवहार में उतारे बिना कोई भी आंदोलन लंबे समय तक नहीं टिक सकता।

तीसरी रणनीतिक ज़रूरत है - ग्रामीण और नगरीय बहुजन युवाओं को संवाद के केंद्र में लाना। कांशीराम ने डोर-टू-डोर, बूथ-स्तर पर कैडर खड़ा करके आंदोलन खड़ा किया था। आज जब सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं की सोच बन रही है, तब बहुजन राजनीति को डिजिटल कैडर और वैचारिक मंच बनाना होगा, जहाँ युवाओं को प्रशिक्षण, संवाद और नेतृत्व का अवसर मिले।

अगर बहुजन राजनीति समावेशी नेतृत्व, ज़मीनी संगठन, और विचारधारात्मक प्रतिबद्धता के इन तीन स्तंभों को फिर से खड़ा कर पाती है, तो यह केवल उत्तर प्रदेश में नहीं, बल्कि भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में एक निर्णायक शक्ति बन सकती है। वह समय दूर नहीं जब बहुजन समाज सत्ता में भागीदार नहीं, सत्ता का निर्माता बनेगा - कांशीराम की उस भविष्य दृष्टि की तरह, जिसमें संख्या बल केवल गणना नहीं, परिवर्तन का औज़ार होता है।

अध्याय 41: जातिगत शोषण के विरुद्ध संघर्ष और कांशीराम की भूमिका

भारतीय समाज में जातिगत शोषण और बहुजन समाज की स्थिति

भारत की सामाजिक संरचना में जाति व्यवस्था एक प्राचीन और गहराई से जड़ें जमाए हुए तत्व रही है, जिसने सदियों से समाज को ऊँच-नीच के खाँचों में बाँट दिया। यह व्यवस्था न केवल धार्मिक ग्रंथों द्वारा मान्यता प्राप्त थी, बल्कि इसे सामाजिक मान्यताओं और आचरण संहिताओं के माध्यम से निरंतर पोषित किया गया। बहुजन समाज, विशेषकर अनुसूचित जातियों, पिछड़ों और आदिवासियों को इस व्यवस्था में सबसे निम्न पायदान पर रखा गया, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रगति अवरुद्ध हो गई। स्वतंत्रता के बाद भारत का संविधान भले ही अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव को समाप्त करने की घोषणा करता है, लेकिन व्यवहारिक धरातल पर सामाजिक बहिष्कार, भेदभावपूर्ण व्यवहार, और संसाधनों से वंचित रखने की प्रवृत्ति अभी भी गहरे रूप में मौजूद है। सरकारी नौकरियों, शिक्षा और राजनैतिक प्रतिनिधित्व में भी यह असमानता दीर्घकाल तक बनी रही, जिससे बहुजन समाज की स्थिति सुधरने में समय लगा। रिपोर्टों और सामाजिक अध्ययन जैसे 'सच्चर कमेटी रिपोर्ट' और 'राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो' के आंकड़े स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि जातिगत हिंसा, भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार आज भी समाज के कई हिस्सों में जारी है।

डॉ. अंबेडकर से प्रेरित कांशीराम का जातिगत शोषण के खिलाफ आंदोलन

कांशीराम ने डॉ. भीमराव अंबेडकर की विचारधारा को न केवल आत्मसात किया, बल्कि उसे व्यापक सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन का स्वरूप दिया। डॉ. अंबेडकर के सिद्धांत-शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो-कांशीराम के राजनैतिक दर्शन की आधारशिला बने। उन्होंने महसूस किया कि केवल संवैधानिक प्रावधानों से जातिगत शोषण समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि समाज में सत्ता और संसाधनों पर समान अधिकार न हो। उन्होंने बहुजन समाज को यह समझाने का प्रयास किया कि जब तक वे राजनैतिक रूप से सक्रिय नहीं होंगे, तब तक उन्हें बराबरी का स्थान नहीं मिल सकता। कांशीराम ने अंबेडकर के आंदोलन को आगे बढ़ाते हुए सत्ता में भागीदारी को सामाजिक न्याय प्राप्ति का केंद्रबिंदु बनाया। उन्होंने यह विचार दृढ़ता से रखा कि सत्ता की चाबी जिसके हाथ में होती है, वही समाज की दिशा तय करता है। इसलिए उन्होंने बहुजन समाज को राजनीति में सक्रिय होने और सत्ता हासिल करने की ओर उन्मुख किया।

जातिगत शोषण को समाप्त करने के लिए कांशीराम की रणनीति

कांशीराम ने जातिगत भेदभाव के विरुद्ध बहु-आयामी रणनीति अपनाई जिसमें शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और राजनैतिक प्रतिनिधित्व को मुख्य आयाम माना गया। सबसे पहले उन्होंने बहुजन समाज को जागरूक किया कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा वे अपने अधिकारों के प्रति सजग हो सकते हैं और सामाजिक असमानता को चुनौती दे सकते हैं। उन्होंने यह भी बार-बार स्पष्ट किया कि अगर समाज शिक्षित नहीं होगा, तो वह सदैव शोषण का शिकार बना रहेगा। दूसरी रणनीति थी

आर्थिक सशक्तिकरण। कांशीराम ने सरकारी नौकरियों और आरक्षण व्यवस्था को सामाजिक न्याय का माध्यम माना और इसे सुनिश्चित करने के लिए लगातार आंदोलन किए। उनका स्पष्ट मत था कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना सामाजिक गरिमा की कल्पना अधूरी है। तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण रणनीति थी राजनैतिक भागीदारी। उन्होंने बार-बार कहा कि केवल सत्ता में आकर ही बहुजन समाज अपने हकों की रक्षा कर सकता है। उनका आंदोलन सत्ता की प्राप्ति को सामाजिक क्रांति की कुंजी मानता था।

BAMCEF और DS4: जातिगत शोषण के खिलाफ संगठन निर्माण

कांशीराम ने केवल राजनैतिक दल बनाने तक खुद को सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने जातिगत भेदभाव के विरुद्ध संगठनों की श्रृंखला खड़ी की। वर्ष 1978 में उन्होंने BAMCEF की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था- सरकारी नौकरियों में कार्यरत बहुजन वर्ग के कर्मचारियों को सामाजिक रूप से संगठित करना ताकि वे अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी समझते हुए निचले स्तर पर कार्य कर रहे समाज के लिए आवाज़ उठा सकें। BAMCEF ने धीरे-धीरे एक वैचारिक मंच का रूप ले लिया। इसके बाद, 1981 में DS4 की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य बहुजन समाज के युवाओं और शोषित वर्गों को सामाजिक चेतना और आत्मसम्मान के लिए प्रेरित करना था। DS4 ने नारे दिए-“ब्राह्मण, बनिया, ठाकुर छोड़, बाकी सब हैं DS4”-जो शोषण के विरुद्ध एकजुटता और आत्मसम्मान का प्रतीक बने। अंततः 1984 में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना हुई, जिसे कांशीराम ने राजनैतिक सत्ता प्राप्ति का मंच घोषित किया। उन्होंने

स्पष्ट कर दिया कि BAMCEF और DS4 सामाजिक चेतना के मंच हैं, जबकि BSP सत्ता में हिस्सेदारी सुनिश्चित करने का उपकरण है।

जातिगत शोषण के खिलाफ BSP की राजनैतिक लड़ाई

BSP ने अपने राजनैतिक अभियान की शुरुआत जातिगत शोषण और सामाजिक न्याय के मुद्दों पर आधारित की। पार्टी ने न केवल चुनावी राजनीति की भाषा बदली, बल्कि सत्ता को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाया। कांशीराम और बाद में मायावती के नेतृत्व में पार्टी ने शोषित समुदायों के अधिकारों के लिए सड़कों से लेकर विधानसभाओं तक संघर्ष किया। BSP ने समय-समय पर केंद्र और राज्यों की सरकारों को अनुसूचित जातियों और अन्य वंचित वर्गों के लिए आरक्षण, अत्याचार निवारण कानूनों की कड़ी निगरानी, और सामाजिक कल्याण योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु बाध्य किया। BSP के चुनावी घोषणापत्रों और राजनैतिक भाषणों में जाति उत्पीड़न, आर्थिक गैरबराबरी, और राजनैतिक बहिष्कार को समाप्त करने की स्पष्ट प्रतिबद्धता दिखाई देती रही है।

जातिगत शोषण के खिलाफ कांशीराम की दीर्घकालिक दृष्टि

कांशीराम का मानना था कि केवल आंदोलनकारी राजनीति से समाज की दशा नहीं बदलती, जब तक कि उसे सत्ता में स्थान न मिले। उन्होंने बहुजन समाज के लिए एक दीर्घकालिक राजनैतिक खाका खींचा जिसमें संगठनात्मक विस्तार, वैचारिक स्पष्टता, और राजनैतिक स्वायत्तता को प्राथमिकता दी गई। कांशीराम ने बहुजन समाज को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए हर स्तर पर संघर्ष किया-चाहे वह बौद्धिक विमर्श हो, संगठनात्मक निर्माण हो, या सत्ता की सीढ़ियों तक पहुँचने की रणनीति।

उन्होंने बार-बार कहा कि जब तक समाज खुद अपने लिए खड़ा नहीं होगा, तब तक कोई दूसरा उसका उद्धार नहीं कर सकता। कांशीराम का जीवन जातिगत शोषण के विरुद्ध निरंतर संघर्ष का प्रतीक बन गया, जिसने लाखों लोगों को न केवल प्रेरित किया, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में संगठित भी किया। उनकी सोच, संगठन निर्माण की रणनीति और बहुजन एजेंडे ने भारतीय राजनीति में एक नई धारा की नींव रखी।

अध्याय 42:

अन्य बहुजन नेताओं जैसे जगजीवन राम से मतभेद और कांशीराम की स्वतंत्र राजनैतिक धारा

भारतीय बहुजन राजनीति में जगजीवन राम और कांशीराम की विचारधाराएँ

भारतीय बहुजन राजनीति में डॉ. भीमराव अंबेडकर के बाद कई बड़े नेता उभरे, जिनमें जगजीवन राम और कांशीराम दो प्रमुख नाम थे। दोनों ने अपने-अपने तरीके से समाज की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति को सुधारने का प्रयास किया, लेकिन उनकी विचारधाराओं और रणनीतियों में बड़ा अंतर था। जगजीवन राम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़े रहे और 1952 से 1979 तक केंद्र सरकार में मंत्री पद पर कार्यरत रहे। वे गांधीवादी राजनीति से प्रभावित थे और मुख्यधारा की राजनीति में रहकर समाज के उत्थान का प्रयास करते रहे। उनका मानना था कि संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों के माध्यम से ही स्थायी परिवर्तन लाया जा सके। इसके विपरीत, कांशीराम ने एक स्वतंत्र राजनैतिक आंदोलन की नींव रखी और समाज को सत्ता में वास्तविक भागीदारी दिलाने की रणनीति अपनाई। उनका मानना था कि जब तक बहुजन समाज अपने दम पर सत्ता में नहीं आएगा, तब तक उसकी स्थिति में कोई सार्थक बदलाव नहीं होगा।

कांशीराम और जगजीवन राम के बीच प्रमुख मतभेद

दोनों नेताओं के बीच सबसे बड़ा मतभेद उनकी कार्यशैली को लेकर था। जगजीवन राम सत्ता में रहते हुए संवैधानिक तरीकों से समाज की बेहतरी के लिए काम करते रहे, जबकि कांशीराम ने स्वतंत्र राजनैतिक ताकत विकसित करने को प्राथमिकता दी। जगजीवन राम कांग्रेस के भीतर रहकर सामाजिक सुधारों पर जोर देते रहे, जबकि कांशीराम ने स्वतंत्र राजनैतिक आंदोलन खड़ा करने पर ध्यान दिया। उन्होंने बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की, ताकि समाज की राजनैतिक ताकत को संगठित किया जा सके। एक ओर जहाँ जगजीवन राम व्यवस्था के भीतर रहकर परिवर्तन लाने की सोच रखते थे, वहीं कांशीराम व्यवस्था के बाहर से एक वैकल्पिक ताकत बनाकर उसे चुनौती देने में विश्वास रखते थे।

आरक्षण नीति पर विचार

जगजीवन राम ने सरकारी नौकरियों और शिक्षा में आरक्षण लागू करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका मानना था कि आरक्षण एक ऐसा साधन है जिससे समाज को आगे बढ़ने का अवसर मिल सकता है। उन्होंने आरक्षण को बहुजन समाज के सामाजिक और आर्थिक विकास का मार्ग बताया। दूसरी ओर, कांशीराम का मानना था कि आरक्षण केवल अस्थायी समाधान है। उनका लक्ष्य था कि बहुजन समाज को सत्ता में सीधा प्रतिनिधित्व मिले, जिससे वे अपने अधिकारों और नीतियों को खुद निर्धारित कर सकें। कांशीराम का दृष्टिकोण दीर्घकालिक था – वे केवल अवसर की बात नहीं करते थे, बल्कि सत्ता की संरचना बदलने की बात करते थे।

कांशीराम की राजनीति का नया मॉडल

कांशीराम ने एक नए राजनैतिक मॉडल की परिकल्पना की, जिसमें उन्होंने “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय” के सिद्धांत को अपनाया। उन्होंने समाज के साथ-साथ पिछड़े वर्गों और अल्पसंख्यकों को भी अपने आंदोलन में शामिल किया। उनका आंदोलन केवल राजनैतिक नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की एक व्यापक योजना का हिस्सा था। उन्होंने BAMCEF और DS4 जैसे संगठनों के माध्यम से राजनैतिक जागरूकता बढ़ाने का कार्य किया। इसके विपरीत, जगजीवन राम मुख्य रूप से कांग्रेस के मंच से सामाजिक सुधारों के लिए प्रयासरत रहे, और उन्होंने कभी वैकल्पिक संगठनों या आंदोलन का नेतृत्व नहीं किया। कांशीराम ने राजनीति को बहुजन समाज के आत्म-सशक्तिकरण का औजार बनाया।

कांग्रेस की नीतियों की आलोचना और वैकल्पिक दृष्टिकोण

कांशीराम का मानना था कि कांग्रेस और अन्य राष्ट्रीय दलों ने बहुजन समाज को केवल वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया। उन्होंने कहा कि जब तक समाज की अपनी स्वतंत्र राजनैतिक ताकत नहीं होगी, तब तक वे शोषण का शिकार होते रहेंगे। कांशीराम ने साफ शब्दों में कहा कि कांग्रेस जैसे दलों की नीतियाँ केवल दिखावटी परिवर्तन लाती हैं, जबकि असली सत्ता और निर्णय का अधिकार हमेशा सवर्ण नेतृत्व के पास रहता है। उन्होंने अपने समर्थकों से आह्वान किया कि वे किसी भी राष्ट्रीय दल के अधीन न रहें और एक सशक्त राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरें। यह दृष्टिकोण उन्हें जगजीवन राम से पूरी तरह भिन्न बनाता है, जो हमेशा कांग्रेस के ढाँचे के भीतर काम करते रहे।

BSP का उभार और राजनीति में परिवर्तन

1990 के दशक में जब कांग्रेस कमजोर हुई, तब BSP का उभार तेज हुआ। कांशीराम ने घोषणा की कि अब समाज केवल वोट बैंक नहीं रहेगा, बल्कि सत्ता का वास्तविक भागीदार बनेगा। BSP की सफलता ने यह साबित कर दिया कि कांशीराम की राजनीति सही थी। उन्होंने भारतीय राजनीति में एक नया राजनैतिक परिदृश्य खड़ा किया, जिसमें बहुजन समाज की स्वतंत्र पहचान बनी और सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित हुई। BSP ने केवल उत्तर प्रदेश में ही नहीं, बल्कि अन्य राज्यों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। यह परिदृश्य कांशीराम के नेतृत्व में बहुजन राजनीति के एक नए युग की शुरुआत थी, जो पूरी तरह स्वतंत्र, संगठित और उद्देश्यपूर्ण थी।

अन्य नेताओं से कांशीराम के मतभेद और BSP का भविष्य

कांशीराम का मानना था कि उनकी पार्टी को स्वतंत्र रूप से सत्ता में आना चाहिए और किसी अन्य राजनैतिक दल पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। उनका यह दृष्टिकोण BSP की राजनीति के लिए निर्णायक साबित हुआ और उनके नेतृत्व में यह एक सशक्त राजनैतिक दल बना। उन्होंने बार-बार कहा कि “हम किसी की बैसाखी नहीं, अपनी ताकत से चलना चाहते हैं।” कांशीराम का यह आत्मनिर्भरता का सिद्धांत उन्हें जगजीवन राम सहित अन्य बहुजन नेताओं से अलग करता है। BSP का भविष्य, कांशीराम के अनुसार, तभी सुरक्षित होगा जब वह नीतिगत और संगठनात्मक रूप से स्वतंत्र रहेगी। उन्होंने राजनीति को बहुजन मुक्ति का उपकरण बनाया, न कि सत्ता प्राप्ति मात्र का साधन।

अध्याय 43:

आरक्षण नीति पर कांशीराम का दृष्टिकोण

भारत में आरक्षण नीति की शुरुआत बहुजन वर्ग, पिछड़े वर्गों और अन्य वंचित समुदायों के सामाजिक और आर्थिक उत्थान के उद्देश्य से हुई थी। यह केवल एक सरकारी नीतिगत प्रयास नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय की दिशा में क्रांतिकारी कदम था। कांशीराम ने इसे केवल विधायी अधिकार या संवैधानिक लाभ के रूप में नहीं देखा, बल्कि इसे एक व्यापक सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन के रूप में परिभाषित किया। उनका मानना था कि आरक्षण समाज में असमानता की सदियों पुरानी जड़ों को काटने का एक उपाय है, लेकिन यह तभी सार्थक होगा जब इसके साथ राजनैतिक भागीदारी और सामाजिक चेतना भी जुड़ी हो।

भारत में आरक्षण नीति की पृष्ठभूमि

भारतीय आरक्षण नीति का ऐतिहासिक आधार 1932 के पूना पैक्ट में मिलता है, जो डॉ. भीमराव अंबेडकर और महात्मा गांधी के बीच हुआ एक ऐतिहासिक समझौता था। अंबेडकर चाहते थे कि बहुजन समाज को पृथक निर्वाचिका मिले ताकि वे स्वतंत्र रूप से अपने नेताओं को चुन सकें, लेकिन गांधी के विरोध और उपवास के कारण अंततः एक समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत दलित वर्ग को अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित सीटें दी गईं। इसी समझौते से भारत में राजनैतिक और शैक्षिक आरक्षण की नींव पड़ी। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के माध्यम से सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए गए। बाद में 1990 में मंडल आयोग की

सिफारिशों के आधार पर अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को भी आरक्षण का लाभ दिया गया, जिससे सामाजिक न्याय की अवधारणा और अधिक मजबूत हुई।

कांशीराम की आरक्षण नीति पर राय और अंबेडकरवादी दृष्टिकोण

कांशीराम ने डॉ. अंबेडकर के विचारों को आधुनिक राजनैतिक संदर्भ में पुनः परिभाषित किया। उनका मानना था कि आरक्षण केवल एक प्रशासनिक उपाय नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय और सत्ता में सहभागिता का मार्ग है। उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि अगर बहुजन समाज को वास्तव में सशक्त बनाना है, तो उन्हें आरक्षण से आगे बढ़कर सत्ता में भागीदारी की दिशा में संघर्ष करना होगा। उनके लिए आरक्षण का उद्देश्य केवल नौकरियों में प्रतिनिधित्व नहीं था, बल्कि यह बहुजन समाज के आत्मसम्मान, पहचान और सशक्तिकरण की बुनियाद थी। अंबेडकर की भांति उन्होंने भी आरक्षण को अस्थायी उपाय माना और इसे सत्ता प्राप्ति तक विस्तार देने की आवश्यकता बताई।

कांशीराम का आरक्षण को “सत्ता की चाबी” से जोड़ना

कांशीराम ने कई बार कहा कि “सिर्फ आरक्षण से बहुजन समाज की स्थिति नहीं बदलेगी, उन्हें सत्ता की चाबी अपने हाथ में लेनी होगी।” उनके अनुसार आरक्षण का सबसे बड़ा उद्देश्य राजनैतिक ताकत को बहुजन समाज के पक्ष में स्थानांतरित करना होना चाहिए। जब तक बहुजन वर्ग खुद नीति निर्धारण की भूमिका में नहीं आएगा, तब तक सामाजिक अन्याय बना रहेगा। उन्होंने आरक्षण को “राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने की सीढ़ी” बताया और बार-बार इस बात पर बल दिया कि राजनैतिक प्रतिनिधित्व ही अन्य क्षेत्रों में समानता सुनिश्चित कर

सकता है। इसी सोच के तहत उन्होंने BAMCEF, DS4 और बाद में BSP की स्थापना की। उनके आंदोलनों का लक्ष्य सिर्फ आरक्षण नहीं बल्कि शासन में भागीदारी था।

आरक्षण के विस्तार के लिए कांशीराम की मांगें

कांशीराम ने आरक्षण को केवल सरकारी क्षेत्र तक सीमित रखने की नीति की तीव्र आलोचना की। उन्होंने कहा कि अगर सामाजिक असमानता को वास्तव में मिटाना है तो आरक्षण को निजी क्षेत्र, सार्वजनिक उपक्रमों, और उच्च शिक्षा संस्थानों जैसे IIT, IIM, AIIMS आदि में भी लागू किया जाना चाहिए। इसके साथ ही उन्होंने पदोन्नति में आरक्षण, महिला बहुजन वर्ग के लिए विशेष अवसर, और संविदा कर्मचारियों में भी आरक्षण की आवश्यकता बताई। उनका यह तर्क था कि यदि आर्थिक शक्ति और संसाधनों तक पहुंच सुनिश्चित करनी है, तो आरक्षण को हर उस क्षेत्र में लागू करना होगा जहाँ निर्णय लेने की शक्ति केंद्रित है।

मंडल आयोग और कांशीराम की प्रतिक्रिया

मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने पर कांशीराम ने इसे एक ऐतिहासिक उपलब्धि बताया, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि यह सिर्फ एक प्रारंभिक कदम है। उन्होंने मंडल आयोग की सिफारिशों को सामाजिक न्याय के आंदोलन का हिस्सा माना और कहा कि बहुजन समाज को अब और अधिक अधिकारों के लिए संगठित होकर लड़ना होगा। कांशीराम ने मंडल आयोग की आड़ में हो रही राजनैतिक हेराफेरी की आलोचना भी की और यह स्पष्ट किया कि केवल घोषणा या नीति बनाना काफी नहीं, बल्कि उसका प्रभावी क्रियान्वयन ज़रूरी है। उन्होंने

कई बार यह भी कहा कि मंडल आयोग को लागू करना जितना ज़रूरी था, उतना ही ज़रूरी है कि उसे ईमानदारी से जमीन पर उतारा जाए।

आरक्षण विरोधी आंदोलनों पर कांशीराम की प्रतिक्रिया

मंडल आयोग लागू होने के बाद उच्च वर्गों के छात्रों और संगठनों द्वारा आरक्षण के विरोध में हिंसक आंदोलन हुए। इस पर कांशीराम ने तीखा विरोध जताया और कहा कि ये आंदोलन दरअसल सामाजिक न्याय के खिलाफ हैं और संविधान को चुनौती देने वाले हैं। उन्होंने ऐसे आंदोलनों को “मनुवादी मानसिकता” का प्रतिबिंब कहा और अपने समर्थकों से अपील की कि वे संगठित होकर इन मानसिकताओं का लोकतांत्रिक और वैचारिक जवाब दें। उन्होंने कहा कि आरक्षण विरोधी आंदोलन दरअसल बहुजन समाज को सत्ता और सम्मान से वंचित रखने का प्रयास हैं। इसके विरुद्ध उन्होंने कई जनसभाएँ और रैलियाँ आयोजित कीं और यह स्पष्ट किया कि आरक्षण विरोध पर मौन रहना मतलब अपने अधिकारों से समझौता करना है।

आरक्षण का राजनीतिकरण और कांशीराम का रुख

कांशीराम ने बार-बार यह बात दोहराई कि कई राजनैतिक दल आरक्षण का उपयोग सिर्फ चुनावी लाभ के लिए करते हैं। वे सार्वजनिक मंचों पर तो आरक्षण के पक्ष में बोलते हैं, लेकिन व्यवहार में इसे गंभीरता से लागू नहीं करते। उन्होंने कांग्रेस, भाजपा सहित अन्य दलों की आलोचना करते हुए कहा कि यदि वे वास्तव में बहुजन समाज के हितैषी होते, तो निजी क्षेत्र और उच्च शिक्षा में आरक्षण की पहल कर चुके होते। उन्होंने अपने समर्थकों से अपील की कि वे ऐसे दलों के छलावे में न आएँ और अपनी राजनैतिक ताकत को स्वतंत्र रूप से विकसित करें।

आरक्षण पर कांशीराम की दीर्घकालिक नीति

कांशीराम का मानना था कि आरक्षण एक अस्थायी साधन है, जिसका अंतिम लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है जहाँ आरक्षण की आवश्यकता ही समाप्त हो जाए। उन्होंने कहा कि जब तक बहुजन वर्ग शिक्षित नहीं होगा, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बनेगा, और राजनैतिक रूप से सशक्त नहीं होगा, तब तक आरक्षण की जरूरत बनी रहेगी। उन्होंने यह भी कहा कि “हमारा अंतिम लक्ष्य ऐसा समाज है जहाँ हर व्यक्ति को योग्यता के आधार पर समान अवसर मिले, और कोई भी जाति, धर्म या वर्ग किसी से पीछे न रहे।” इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने जीवन भर काम किया और बहुजन समाज को चेताया कि वे आरक्षण को संघर्ष की शुरुआत समझें, अंत नहीं।

अध्याय 44:

बहुजनों के आर्थिक सशक्तिकरण की आवश्यकता और कांशीराम की दृष्टि

बहुजनों की आर्थिक स्थिति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज में बहुजन समुदाय की आर्थिक स्थिति ऐतिहासिक रूप से शोषण और वंचना की उपज रही है। परंपरागत जाति व्यवस्था के अंतर्गत उन्हें मुख्यतः श्रम आधारित कार्यों तक सीमित रखा गया, जबकि भूमि, व्यापार और प्रशासन जैसे संसाधनों और संस्थानों पर उन्हें अधिकार नहीं मिला। सामाजिक भेदभाव ने बहुजनों को शैक्षिक, व्यावसायिक और आर्थिक अवसरों से वंचित किया। खेती, शिल्प, और मजदूरी जैसे कार्यों में संलग्न रहने के बावजूद उन्हें आर्थिक सुरक्षा और स्वामित्व से दूर रखा गया। स्वतंत्रता के बाद जब भारत में भूमि सुधार की नीतियाँ और आरक्षण व्यवस्था लागू हुई, तो ऐसा प्रतीत हुआ कि अब बहुजन वर्ग को सामाजिक न्याय मिलेगा, लेकिन इन प्रयासों के लाभ का वितरण असमान रहा। अधिकांश भूमि सुधारों का लाभ संपन्न जातियों ने उठाया और आरक्षण की सीमित नौकरियों ने केवल एक छोटे वर्ग को ही ऊपर उठाया, जिससे बहुजनों की व्यापक आर्थिक स्थिति में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आ सका।

कांशीराम का आर्थिक सशक्तिकरण का दृष्टिकोण

कांशीराम का मानना था कि बहुजन समाज की वास्तविक मुक्ति केवल राजनैतिक सत्ता प्राप्ति से नहीं, बल्कि आर्थिक आत्मनिर्भरता से संभव है।

उनका स्पष्ट मत था कि जब तक समुदाय के पास खुद की आर्थिक शक्ति नहीं होगी, तब तक वह न तो समाज में सम्मान प्राप्त कर सकता है और न ही अपनी राजनैतिक दिशा को स्वयं निर्धारित कर सकता है। उन्होंने बार-बार यह रेखांकित किया कि सरकारी नौकरी एक सीमित साधन है और बहुजनों को वैकल्पिक आर्थिक रास्तों की तलाश करनी होगी। कांशीराम ने स्वरोजगार, छोटे उद्योग, और निजी उद्यमिता को बहुजनों के लिए आर्थिक क्रांति का माध्यम बताया। उन्होंने बहुजन युवाओं को केवल नौकरी के पीछे भागने के बजाय स्वयं उद्यमी बनने के लिए प्रेरित किया और कहा कि समुदाय को अब नौकरी मांगने वाला नहीं बल्कि नौकरी देने वाला बनना होगा।

भूमि सुधार और आर्थिक स्वतंत्रता

भारतीय सामाजिक संरचना में भूमि स्वामित्व केवल आजीविका का ही नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा और शक्ति का भी स्रोत रहा है। भूमि का वितरण सदैव उच्च जातियों के पक्ष में झुका रहा, जिससे बहुजन वर्ग भूमिहीन बना रहा। स्वतंत्रता के बाद भूमि सुधार के प्रयासों के बावजूद, ये नीतियाँ उन तक नहीं पहुँच सकीं जिन्हें इनकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। कांशीराम का स्पष्ट मत था कि बहुजन वर्ग को भूमि अधिकार मिलना चाहिए, तभी वे अपनी आजीविका पर नियंत्रण स्थापित कर सकेंगे और समाज में आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि केवल सामाजिक न्याय की बात करने से कुछ नहीं होगा, जब तक जमीन और संसाधनों पर बहुजन समाज का नियंत्रण नहीं होगा। उनके नेतृत्व में सरकारों ने कुछ योजनाएँ शुरू कीं, जैसे भूमिहीनों को जमीन का आवंटन और हाउसिंग स्कीम्स, लेकिन उनका प्रभाव सीमित रहा और जमीनी हकीकत में भारी खाई बनी रही।

सरकारी नौकरियों में आरक्षण और उसकी सीमाएँ

कांशीराम ने सरकारी नौकरियों में आरक्षण को बहुजन समाज की आर्थिक उन्नति के लिए एक सकारात्मक कदम माना, लेकिन उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि यह समाधान सीमित और असमान था। उन्होंने कहा कि चूंकि सरकारी नौकरियों की संख्या सीमित है और प्रतिस्पर्धा अत्यधिक है, इसलिए आरक्षण का लाभ केवल कुछ प्रतिशत लोगों तक ही सीमित रह गया है। इसके अतिरिक्त, नौकरियों में आरक्षण के बाद भी बहुजन समाज की बड़ी आबादी बेरोजगार बनी रही। उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि केवल सरकारी नौकरियों को आधार बनाकर समुदाय को आर्थिक रूप से सशक्त नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार, यदि बहुजन समाज को वास्तव में आत्मनिर्भर बनाना है, तो उन्हें स्वरोजगार, व्यापार, और अन्य निजी संसाधनों के क्षेत्र में प्रवेश करना होगा, जहाँ वे अपनी पहचान और क्षमता के बल पर खड़े हो सकें।

निजी क्षेत्र में आरक्षण की माँग

कांशीराम का यह मत था कि अगर सरकारी क्षेत्र में आरक्षण संभव है, तो निजी क्षेत्र में भी समान अवसर दिए जाने चाहिए। उन्होंने तर्क दिया कि देश में अधिकांश रोजगार निजी क्षेत्र में उत्पन्न हो रहे हैं, और यदि वहाँ बहुजनों की भागीदारी नहीं सुनिश्चित की गई, तो आरक्षण की संकल्पना अधूरी रह जाएगी। उन्होंने यह भी कहा कि कॉर्पोरेट क्षेत्र में सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) केवल एक औपचारिकता बन कर रह गया है, जब तक उसमें सामाजिक न्याय का वास्तविक अर्थ न जोड़ा जाए। उन्होंने सरकारों से माँग की कि वे निजी क्षेत्र में आरक्षण को अनिवार्य करें, और उद्यमिता के लिए आसान ऋण, प्रशिक्षण, और मार्केट एक्सेस की

व्यवस्था करें। हालांकि, निजी क्षेत्र ने इस प्रस्ताव का तीव्र विरोध किया और सरकारें राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव में इसे लागू नहीं कर सकीं।

उद्यमिता और स्वरोजगार को बढ़ावा देने के प्रयास

कांशीराम ने बहुजन युवाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता की राह पर चलने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने बार-बार यह कहा कि जब तक बहुजन समुदाय अपनी आर्थिक गतिविधियों का संचालन स्वयं नहीं करेगा, तब तक वह मुख्यधारा में भागीदारी नहीं कर सकेगा। इसके लिए उन्होंने वित्तीय संस्थानों और सरकारी योजनाओं की पुनर्रचना की मांग की। कई राज्यों में वित्त एवं विकास निगम की स्थापना की गई, ताकि बहुजन उद्यमियों को सस्ती दर पर ऋण और तकनीकी सहायता उपलब्ध हो सके। स्वरोजगार योजनाएँ चलाई गईं, जिनका उद्देश्य था कि बहुजन युवक अपनी रुचि और कौशल के अनुसार अपना व्यवसाय शुरू करें और आत्मनिर्भर बनें। हालांकि इन योजनाओं का कार्यान्वयन कई जगहों पर भ्रष्टाचार और जटिल प्रक्रियाओं के कारण प्रभावी नहीं हो पाया।

शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता का संबंध

कांशीराम का यह अडिग विश्वास था कि शिक्षा ही आर्थिक सशक्तिकरण की पहली शर्त है। उन्होंने बहुजन समाज को उच्च शिक्षा, तकनीकी कौशल, और व्यावसायिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। उनका कहना था कि यदि समाज को डॉक्टर, इंजीनियर, अधिवक्ता और व्यवसायी मिलेंगे, तभी वह आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बन पाएगा। सरकारों ने भी छात्रवृत्तियाँ, विशेष कोचिंग योजनाएँ, और तकनीकी प्रशिक्षण के माध्यम से बहुजन युवाओं को उच्च शिक्षा में आगे बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन फिर भी समाज के भीतर व्याप्त भेदभाव,

संसाधनों की कमी, और शैक्षिक संस्थानों में सामाजिक दूरी ने इन प्रयासों की गति को धीमा किया।

कांशीराम का संदेश और भविष्य की राह

कांशीराम का अंतिम और स्पष्ट संदेश यही था कि बहुजन समाज को केवल आरक्षण के सहारे अपनी मुक्ति की राह नहीं तलाशनी चाहिए। उन्होंने कहा कि समुदाय को अपनी आर्थिक ताकत स्वयं बनानी होगी। शिक्षा, उद्यमिता, और राजनैतिक भागीदारी तीन ऐसे स्तंभ हैं जिनके बिना सामाजिक न्याय की इमारत अधूरी है। उन्होंने बार-बार यह कहा कि बहुजन समाज को 'नौकरी खोजने वाला' नहीं, बल्कि 'नौकरी देने वाला' बनना चाहिए। आर्थिक आत्मनिर्भरता के बिना सामाजिक सम्मान और राजनैतिक प्रभाव एक भ्रम ही रहेगा। कांशीराम के विचार आज भी बहुजन आंदोलन के लिए मार्गदर्शक हैं। उनके दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि जब तक बहुजन समाज स्वयं अपनी आर्थिक रीढ़ मजबूत नहीं करेगा, तब तक वह न तो जातीय अन्याय से उबर सकेगा और न ही लोकतांत्रिक सत्ता में बराबरी से भागीदार बन पाएगा।

अध्याय 45: सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान आंदोलन में कांशीराम की भूमिका

सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान का विचार: ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और कांशीराम की दृष्टि

भारतीय समाज हजारों वर्षों से वर्ण और जाति व्यवस्था की जकड़ में रहा है, जिसमें सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान जैसे मूल्य केवल विशेष वर्गों तक सीमित रह गए थे। ब्राह्मणवादी सामाजिक ढांचे ने श्रमजीवी बहुजन समाज - जिनमें अनुसूचित जातियाँ, पिछड़ा वर्ग, आदिवासी और अल्पसंख्यक शामिल हैं - को सदियों तक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखा। इसी अन्यायपूर्ण ढांचे के विरुद्ध सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान की अवधारणाएँ एक प्रतिरोध के रूप में उभरीं, जिनकी नींव डॉ. भीमराव अंबेडकर और दक्षिण भारत में पेरियार रामास्वामी नायकर जैसे समाज सुधारकों ने रखी।

डॉ. अंबेडकर ने संविधान में सामाजिक न्याय को कानूनी स्वरूप दिया, और पेरियार ने सामाजिक बौद्धिक चेतना के स्तर पर ब्राह्मणवाद को चुनौती दी, लेकिन कांशीराम ने इन दोनों धाराओं को समाहित करते हुए उन्हें ज़मीनी स्तर पर राजनैतिक शक्ति में परिवर्तित किया। उन्होंने इस विचारधारा को केवल बौद्धिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे जनांदोलन में बदलकर बहुजन समाज को संगठित करने की प्रक्रिया आरंभ की। कांशीराम का मानना था कि सामाजिक न्याय तब तक अधूरा

रहेगा जब तक बहुजन समाज न केवल आत्म-सम्मान से भरपूर जीवन जिए, बल्कि सत्ता में उसकी निर्णायक भागीदारी भी सुनिश्चित हो।

उनकी दृष्टि में आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय एक-दूसरे से जुड़ी हुई अवधारणाएँ थीं। उनके अनुसार, आत्म-सम्मान वह मानसिक अवस्था है, जो व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाती है, और सामाजिक न्याय वह संरचनात्मक व्यवस्था है, जो उन अधिकारों की रक्षा करती है। कांशीराम ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि जब तक बहुजन समाज खुद को 'श्रेष्ठ' नहीं मानेगा, तब तक कोई भी शासन, व्यवस्था या संवैधानिक प्रावधान उन्हें समानता नहीं दिला सकेगा। उन्होंने आत्म-सम्मान को सामाजिक मुक्ति की पहली शर्त माना - एक ऐसी शर्त जो जातिगत गुलामी की मानसिकता को तोड़ती है।

इतिहास में जिन वर्गों को शूद्र या अछूत कहकर बहिष्कृत किया गया, उनके लिए आत्म-सम्मान पुनर्प्राप्त करना महज़ मनोवैज्ञानिक नहीं था, बल्कि सामाजिक अस्तित्व और राजनैतिक सशक्तिकरण का सवाल था। कांशीराम ने इसे केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं देखा, बल्कि उन्होंने आत्म-सम्मान को संगठित राजनैतिक दावे के रूप में प्रस्तुत किया - यानी जब तक बहुजन समाज अपनी संख्या के अनुपात में सत्ता में हिस्सेदार नहीं बनेगा, तब तक आत्म-सम्मान अधूरा रहेगा।

उन्होंने कहा, "सिर्फ सम्मान मत मांगो, उसे पाने की ताक़त भी पैदा करो।" यह ताक़त, उनके अनुसार, संगठन, संख्या बल और सत्ता की साझेदारी से आती है। उनके लिए आत्म-सम्मान कोई दया की वस्तु नहीं, बल्कि अधिकार की परिणति थी, जिसे पाने के लिए संघर्ष आवश्यक था। इसीलिए उन्होंने सामाजिक न्याय को केवल आरक्षण की बहस में सीमित

नहीं किया, बल्कि उसे शासन-प्रशासन, नीतियों के निर्माण, संसाधनों की पुनःवितरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान तक विस्तारित किया।

कांशीराम का यह दृष्टिकोण क्रांतिकारी था, क्योंकि उन्होंने सामाजिक न्याय को केवल कानूनी व्यवस्था का हिस्सा नहीं, बल्कि सत्ता संरचना के पुनर्गठन की परियोजना बना दिया। उनके नेतृत्व में सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान के प्रश्न सिर्फ वैचारिक मुद्दे नहीं रहे, बल्कि वे बहुजन राजनीति के केन्द्र में आ गए। उन्होंने कहा कि जब तक नीति बनाने वाला, कानून लागू करने वाला और संसाधनों का वितरण करने वाला व्यक्ति स्वयं बहुजन समाज से नहीं होगा, तब तक सामाजिक न्याय का कोई भी स्वरूप अधूरा रहेगा।

इस प्रकार, कांशीराम ने सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान को भारत की लोकतांत्रिक राजनीति में बहुजन मुक्ति का आधार बना दिया। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि सत्ता ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा सदियों के शोषण और अपमान का हिसाब बराबर किया जा सकता है - और इसके लिए ज़रूरी है कि बहुजन समाज आत्म-सम्मान के साथ संगठित होकर सत्ता में भागीदार बने।

डॉ. अंबेडकर और पेरियार से प्रेरित कांशीराम की सामाजिक न्याय की अवधारणा

कांशीराम की सामाजिक न्याय की अवधारणा उस ऐतिहासिक चेतना की परिणति थी, जो डॉ. भीमराव अंबेडकर और पेरियार ई.वी. रामासामी जैसे द्रविड़ आंदोलन के महान विचारकों की विचारधारा से गहराई से प्रभावित थी। हालांकि अंबेडकर और पेरियार दोनों ही सामाजिक अन्याय के विरुद्ध जमीनी संघर्ष और वैचारिक क्रांति के प्रतीक थे, लेकिन

कांशीराम ने उनके विचारों को एक नया राजनैतिक आयाम दिया और उसे व्यापक बहुजन समाज की चेतना और संगठन का आधार बनाया। डॉ. अंबेडकर ने अपने जीवन के संघर्षों के माध्यम से सामाजिक भेदभाव, छुआछूत और जातिगत असमानता को चुनौती दी, और शिक्षा, धर्म परिवर्तन तथा संविधान के माध्यम से बहुजन समाज को एक नई दिशा दी। वहीं पेरियार ने दक्षिण भारत में ब्राह्मणवादी वर्चस्व और पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक प्रबल वैचारिक क्रांति चलाई, जो नास्तिकता, आत्मसम्मान, और द्रविड़ अस्मिता पर आधारित थी।

कांशीराम ने इन दोनों महापुरुषों के विचारों का गहराई से अध्ययन किया और उन्हें अपनी सोच की बुनियाद बनाया, लेकिन उन्होंने इसे केवल वैचारिक सीमाओं में नहीं रखा, बल्कि उन्होंने सामाजिक न्याय की अवधारणा को ठोस राजनैतिक रणनीति और जनांदोलन में बदल दिया। अंबेडकर ने संविधान के माध्यम से न्याय की गारंटी दी, लेकिन कांशीराम ने यह महसूस किया कि संविधान की शक्ति तभी प्रभावी हो सकती है, जब वह समाज के सबसे वंचित तबकों के हाथ में सत्ता के रूप में पहुँचे। उन्होंने इस धारणा को जन्म दिया कि “राजनैतिक सत्ता ही सामाजिक परिवर्तन की कुंजी है,” और इसीलिए उन्होंने सामाजिक न्याय को केवल अधिकारों की मांग या संवैधानिक सुरक्षा तक सीमित न रखते हुए, उसे सत्ता-साझेदारी और प्रशासनिक नियंत्रण का साधन बनाया।

कांशीराम ने स्पष्ट कहा कि बहुजन समाज का आत्म-सम्मान और न्याय तभी सुरक्षित रहेगा, जब वह सत्ता-संरचनाओं में सीधे भागीदार होगा। उन्होंने यह चेतावनी दी कि यदि बहुजन समुदाय राजनैतिक निर्णय प्रक्रिया से बाहर रहेगा, तो सामाजिक न्याय केवल एक भाषण या

घोषणापत्र का विषय बनकर रह जाएगा। उन्होंने युवाओं को प्रेरित किया कि वे केवल वोट डालने तक सीमित न रहें, बल्कि चुनाव लड़ें, विधानसभाओं और संसद में पहुँचें और नीतियाँ बनाएं, क्योंकि वही सामाजिक न्याय का वास्तविक अर्थ है।

कांशीराम ने पेरियार के आत्म-सम्मान आंदोलन को उत्तर भारत के बहुजन समुदाय के लिए पुनर्परीभाषित किया। उन्होंने कहा कि आत्म-सम्मान केवल व्यक्तिगत अधिकारों से नहीं आता, बल्कि समाज के सामूहिक जागरण और संगठन से उत्पन्न होता है। यदि बहुजन समाज जातीय, धार्मिक या क्षेत्रीय आधार पर विभाजित रहेगा, तो आत्म-सम्मान की भावना केवल एक भ्रम बनकर रह जाएगी। उन्होंने पेरियार की नास्तिकता को राजनैतिक तर्कबुद्धि और अंबेडकर की संवैधानिक चेतना को जनसंगठन की रणनीति से जोड़कर, एक ऐसा सामाजिक आंदोलन निर्मित किया, जो भारत के सबसे वंचित वर्गों को सत्ता के केंद्र की ओर अग्रसर कर सके।

इस प्रकार कांशीराम की सामाजिक न्याय की अवधारणा अंबेडकर की संवैधानिक समानता, पेरियार की आत्म-सम्मान चेतना और अपनी राजनैतिक सांगठनिक दूरदर्शिता का संयुक्त रूप थी। उनके अनुसार सामाजिक न्याय का अर्थ था – बहुजन समाज की सत्ता में भागीदारी, उनके नेतृत्व की वैधता, उनके विचारों की नीति निर्धारण में भूमिका, और उनके आत्म-सम्मान की संस्थागत सुरक्षा। उन्होंने यह विचार स्थापित किया कि यदि न्याय की परिभाषा उन लोगों द्वारा तय की जाएगी, जो सदियों से बहुजनों को दबाते आए हैं, तो वह न्याय नहीं हो सकता। न्याय तभी साकार होगा, जब परिभाषा तय करने वाला स्वयं बहुजन समाज होगा।

कांशीराम द्वारा परिभाषित सामाजिक न्याय और सत्ता-साझेदारी की अनिवार्यता

कांशीराम के लिए सामाजिक न्याय कोई सैद्धांतिक विमर्श मात्र नहीं था, बल्कि यह एक जीवंत और निर्णायक राजनैतिक एजेंडा था, जो सीधे सत्ता के केंद्र से जुड़ा हुआ था। उनका मानना था कि जब तक बहुजन समाज सत्ता की बागडोर अपने हाथ में नहीं लेता, तब तक सामाजिक न्याय का कोई भी दावा खोखला और दिखावटी रहेगा। उन्होंने भारतीय लोकतंत्र की उस कड़वी सच्चाई को उजागर किया, जिसमें 'न्याय' की परिभाषा हमेशा उस वर्ग के हित में तय होती है, जिसके पास सत्ता होती है। कांशीराम ने बार-बार यह बात कही कि जब न्यायपालिका, नौकरशाही और नीति-निर्माण में बहुजन समाज का प्रतिनिधित्व नहीं होगा, तब तक उनकी समस्याएँ भी 'दूसरों की नजर' से देखी जाएँगी, और उसका हल भी उसी सोच से तैयार किया जाएगा, जो ऐतिहासिक रूप से उनके शोषण के लिए ज़िम्मेदार रही है।

उन्होंने बहुजन समाज को यह स्पष्ट रूप से समझाया कि सामाजिक न्याय केवल आरक्षण प्राप्त कर लेने से पूरा नहीं होता, बल्कि यह तभी सार्थक होता है जब बहुजन समाज शिक्षा, प्रशासन, न्यायपालिका और संसद जैसे सत्ता के सभी अंगों में निर्णायक भागीदारी सुनिश्चित कर ले। उन्होंने "पॉलिटिकल पॉवर इज द की टू ऑल सोशल चेंज" (राजनैतिक शक्ति ही सभी सामाजिक परिवर्तन की कुंजी है) का नारा केवल प्रेरक स्लोगन के तौर पर नहीं, बल्कि एक रणनीतिक दर्शन के रूप में स्थापित किया। इस नारे के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि यदि बहुजन समाज सत्ता के केंद्र में नहीं पहुँचेगा, तो सामाजिक परिवर्तन असंभव होगा और सामाजिक न्याय एक आदर्श कल्पना मात्र रह जाएगा।

कांशीराम के लिए सामाजिक न्याय की व्याख्या केवल अवसरों की समानता तक सीमित नहीं थी; वह इसे नीति-निर्माण की प्रक्रिया, बजट आवंटन, शैक्षणिक पाठ्यक्रम, सांस्कृतिक संस्थानों की संरचना और विधायी कार्यों तक विस्तारित करते थे। उन्होंने यह भी बताया कि जब बहुजन समाज स्वयं सत्ता में आता है, तो उनके अनुभव, पीड़ा और आकांक्षाएँ नीति निर्माण में परिलक्षित होती हैं। उदाहरण के लिए, यदि संसद में बहुजन प्रतिनिधि नहीं होंगे, तो उनके समुदायों के लिए शिक्षा, रोजगार, भूमि सुधार, सुरक्षा, स्वास्थ्य और सांस्कृतिक संरक्षण जैसे विषय प्राथमिकता में नहीं आएँगे। उन्होंने सत्ता के बिना सामाजिक न्याय की अवधारणा को एक “रिमोट कंट्रोल न्याय” कहा, जो कभी भी अपने वास्तविक हितग्राहियों को प्रभावित नहीं करता।

कांशीराम ने यह भी देखा कि बहुजन समाज की आबादी भले ही अधिक हो, लेकिन वह चुनावी राजनीति में विभाजित, दिशाहीन और असंगठित रहने के कारण सत्ता से वंचित रहता है। इसलिए उन्होंने संगठन को सामाजिक न्याय का आधार स्तंभ बनाया और BAMCEF तथा DS4 के ज़रिए एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन तैयार किया, जिसकी परिणति बहुजन समाज पार्टी (BSP) के रूप में हुई। उन्होंने यह बताया कि सत्ता-साझेदारी तब ही संभव है, जब बहुजन समाज अपने वोटों का संगठित उपयोग करे, जाति-आधारित विघटन से ऊपर उठे और अपनी सामाजिक चेतना को राजनैतिक कार्यनीति में रूपांतरित करे।

उनकी यह दूरदृष्टि केवल सत्ता प्राप्ति तक सीमित नहीं थी, बल्कि सत्ता के ज़रिए सामाजिक संरचना को पुनर्परिभाषित करने की थी। उनके लिए सत्ता का उद्देश्य केवल मुख्यमंत्री या सांसद बनना नहीं था, बल्कि शिक्षा नीति में सुधार, न्यायिक नियुक्तियों में बहुजन प्रतिनिधित्व, और सांस्कृतिक

पुनर्निर्माण करना था। वे चाहते थे कि बहुजन समाज न केवल अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करे, बल्कि यह भी तय करे कि समाज कैसा हो, कौन से मूल्य उसमें हों, और कौन सी संस्थाएँ उसे नियंत्रित करें।

इस प्रकार, कांशीराम ने सामाजिक न्याय को सत्ता-साझेदारी के बिना अधूरा और निष्प्रभ माना। उन्होंने बहुजन समाज को यह आत्मविश्वास दिया कि सत्ता की बागडोर अपने हाथ में लेने के बाद ही आत्म-सम्मान संभव है, और तभी सामाजिक न्याय एक जीवंत, ठोस और प्रभावशाली यथार्थ बन सकेगा।

जाति उन्मूलन और सामाजिक असमानता के विरुद्ध कांशीराम की रणनीति

कांशीराम का मानना था कि भारतीय समाज की सबसे पुरानी, गहरी और अन्यायपूर्ण सामाजिक रचना जाति व्यवस्था है, जिसने करोड़ों लोगों को पीढ़ियों से शोषित और बहिष्कृत रखा है। उन्होंने जाति को केवल सामाजिक अलगाव का रूप नहीं, बल्कि एक सुनियोजित दमन प्रणाली माना, जो बहुजन समाज की आत्मा, सोच, शिक्षा, रोजगार, सम्मान और राजनैतिक भागीदारी - हर स्तर को नियंत्रित करती है। कांशीराम ने जातिवाद को “मानसिक गुलामी” कहा, जिसमें शोषित समाज स्वयं को ही निम्न समझने लगता है और ब्राह्मणवादी सत्ता के सामने आत्मसमर्पण करता है। उन्होंने इसे चुनौती देने के लिए सबसे पहले मानसिक क्रांति की आवश्यकता बताई।

उन्होंने ‘बहुजन’ शब्द का चयन बहुत सोच-समझकर किया, ताकि दलित, पिछड़ा, आदिवासी, मुस्लिम और अन्य वंचित समुदायों को एक राजनैतिक और सामाजिक पहचान दी जा सके। उनका प्रसिद्ध नारा -

“हम बहुजन हैं, हम भारत के असली मालिक हैं” - केवल एक उद्धोष नहीं था, बल्कि वह एक चेतना थी, जो इतिहास में पहली बार शोषित समाज को मालिक बनने की आकांक्षा दे रही थी। इस नारे के पीछे विचार था कि संख्या में बहुजन बहुसंख्यक हैं, लेकिन सत्ता में अल्पसंख्यक। जब तक बहुजन समाज संख्या के अनुपात में सत्ता में हिस्सेदारी प्राप्त नहीं करेगा, तब तक जाति आधारित अन्याय समाप्त नहीं हो सकता।

कांशीराम ने जाति उन्मूलन को केवल सामाजिक स्तर तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे प्रशासनिक, राजनैतिक और कानूनी ढांचे से भी जोड़ दिया। उन्होंने कहा कि केवल सामाजिक समरसता का उपदेश पर्याप्त नहीं है, जब तक नीतियाँ बहुजन हितों को प्राथमिकता नहीं देंगी। इसी कारण उन्होंने BAMCEF और DS4 जैसे संगठनों की स्थापना की, जो जातिवादी ढांचे के खिलाफ वैचारिक लड़ाई लड़ने के साथ-साथ बहुजन समाज में नेतृत्व, संगठन और रणनीति की नींव रखते थे।

राजनैतिक स्तर पर उन्होंने स्पष्ट किया कि जातिवाद को मिटाने का सबसे प्रभावी उपाय सत्ता है। ब्राह्मणवाद को केवल नैतिक भाषणों से नहीं हराया जा सकता, उसे राजनैतिक ताकत और नीतिगत हस्तक्षेप से रोका जा सकता है। BSP की नीतियाँ - जैसे उम्मीदवारों का चयन, प्रशासनिक नियुक्तियों में सामाजिक समीकरणों की प्राथमिकता, और जातिगत उत्पीड़न के मामलों में कड़ा हस्तक्षेप - सब कांशीराम की इस रणनीति का ही विस्तार थीं। उन्होंने सत्ता को सामाजिक न्याय की प्रयोगशाला में बदलने का प्रयास किया, जहाँ बहुजन समाज के लिए नीतियाँ उनके अपने प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जाएँ।

कांशीराम की यह रणनीति क्रांतिकारी थी, क्योंकि उन्होंने जाति के विरुद्ध संघर्ष को महज़ सामाजिक सुधार की बात न बनाकर, उसे एक राजनैतिक

हथियार में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने यह स्थापित किया कि जातिवाद केवल ब्राह्मणों या उच्च जातियों का दोष नहीं, बल्कि बहुजन समाज की असंगठितता और मानसिक गुलामी भी इसके लिए जिम्मेदार है। इसलिए उन्होंने न केवल बहुजन समाज को जागरूक किया, बल्कि उन्हें एक विचारधारा, एक संगठन और एक राजनैतिक मंच प्रदान किया, जहाँ से वे जाति-आधारित अन्याय को चुनौती दे सकें।

कांशीराम का यह दृष्टिकोण भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान आंदोलन की धारा को एक नयी दिशा देने वाला सिद्ध हुआ। उन्होंने जाति के विनाश को केवल नैतिक आग्रह नहीं, बल्कि राजनैतिक लक्ष्य बनाया और उसके लिए संगठित आंदोलन खड़ा किया - जो आज भी बहुजन राजनीति की रीढ़ बना हुआ है।

बहुजन आत्म-सम्मान के लिए राजनैतिक संगठन की आवश्यकता

कांशीराम ने यह ऐतिहासिक रूप से महसूस किया कि यदि भारत जैसे विविधतापूर्ण और जातिवादी समाज में बहुजन समाज को आत्म-सम्मान प्राप्त करना है, तो उसके लिए केवल सामाजिक आंदोलनों या सैद्धांतिक बहसों से बात नहीं बनेगी। बहुजन समाज, जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, पिछड़ा वर्ग और धार्मिक रूप से उपेक्षित समुदाय शामिल हैं, को एकजुट होकर एक राजनैतिक शक्ति में बदलना अनिवार्य है। कांशीराम का स्पष्ट दृष्टिकोण था कि जब तक बहुजन समाज बिखरा रहेगा-धार्मिक, जातीय, भाषाई या क्षेत्रीय आधारों पर-वह शोषण का शिकार बना रहेगा और सत्ता से वंचित रहेगा।

इस कारण उन्होंने बहुजन आत्म-सम्मान के लिए एक संगठित राजनैतिक ढाँचा तैयार करने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने सबसे पहले इस

उद्देश्य की पूर्ति के लिए *BAMCEF* की स्थापना की, जो एक गैर-राजनैतिक मंच था, परंतु इसका उद्देश्य था प्रशासनिक और नौकरशाही में मौजूद बहुजन कर्मचारियों को सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान के लिए संगठित करना। कांशीराम जानते थे कि ये वर्ग सरकारी ढाँचे में रहते हुए भी मानसिक रूप से गुलाम बने हुए हैं, और यदि उन्हें वैचारिक रूप से तैयार किया जाए, तो वे व्यवस्था को भीतर से बदलने का सामर्थ्य रखते हैं।

इसके बाद उन्होंने *DS4* का गठन किया, जो सीधे तौर पर आंदोलनकारी और राजनैतिक स्वरूप का था। इसका उद्देश्य था बहुजन युवाओं को वैचारिक रूप से शिक्षित करना, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाना, और उन्हें यह समझाना कि सामाजिक परिवर्तन केवल नारों से नहीं, बल्कि सत्ता पर कब्जा करके ही संभव है। कांशीराम ने कहा था- “सत्ता की चाबी हमारे हाथ में होनी चाहिए, तभी हम अपनी तक्रदीर और तस्वीर बदल सकते हैं” इस चाबी को प्राप्त करने के लिए उन्हें एक ऐसा संगठन चाहिए था, जो चुनावी राजनीति में भाग लेकर सीधे सत्ता में पहुँच सके।

यही सोच बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना का कारण बनी। BSP उनके जीवन की वह राजनैतिक रचना थी, जिसके माध्यम से उन्होंने सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान को व्यावहारिक शक्ति में बदला। उन्होंने हमेशा जोर देकर कहा कि आत्म-सम्मान कोई दया या उपकार से नहीं मिलता, बल्कि उसे संगठित संघर्ष, संख्या शक्ति और राजनैतिक जागरूकता से अर्जित किया जाता है। उन्होंने ‘बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय’ को नारा नहीं, बल्कि रणनीति में बदल दिया।

कांशीराम की रणनीति का सबसे क्रांतिकारी पहलू यह था कि उन्होंने बहुजन समाज के लोगों को “वोट बैंक” की भूमिका से बाहर निकालकर “पावर सेंटर” बनने की प्रेरणा दी। उनका कहना था कि यदि नीति निर्माण में बहुजन की भागीदारी नहीं है, तो कानून, योजना और न्याय-सब उनके खिलाफ बने रहेंगे। उनके लिए राजनैतिक संगठन केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान की पुनर्स्थापना का यंत्र था। उन्होंने बार-बार इस बात को रेखांकित किया कि बिना सत्ता के कोई भी सामाजिक आंदोलन स्थायी नहीं हो सकता।

इस प्रकार, कांशीराम ने यह सिद्ध कर दिया कि आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय का सबसे सशक्त मार्ग राजनैतिक संगठन और सत्ता भागीदारी से होकर ही जाता है। उन्होंने संगठन, संख्या, और संघर्ष-इन तीन स्तंभों को बहुजन समाज की मुक्ति का आधार बनाया। यही कारण है कि आज भी जब बहुजन राजनीति की बात होती है, तो कांशीराम का नाम उस नींव के रूप में लिया जाता है, जिसने समाज के सबसे शोषित वर्गों को सत्ता के केंद्र तक पहुँचाने की नींव रखी।

BSP शासन में सामाजिक न्याय के लिए लागू की गई नीतियाँ और योजनाएँ

कांशीराम के मार्गदर्शन और विचारधारा से प्रेरित बहुजन समाज पार्टी (BSP) की सरकार ने जब सत्ता में प्रवेश किया, तो उन्होंने सामाजिक न्याय को केवल नारेबाजी या प्रतीकवाद तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे ज़मीनी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से संस्थागत रूप देने का प्रयास किया। मायावती के नेतृत्व में BSP ने जो प्रशासनिक निर्णय लिए, वे सीधे कांशीराम की दृष्टि से प्रेरित थे और इनका उद्देश्य केवल बहुजन

समाज को राहत देना नहीं, बल्कि उन्हें राजनीतिक, आर्थिक, और शैक्षिक रूप से सशक्त करना था।

इस दौरान उत्तर प्रदेश में बहुजन वर्ग के लिए कई कल्याणकारी योजनाएँ शुरू की गईं। प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए बहुजन बस्तियों में स्कूलों की स्थापना की गई और छात्रवृत्तियों की योजना का विस्तार किया गया। दलित और पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए निशुल्क पुस्तकों, वर्दियों और मध्याह्न भोजन जैसी सुविधाएँ सुनिश्चित की गईं, ताकि वे शिक्षा से वंचित न रहें। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा में प्रवेश लेने वाले छात्रों के लिए विशेष स्कॉलरशिप, कोचिंग योजनाएँ और हॉस्टल की सुविधा दी गई ताकि वे प्रतियोगी परीक्षाओं और प्रशासनिक सेवाओं में भी भाग ले सकें।

आवास के क्षेत्र में, BSP सरकार ने 'कांशीराम आवास योजना' के तहत गरीब बहुजन परिवारों को पक्के मकान प्रदान करने का कार्य किया। यह योजना न केवल आवास सुरक्षा का माध्यम बनी, बल्कि बहुजन समाज के सम्मान और आत्मनिर्भरता का प्रतीक भी बनी। इसके अलावा, सरकारी नौकरियों में आरक्षण व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू किया गया और इसके उल्लंघन पर सख्त निर्देश जारी किए गए। कई विभागों में नियुक्तियों के दौरान आरक्षण के अनुपालन को प्राथमिकता दी गई और विशेष निगरानी इकाइयाँ स्थापित की गईं।

एक अन्य महत्वपूर्ण कदम था – बहुजन उत्पीड़न के मामलों में त्वरित न्याय की व्यवस्था। इसके लिए 'फास्ट ट्रैक कोर्ट' और विशेष दलित न्यायालयों की स्थापना की गई, जहाँ उत्पीड़न के मामलों में शीघ्र सुनवाई और निर्णय सुनिश्चित किए गए। पुलिस प्रशासन को इन मामलों में

संवेदनशील बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए गए और अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम को कड़ाई से लागू करने का आदेश दिया गया। इससे बहुजन समाज को कानून पर भरोसा मिला और वे अपने अधिकारों के लिए मुखर हुए।

BSP शासनकाल में सामाजिक न्याय की अवधारणा को केवल नीतियों तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि बहुजन प्रतीकों, स्मारकों और सांस्कृतिक पहचान को भी महत्व दिया गया। अंबेडकर, कांशीराम, संत रविदास और अन्य बहुजन नायकों की मूर्तियाँ, प्रेरणा स्थल और स्मारक बनाकर उन्हें सार्वजनिक स्मृति में स्थापित किया गया। यह सांस्कृतिक पुनरुत्थान कांशीराम की उस विचारधारा का हिस्सा था जिसमें उन्होंने कहा था कि मानसिक दासता से मुक्ति के लिए आत्म-स्मृति और गौरव का पुनर्निर्माण आवश्यक है।

इन सभी योजनाओं का समग्र उद्देश्य था – बहुजन समाज को केवल सहायता प्राप्त करने वाले नागरिक से आगे बढ़ाकर नीतिगत प्रक्रिया में भागीदार बनाना। यह एक परिवर्तनकारी सोच थी जो कांशीराम की दूरदृष्टि का मूर्त रूप थी। BSP की सरकार के निर्णयों ने यह संदेश स्पष्ट कर दिया कि सामाजिक न्याय की बात केवल संवैधानिक अधिकारों तक सीमित नहीं होनी चाहिए, बल्कि इसे रोजमर्रा की प्रशासनिक कार्यप्रणाली का हिस्सा बनाकर ही वास्तविक परिवर्तन संभव है। यही कारण है कि कांशीराम की सामाजिक न्याय की परिभाषा केवल वैचारिक नहीं रही, बल्कि BSP शासन के दौरान उसे व्यवहार में लाया गया - एक ऐसा प्रयास, जिसने भारतीय राजनीति में सामाजिक न्याय को शासन की केंद्रीय धुरी बना दिया।

ब्राह्मणवाद के विरुद्ध कांशीराम की वैचारिक लड़ाई

कांशीराम ने ब्राह्मणवाद को भारतीय समाज की सबसे गहरी और विध्वंसक वैचारिक बुराई के रूप में चिन्हित किया था। उनका मानना था कि ब्राह्मणवाद केवल एक सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सघन मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक उपकरण है, जिसे हजारों वर्षों से सत्ता और सामाजिक वर्चस्व बनाए रखने के लिए इस्तेमाल किया गया है। उनके अनुसार ब्राह्मणवाद की जड़ें न केवल वर्ण-व्यवस्था और जाति-भेद में थीं, बल्कि उस धार्मिक और दार्शनिक सोच में थीं जो यह मानती थी कि मनुष्य का जन्म ही उसके जीवन के अधिकार और कर्तव्य को तय करता है। कांशीराम ने ब्राह्मणवाद को एक ऐसा शास्त्र-सिद्ध अन्याय करार दिया, जो बहुजन समाज के आत्म-सम्मान को कुचलता रहा है।

कांशीराम ने इस ब्राह्मणवादी वर्चस्व को समाप्त करने के लिए वैचारिक जागरण को प्राथमिक अस्त्र बनाया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज अपने शत्रु के स्वरूप को नहीं समझेगा, तब तक वह मुक्ति की दिशा में कदम नहीं बढ़ा सकता। उनका नारा था-“ब्राह्मणवाद को समझो, पहचानो, और समाप्त करो।” इसके पीछे उनकी यह रणनीति थी कि बहुजन वर्ग, जो सदियों से दबा और भ्रमित था, पहले अपनी सामाजिक गुलामी की मानसिक जंजीरों को तोड़े। वे बार-बार कहते थे कि बहुजन समाज को धार्मिक ग्रंथों में छिपे भेदभाव को समझना होगा, क्योंकि वहीं से असमानता को वैधता मिली है। उन्होंने अंबेडकर की ‘मनुस्मृति दहन’ की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सांस्कृतिक प्रतिरोध की चेतना को राजनीति में तब्दील किया।

कांशीराम की यह लड़ाई केवल प्रतीकों तक सीमित नहीं थी; उन्होंने इस विचारधारा को संगठित राजनैतिक प्रतिरोध में बदला। BAMCEF,

DS4 और फिर BSP के माध्यम से उन्होंने ब्राह्मणवादी सोच के विरुद्ध न केवल वैचारिक मोर्चा खोला, बल्कि प्रशासनिक और चुनावी राजनीति में भी इसे चुनौती दी। उन्होंने बहुजन युवाओं को चेताया कि जब तक वे अपनी सोच को नहीं बदलेंगे और सत्ता के लिए संगठित नहीं होंगे, तब तक ब्राह्मणवाद उन्हें “उपकारी” नीतियों के माध्यम से दास बनाए रखेगा। उनका मानना था कि आरक्षण, शिक्षा और राजनैतिक भागीदारी जैसे संसाधन ब्राह्मणवादी ताकतों द्वारा बहुजन समाज को संतुष्ट रखने के लिए दिए गए “टुकड़े” हैं, जब तक बहुजन सत्ता में नहीं आते, तब तक न्याय की कोई गारंटी नहीं।

कांशीराम ने स्पष्ट किया कि ब्राह्मणवाद से मुक्ति केवल वैचारिक परिवर्तन से संभव नहीं, बल्कि राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति के माध्यम से ही उसे चुनौती दी जा सकती है। इसलिए उन्होंने बहुजन समाज को सत्ता-प्राप्ति की दिशा में संगठित करने को ही ब्राह्मणवाद के विरुद्ध अंतिम निर्णायक हथियार माना। उन्होंने राजनीति को बहुजन मुक्ति का मुख्य औजार बना दिया, यह कहते हुए कि जब तक बहुजन संसद, विधानसभाओं, न्यायालयों और अफसरशाही में नहीं पहुँचेंगे, तब तक ब्राह्मणवादी सोच कानून, नीतियाँ और समाज को नियंत्रित करती रहेगी।

कांशीराम की यह वैचारिक लड़ाई सामाजिक न्याय को केवल एक संविधान प्रदत्त अधिकार नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय का प्रतिकार मानती थी। उनका संघर्ष ब्राह्मणवाद के विरुद्ध केवल विद्रोह नहीं था, बल्कि वह एक पुनरुत्थान था—एक समतामूलक भारत की स्थापना के लिए। उनके इस दृष्टिकोण ने बहुजन राजनीति को एक नया आत्मगौरव, नयी दिशा और ऐतिहासिक गहराई प्रदान की, जो आज भी भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद पर सवाल उठाने की क्षमता रखती है।

आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय के लिए कांशीराम की अंतिम रणनीति

कांशीराम की अंतिम रणनीति भारतीय लोकतंत्र की संरचना को बहुजन समाज के अनुकूल ढालने की थी। वे यह मानते थे कि आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय की अंतिम उपलब्धि तभी संभव है जब बहुजन समाज न केवल राजनैतिक सत्ता में हिस्सेदार हो, बल्कि नीतिगत निर्णयों में भी निर्णायक भूमिका निभाए। उनके अनुसार, समाज में असली बदलाव तभी आएगा जब हाशिए पर रहे वर्ग स्वयं सत्ता के संचालनकर्ता बनें। उन्होंने यह बात बार-बार दोहराई कि “राजनीति ही परिवर्तन का मूल औजार है,” और यदि बहुजन समाज सत्ता से दूर रहेगा, तो उनकी नियति हमेशा दूसरों के हाथों लिखी जाएगी।

इस रणनीति में सबसे महत्वपूर्ण तत्व था - बहुजन समाज का नेतृत्व स्वयं बहुजन समुदाय के हाथों में लाना। कांशीराम ने कभी भी किसी बाहरी सहानुभूति या तथाकथित “उपकार” की राजनीति पर भरोसा नहीं किया। उन्होंने साफ तौर पर कहा कि बहुजन समाज को किसी से अपनी मुक्ति की भीख नहीं मांगनी चाहिए, बल्कि स्वयं उसके लिए तैयार होना चाहिए - मानसिक, संगठनात्मक, और चुनावी स्तर पर। उनका मानना था कि जब तक बहुजन समाज नेतृत्व की भूमिका में नहीं आएगा, तब तक आत्म-सम्मान केवल एक भावनात्मक नारा ही बना रहेगा, जो समाज को सतही रूप से प्रेरित तो कर सकता है लेकिन परिवर्तन नहीं ला सकता।

इस लक्ष्य को साकार करने के लिए उन्होंने तीन स्तरों पर काम किया: पहला, सामाजिक चेतना का निर्माण, जिसमें बहुजन युवाओं को अपनी पहचान, अधिकार और सामर्थ्य के प्रति जागरूक किया गया। दूसरा,

संगठनात्मक शक्ति का निर्माण, जिसमें BAMCEF, DS4 और अंततः BSP जैसी संस्थाओं के माध्यम से बहुजन समाज को संगठित किया गया। और तीसरा, चुनावी और नीति-निर्माण की भागीदारी, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध किया कि सत्ता ही अंतिम साधन है, जो समाज की दिशा और संरचना को बदल सकती है।

कांशीराम की यह रणनीति केवल राजनैतिक सत्ता प्राप्ति तक सीमित नहीं थी। वह सत्ता को एक माध्यम मानते थे - आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय की संपूर्ण प्राप्ति के लिए। उनके लिए सत्ता बहुजन समाज का अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि सामाजिक समता, शिक्षा का प्रसार, संसाधनों का न्यायोचित वितरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का औजार थी। वे मानते थे कि जब तक नीति निर्माण, प्रशासनिक नियुक्तियाँ, और संसाधन आवंटन की प्रक्रिया में बहुजन समाज शामिल नहीं होगा, तब तक शोषण और हीनता की विरासत टूटेगी नहीं।

उन्होंने बहुजन समाज को एक नारा दिया - “वोट हमारा, राज तुम्हारा नहीं चलेगा।” यह केवल एक चुनावी नारा नहीं था, बल्कि आत्म-सम्मान की घोषणा थी। उन्होंने बार-बार इस बात को रेखांकित किया कि बहुजन समाज को केवल वोटबैंक बनने से ऊपर उठना होगा और अपने नेताओं, अपनी पार्टी, और अपनी नीतियाँ स्वयं बनानी होंगी। उनका सपना था - ऐसा भारत, जहाँ बहुजन समाज केवल सत्ता के दरवाजे पर खड़ा याचक न रहे, बल्कि सत्ता की चाबी स्वयं उसके हाथों में हो।

कांशीराम की अंतिम रणनीति एक समग्र और दीर्घकालिक सोच पर आधारित थी, जिसमें केवल तत्काल चुनावी लाभ नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों की सामाजिक और मानसिक स्वतंत्रता शामिल थी। उनके लिए आत्म-सम्मान कोई भावनात्मक संकल्पना नहीं, बल्कि सामाजिक

संरचना को पुनर्परिभाषित करने का मिशन था। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि बहुजन समाज भविष्य में केवल अपने अधिकारों की बात न करे, बल्कि उन्हें लागू करने की ताकत भी अपने भीतर विकसित करे।

इस रणनीति के परिणामस्वरूप बहुजन समाज पार्टी केवल एक राजनैतिक दल नहीं रही - वह एक सामाजिक क्रांति की धुरी बन गई, जिसने भारत की राजनीति में सामाजिक न्याय और आत्म-सम्मान को एक केंद्रीय एजेंडा बना दिया। कांशीराम की मृत्यु के बाद, हालांकि कई नीतियाँ बदलीं और नेतृत्व की शैली में परिवर्तन आया, लेकिन आत्म-सम्मान और सत्ता में भागीदारी की उनकी मूल रणनीति आज भी बहुजन राजनीति की आधारशिला बनी हुई है।

अध्याय 46:

बहुजन सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका और कांशीराम का दृष्टिकोण

बहुजन समाज और शिक्षा: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय समाज की पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में शिक्षा पर विशेष जातियों का वर्चस्व रहा है, और इस व्यवस्था ने बहुजन समुदाय को शिक्षा से दूर रखने के लिए न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक तर्क प्रस्तुत किए, बल्कि सामाजिक संरचनाओं में भी उन्हें उपेक्षित बनाए रखा। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में स्पष्ट रूप से वर्णित था कि शूद्रों और अति-शूद्रों को वेदपाठ और शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। इस मानसिकता ने समाज में एक गहरी खाई पैदा की, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शिक्षा और ज्ञान के वाहक बने, जबकि बहुजन समाज को केवल श्रम और सेवा तक सीमित रखा गया। अंग्रेजों के आगमन के साथ मिशनरियों और समाज सुधारकों ने कुछ प्रयास किए, जिससे शिक्षा के द्वार बहुजनों के लिए खुले, लेकिन ये प्रयास सीमित रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान के तहत शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाया गया, और डॉ. अंबेडकर ने इसे सामाजिक न्याय की नींव बताया। उन्होंने बार-बार यह कहा कि यदि बहुजन समाज को बराबरी चाहिए, तो उन्हें सबसे पहले शिक्षित होना होगा, वरना वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष भी नहीं कर पाएँगे।

कांशीराम की शिक्षा पर विचारधारा और बहुजन समाज के लिए शिक्षा का महत्व

कांशीराम का मानना था कि शिक्षा केवल पुस्तकीय ज्ञान नहीं है, बल्कि यह बहुजन समाज की चेतना को जगाने का साधन है। उनके अनुसार, शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे बहुजन समाज आत्मबल, आत्मगौरव और राजनैतिक भागीदारी का भाव विकसित कर सकता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज शिक्षित नहीं होगा, तब तक वह राजनैतिक सत्ता का उपयोग अपने पक्ष में नहीं कर सकेगा। उनकी “शिक्षा, संगठन और संघर्ष” की त्रयी नीति, वास्तव में सामाजिक क्रांति की रणनीति थी। उन्होंने शिक्षा को जागरूकता और संगठन के साथ जोड़ा, जिससे बहुजन समाज अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट होकर संघर्ष कर सके। उन्होंने सामाजिक बदलाव को केवल नारेबाजी नहीं, बल्कि एक सुव्यवस्थित शिक्षित जनशक्ति के रूप में देखा।

शिक्षा में आने वाली बाधाएँ और कांशीराम की नीतियाँ

कांशीराम का यह मानना था कि शिक्षा को पाने के रास्ते में सामाजिक भेदभाव, आर्थिक पिछड़ापन और मनोवैज्ञानिक संकोच सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में दलित और बहुजन बच्चों को स्कूलों में निम्न स्तर का व्यवहार झेलना पड़ता है। उन्हें अलग बैठाया जाता है, उनका मजाक उड़ाया जाता है और शिक्षक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। यह व्यवहार न केवल बच्चों के आत्मविश्वास को चोट पहुँचाता है, बल्कि उनमें हीन भावना पैदा करता है। इसी तरह आर्थिक समस्याएँ भी उन्हें स्कूल छोड़ने पर मजबूर कर देती हैं। उनके परिवारों में कमाई की प्राथमिकता होती है, जिससे बच्चों को कम उम्र में काम में झोंक दिया

जाता है। कांशीराम ने इस संदर्भ में सरकारों से लगातार यह माँग की कि बहुजन समुदाय के लिए विशेष छात्रवृत्तियाँ, भोजन योजनाएँ, निशुल्क पुस्तकों और वर्दियों की व्यवस्था की जाए। उन्होंने यह भी प्रस्ताव दिया कि बहुजन छात्रों के लिए अलग से शिक्षण सहायता केंद्र खोले जाएँ, जिससे वे प्रतियोगी परीक्षाओं में प्रतिस्पर्धा कर सकें।

BSP सरकारों की शिक्षा नीतियाँ और कांशीराम की सोच

BSP के शासनकाल में बहुजन विद्यार्थियों के लिए कई क्रांतिकारी कदम उठाए गए। मायावती सरकार ने अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की राशि को कई गुना बढ़ाया। “महामाया स्कूल योजना” के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा को बहुजन बस्तियों में पहुँचाया गया, जिससे हजारों बच्चे पहली बार स्कूल जा सके। साथ ही प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए निःशुल्क कोचिंग संस्थानों की स्थापना की गई, जिनमें प्रशासनिक सेवाओं की तैयारी कराने की विशेष व्यवस्था थी। इन नीतियों की प्रेरणा कांशीराम के उन विचारों से आई, जिनमें उन्होंने कहा था कि “शिक्षा का अधिकार बहुजनों का संवैधानिक हक है और इसे देने की जिम्मेदारी सरकार की है।”

निजी क्षेत्र में शिक्षा और बहुजन समाज के लिए विशेष उपाय

कांशीराम का दृष्टिकोण यह था कि शिक्षा केवल सरकारी संस्थानों में ही नहीं, बल्कि निजी शिक्षा तंत्र में भी बहुजन समुदाय को स्थान मिलना चाहिए। उन्होंने यह माँग की थी कि निजी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और स्कूलों में भी आरक्षण की नीति लागू की जाए। साथ ही, उन्होंने यह प्रस्ताव भी रखा कि यदि सरकारी मदद से चलने वाले निजी संस्थानों को

सब्सिडी या भूमि मिलती है, तो वहाँ सामाजिक न्याय की शर्तों को अनिवार्य किया जाए। BSP ने इन नीतियों को विधानसभा में भी उठाया, हालाँकि इसका व्यापक विरोध हुआ। इसके बावजूद कांशीराम का यह विश्वास बना रहा कि शिक्षा के क्षेत्र में न्याय केवल तब तक अधूरा रहेगा जब तक वह समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से सुलभ न हो।

तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता

कांशीराम का विचार था कि केवल अकादमिक शिक्षा से ही समाज का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि बहुजन समाज को तकनीकी, औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा में भी भागीदारी करनी होगी। उनका यह कथन प्रसिद्ध है: “हमें न केवल अफसर बनना है, बल्कि कारीगर, इंजीनियर और उद्योगपति भी बनना है।” उनके इस विचार के अनुसार BSP सरकार ने आईटीआई, पॉलिटेक्निक संस्थानों और व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों में बहुजन समाज के लिए सीटें आरक्षित कीं और प्रशिक्षण के लिए विशेष अनुदान भी दिए। इन योजनाओं का उद्देश्य था कि बहुजन युवा आत्मनिर्भर बन सकें और नौकरी माँगने वाले नहीं, बल्कि नौकरी देने वाले बनें।

कांशीराम की शिक्षा नीति का दीर्घकालिक प्रभाव

कांशीराम द्वारा प्रेरित शिक्षा नीति और BSP सरकारों द्वारा लागू योजनाओं ने बहुजन समाज के भीतर एक शैक्षिक जागरण पैदा किया। आज बहुजन समुदाय के छात्र पहले से कहीं अधिक संख्या में विश्वविद्यालयों, प्रशासनिक सेवाओं, चिकित्सा और तकनीकी संस्थानों में दाखिला ले रहे हैं। यह परिवर्तन केवल सरकारी योजनाओं का परिणाम

नहीं, बल्कि कांशीराम के दूरदर्शी नेतृत्व और शिक्षा पर उनके अनवरत बल का परिणाम था। उन्होंने यह बात बार-बार दोहराई कि यदि बहुजन समाज को सत्ता में भागीदारी चाहिए, तो उन्हें पहले ज्ञान की शक्ति अर्जित करनी होगी। उनका यह विचार आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थायी प्रेरणा स्रोत बन गया है।

अध्याय 47:

सामाजिक सुधार से अधिक राजनैतिक सशक्तिकरण की प्राथमिकता और कांशीराम की दृष्टि

भारतीय समाज में सामाजिक सुधार और कांशीराम की अलग दृष्टि

भारतीय समाज में सामाजिक सुधार आंदोलनों की परंपरा गहराई तक जमी हुई है, जिसका प्रारंभ 19वीं शताब्दी में हुआ। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, पेरियार और डॉ. अंबेडकर जैसे अनेक महान विचारकों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने समाज में व्याप्त कुरीतियों-जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा उत्पीड़न, छुआछूत और जातिगत भेदभाव-के खिलाफ आंदोलनों का नेतृत्व किया। इन आंदोलनों का उद्देश्य समाज को नैतिक और सांस्कृतिक रूप से जागरूक बनाना था, लेकिन इनकी सीमाएँ भी थीं। अधिकांश सुधार आंदोलनों ने सत्ता-संरचना को छूने का साहस नहीं किया। उनका लक्ष्य समाज को 'सुधारना' तो था, लेकिन सत्ता-प्राप्ति के ज़रिए सामाजिक संरचना को बदलना उनका केंद्रबिंदु नहीं था।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक सुधार को राजनैतिक सशक्तिकरण से जोड़ने की ठोस कोशिश की। उन्होंने यह समझा कि अगर वंचित समुदाय केवल नैतिक शिक्षा और धार्मिक सुधारों तक सीमित रहेगा, तो उसकी स्थिति में वास्तविक बदलाव नहीं आ सकेगा। उन्होंने संविधान निर्माण से लेकर राजनैतिक पार्टियों के गठन तक उस दिशा में प्रयास

किए, जिससे दलित और बहुजन समाज को सत्ता में भागीदारी मिल सके। हालांकि, उनकी कोशिशों को मुख्यधारा की कांग्रेस राजनीति और तत्कालीन सामाजिक आंदोलनों ने सीमित समर्थन दिया। सामाजिक सुधारों की चर्चा तो हुई, लेकिन सत्ता के केंद्रों पर बहुजनों की भागीदारी सुनिश्चित करने की ठोस पहल नहीं की गई।

इसी संदर्भ में कांशीराम ने पूरी सामाजिक और राजनैतिक रणनीति को एक नई दिशा दी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज राजनैतिक सत्ता में सहभागी नहीं बनता, तब तक सामाजिक सुधार अधूरा और अस्थायी रहेगा। कांशीराम ने यह नारा नहीं दिया कि पहले समाज सुधारों फिर सत्ता पाएं, बल्कि उन्होंने कहा कि जब तक सत्ता नहीं मिलेगी, तब तक समाज सुधार ही नहीं सकता। उन्होंने सामाजिक सुधार को एक माध्यम माना, लक्ष्य नहीं। उनके अनुसार, सत्ता की चाबी ही वह औज़ार है जिससे शिक्षा, नौकरी, न्याय और सम्मान के दरवाजे खुल सकते हैं। उनके दृष्टिकोण ने सामाजिक आंदोलन को एक नई राजनैतिक धार दी, जिससे बहुजन समाज न केवल आत्मगौरव से भर गया, बल्कि नेतृत्व की भूमिका में आने की दिशा में भी संगठित हुआ।

सामाजिक सुधार बनाम राजनैतिक सशक्तिकरण: कांशीराम का मतभेद

पारंपरिक सामाजिक सुधार आंदोलनों की सीमाएँ

भारतीय सामाजिक सुधार आंदोलनों की एक लंबी परंपरा रही है, परंतु इन आंदोलनों ने अधिकांशतः नैतिक मूल्यों, धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक बदलावों पर केंद्रित होकर कार्य किया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के विरुद्ध, फुले दंपति ने स्त्री शिक्षा और छुआछूत के विरुद्ध,

और गांधीजी ने अस्पृश्यता के विरोध में अभियान चलाए, लेकिन इनमें से अधिकांश आंदोलनों ने सामाजिक व्यवस्था के शक्ति-संतुलन को चुनौती नहीं दी। ये प्रयास सवर्ण नेतृत्व में संचालित होते रहे, जिनका अंतिम उद्देश्य अक्सर सामाजिक सौहार्द था, न कि शोषित वर्गों को सत्ता में भागीदार बनाना। कांशीराम ने इसी बुनियादी कमी की आलोचना की। उन्होंने कहा कि “जो आंदोलन केवल नैतिक उपदेश देते हैं, वे समाज की आत्मा को छूते हैं, पर उसकी रीढ़ नहीं बदलते।” उनके अनुसार, बहुजन समाज को न्याय दिलाने के लिए केवल उपदेश पर्याप्त नहीं, निर्णय की शक्ति आवश्यक है।

सत्ता के बिना सामाजिक सुधार अधूरा है

कांशीराम की राजनैतिक विचारधारा की केंद्रीय धुरी यह थी कि सामाजिक सुधार तभी स्थायी और प्रभावशाली हो सकते हैं, जब वंचित समाज के पास सत्ता हो। उन्होंने स्पष्ट किया कि “सुधार तभी होंगे जब निर्णय लेने की शक्ति हमारे पास होगी। जो सदियों से हमें नीचे रखते आए हैं, वे हमारे लिए न्यायसंगत कानून नहीं बना सकते।” वे मानते थे कि सामाजिक परिवर्तन का वास्तविक माध्यम राजनीति है-और जब तक बहुजन समाज सत्ता में भागीदार नहीं होगा, तब तक कोई भी सुधार केवल सतही रहेगा। उन्होंने पारंपरिक सुधारवादियों को यह कहते हुए चुनौती दी कि वे समाज को सुधारने की बात तो करते हैं, परंतु सत्ता का वास्तविक हस्तांतरण नहीं चाहते। यही कारण है कि उन्होंने सुधारों की बजाय सत्ता को प्राथमिकता दी, ताकि वह सत्ता समाज के उस तबके के हाथ में आए, जो सदियों से वंचित रहा है, और वही तबका समाज के लिए न्यायपूर्ण निर्णय ले सके।

कांशीराम की रणनीति: सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि राजनैतिक वर्चस्व

BAMCEF और DS4 के माध्यम से राजनैतिक जागरूकता

कांशीराम ने बहुजन आंदोलन को केवल नैतिक सुधारों तक सीमित न रखते हुए, उसे सत्ता के केन्द्रीय मार्ग पर ले जाने के लिए संगठित रणनीति अपनाई। 1978 में उन्होंने BAMCEF की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था-सरकारी विभागों में कार्यरत बहुजन समाज के शिक्षित कर्मचारियों को सामाजिक चेतना और राजनैतिक जिम्मेदारी के लिए संगठित करना। कांशीराम ने BAMCEF के सदस्यों को 'बौद्धिक सैनिक' कहा-ऐसे शिक्षित लोग जो समाज के भीतर वैचारिक जागरूकता फैलाएँगे और सामाजिक उत्पीड़न की जड़ों को पहचानकर उससे संघर्ष की दिशा में काम करेंगे।

इसके बाद 1981 में उन्होंने DS4 (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) का गठन किया, जिसका उद्देश्य राजनैतिक मोर्चे पर बहुजन समाज को सक्रिय और संघर्षशील बनाना था। DS4 ने नारा दिया-“ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया छोड़, बाकी सब हैं DS4।” यह नारा न केवल सामाजिक ध्रुवीकरण को चुनौती देता था, बल्कि स्पष्ट करता था कि बहुजन समाज को सत्ता के शिखर तक पहुँचाने का लक्ष्य सामने है। कांशीराम का स्पष्ट संदेश था कि यह आंदोलन केवल समाज सुधार के लिए नहीं, बल्कि सत्ता प्राप्त करने के लिए है।

बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना और राजनैतिक सशक्तिकरण

कांशीराम ने 1984 में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की, जो उनकी संपूर्ण विचारधारा का राजनैतिक रूपांतरण था। उन्होंने उद्घोष किया-“हम सुधार के लिए नहीं, शासन के लिए आए हैं।” BSP का निर्माण केवल एक विचारधारा नहीं, बल्कि एक सशक्त राजनैतिक योजना थी, जिसमें बहुजन समाज को सत्ता में भागीदारी दिलाने का स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित था।

BSP ने भारतीय राजनीति में जातीय बहुसंख्यक वर्ग-SC, ST, OBC और अल्पसंख्यकों को संगठित किया और उन्हें चुनावी ताकत में तब्दील किया। कांशीराम ने बहुजन वोट बैंक को संगठित करने के लिए जमीनी स्तर पर व्यापक अभियान चलाए, जिसमें पंचायतों से लेकर संसद तक सत्ता में पहुँचने की रणनीति थी। BSP केवल एक राजनैतिक दल नहीं था-यह एक सामाजिक क्रांति की राजनैतिक अभिव्यक्ति थी। उन्होंने बहुजन युवाओं को राजनीति में आने, संगठन चलाने और सत्ता की भाषा समझने के लिए प्रेरित किया।

सामाजिक सुधार आंदोलनों की आलोचना

कांशीराम ने पारंपरिक समाज सुधार आंदोलनों की सीमाओं पर तीखी टिप्पणी की। उन्होंने बार-बार यह कहा कि “सुधार की बातें तो संत और समाजसेवी करते हैं, लेकिन मैं राजनेता हूँ-मैं अपने समाज को हक दिलाने आया हूँ।” उन्होंने साफ किया कि केवल नैतिक उपदेशों और सहानुभूति से सामाजिक न्याय नहीं मिलता, बल्कि इसके लिए सत्ता जरूरी है।

कांशीराम का मानना था कि यदि उद्देश्य केवल नैतिक सुधार होता, तो वे भी संन्यासी बन जाते। लेकिन उनका लक्ष्य था-राजनैतिक प्रभुत्व। उन्होंने यह तर्क दिया कि जब तक निर्णय लेने वाली कुर्सी पर बहुजन समाज नहीं बैठेगा, तब तक उनके लिए बने कानून भी बहुजन विरोधी रहेंगे। इसलिए समाज सुधार के स्थान पर उन्होंने सत्ता प्राप्ति को प्राथमिकता दी और उसे ही सामाजिक परिवर्तन का मार्ग बताया।

BSP सरकारों के दौरान राजनैतिक सशक्तिकरण के उदाहरण

जब BSP सत्ता में आई-विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में-तो कांशीराम की विचारधारा को व्यवहार में लाने का अवसर मिला। SC/ST अत्याचार निवारण अधिनियम को सख्ती से लागू किया गया, जिससे बहुजन समाज के खिलाफ हिंसा और भेदभाव के मामलों पर त्वरित कार्रवाई संभव हुई। सरकारी नौकरियों में आरक्षण की निगरानी और उसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए संस्थागत तंत्र स्थापित किए गए।

इसके साथ ही BSP सरकारों ने बहुजन युवाओं को स्वरोजगार और उद्यमिता के लिए प्रोत्साहित किया। सरकारी टेंडर, लघु उद्योगों में प्राथमिकता और शिक्षा योजनाओं के माध्यम से बहुजन वर्गों को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त किया गया।

नगरपालिकाओं, ग्राम पंचायतों और विधानसभाओं में बहुजन प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए सघन प्रयास किए गए। यह सब उस दृष्टिकोण का हिस्सा था जिसमें कहा गया था कि “न्याय केवल भाषणों से नहीं, निर्णयों से आता है-और निर्णय वहीं से आते हैं जहाँ सत्ता होती है।”

शिक्षा और राजनैतिक जागरूकता: सामाजिक सुधार से आगे बढ़ने की योजना

कांशीराम ने शिक्षा को केवल रोज़गार का साधन न मानकर, उसे सत्ता में प्रवेश का मार्ग माना। उन्होंने कहा था-“जब तक हम नीति नहीं बनाएँगे, तब तक नीति हमारे खिलाफ ही बनेगी।” वे मानते थे कि शिक्षा के माध्यम से बहुजन समाज को केवल नौकरी नहीं, निर्णय-निर्माण की भूमिका में आना होगा।

BSP सरकारों ने प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी, सिविल सेवाओं के लिए विशेष कोचिंग संस्थान, और राजनैतिक नेतृत्व के लिए प्रशिक्षण केंद्र स्थापित किए। शिक्षा उनके लिए केवल डिग्री लेने का माध्यम नहीं थी, बल्कि समाज को सत्ता में लाने का साधन था।

कांशीराम ने यह बताया कि यदि एक बहुजन युवक IAS बनता है तो वह एक डेस्क पर बैठता है, लेकिन जब वही युवक मंत्री या मुख्यमंत्री बनता है, तो वह पूरी नीति बदल सकता है। इसलिए उन्होंने राजनैतिक सशक्तिकरण को शिक्षा की तुलना में अधिक निर्णायक माना-लेकिन दोनों को परस्पर पूरक रणनीति के रूप में देखा।

सामाजिक सुधार आंदोलन और उनके प्रभाव की सीमाएँ

महात्मा गांधी और कांग्रेस का दृष्टिकोण

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी ने छुआछूत और जातिगत भेदभाव के विरुद्ध महत्वपूर्ण प्रयास किए। उन्होंने अस्पृश्यों को “हरिजन” कहकर पुकारा और समाज को उनके साथ सह-अस्तित्व की भावना विकसित करने की सीख दी। गांधी जी का दृष्टिकोण नैतिक और आध्यात्मिक सुधारों पर केंद्रित था, जिसमें उन्होंने आत्म-शुद्धि और समाज के भीतर प्रेम, अहिंसा और सहिष्णुता को प्रमुख स्थान दिया। उन्होंने अस्पृश्यता को “गुनाह” करार दिया और इसके विरुद्ध अभियान

चलाए, लेकिन उन्होंने बहुजन समाज को अलग राजनैतिक पहचान देने या सत्ता में उनकी हिस्सेदारी सुनिश्चित करने की दिशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

कांशीराम ने गांधी के इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहा कि यदि गांधी और कांग्रेस ने वाकई बहुजन समाज को बराबरी का दर्जा और निर्णय की शक्ति दी होती, तो स्वतंत्र भारत में बहुजन समाज को अपनी अलग पार्टी-BSP-बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका यह मानना था कि नैतिक करुणा या सह-अस्तित्व का उपदेश तब तक खोखला है, जब तक वह सत्ता के हिस्से के रूप में साकार नहीं होता। कांग्रेस द्वारा दिए गए “हरिजन” जैसे नामों को उन्होंने “सहानुभूति के माध्यम से नियंत्रण” की चाल बताया।

RSS और हिंदू पुनरुद्धारवादी संगठन

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) और अन्य दक्षिणपंथी संगठनों का दृष्टिकोण यह रहा है कि भारत में सभी जातियाँ मिलकर एक “हिंदू समाज” का निर्माण करें। इन संगठनों ने अक्सर बहुजन समाज को “सर्व हिंदू” पहचान में समाहित करने का प्रयास किया, जिससे वे सामाजिक समरसता का संदेश दे सकें। लेकिन व्यवहार में यह दृष्टिकोण बहुजनों को सत्ता में वास्तविक हिस्सेदारी देने की अपेक्षा उन्हें केवल अनुयायी और मतदाता बनाए रखने तक सीमित रहा।

कांशीराम ने RSS और अन्य पुनरुद्धारवादी संगठनों की इस सोच की तीखी आलोचना की। उन्होंने कहा कि यदि ये संगठन सचमुच बहुजन समाज के कल्याण के पक्षधर होते, तो वे उन्हें सामाजिक समरसता का हिस्सा नहीं, बल्कि सत्ता का भागीदार बनाते। उन्होंने इस प्रक्रिया को

“सांस्कृतिक समर्पण की साजिश” कहा, जहाँ बहुजन समाज से उसकी पहचान और संघर्ष छीनकर उसे बहुमतवादी विचारधारा में निगलने की कोशिश होती है।

कांशीराम का मानना था कि सामाजिक एकता का वास्तविक आधार तब बनेगा जब हर वर्ग को सत्ता और नीति-निर्धारण में समान अधिकार प्राप्त होंगे। जब तक सामाजिक न्याय केवल उत्सवों और नारों तक सीमित रहेगा, तब तक समरसता एक कल्पना बनी रहेगी।

कांशीराम की अंतिम रणनीति: सामाजिक सुधार से सत्ता परिवर्तन तक

कांशीराम के अनुसार, सामाजिक सुधार केवल पहली सीढ़ी है-अंतिम लक्ष्य सत्ता परिवर्तन होना चाहिए। उन्होंने बहुजन समाज को बार-बार चेताया कि केवल सामाजिक जागरूकता और नैतिकता के उपदेश उन्हें कभी भी सत्ता में भागीदार नहीं बनाएँगे। उन्होंने यह भी कहा कि जो लोग केवल सुधार की बात करते हैं, वे असल में बहुजन समाज को सत्ता से दूर रखने का षड्यंत्र करते हैं।

उनका प्रसिद्ध नारा-“जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी”-केवल मतगणना नहीं, बल्कि सत्ता के वितरण का लोकतांत्रिक सूत्र था। यह नारा उन्होंने केवल प्रचार के लिए नहीं, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन के रूप में विकसित किया।

कांशीराम ने सत्ता को न केवल शासन करने का माध्यम माना, बल्कि समाज को न्याय, सम्मान और आत्म-सम्मान दिलाने का जरिया बताया। उनके अनुसार, सामाजिक सुधार तब ही सार्थक होंगे, जब बहुजन समाज खुद नीतियाँ बनाएगा, उन्हें लागू करेगा, और उन्हें अपने हित में नियंत्रित

करेगा। यही कारण है कि उन्होंने अपने जीवन की आखिरी साँस तक सामाजिक न्याय के लिए सत्ता को केंद्र में रखा और समाज को यह सिखाया कि यदि अधिकार चाहिए, तो सत्ता हथियाओ-क्योंकि सत्ता ही सम्मान की सबसे बड़ी गारंटी है।

अध्याय 48:

कांग्रेस और बीजेपी की बहुजन विरोधी नीतियों की आलोचना और कांशीराम का प्रतिरोध

भारत की राष्ट्रीय राजनीति और बहुजन समुदाय की स्थिति

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की राजनीति ने जिस दिशा में विकास किया, उसमें बहुजन समुदाय को अधिकार तो दिए गए, लेकिन उनका उपयोग सत्ता के वितरण में नहीं किया गया। संविधान ने सामाजिक न्याय और समता की अवधारणाएँ प्रस्तुत कीं, लेकिन कांग्रेस पार्टी ने इन्हें व्यवहार में उतारने के बजाय बहुजन समाज को एक सुनियोजित तरीके से केवल मतदाता बना कर रखा। बहुजन समुदाय को शिक्षा, स्वास्थ्य और राजनैतिक अधिकारों के नाम पर योजनाओं का लाभ तो दिया गया, लेकिन उन्हें निर्णय लेने की शक्ति से वंचित रखा गया। दूसरी ओर, भारतीय जनता पार्टी ने मंडल आयोग की सिफारिशों के बाद सवर्ण समूहों को गोलबंद कर बहुजन राजनीति को कमजोर करने का प्रयास किया। बहुजन वर्ग के लिए आरक्षण के विरुद्ध उग्र आंदोलन, हिंसा और वैचारिक हमलों के माध्यम से उन्हें सामाजिक और राजनैतिक रूप से हतोत्साहित किया गया। कांशीराम ने इस समूचे परिदृश्य को गंभीरता से देखा और निष्कर्ष निकाला कि कांग्रेस और बीजेपी दोनों ही बहुजन समुदाय को सत्ता से दूर रखने की साझा रणनीति पर काम कर रही हैं। उन्होंने इसे “सत्ताधारी ऊँची जातियों की संयुक्त साजिश” बताया और

इसके प्रतिकार हेतु एक संगठित वैकल्पिक राजनैतिक आंदोलन की नींव रखी।

कांग्रेस की बहुजन राजनीति और कांशीराम की आलोचना

कांशीराम ने कांग्रेस की बहुजन नीति को “छलपूर्ण लोकतांत्रिक रणनीति” कहा। उनका मानना था कि कांग्रेस ने डॉ. अंबेडकर द्वारा स्थापित संवैधानिक अधिकारों को मात्र प्रतीकात्मक रूप में स्वीकार किया और वास्तविक क्रियान्वयन से परहेज किया। उन्होंने विशेष रूप से जगजीवन राम का उदाहरण देते हुए कहा कि इतने वरिष्ठ और अनुभवी नेता को कभी प्रधानमंत्री नहीं बनने दिया गया, जबकि वे स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और लंबे समय तक कैबिनेट मंत्री रहे। कांशीराम का यह भी आरोप था कि कांग्रेस ने आरक्षण लागू करने के बाद बहुजन समाज को आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में कोई स्वतंत्र नीति नहीं दी। शिक्षा, रोजगार और व्यवसाय में वह सहायता केवल औपचारिक रही, जिससे बहुजन समाज आत्मनिर्भर नहीं हो सका। कांग्रेस की जातिवादी मानसिकता के चलते सत्ता के केंद्र में उच्च जातियों का प्रभुत्व लगातार बना रहा और बहुजन समाज को केवल कार्यक्रमों का लाभार्थी बनाकर रखा गया।

कांग्रेस पर कांशीराम के आरोप

कांशीराम ने कांग्रेस पर कई महत्वपूर्ण आरोप लगाए, जो उनके वैचारिक आंदोलन की आधारशिला बने। पहला आरोप यह था कि आरक्षण लागू करने के बावजूद उच्च पदों तक बहुजन समाज की पहुँच नहीं सुनिश्चित की गई। सरकारों ने उन्हें क्लास-3 या क्लास-4 कर्मचारियों तक सीमित रखा। दूसरा, उन्होंने आरोप लगाया कि कांग्रेस ने बहुजन नेताओं को

नेतृत्व के अवसर नहीं दिए और उन्हें चुनाव में टिकट देकर केवल वोट खिंचवाने का माध्यम बना दिया। तीसरा और सबसे गंभीर आरोप यह था कि कांग्रेस की पूरी राजनीति उच्च जातियों के प्रभुत्व को बनाए रखने के लिए डिज़ाइन की गई थी, जो बहुजन समाज को सत्ताहीन बनाए रखने का संरचनात्मक उपकरण बन गई। कांशीराम ने इसे “राजनैतिक धोखाधड़ी” करार दिया और कहा कि जब तक बहुजन समाज कांग्रेस से मुक्त नहीं होगा, वह स्वतंत्र नहीं हो सकता।

मंडल कमीशन और बीजेपी की बहुजन विरोधी राजनीति

मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करना एक ऐतिहासिक कदम था, लेकिन इससे उत्पन्न सामाजिक प्रतिक्रिया ने बहुजन राजनीति के सामने कई चुनौतियाँ पैदा कर दीं। बीजेपी ने मंडल के विरोध में “कमंडल” की राजनीति शुरू की, जिसमें राम मंदिर आंदोलन और धार्मिक ध्रुवीकरण के माध्यम से सवर्ण जातियों को लामबंद किया गया। कांशीराम ने इसे गहरी साजिश करार देते हुए कहा कि यह आंदोलन बहुजन समाज की आकांक्षाओं को कुचलने के लिए शुरू किया गया था। बीजेपी की रणनीति थी “—धर्म के नाम पर बहुजन समाज को भावनात्मक रूप से बाँधो और राजनैतिक रूप से उन्हें दरकिनार कर दो।” आरक्षण के खिलाफ उग्र विरोध, बंद, तोड़फोड़ और हिंसक आंदोलन को बीजेपी ने वैचारिक रूप से समर्थन दिया। यह सब इस बात का प्रमाण था कि पार्टी बहुजन अधिकारों की विरोधी थी।

बीजेपी पर कांशीराम के आरोप

कांशीराम ने बीजेपी पर गंभीर आरोप लगाए कि पार्टी ने सत्ता में आने के बाद बहुजन समाज को सत्ता में शामिल नहीं किया, बल्कि उनकी

राजनैतिक आकांक्षाओं को कुचल दिया। उन्होंने कहा कि राम मंदिर आंदोलन में बहुजन समाज को मोहरा बनाया गया, लेकिन जब सरकारें बनीं तो सत्ता में केवल ऊँची जातियों को स्थान मिला। मंडल आयोग के विरोध ने यह स्पष्ट कर दिया कि बीजेपी सामाजिक न्याय के सिद्धांत को नहीं मानती। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि बीजेपी की नीतियों ने बहुजन नेतृत्व को उत्पन्न नहीं होने दिया, बल्कि उन्हें संगठनात्मक और वैचारिक रूप से हाशिये पर रखा गया। उन्होंने आरोप लगाया कि बहुजन समाज के खिलाफ हिंसा की घटनाओं में बीजेपी शासित प्रदेशों में प्रशासनिक उदासीनता देखी गई और उनके नेतृत्व को उभरने से रोकने की पूरी कोशिश की गई।

कांशीराम का कांग्रेस और बीजेपी के खिलाफ वैकल्पिक राजनीति का निर्माण

इन दोनों दलों की राजनीति से क्षुब्ध होकर कांशीराम ने एक स्वतंत्र राजनैतिक मार्ग की तलाश शुरू की। उनका मानना था कि जब तक बहुजन समाज का अपना नेतृत्व नहीं होगा, तब तक सत्ता में उनकी भूमिका नहीं बन सकती। इसी विचार से उन्होंने BSP का गठन किया, जो बहुजन, पिछड़े, अल्पसंख्यक और आदिवासी समुदायों का एक साझा मंच बना। उन्होंने नारा दिया “—कांग्रेस की गुलामी से मुक्ति पाओ, अपनी सत्ता खुद बनाओ।” उन्होंने स्पष्ट किया कि “हम हिंदुत्व की राजनीति से दूर रहेंगे, हमें सत्ता चाहिए, श्रद्धा नहीं।” उन्होंने बीजेपी की “हिंदू एकता” को “सवर्ण एकता” बताते हुए इसे बहुजन विरोधी बताया और कहा कि इससे बहुजन वर्ग की राजनैतिक चेतना को कुंद किया जा रहा है।

BSP की राजनीति: कांग्रेस और बीजेपी का विकल्प

BSP केवल एक पार्टी नहीं, बल्कि एक वैकल्पिक राजनैतिक दर्शन थी, जो बहुजन समाज को सत्ता दिलाने के लिए बनी थी। कांशीराम का यह भी दृढ़ विश्वास था कि “हम ऊँची जातियों की पार्टियों से टिकट लेकर संसद में नहीं जाएँगे, हम अपनी पार्टी से सत्ता लाएँगे।” BSP की रणनीति थी-स्वतंत्र चुनाव लड़ना, स्वतंत्र नेतृत्व खड़ा करना और बहुजन समाज की प्राथमिकताओं को नीति में रूपांतरित करना। मायावती के नेतृत्व में यह रणनीति साकार भी हुई, जब उत्तर प्रदेश में बहुजन नेतृत्व सत्ता तक पहुँचा। BSP ने सरकारी योजनाओं को बहुजन-उन्मुख बनाया, नौकरियों में आरक्षण की निगरानी की और राजनैतिक नेतृत्व को गाँव-गाँव तक फैलाया।

कांग्रेस और बीजेपी की बहुजन विरोधी घटनाएँ और BSP की प्रतिक्रिया

BSP ने कांग्रेस और बीजेपी के शासनकाल में हुई बहुजन विरोधी घटनाओं को उजागर किया और इनके खिलाफ राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन चलाया। 1980 के दशक में बिहार और उत्तर प्रदेश में हुए जातीय नरसंहारों को लेकर BSP ने संसद और सड़कों पर आवाज़ उठाई। खैरलांजी नरसंहार (2006) और गुजरात दंगे (2002) जैसी घटनाओं में बहुजन समुदाय को लक्षित किया गया, लेकिन सरकारों ने न्याय दिलाने में गंभीरता नहीं दिखाई। BSP ने इन मुद्दों को राजनैतिक आंदोलन में बदलकर जनता को यह दिखाया कि कांग्रेस और बीजेपी दोनों बहुजन समाज के संरक्षक नहीं, शोषक हैं।

कांशीराम की दीर्घकालिक रणनीति: बहुजन शासन की स्थापना

कांशीराम की अंतिम रणनीति बहुजन शासन की स्थापना थी। उनका सपना था कि बहुजन समाज न केवल सत्ता में भागीदार बने, बल्कि सत्ता का केंद्र बने। उन्होंने बार-बार दोहराया कि “हमें अपनी सरकार चाहिए, दूसरों की दया नहीं।” उन्होंने बहुजन युवाओं को नेतृत्व के लिए तैयार किया, महिला प्रतिनिधित्व पर बल दिया और संगठन के माध्यम से नीचे से ऊपर तक नेतृत्व निर्माण की रणनीति अपनाई। मायावती को मुख्यमंत्री बनाकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि बहुजन नेतृत्व सत्ता में आ सकता है। उनकी दीर्घकालिक रणनीति आज भी बहुजन राजनीति के मूल स्तंभ के रूप में जीवित है।

अध्याय 49:

“राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” – कांशीराम का सिद्धांत

“सत्ता की चाबी” का विचार और इसकी पृष्ठभूमि

कांशीराम द्वारा दिया गया नारा “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” केवल एक भावनात्मक उद्घोषणा नहीं था, बल्कि यह एक रणनीतिक दर्शन था जिसे उन्होंने बहुजन समाज के सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उत्थान के लिए तैयार किया था। भारत के स्वतंत्र होने के बाद भी बहुजन समाज-जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक शामिल हैं-राजनैतिक निर्णयों में केवल एक सहायक भूमिका में रहे। सत्ता में उच्च जातियों का वर्चस्व बना रहा और संविधान में प्रदत्त अधिकारों का लाभ व्यावहारिक रूप से सीमित रहा। ऐसे में कांशीराम ने यह दृढ़ मत बनाया कि सामाजिक और आर्थिक न्याय की प्राप्ति तभी संभव है जब बहुजन समाज खुद सत्ता में हो और नीतियों के निर्माण में उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी हो। इसीलिए उन्होंने अपने पूरे राजनैतिक जीवन को इस विचार पर केंद्रित किया कि संख्या में बहुजन समाज यदि संगठित होकर सत्ता प्राप्त करे, तो न केवल उनकी दशा बदलेगी, बल्कि भारतीय लोकतंत्र की दिशा भी परिवर्तित हो जाएगी। उन्होंने कहा कि “जो सत्ता में रहेगा, वही नीति बनाएगा, और वही यह तय करेगा कि किसे क्या अधिकार मिलेगा।” यही कारण था कि यह नारा महज़ नारा नहीं रहा, बल्कि एक आंदोलन का मूलमंत्र बन गया।

कांशीराम का दृष्टिकोण: राजनैतिक सत्ता से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन

कांशीराम ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया कि सामाजिक जागरूकता, शिक्षा, आंदोलन, भाषण या नैतिकता की बातें तब तक केवल प्रतीकात्मक रह जाएंगी जब तक राजनैतिक सत्ता उन लोगों के पास नहीं होगी जिनके हितों की रक्षा की जानी है। उनके अनुसार, समाज सुधार की बातें उन लोगों के लिए हैं जो सत्ता से पहले आत्मिक या सांस्कृतिक रूप से परिष्कृत समाज का सपना देखते हैं, जबकि बहुजन समाज के सामने सबसे बड़ी प्राथमिकता अपने अस्तित्व, अधिकार और सम्मान की रक्षा है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि सत्ता के बिना कोई भी सामाजिक परिवर्तन स्थायी नहीं हो सकता, क्योंकि नीति निर्माण, संसाधन वितरण और कानूनों के अनुप्रयोग का नियंत्रण केवल सत्ताधारी वर्ग के पास होता है। उन्होंने शिक्षा को आवश्यक बताया, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि “यदि शिक्षा के बाद भी हम सिर्फ क्लर्क या टीचर बनकर रह जाएँ और नीति निर्माण की प्रक्रिया से बाहर हों, तो यह शिक्षा अधूरी है।” कांशीराम का मानना था कि सत्ता में भागीदारी के बिना कोई भी आंदोलन केवल भावनात्मक या नैतिक प्रयास बनकर रह जाता है, इसलिए राजनैतिक शक्ति प्राप्त करना बहुजन समाज के अस्तित्व और उन्नति के लिए अनिवार्य है।

BSP की स्थापना और सत्ता प्राप्ति की रणनीति

कांशीराम की इसी विचारधारा के तहत 1984 में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना हुई। यह पार्टी केवल एक राजनैतिक संगठन नहीं थी, बल्कि वह एक सामाजिक आंदोलन का राजनैतिक रूपांतरण थी।

कांशीराम ने स्पष्ट कहा कि “हम केवल विरोध करने के लिए नहीं आए हैं, हम शासन करने के लिए आए हैं।” BSP का उद्देश्य था-बहुजन समाज को एकजुट कर एक ऐसा राजनैतिक विकल्प तैयार करना जो उन्हें सत्ता तक ले जाए। इसके लिए उन्होंने जाति-आधारित आंकड़ों का उपयोग करते हुए बार-बार कहा-“जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी।” उन्होंने समझाया कि भारत में बहुजन समाज बहुसंख्यक है, लेकिन जब तक वे संगठित नहीं होते, वे सत्ता से वंचित ही रहेंगे। BSP की रणनीति थी-OBC, SC, ST और मुस्लिम समुदायों को एक मंच पर लाना और उन्हें सत्ता की राजनीति के केंद्र में स्थापित करना। चुनावों में सिर्फ भाग लेना नहीं, बल्कि सत्ता प्राप्त करना BSP की प्राथमिक रणनीति थी। कांशीराम ने बार-बार यह कहा कि “हम तब तक नहीं रुकेंगे, जब तक हम बहुजन समाज को मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और निर्णयकर्ता की कुर्सी तक नहीं पहुँचा देते।”

BSP सरकारों और सत्ता में भागीदारी के उदाहरण

कांशीराम के इस सिद्धांत का प्रत्यक्ष प्रभाव तब देखने को मिला जब BSP ने 1995 में उत्तर प्रदेश में पहली बार सरकार बनाई और मायावती मुख्यमंत्री बनीं। यह भारत के इतिहास में एक ऐसा क्षण था जब दलित समाज की महिला सत्ता की सर्वोच्च कुर्सी तक पहुँची। इसके बाद 1997 और 2002 में भी BSP सत्ता में साझेदार बनी, और 2007 में पूर्ण बहुमत से सत्ता में लौटकर मायावती ने अपने बल पर सरकार बनाई। इन सरकारों के दौरान SC/ST एक्ट को सख्ती से लागू किया गया, बहुजन समाज के लिए विशेष योजनाएँ लाई गईं, सरकारी नौकरियों में आरक्षण को प्रभावी बनाने के लिए निगरानी तंत्र बनाए गए, और बहुजन स्वामित्व वाले व्यवसायों को प्रोत्साहित किया गया। यह सब केवल इसलिए संभव हुआ

क्योंकि बहुजन समाज सत्ता में था और उनके हितों को प्राथमिकता दी गई। इस प्रकार कांशीराम का “सत्ता की चाबी” वाला सिद्धांत न केवल व्यवहार में उतरा, बल्कि इसके व्यावहारिक परिणाम भी सामने आए।

कांग्रेस और बीजेपी के सत्ता मॉडल से भिन्न कांशीराम का दृष्टिकोण

कांशीराम ने कांग्रेस और बीजेपी की राजनीति को बहुजन विरोधी बताया। उनके अनुसार कांग्रेस बहुजनों को वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करती थी लेकिन उन्हें सत्ता में हिस्सेदारी नहीं देती थी, जबकि बीजेपी उन्हें हिंदू एकता के नाम पर समाहित करने की कोशिश करती थी, पर निर्णय की शक्ति सदैव सवर्ण नेतृत्व के पास रखती थी। कांशीराम ने कहा कि ये दोनों पार्टियाँ बहुजन समाज के प्रतिनिधित्व को दबाने के लिए अलग-अलग रणनीति अपनाती हैं। उन्होंने यह तर्क दिया कि जब तक बहुजन समाज अपनी पार्टी के ज़रिए सत्ता में नहीं आएगा, तब तक उनके हितों की रक्षा नहीं हो सकती। BSP की राजनीति इन दोनों दलों से इसीलिए भिन्न थी, क्योंकि यह दल बहुजन समाज के अपने नेतृत्व और एजेंडे के आधार पर सत्ता पाने की आकांक्षा रखता था। कांशीराम का सपना था-स्वतंत्र बहुजन नेतृत्व, स्वतंत्र निर्णय, और स्वतंत्र सत्ता-जो किसी सवर्ण पार्टी या नेता के नियंत्रण में न हो।

कांशीराम का अंतिम संदेश और “सत्ता की चाबी” का भविष्य

कांशीराम ने अपने जीवन के अंतिम वर्षों में यह स्पष्ट रूप से कहा कि उनका आंदोलन सामाजिक सुधार का नहीं, सत्ता परिवर्तन का आंदोलन है। उनके अनुसार, यदि बहुजन समाज को न्याय, सम्मान और अधिकार चाहिए तो उन्हें राजनैतिक सत्ता अपने हाथों में लेनी ही होगी। उन्होंने इस

विचार को पूरे देश में फैलाया और अपने उत्तराधिकारी के रूप में मायावती को तैयार किया। मायावती ने 2007 में पूर्ण बहुमत से उत्तर प्रदेश में सरकार बनाई और इस प्रकार कांशीराम के सपने को व्यवहारिक रूप दिया। “राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है” यह नारा एक दर्शन बन गया-एक ऐसी रणनीति जिसने बहुजन राजनीति को भीख मांगने वाली राजनीति से निकालकर सत्ता लेने वाली राजनीति में तब्दील कर दिया। आज भी यदि बहुजन समाज को अपनी स्थिति में परिवर्तन लाना है, तो कांशीराम के इस सिद्धांत को व्यवहार में लाना आवश्यक है। यही उनके आंदोलन की सबसे बड़ी विरासत है।

अध्याय 50: अधूरे कार्यों की समीक्षा और भविष्य में बहुजन आंदोलनों की संभावनाएँ

कांशीराम की अपूर्ण क्रांति: अधूरे कार्यों का विश्लेषण

कांशीराम द्वारा आरंभ की गई बहुजन क्रांति भारतीय सामाजिक और राजनैतिक इतिहास की एक अनूठी परिघटना थी। इस क्रांति का उद्देश्य केवल दलितों या पिछड़ों के अधिकारों तक सीमित नहीं था, बल्कि वह पूरे बहुजन वर्ग-जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, पिछड़ा वर्ग, धार्मिक अल्पसंख्यक, महिलाएँ और अन्य वंचित समुदाय शामिल थे-को सत्ता और समाज के केंद्र में लाकर खड़ा करना चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारत के लोकतंत्र में जब तक जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा, तब तक असमानता और शोषण का अंत नहीं होगा। उन्होंने “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” का सूत्र दिया, जो एक गहरे सामाजिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित था।

हालांकि इस क्रांति ने अपने प्रारंभिक वर्षों में बहुजन समाज को राजनैतिक चेतना दी, लेकिन यह क्रांति कांशीराम के जीवनकाल में पूरी तरह सफल नहीं हो सकी और उनके निधन के बाद और भी बिखर गई। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि यह आंदोलन एक सशक्त वैचारिक ढाँचा और व्यापक संगठनात्मक आधार होते हुए भी नेतृत्व पर अत्यधिक निर्भर हो गया था। कांशीराम स्वयं एक करिश्माई नेता थे और उन्होंने

जिस सामूहिक चेतना की नींव रखी थी, वह उनके जाने के बाद नेतृत्व संकट का शिकार हो गई।

कांशीराम की दृष्टि में बहुजन क्रांति केवल चुनाव जीतने की रणनीति नहीं थी, बल्कि वह एक सामाजिक क्रांति थी जो लोगों को उनके अधिकारों, आत्मसम्मान और पहचान की लड़ाई के लिए प्रेरित करती थी। उन्होंने अपने जीवन के अंतिम वर्षों तक यह स्पष्ट किया कि जब तक बहुजन समाज खुद को संगठित नहीं करता, तब तक सत्ता की संरचनाओं में उनकी भागीदारी नहीं बढ़ सकती। उनके नेतृत्व में बनी बहुजन समाज पार्टी एक आंदोलनकारी दल थी, लेकिन जैसे-जैसे यह सत्ता में आई, उसका आंदोलनकारी स्वरूप क्षीण होता गया। इसके पीछे संगठनात्मक अनुशासन की कमी, वैचारिक स्पष्टता का अभाव, और सत्ता केंद्रित राजनीति का बढ़ता प्रभाव था।

कांशीराम की यह क्रांति इसलिए भी अधूरी रह गई क्योंकि उन्होंने जिस आत्मनिर्भर, शिक्षित, जागरूक और संगठित बहुजन समाज की कल्पना की थी, उसे नीति, योजना और संसाधन के स्तर पर वह समर्थन नहीं मिल पाया जिसकी अपेक्षा थी। न तो शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सुधार किए गए, न ही आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में ठोस रणनीतियाँ विकसित हुईं। राजनैतिक रूप से जिस संगठनात्मक एकता की जरूरत थी, वह भी 2006 के बाद धीरे-धीरे कमजोर पड़ती गई। नेतृत्व में एकसूत्रता की कमी, अंदरूनी गुटबाजी, और क्षेत्रीय राजनीति में उलझने की प्रवृत्ति ने इस आंदोलन को दिशाहीन कर दिया।

2012 के बाद की राजनैतिक परिदृश्य में बहुजन आंदोलन जिस प्रकार सीमित होता गया, उसने कांशीराम की अधूरी क्रांति की वास्तविकता को उजागर किया। उनके द्वारा प्रारंभ किए गए सिद्धांत तो जीवित रहे,

लेकिन उन्हें अमल में लाने वाले वैचारिक नेतृत्व, सशक्त संगठन और जमीनी कार्यकर्ता कम होते गए। इससे यह स्पष्ट हो गया कि बिना मजबूत वैचारिक शिक्षा, राजनैतिक अनुशासन, और आर्थिक-सामाजिक समन्वय के कोई भी क्रांति पूर्ण नहीं हो सकती।

यदि इस क्रांति को पुनर्जीवित करना है, तो आवश्यक है कि कांशीराम की दृष्टि को केवल स्मारकों और प्रतीकों तक सीमित न रखा जाए, बल्कि उसे जनचेतना, नीति निर्धारण और वैचारिक संघर्ष के केंद्र में फिर से स्थापित किया जाए। तभी बहुजन आंदोलन उस अधूरी क्रांति को पूर्ण कर सकता है, जिसे कांशीराम ने अपने जीवन भर साधना की तरह पोषित किया था।

कांशीराम के अधूरे कार्यों की समीक्षा

कांशीराम ने बहुजन आंदोलन को सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक न्याय के तीन स्तंभों पर आधारित एक परिवर्तनकारी आंदोलन के रूप में देखा था। उनका मानना था कि सामाजिक चेतना के बिना राजनैतिक सशक्तिकरण और आर्थिक आत्मनिर्भरता अधूरी रहेंगी। उन्होंने कहा था कि बहुजन समाज को केवल वोट बैंक नहीं बनना है, बल्कि नीति निर्माण में भागीदार बनना है। इस लक्ष्य को पाने के लिए उन्होंने BAMCEF, DS4 और BSP जैसे संगठनों की स्थापना की, ताकि सामाजिक जागरूकता को संगठित राजनैतिक ताकत में बदला जा सके। लेकिन इन तीनों स्तरों पर जो कार्य उन्होंने आरंभ किए, वे उनके जीवनकाल में पूर्णता तक नहीं पहुँच सके और उनके बाद और भी कमजोर हो गए।

सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो कांशीराम ने जातीय अस्मिता को आत्मगौरव में बदलने का काम शुरू किया। उन्होंने बहुजन समाज को

इतिहास, संस्कृति और अधिकारों के बारे में जागरूक किया, लेकिन यह जागरूकता ग्रामीण क्षेत्रों और समाज के सबसे निचले तबकों तक व्यापक रूप से नहीं पहुँच पाई। शहरों और कुछ क्षेत्रों तक सीमित यह चेतना समग्र समाज में क्रांतिकारी बदलाव नहीं ला सकी। इसके पीछे कारण था-सामाजिक संचार के माध्यमों की सीमा, कार्यकर्ताओं की संख्या और संगठनात्मक संसाधनों की कमी। साथ ही, शिक्षा के अभाव ने भी इस सामाजिक चेतना को फैलने में बाधा पहुँचाई।

राजनैतिक स्तर पर कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी (BSP) के माध्यम से यह संदेश दिया कि बहुजन समाज सत्ता में हिस्सेदारी पाने के लिए सक्षम है। उन्होंने सत्ता को “बहुजन हित” के साधन के रूप में देखा और “हम सरकार नहीं बनाएँगे, सरकार चलाएँगे” जैसा नारा देकर सत्ता को बहुजन समाज के लिए रणनीतिक हथियार के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन BSP के सत्ता में आने के बाद यह सिद्धांत कहीं न कहीं चुनावी व्यावहारिकताओं और समझौतों में कमजोर होता गया। राजनीति केंद्रित होने के कारण पार्टी आंदोलनकारी स्वरूप से दूर होती चली गई। गठबंधन की मजबूरियों, जातिगत ध्रुवीकरण और सत्ता में टिके रहने की रणनीति ने उस विचारधारा को धीमा कर दिया जिसे कांशीराम ने जन-क्रांति में बदलने का सपना देखा था।

आर्थिक दृष्टि से कांशीराम का जोर इस बात पर था कि बहुजन समाज को केवल सरकारी नौकरियों तक सीमित न रखा जाए, बल्कि वह उत्पादन के साधनों-भूमि, पूंजी और उद्योग-में भी हिस्सेदार बने। लेकिन BSP की सरकारें और उनके बाद की नीतियाँ इस दिशा में ठोस रूप से आगे नहीं बढ़ सकीं। न कोई बहुजन आर्थिक निगम बना, न ही कोई ऐसी नीति लागू हुई जिससे बहुजन समाज का आर्थिक आधार संस्थागत रूप

से सशक्त हो। इसके विपरीत, बहुजन युवाओं को सरकारी नौकरी की सीमित संभावनाओं में उलझा कर रख दिया गया, जिससे वे उद्यम, व्यापार या स्वतंत्र आजीविका की दिशा में प्रेरित नहीं हो सके।

कांशीराम का यह मानना था कि जब तक बहुजन समाज सामाजिक रूप से संगठित नहीं होगा, तब तक राजनैतिक और आर्थिक सशक्तिकरण संभव नहीं है। लेकिन संगठनात्मक दृष्टि से भी कांशीराम के कार्य अधूरे रह गए। उन्होंने कैडर आधारित आंदोलन की नींव रखी थी, परंतु उनके निधन के बाद BSP नेतृत्व ने संगठन को केंद्रीकृत और शीर्ष-केंद्रित बना दिया, जिससे स्थानीय स्तर पर कार्यकर्ताओं का आत्मबल और भागीदारी कम हुई। संगठनात्मक प्रशिक्षण, विचारधारा की शिक्षा और जमीनी आंदोलन की निरंतरता बंद हो गई, जिससे संगठन की जड़ें कमजोर होने लगीं।

इस प्रकार कांशीराम द्वारा शुरू किए गए कार्य-सामाजिक चेतना, राजनैतिक हिस्सेदारी, और आर्थिक स्वतंत्रता-उनकी मृत्यु के बाद अनुवर्ती नेतृत्व द्वारा उसी ऊर्जा और वैचारिक स्पष्टता से नहीं अपनाए गए। इन अधूरे कार्यों को पूर्ण करने के लिए आवश्यक है कि बहुजन आंदोलन नए सिरे से एक विचार-आधारित, संगठन-आधारित और जन-सहभागिता आधारित स्वरूप में पुनः स्थापित हो, जिसमें नेतृत्व पारदर्शी हो, संगठन विकेंद्रित हो, और जनता का जुड़ाव मजबूत हो। तभी कांशीराम की वह क्रांति, जो अधूरी रह गई थी, भविष्य में पूर्णता की ओर अग्रसर हो सकेगी।

बहुजन एकता का सपना और उसकी असफलता

कांशीराम का सबसे बड़ा राजनैतिक और सामाजिक सपना था-पूरे बहुजन समाज को एक मंच पर संगठित करना और उसे सत्ता के केंद्र में लाना। उन्होंने यह स्वप्न केवल नारे के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक मिशन के रूप में देखा था। उनका मानना था कि बहुजन समाज, जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग, धार्मिक अल्पसंख्यक और महिलाएँ शामिल हैं, यदि संगठित हो जाएँ, तो भारत की सत्ता संरचना में आमूलचूल परिवर्तन संभव है। उन्होंने इस गठबंधन को केवल राजनैतिक नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का जरिया माना और इसके लिए उन्होंने 'बहुजन एकता' की संकल्पना दी। यह एकता, उनके अनुसार, सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध, आत्म-सम्मान की पुनर्प्राप्ति, और ऐतिहासिक उत्पीड़न से मुक्ति का माध्यम थी।

हालांकि कांशीराम ने बहुजन समाज को वैचारिक रूप से एक करने की कोशिश की और "जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी" जैसे नारों से जातियों को जागरूक किया, लेकिन व्यवहार में यह एकता कई स्तरों पर कमजोर पड़ी। एक ओर, जातिगत उपवर्गों के बीच वर्चस्व की होड़ और पारंपरिक सामाजिक तनावों ने एक सुसंगठित राजनैतिक शक्ति बनने में रोड़े अटकाए। उदाहरण के लिए, ओबीसी समुदाय के भीतर यादव बनाम गैर-यादव विभाजन, या दलित समाज के भीतर जाटव बनाम गैर-जाटव संघर्ष, बहुजन एकता को कमजोर करते रहे।

इसके अतिरिक्त, राजनैतिक नेतृत्व में पारदर्शिता की कमी और सत्ता केंद्रित रणनीतियों ने इस एकता को और कमजोर किया। मायावती द्वारा अपनाई गई “सर्वजन” नीति, जिसमें सवर्ण जातियों जैसे ब्राह्मणों को बहुजन गठबंधन में शामिल किया गया, ने मूल बहुजन आंदोलन की धार को कुंद कर दिया। इस रणनीति से भले ही कुछ समय के लिए राजनैतिक लाभ हुआ हो, लेकिन इससे दलित और पिछड़े वर्गों में असंतोष भी उत्पन्न हुआ, क्योंकि वे इसे कांशीराम की विचारधारा से विचलन मानते थे।

वहीं, नेतृत्व के केंद्रीकरण और जमीनी कार्यकर्ताओं की उपेक्षा ने बहुजन संगठनात्मक ढाँचे को खोखला कर दिया। आंदोलन में भाग लेने वाले युवाओं और निचले स्तर के कार्यकर्ताओं को न तो पर्याप्त सम्मान मिला और न ही नेतृत्व विकास के अवसर, जिससे वे अन्य विकल्पों की तलाश में इधर-उधर बिखर गए।

आज के संदर्भ में, जहाँ जातीय चेतना तो जागृत है, पर वह एक संगठित रणनीतिक आंदोलन में तब्दील नहीं हो पा रही, वहाँ कांशीराम का ‘बहुजन एकता’ का सपना अधूरा ही प्रतीत होता है। यदि इस एकता को फिर से स्थापित करना है, तो उसे केवल चुनावी मंचों पर नहीं, बल्कि सामाजिक और वैचारिक स्तर पर भी पुनर्गठित करना होगा। जातियों के बीच समन्वय, नेतृत्व में भागीदारी और साझा राजनैतिक एजेंडा विकसित करना इसके लिए अनिवार्य होगा। वरना यह सपना, इतिहास की पुस्तकों और स्मारकों में सीमित होकर रह जाएगा।

राजनैतिक सशक्तिकरण की सीमाएँ

बहुजन आंदोलन के भीतर राजनैतिक सशक्तिकरण को लेकर जो उम्मीदें कांशीराम ने जगाई थीं, वे मायावती के नेतृत्व में आंशिक रूप से साकार तो हुईं, लेकिन लंबे समय तक स्थायी रूप नहीं ले सकीं। उत्तर प्रदेश में 1995, 1997, 2002 और विशेषकर 2007 में BSP की सरकार बनना निस्संदेह एक ऐतिहासिक क्षण था। यह पहली बार था जब बहुजन समाज के एक बड़े हिस्से ने सत्ता की बागडोर को अपने हाथों में महसूस किया। मगर यह उपलब्धि जितनी बड़ी प्रतीत हुई, उससे कहीं अधिक वह रणनीतिक, वैचारिक और सामाजिक स्तर पर टिकाऊ नहीं रही। उत्तर प्रदेश से बाहर पार्टी का विस्तार सीमित रहा और राष्ट्रीय राजनीति में BSP प्रभावहीन होती चली गई।

इसका एक मुख्य कारण था सत्ता के साथ आने वाली व्यावहारिक सीमाएँ और राजनैतिक समझौतों की बाध्यता। गठबंधन की राजनीति ने पार्टी की वैचारिक दृढ़ता को कमजोर किया। कभी कांग्रेस तो कभी बीजेपी के समर्थन से सरकार बनाना, या गठबंधन सरकारों में भाग लेना, BSP को लगातार एक ऐसी स्थिति में ले गया जहाँ वह अपने मूल बहुजन एजेंडे को खुलकर लागू नहीं कर सकी। कांशीराम द्वारा परिकल्पित वह निर्णायक नेतृत्व, जो सत्ता का उपयोग सामाजिक परिवर्तन के लिए करता, वह दृष्टिकोण धीरे-धीरे सत्ता की स्थिरता, प्रशासनिक संतुलन और चुनावी गणित में उलझता चला गया।

इसके अतिरिक्त, पार्टी का केंद्रीय नेतृत्व बहुत व्यक्तिवादी हो गया, जिससे जमीनी स्तर पर बहुजन नेतृत्व का विकास रुक गया। दलित-पिछड़े युवाओं को नेतृत्व की भूमिका देने की जगह, निर्णय लेने की प्रक्रिया एक सीमित समूह तक सिमट गई। इससे संगठन में उत्साह और भागीदारी की

भावना कमजोर हुई। सरकार बनने के बावजूद बहुजन समाज को लगा कि उनका राजनैतिक प्रतिनिधित्व केवल प्रतीकात्मक रह गया है, नीतिगत निर्णयों में उनकी भागीदारी नहीं है। परिणामस्वरूप, बहुजन वर्ग का एक बड़ा हिस्सा सत्ता में भागीदारी के बावजूद अपने आप को हाशिए पर महसूस करने लगा।

यही नहीं, सत्ता में आने के बाद पार्टी की प्राथमिकता चुनाव जीतने तक सिमट गई, जिससे बहुजन आंदोलन का वह परिवर्तनकारी तत्व धीमा पड़ गया जो सामाजिक न्याय, समावेशिता और प्रतिनिधित्व पर आधारित था। कांशीराम की नीति थी-“हम सरकार नहीं, सत्ता चाहते हैं।” यानी सत्ता सिर्फ शासन करने के लिए नहीं, बल्कि व्यवस्था को बहुजन अनुकूल बनाने के लिए चाहिए। लेकिन सत्ता में आने के बाद वह क्रांतिकारी उद्देश्य प्रशासनिक संतुलन और चुनावी मजबूरी के बीच कहीं खो गया।

इस तरह, राजनैतिक सशक्तिकरण को प्राप्त करने के बाद भी जब बहुजन समाज की रोजमर्रा की समस्याओं का समाधान नहीं हो पाया-जैसे कि भूमि अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार-तो यह सशक्तिकरण अधूरा रह गया। सत्ता का प्राप्त होना पर्याप्त नहीं होता, जब तक वह सत्ता समाज के अंतिम व्यक्ति तक बदलाव नहीं पहुँचा सके। कांशीराम की दृष्टि में सत्ता का मतलब केवल चुनाव जीतना नहीं था, बल्कि एक वैचारिक, संस्थागत और सामाजिक शक्ति बनाना था। दुर्भाग्यवश, यह दृष्टिकोण सत्ता प्राप्ति के बाद क्रमशः कमजोर होता चला गया।

आर्थिक सशक्तिकरण की कमी

बहुजन आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरियों में से एक रही है – आर्थिक सशक्तिकरण की उपेक्षा। कांशीराम का स्पष्ट मत था कि केवल राजनैतिक सत्ता या सरकारी नौकरियों में आरक्षण से बहुजन समाज की बहुआयामी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। उन्होंने बार-बार कहा था कि जब तक बहुजन समाज आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बनेगा, तब तक वह भारतीय समाज में स्थायी सम्मान और सत्ता की भागीदारी प्राप्त नहीं कर सकेगा। कांशीराम की यह दूरदर्शिता इस बात को रेखांकित करती थी कि सामाजिक न्याय की जड़ें केवल राजनैतिक नहीं, बल्कि आर्थिक ढांचे में भी मजबूती से बैठनी चाहिए।

दुर्भाग्यवश, बहुजन आंदोलन की मुख्यधारा में आर्थिक सशक्तिकरण की योजनाएं हमेशा हाशिए पर रहीं। BSP की सरकारें आने के बावजूद बहुजन समुदाय को व्यवसाय, स्टार्टअप, उद्यमिता और पूंजी निवेश के क्षेत्रों में अग्रणी बनाने के लिए कोई दीर्घकालिक और संस्थागत नीति नहीं बनाई गई। बैंकिंग सहायता, बिजनेस ट्रेनिंग, बाज़ार तक पहुंच, और कानूनी संरक्षण जैसे पहलुओं की भारी कमी देखी गई। जहाँ अन्य सामाजिक वर्ग अपने पूंजीगत नेटवर्क और उद्यमशीलता से आगे बढ़े, वहीं बहुजन समाज नौकरियों और सरकारी योजनाओं पर निर्भर होता गया।

उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में जहाँ बहुजन वर्ग की जनसंख्या अत्यधिक है, वहाँ सरकारों को चाहिए था कि वे विशेष आर्थिक क्षेत्र बहुजन समुदाय के लिए विकसित करतीं, जहाँ उन्हें कम ब्याज दरों पर ऋण, प्रशिक्षित मार्गदर्शक, तकनीकी प्रशिक्षण, और सरकारी अनुबंधों में प्राथमिकता दी जाती। लेकिन व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों, मार्केट लिंकेज और

आर्थिक नेटवर्किंग का नितांत अभाव रहा। परिणामस्वरूप, बहुजन युवाओं को रोज़गार और आर्थिक स्वतंत्रता के क्षेत्र में अन्य वर्गों की तुलना में अधिक संघर्ष करना पड़ा।

इस आर्थिक पिछड़ेपन ने बहुजन आंदोलन की ताकत को सीमित कर दिया। आर्थिक रूप से निर्भर व्यक्ति सामाजिक आंदोलन में स्वतंत्र भागीदारी नहीं कर सकता। यही कारण है कि अनेक बार राजनैतिक बदलाव के बावजूद ज़मीनी स्तर पर सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आ पाया। आंदोलन के कार्यकर्ता तो रहे, लेकिन आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वे स्थायी ढांचे नहीं बना सके, न ही मीडिया, शिक्षा और लॉबिंग जैसे क्षेत्रों में प्रवेश कर सके।

यदि कांशीराम की आर्थिक दृष्टि को समय रहते रणनीतिक और नीतिगत रूप दिया गया होता, तो आज बहुजन समाज न केवल राजनीति में बल्कि कॉर्पोरेट, स्टार्टअप, और वैश्विक बाजार में भी एक निर्णायक शक्ति बन चुका होता। अब भी समय है कि भविष्य के बहुजन आंदोलन आर्थिक नीतियों को अपने केंद्र में रखें - न केवल नौकरियों की माँग करें, बल्कि उद्यमिता, सहकारिता, और व्यापारिक नेटवर्क को भी सशक्त करें। केवल सत्ता की भागीदारी नहीं, बल्कि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही बहुजन क्रांति को स्थायित्व प्रदान कर सकती है।

डिजिटल युग में आंदोलन का नया स्वरूप

कांशीराम के समय बहुजन आंदोलन पारंपरिक तरीकों पर आधारित था- जनसभा, पदयात्रा, पर्चे, पोस्टर और संगठन के माध्यम से जागरूकता फैलाना इसकी बुनियाद थी। लेकिन आज का दौर डिजिटल क्रांति का है, जहाँ तकनीक ने न केवल अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को नया मंच दिया

है, बल्कि सामाजिक आंदोलनों की पहुँच और प्रभाव को भी असीमित बना दिया है। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फ़ेसबुक, ट्विटर (अब एक्स), यूट्यूब, इंस्टाग्राम, और टेलीग्राम आज बहुजन आंदोलन के नए हथियार बन चुके हैं। इन मंचों ने खासकर युवा पीढ़ी को संगठित होने, विचारों को साझा करने और असमानता के विरुद्ध खुलकर बोलने का सशक्त माध्यम प्रदान किया है।

भीम आर्मी जैसे संगठनों ने डिजिटल प्लेटफॉर्म पर सक्रिय रहकर न केवल जमीनी स्तर पर सामाजिक अन्याय के विरुद्ध कार्य किया है, बल्कि उसके प्रत्येक पहलू को ऑनलाइन दस्तावेजी रूप में भी प्रस्तुत किया है। आज़ाद समाज पार्टी, बहुजन मुखरता मंच, और कई स्वतंत्र सोशल मीडिया एक्टिविस्ट अपने वीडियो, रील, और लाइव चर्चाओं के माध्यम से कांशीराम, अंबेडकर और फुले की विचारधारा को पुनः जन-जन तक पहुँचा रहे हैं। ये माध्यम अब केवल विरोध के प्लेटफॉर्म नहीं, बल्कि वैचारिक निर्माण और वैकल्पिक एजुकेशन के सशक्त माध्यम भी बन चुके हैं।

इसके अतिरिक्त, डिजिटल पत्रकारिता और ऑनलाइन पत्रिकाएँ, जैसे 'द वायर', 'जनचौक', 'सत्यहिंदी' आदि पर बहुजन मुद्दों से संबंधित विमर्शों की उपस्थिति बढ़ रही है, जो पहले मुख्यधारा मीडिया में अदृश्य थे। बहुजन समाज के लेखक, कवि, शिक्षाविद और युवा विचारक अब ब्लॉग्स, ई-पुस्तकें, पॉडकास्ट और यूट्यूब चैनलों के ज़रिए अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर रहे हैं।

डिजिटल आंदोलन की एक विशेषता यह है कि यह सेंसरशिप और सत्ता की सीमाओं से काफी हद तक मुक्त है। जहाँ पारंपरिक आंदोलन पुलिस

बल, राजनैतिक दमन और अनुमति की बाध्यताओं में जकड़े रहते थे, वहीं डिजिटल आंदोलन चौबीसों घंटे चलता रहता है और किसी भी मुद्दे को राष्ट्रीय बहस में बदल सकता है। दलित उत्पीड़न की घटनाओं, आरक्षण से जुड़े निर्णयों, या संविधान विरोधी टिप्पणियों के विरुद्ध आज लाखों बहुजन युवा ट्विटर ट्रेंड चलाते हैं, यूट्यूब पर लाइव डिबेट करते हैं, और इंस्टाग्राम पर जागरूकता पोस्ट साझा करते हैं।

हालाँकि यह नया स्वरूप अपनी सीमाओं के साथ आता है-जैसे डिजिटल साक्षरता की कमी, ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की अनुपलब्धता, और सोशल मीडिया पर ट्रोलिंग एवं हिंसा का सामना। फिर भी, यह स्पष्ट है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म ने बहुजन आंदोलन को एक नई चेतना, एक नई पहुँच, और एक नया रूप दिया है, जो पारंपरिक राजनीति से इतर एक वैकल्पिक सामाजिक शक्ति के रूप में उभर रहा है।

अब यह आवश्यक हो गया है कि बहुजन विचारधारा वाले संगठनों द्वारा डिजिटल शिक्षा, सोशल मीडिया प्रशिक्षण, और साइबर एक्टिविज्म के माध्यम से युवाओं को तैयार किया जाए। डिजिटल आंदोलन केवल समर्थन और विरोध तक सीमित न रहकर, एक वैचारिक क्रांति के रूप में स्थापित हो सकता है-जो समाज में व्याप्त असमानता, भेदभाव और सामाजिक न्याय के प्रश्नों को नई पीढ़ी के संदर्भ में प्रस्तुत कर सके। यही डिजिटल जनचेतना भविष्य के बहुजन आंदोलन की रीढ़ बन सकती है।

क्या बहुजन एकता फिर से संभव है?

यह प्रश्न आज की बहुजन राजनीति के सबसे जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्नों में से एक है। कांशीराम ने जिस बहुजन एकता की नींव रखी थी, उसका मूल उद्देश्य यह था कि समाज के हाशिए पर पड़े सभी समुदाय-दलित,

पिछड़े, आदिवासी, अल्पसंख्यक और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग-एक साझा मंच पर संगठित होकर सत्ता के केंद्र तक पहुँचें। लेकिन वर्तमान समय में यह एकता बिखर चुकी है और विभाजित राजनीति, अलग-अलग एजेंडा, और व्यक्तिगत नेतृत्व की लड़ाई के कारण यह सपना अधूरा रह गया है।

बहुजन एकता को पुनः स्थापित करने के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि बहुजन विचारधारा से जुड़ी तमाम राजनैतिक पार्टियाँ-जैसे बहुजन समाज पार्टी (BSP), समाजवादी पार्टी (SP), राष्ट्रीय जनता दल (RJD), जनता दल (सेक्युलर), आज़ाद समाज पार्टी और प्रकाश आंबेडकर की वंचित बहुजन आघाड़ी-अपने अहंकार और वैचारिक टकराव को छोड़कर साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर एकजुट हों। इस कार्यक्रम में समान शिक्षा नीति, सामाजिक न्याय, भूमि सुधार, आरक्षण नीति की रक्षा, आर्थिक सशक्तिकरण, और जातीय जनगणना जैसे मुद्दों को शामिल किया जा सकता है। लेकिन यह तभी संभव है जब इन दलों के शीर्ष नेता, व्यक्तिगत सत्ता के बजाय सामाजिक बदलाव को प्राथमिकता दें।

एक प्रमुख बाधा यह है कि अधिकांश क्षेत्रीय बहुजन दलों में नेतृत्व एक परिवार या व्यक्ति के इर्द-गिर्द केंद्रित है, जिससे संवाद और सहयोग की गुंजाइश कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, BSP का नेतृत्व मायावती तक सीमित है, वहीं SP अखिलेश यादव के इर्द-गिर्द केंद्रित है। इन नेताओं को यह समझना होगा कि यदि वे समाज के सबसे बड़े वर्ग के हितों की रक्षा करना चाहते हैं, तो उन्हें व्यक्तिगत नियंत्रण से ऊपर उठकर साझा मंच पर संवाद स्थापित करना होगा।

इसके अलावा, बहुजन एकता के लिए वैचारिक स्पष्टता अत्यंत आवश्यक है। बहुजन आंदोलन की मूल आत्मा सामाजिक न्याय,

आर्थिक समानता और सांस्कृतिक स्वाभिमान है। जब तक ये मूल्य हर पार्टी के घोषणापत्र और कार्यशैली में स्पष्ट रूप से नहीं दिखेंगे, तब तक केवल गठबंधन या सीटों का बँटवारा एकता का विकल्प नहीं बन सकता।

डिजिटल युग में एक नया मोर्चा तैयार किया जा सकता है जहाँ विचारधारा आधारित नेटवर्किंग और वैचारिक प्रशिक्षण के माध्यम से कार्यकर्ताओं और युवाओं को जोड़ा जाए। अगर सोशल मीडिया, जनमंच, बहस-मंच, और वैकल्पिक शिक्षा प्लेटफॉर्म के माध्यम से एक वैचारिक अभियान चलाया जाए, तो वह बहुजन समाज को एक बार फिर एकजुट कर सकता है।

सारांशतः, बहुजन एकता की संभावना पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है, लेकिन इसके लिए कठोर आत्ममंथन, नेतृत्व में परिवर्तनशीलता, और साझा संघर्ष की भावना की आवश्यकता है। यदि यह परिवर्तनशीलता आती है और बहुजन दल आत्महित से ऊपर उठकर सामूहिक दृष्टि अपनाते हैं, तो कांशीराम द्वारा देखा गया एक शक्तिशाली, संगठित और निर्णायक बहुजन आंदोलन एक बार फिर नए युग में उभर सकता है-इस बार और अधिक परिपक्व, वैचारिक और जनभागीदारी आधारित।

बहुजन युवाओं को सशक्त करने की रणनीति

कांशीराम की क्रांति का भविष्य इस बात पर बहुत हद तक निर्भर करता है कि बहुजन समाज का युवा वर्ग कितना शिक्षित, जागरूक, संगठित और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध होता है। जिस प्रकार स्वतंत्रता संग्राम के समय युवा वर्ग ने आंदोलनों में अग्रणी भूमिका निभाई थी, उसी प्रकार आज के समय में भी बहुजन युवाओं की भूमिका निर्णायक हो सकती है। लेकिन इसके लिए जरूरी है कि उन्हें केवल जातीय चेतना से नहीं, बल्कि

समग्र सामाजिक-आर्थिक समझ से लैस किया जाए। आज का बहुजन युवा यदि केवल आरक्षण को ही अपना लक्ष्य मानकर चलेगा, तो वह सीमित उपलब्धियों से संतुष्ट हो जाएगा। उसे यह समझना होगा कि शिक्षा, कानून, विज्ञान, पत्रकारिता, डिजिटल मीडिया, और प्रशासन जैसे क्षेत्रों में प्रभावशाली उपस्थिति ही दीर्घकालिक परिवर्तन का आधार बन सकती है।

बहुजन युवाओं को कांशीराम के सामाजिक न्याय और समान भागीदारी के सिद्धांतों को केवल नारों तक सीमित न रखकर, उन्हें व्यावहारिक जीवन में लागू करना होगा। इसके लिए एक समन्वित रणनीति की आवश्यकता है-पहला, उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सुलभता मिले; दूसरा, उन्हें तकनीकी दक्षता, सॉफ्ट स्किल्स और नेतृत्व विकास के अवसर दिए जाएं; तीसरा, उनके बीच बहुजन विमर्श को पुनर्जीवित किया जाए ताकि वे सामाजिक मूल्यों की गहराई को समझ सकें। बहुजन आंदोलन की दीर्घकालिक सफलता तभी सुनिश्चित होगी, जब इसके युवा कर्णधार केवल राजनैतिक सभाओं में उपस्थिति देने के बजाय नीति-निर्माण की प्रक्रियाओं, न्यायपालिका, मीडिया, शिक्षा नीति, और प्रशासनिक सेवाओं में निर्णायक भूमिका निभाएँ।

इसके अतिरिक्त, बहुजन युवाओं को उन डिजिटल प्लेटफॉर्मों का भी कुशल उपयोग करना सीखना चाहिए, जो विचार, संगठन और आंदोलन को फैलाने का सबसे सशक्त माध्यम बन चुके हैं। वे सोशल मीडिया, यूट्यूब, पॉडकास्ट्स, वेबिनार और डिजिटल जनजागरण अभियानों के जरिए अपने समुदाय के भीतर जागरूकता और स्वाभिमान की भावना जगा सकते हैं। उन्हें अपने समुदाय के इतिहास, संघर्षों, और कांशीराम,

आंबेडकर जैसे विचारकों की गहराई से जानकारी होनी चाहिए, ताकि वे आत्मविश्वास के साथ बहुजन आंदोलन की अगली पीढ़ी बन सकें।

यदि बहुजन युवा केवल राजनैतिक भीड़ बनकर रह जाएंगे और वैचारिक नेतृत्व में भाग नहीं लेंगे, तो आंदोलन फिर से बिखर जाएगा। लेकिन यदि वे पढ़ेंगे, लिखेंगे, संगठित होंगे, और व्यवस्था के भीतर निर्णायक स्थानों तक पहुँचेंगे, तो यह न केवल कांशीराम की अधूरी क्रांति को पूर्णता देगा, बल्कि एक नई सामाजिक संरचना की नींव रखेगा। इसलिए, बहुजन आंदोलन के पुनरुद्धार में युवाओं को केंद्र में रखकर सशक्तिकरण की दीर्घकालिक योजना बनाना अनिवार्य है।

क्या कांशीराम के सिद्धांतों से बहुजन आंदोलन को पुनर्जीवित किया जा सकता है?

कांशीराम के सिद्धांतों को केवल भाषणों या चुनावी घोषणापत्रों में दुहराने से बहुजन आंदोलन का पुनर्जीवन संभव नहीं होगा। इस आंदोलन को पुनर्जीवित करने के लिए सबसे पहले यह जरूरी है कि बहुजन समाज के विभिन्न वर्ग-शूद्र, अति-शूद्र, दलित, आदिवासी, पिछड़े, अल्पसंख्यक और स्त्रियाँ-एक साझा मंच पर फिर से वैचारिक रूप से संगठित हों। कांशीराम की विचारधारा सामाजिक जागरूकता, राजनैतिक भागीदारी, आर्थिक आत्मनिर्भरता और संस्थागत प्रतिनिधित्व पर आधारित थी, और इन्हीं चार स्तंभों पर दोबारा आंदोलन को खड़ा करने की जरूरत है।

यदि बहुजन समाज शिक्षा, स्वास्थ्य, भूमि अधिकार, रोजगार और सामाजिक सम्मान जैसे बुनियादी मुद्दों पर दोबारा गोलबंद हो, तो वह फिर से एक निर्णायक शक्ति बन सकता है। इसके लिए नेतृत्व को वैचारिक रूप से स्पष्ट होना चाहिए-न तो समझौतावादी और न ही अवसरवादी।

नेतृत्व को केवल चुनाव जीतने के लिए नहीं, बल्कि समाज को जागरूक, संगठित और गतिशील बनाने के लिए प्रेरित करना होगा। जनता की भागीदारी केवल मतदाता के रूप में नहीं, बल्कि संगठनात्मक सदस्य, नीतिगत भागीदार और आंदोलन के संवाहक के रूप में होनी चाहिए।

कांशीराम के सिद्धांतों को पुनर्जीवित करने के लिए जमीनी स्तर पर पंचायतों, नगर निकायों, मोहल्ला समितियों, छात्र संगठनों और श्रमिक यूनियनों में बहुजन प्रतिनिधित्व बढ़ाना अनिवार्य है। साथ ही, मीडिया, न्यायपालिका, नौकरशाही और निजी क्षेत्र में बहुजन उपस्थिति को बढ़ावा देना होगा, ताकि वैचारिक चेतना संस्थागत आधार पर टिक सके। केवल चुनावी व्यस्तता या स्मारक निर्माण से यह संभव नहीं है; इसके लिए सतत जनजागरण, नेतृत्व प्रशिक्षण, वैचारिक अध्ययन केंद्रों की स्थापना और नीति निर्माण में भागीदारी को प्राथमिकता देनी होगी।

आज का युग डिजिटल युग है, इसलिए बहुजन आंदोलन को अब डिजिटल मंचों पर भी सशक्त बनाना आवश्यक है। सोशल मीडिया, ब्लॉग्स, यूट्यूब चैनल, पॉडकास्ट, और वैकल्पिक मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग कर बहुजन चेतना को नई भाषा, नए मुहावरे और नए विमर्शों के साथ पुनः स्थापित किया जा सकता है। कांशीराम के सिद्धांत आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके समय में थे, लेकिन उन्हें 21वीं सदी के सामाजिक, तकनीकी और राजनैतिक परिदृश्य में नये सिरे से व्याख्यायित और लागू करने की आवश्यकता है।

बहुजन उद्यमिता और आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता

कांशीराम का यह दृढ़ विश्वास था कि केवल राजनैतिक भागीदारी या आरक्षण से बहुजन समाज की सामाजिक स्थिति स्थायी रूप से सशक्त

नहीं हो सकती, जब तक कि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न बन जाए। उनके अनुसार, सामाजिक न्याय का असली अर्थ तभी साकार होता है जब बहुजन समाज उत्पादन, व्यापार, उद्योग और पूंजी सृजन की प्रक्रिया में भी निर्णायक भूमिका निभाने लगे। उन्होंने बार-बार इस बात को दोहराया कि सत्ता का असली स्वरूप आर्थिक ढांचे से जुड़ा होता है, और यदि बहुजन समाज इस ढांचे से बाहर रखा जाएगा तो उसे केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व ही मिलेगा, वास्तविक शक्ति नहीं।

आज भी देश में बहुजन समुदाय की बहुलता होते हुए भी उनका उद्योग, व्यापार, स्टार्टअप और पूंजी निर्माण के क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व न्यूनतम है। सरकारों ने बहुजन वर्ग को नौकरियों में आरक्षण के माध्यम से सशक्त बनाने की कोशिश की, परंतु स्वरोजगार, उद्यमिता, स्टार्टअप इकोसिस्टम और निजी उद्यमों में भागीदारी की योजनाएँ बेहद सीमित और कागज़ी ही रहीं। मायावती के शासनकाल में भी इस दिशा में कोई स्थायी आर्थिक ढांचा नहीं खड़ा किया गया, जिससे बहुजन समाज को आर्थिक गतिविधियों में शामिल किया जा सके। बहुजन युवाओं को बैंकों से ऋण, तकनीकी प्रशिक्षण, बिजनेस प्लानिंग, मार्केटिंग नेटवर्क और स्कीम आधारित सहयोग देने वाले योजनाओं का कोई मजबूत नेटवर्क नहीं बना।

कांशीराम की सोच में यह स्पष्ट था कि यदि बहुजन समाज की आर्थिक रीढ़ मजबूत नहीं होगी तो वह शोषण की चक्रीय संरचना से मुक्त नहीं हो पाएगा। इसलिए आज आवश्यक है कि सरकारें बहुजन उद्यमिता के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zones) घोषित करें, जिसमें बहुजन व्यवसायों को भूमि, कर रियायतें, वित्तीय अनुदान, तकनीकी सहयोग और सरकारी खरीद में प्राथमिकता जैसी सुविधाएँ दी जाएँ। इसके अलावा उद्यमिता के लिए स्कूल स्तर से प्रशिक्षण, बिजनेस

इन्क्यूबेटर संस्थाएँ, यूनिवर्सिटी लेवल इनोवेशन लैब्स और कम ब्याज पर स्टार्टअप फंड्स की व्यवस्था की जानी चाहिए।

महत्वपूर्ण यह भी है कि बहुजन समुदाय में उद्यमशीलता को केवल एक आजीविका के साधन के रूप में नहीं, बल्कि आत्म-सम्मान, नेतृत्व और स्वतंत्र निर्णय की शक्ति के रूप में देखा जाए। बहुजन उद्यमी न केवल आर्थिक सशक्तिकरण का वाहक बन सकते हैं, बल्कि वे सामाजिक चेतना और नई राजनैतिक सोच के जन्मदाता भी बन सकते हैं। आर्थिक स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ यह आत्मबल बहुजन आंदोलन को केवल विरोध की राजनीति से निकालकर निर्माण की राजनीति में ले जाएगा, जहाँ वह खुद अपने समाज के लिए संस्थान, रोजगार, शिक्षा और संसाधन पैदा कर सकेगा।

इसलिए यदि कांशीराम की क्रांति को पूर्णता देनी है तो अब बहुजन समाज को नौकरी खोजने वाली मानसिकता से निकलकर नौकरी देने वाली शक्ति में परिवर्तित होना पड़ेगा। उन्हें पारंपरिक व्यवसायों से लेकर तकनीकी नवाचारों तक अपनी भागीदारी बढ़ानी होगी और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नीतिगत हस्तक्षेप, संस्थागत समर्थन और सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन तीनों स्तरों पर काम करना होगा। तभी बहुजन आंदोलन केवल नारों का नहीं, बल्कि आर्थिक शक्ति के रूप में एक नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माता बन सकेगा।

क्या कांशीराम की अपूर्ण क्रांति को पूरा किया जा सकता है?

कांशीराम की अपूर्ण क्रांति को पूरा करना निश्चित रूप से संभव है, लेकिन इसके लिए बहुजन समाज को बहुआयामी स्तरों पर समर्पण, एकता और पुनर्रचना की आवश्यकता है। यह सिर्फ एक भावनात्मक आदर्श या

ऐतिहासिक श्रद्धांजलि का विषय नहीं है, बल्कि एक सुदृढ़ रणनीतिक अभियान की मांग करता है, जो समाज के प्रत्येक स्तर पर क्रांतिकारी बदलाव ला सके। कांशीराम का सपना केवल सत्ता प्राप्ति तक सीमित नहीं था, बल्कि वह एक ऐसे लोकतांत्रिक ढांचे की स्थापना चाहते थे, जिसमें बहुजन समाज ज्ञान, नेतृत्व, संसाधन और सम्मान के स्तर पर आत्मनिर्भर बन सके।

इस दिशा में सबसे पहला और आवश्यक कदम है – शिक्षा का सशक्तिकरण। जब तक बहुजन समाज में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा की पहुँच नहीं होगी, तब तक आत्मनिर्भर नेतृत्व तैयार नहीं हो सकेगा। इसलिए, ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में विशेष शिक्षा कार्यक्रमों, छात्रवृत्तियों, कोचिंग सुविधाओं और डिजिटल शिक्षण प्लेटफॉर्म की स्थापना अनिवार्य है। दूसरी ओर, बहुजन युवाओं को वैचारिक रूप से कांशीराम की बौद्धिक विरासत से जोड़ना होगा, ताकि वे सिर्फ भावनात्मक समर्थन देने वाले नहीं, बल्कि वैचारिक योद्धा बन सकें। इसके लिए विश्वविद्यालयों, कॉलेजों और थिंक टैंकों में बहुजन विमर्श को मुख्यधारा में लाना अत्यावश्यक है।

इसके साथ ही, संगठनात्मक पुनर्निर्माण भी इस क्रांति की पूर्णता की दिशा में एक निर्णायक कार्य होगा। वर्तमान समय में बहुजन संगठनों के बीच गुटबाज़ी, व्यक्तिवादी नेतृत्व और संसाधनों की असमानता एक बड़ी बाधा है। यदि इन संगठनों में सामूहिक नेतृत्व, पारदर्शिता और जमीनी स्तर पर कार्यकर्ताओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाए, तो यह आंदोलन फिर से एकजुट हो सकता है। आज ज़रूरत है एक ऐसे अखिल भारतीय बहुजन संगठन की, जो क्षेत्रीय सीमाओं से ऊपर उठकर समान दृष्टिकोण और साझा उद्देश्य के साथ कार्य करे।

एक और महत्वपूर्ण पक्ष है-वैकल्पिक संस्थानों का निर्माण। मीडिया, न्याय, प्रशासन और बौद्धिक क्षेत्रों में बहुजन प्रतिनिधित्व बेहद सीमित है। कांशीराम की क्रांति को पूरा करने के लिए बहुजन समाज को खुद के न्यूज़ पोर्टल्स, डिजिटल चैनल्स, सामाजिक शोध संस्थानों, कानूनी सहायता संगठनों और स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवा संस्थानों की स्थापना करनी होगी, जिससे वह अपनी आवाज़ खुद बुलंद कर सके और समाज में सकारात्मक परिवर्तन ला सके।

अंततः, इस क्रांति की पूर्णता तभी संभव है जब बहुजन समाज खुद को केवल पीड़ित नहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता के रूप में देखे। उन्हें समझना होगा कि सत्ता माँगने से नहीं, बल्कि रणनीतिक संगठनों, वैचारिक एकजुटता, आर्थिक आत्मनिर्भरता और प्रशासनिक पकड़ से प्राप्त होती है। कांशीराम का सपना एक जीवित विचार है, जिसे केवल चुनावों के माध्यम से नहीं, बल्कि समाज के हर कोने में आत्मनिर्भरता और सम्मान की भावना जगाकर ही साकार किया जा सकता है। यह एक लंबी यात्रा है, लेकिन यदि बहुजन समाज इसके लिए एकजुट होकर आगे बढ़ता है, तो यह अधूरी क्रांति एक पूर्ण परिवर्तन का स्वरूप ग्रहण कर सकती है।

अध्याय 51:

बहुजन नेतृत्व द्वारा सरकार बनाने का सपना

कांशीराम की मूल दृष्टि: बहुजन बहुमत के आधार पर सत्ता परिवर्तन की रणनीति

कांशीराम की राजनीति की नींव उस बुनियादी धारणा पर टिकी थी जिसे उन्होंने अपने क्रांतिकारी नारे “जिसकी जितनी संख्या भारी, उसकी उतनी हिस्सेदारी” के रूप में गढ़ा था। उनके लिए यह केवल एक नारा नहीं था, बल्कि एक रणनीतिक योजना थी, जिसके माध्यम से वे भारत की पारंपरिक ब्राह्मणवादी सत्ता संरचना को चुनौती देना चाहते थे। कांशीराम ने जातिगत जनसंख्या के सांख्यिकीय अनुपात को भारतीय लोकतंत्र की चुनावी राजनीति से जोड़ते हुए यह सिद्ध किया कि बहुजन वर्ग-जिसमें अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ, अन्य पिछड़ा वर्ग और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल हैं-देश की कुल जनसंख्या का 85 प्रतिशत हैं, जबकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जैसे पारंपरिक सवर्ण वर्ग मात्र 15 प्रतिशत। इसके बावजूद सत्ता और संसाधनों पर नियंत्रण अल्पसंख्यक सवर्ण वर्ग के पास रहा।

कांशीराम ने इस सामाजिक विसंगति को सत्ता से बाहर किए गए वर्गों को संगठित कर बदलने का सपना देखा। उनके लिए बहुजन राजनीति का अंतिम लक्ष्य केवल विरोध दर्ज कराना या सामाजिक जागरूकता फैलाना नहीं था, बल्कि वास्तविक सत्ता परिवर्तन था-यानी बहुजन समाज की सरकार, जो बहुजन समाज द्वारा, बहुजन समाज के लिए और बहुजन समाज के हित में काम करे। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने

दलित शोषित समाज संघर्ष समिति (DS4), बाद में बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना की, जिससे एक स्थायी राजनैतिक मंच खड़ा हो सके।

कांशीराम ने यह समझा कि सामाजिक क्रांति तभी टिकाऊ हो सकती है जब वह राजनैतिक सत्ता में परिवर्तन लाए। उन्होंने कहा था कि “हम आरक्षण से नहीं, शासन से परिवर्तन लाएँगे”-इस कथन में उनका सपना स्पष्ट झलकता है कि सामाजिक न्याय केवल संविधान की किताबों या सरकारी योजनाओं से नहीं, बल्कि राजनैतिक सत्ता प्राप्त कर लागू नीतियों और संसाधनों के बंटवारे से सुनिश्चित किया जा सकता है। उन्होंने सत्ता को “मास्टर की” बताया जो सभी दरवाजों को खोल सकती है-चाहे वह शिक्षा हो, नौकरियाँ हों, सुरक्षा हो, या सम्मान।

इसलिए, कांशीराम का सपना बहुजन समाज को केवल जागरूक करना नहीं था, बल्कि उन्हें इस लायक बनाना था कि वे संगठित होकर सत्ता में भागीदार बनें और अंततः सत्ता पर काबिज हों। यह दृष्टिकोण एक प्रकार की “राजनैतिक सामाजिक इंजीनियरिंग” थी, जो केवल जातिगत गोलबंदी से नहीं, बल्कि एक साझा बहुजन पहचान और लक्ष्य के आधार पर संभव थी। उन्होंने अपने आंदोलनों, रैलियों, और पुस्तिकाओं के माध्यम से यह चेतना फैलाने का कार्य किया कि बहुजन समाज अब केवल मतदाता नहीं रहेगा, बल्कि वह सत्ता का निर्णायक कारक बनेगा।

उनका यह सपना उस समय और भी महत्वपूर्ण हो गया जब उन्होंने महसूस किया कि सवर्ण-वर्चस्ववादी पार्टियाँ बहुजन समाज को केवल वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करती हैं, लेकिन उनके प्रतिनिधित्व और सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए कोई ठोस नीति नहीं बनाती।

कांशीराम ने बहुजन नेतृत्व को प्रशिक्षित करने, उन्हें चुनाव लड़ने के लिए तैयार करने, और सत्ता के सभी स्तरों पर प्रतिनिधित्व पाने की एक दीर्घकालिक योजना बनाई।

उनकी यह दृष्टि आज भी बहुजन राजनीति की रीढ़ है। भले ही परिस्थितियाँ बदल गई हों, और कई बहुजन नेता सत्ता में आए हों, लेकिन कांशीराम की यह सोच-कि बहुजन समाज को खुद की सरकार बनानी चाहिए-आज भी बहुजन राजनीति के विचारधारात्मक केंद्र में बनी हुई है। यह विचार केवल सत्ता प्राप्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि प्रशासन, नीति निर्माण, न्यायिक व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, और सामाजिक सम्मान तक विस्तारित है।

बहुजन चेतना और सामाजिक आंदोलन की नई दिशा

कांशीराम ने सामाजिक न्याय के आंदोलन को केवल वैचारिक विमर्श या भाषणों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्होंने इसे एक क्रियाशील, व्यवस्थित और लक्ष्य केंद्रित दिशा प्रदान की। उन्होंने महसूस किया कि सामाजिक बराबरी की बातें तब तक अधूरी रहेंगी जब तक बहुजन समाज, जो भारत की आबादी का बड़ा हिस्सा है, स्वयं निर्णय लेने की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका न निभाए। इसके लिए उन्होंने “बहुजन चेतना” का सूत्र दिया, जिसका उद्देश्य था समाज के वंचित, उपेक्षित और शोषित तबकों में आत्मबोध और अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करना।

कांशीराम ने यह स्पष्ट रूप से बताया कि केवल सामाजिक सुधारों से या शिक्षा से बहुजन समाज की दशा नहीं सुधरेगी, जब तक कि वे सत्ता की संरचनाओं में अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित न करें। उन्होंने कहा कि सिर्फ

वोटर बनना काफी नहीं है, जब तक हम पॉलिसी मेकर नहीं बनते। इसलिए उन्होंने सामाजिक चेतना के साथ-साथ राजनैतिक चेतना पर भी विशेष बल दिया। उनके अनुसार, जो समाज केवल वोट देगा, लेकिन नीति निर्धारण की प्रक्रिया से बाहर रहेगा, वह कभी भी सामाजिक न्याय की वास्तविकता को हासिल नहीं कर पाएगा।

इस दृष्टिकोण को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने बामसेफ जैसे संगठनों के माध्यम से बहुजन कर्मचारियों और पढ़े-लिखे वर्ग को संगठित करना शुरू किया। इसके पीछे उनका स्पष्ट उद्देश्य था कि प्रशासनिक और व्यावसायिक संस्थाओं में जो लोग कार्यरत हैं, वे अपने वर्ग के प्रति संवेदनशील रहें और जागरूकता का प्रसार करें। उन्होंने यह आंदोलन 'सामाजिक चेतना से राजनैतिक शक्ति तक' के सिद्धांत पर आधारित किया। यही कारण है कि उन्होंने संगठन निर्माण, वैचारिक प्रचार और जनसंवाद को प्राथमिकता दी, और बहुजन समाज को बताया कि बिना सत्ता के सामाजिक परिवर्तन संभव नहीं है।

कांशीराम का आंदोलन तीन ठोस स्तंभों पर टिका था – सामाजिक जागरूकता, संगठित नेतृत्व, और सत्ता प्राप्ति की रणनीति। उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि बहुजन समाज को भी यह आत्मविश्वास होना चाहिए कि वह केवल अनुयायी नहीं, बल्कि नेतृत्वकर्ता बन सकता है। यही कारण है कि उन्होंने सामाजिक-राजनैतिक नेतृत्व को बहुजन समाज के भीतर से विकसित करने पर जोर दिया, ताकि नेतृत्व की बागडोर किसी और के हाथ में न रहे, बल्कि वही समाज जिसे वर्षों से शोषित किया गया है, स्वयं अपनी नियति तय करे।

उनके इस क्रांतिकारी दृष्टिकोण ने दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों में ऐसी चेतना का संचार किया, जो केवल

अधिकारों की मांग नहीं करती थी, बल्कि अधिकारों को पाने के लिए संगठित प्रयास और नेतृत्व की मांग भी करती थी। यही चेतना आगे चलकर बहुजन समाज पार्टी जैसे राजनैतिक संगठन की नींव बनी और एक शक्तिशाली सामाजिक आंदोलन में तब्दील हो गई।

गिरते प्रभाव और नई चुनौतियाँ

2012 के बाद बहुजन समाज पार्टी (BSP) और संपूर्ण बहुजन आंदोलन के प्रभाव में निरंतर गिरावट देखी गई, जो एक गहन चिंतन का विषय बन गया। मायावती के नेतृत्व में 2007 में मिली पूर्ण बहुमत की ऐतिहासिक सफलता के बाद यह उम्मीद की जा रही थी कि पार्टी लगातार सत्ता में अपनी पकड़ बनाए रखेगी और कांशीराम का सपना - बहुजन नेतृत्व द्वारा स्थायी सरकार बनाना - साकार हो जाएगा। लेकिन 2012 के विधानसभा चुनाव में BSP सत्ता से बाहर हो गई और इसके बाद के वर्षों में यह गिरावट और भी तीव्र हो गई।

2014 के लोकसभा चुनाव में पार्टी को भारी नुकसान हुआ - उसे एक भी सीट नहीं मिली, जबकि उसका वोट प्रतिशत घटकर लगभग 4.2% रह गया। यह बहुजन नेतृत्व के लिए एक बड़ा झटका था, क्योंकि यह स्पष्ट संकेत था कि समाज का मूल समर्थन आधार अब बिखर चुका था। 2019 के आम चुनावों में, भले ही BSP ने समाजवादी पार्टी के साथ गठबंधन किया और 10 सीटें प्राप्त कीं, लेकिन यह सहयोग अपेक्षित प्रभाव नहीं दिखा पाया। गठबंधन की अल्पकालिकता और रणनीतिक विसंगतियाँ यह दर्शाती थीं कि नेतृत्व अब पुराने तरीकों से सत्ता की ओर वापस नहीं लौट सकता।

इन चुनावों ने यह सच्चाई उजागर की कि केवल कांशीराम के बनाए गए नारे और पुरानी रणनीतियाँ अब पर्याप्त नहीं हैं। एक ओर जहां बहुजन समाज अब अधिक शिक्षित, जागरूक और सामाजिक रूप से गतिशील हो चुका है, वहीं दूसरी ओर राजनैतिक परिदृश्य में नए दलों का उदय, जाति समीकरणों में बदलाव और युवाओं की अपेक्षाओं ने बहुजन नेतृत्व को नए प्रकार की चुनौतियों के सामने खड़ा कर दिया है।

सबसे बड़ी चुनौती यह है कि बहुजन समाज अब एकमत और संगठित वोट बैंक नहीं रहा। उसका समर्थन अब विभिन्न दलों - जैसे भाजपा, कांग्रेस, सपा और अन्य क्षेत्रीय दलों - में विभाजित हो चुका है। इसके पीछे एक बड़ा कारण यह है कि बहुजन नेतृत्व ने समय के अनुसार अपनी रणनीतियाँ नहीं बदलीं और न ही वह भावनात्मक अपील और मुद्दों को नए तरीके से प्रस्तुत कर सका, जो कि आज के सामाजिक-राजनैतिक परिदृश्य में जरूरी हो गया है।

इसके अलावा, दल के अंदर केंद्रीकरण, कार्यकर्ता आधारित संगठन के क्षरण, युवाओं की भागीदारी की कमी, और नेतृत्व में पारदर्शिता की अनुपस्थिति जैसे कारणों ने भी इस गिरते प्रभाव को और बढ़ावा दिया। जहां एक ओर सामाजिक मीडिया और डिजिटल प्रचार ने नई राजनीति को जन्म दिया, वहीं BSP जैसे कैडर आधारित दल समय के साथ बदलाव नहीं ला सके।

यदि बहुजन नेतृत्व को पुनः सत्ता की ओर लौटना है, तो उसे अपनी रणनीति में व्यापक बदलाव करना होगा - इसमें न केवल गठबंधन की समझदारी शामिल होगी, बल्कि एक समावेशी, युवाओं को प्रेरित करने वाली और आर्थिक-सामाजिक मुद्दों को केंद्र में लाने वाली राजनीति का विकास करना भी अनिवार्य होगा। कांशीराम की मूल भावना को

आधुनिक यथार्थ के साथ जोड़कर ही बहुजन नेतृत्व फिर से प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

बहुजन समाज के लिए नई राजनैतिक रणनीतियाँ

बहुजन समाज के सामने आज की राजनीति में सत्ता प्राप्त करने की चुनौती पहले से कहीं अधिक जटिल और व्यापक हो गई है। 1990 के दशक और 2000 के शुरुआती वर्षों में जो राजनैतिक रणनीतियाँ कारगर थीं, वे अब बदलते सामाजिक समीकरणों और राजनैतिक प्रतिस्पर्धा के दौर में अप्रभावी होती जा रही हैं। ऐसे में बहुजन नेतृत्व के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि वे किस प्रकार एक ऐसी राजनैतिक रणनीति विकसित करें जो न केवल वर्तमान सामाजिक चुनौतियों का उत्तर दे, बल्कि भविष्य की दिशा भी निर्धारित कर सके। कांशीराम के समय जो संगठन और आंदोलन की भावना थी, आज उसकी पुनर्स्थापना की आवश्यकता है, परंतु आधुनिक युग की आवश्यकताओं और मतदाता व्यवहार को ध्यान में रखते हुए रणनीतिक पुनर्रचना अनिवार्य हो गई है।

इस संदर्भ में पहली और सबसे जरूरी रणनीति यह होनी चाहिए कि बहुजन नेतृत्व विभिन्न जातीय उप-वर्गों के भीतर एकता और समन्वय को सुदृढ़ करे। दलित, अति-दलित, पिछड़े, अतिपिछड़े, मुस्लिम पिछड़े, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यकों के बीच आपसी विश्वास और राजनैतिक एकजुटता को मजबूत करना अब महज नारा नहीं, बल्कि एक संगठनात्मक मिशन होना चाहिए। इन समूहों के बीच मतभेदों और प्रतिस्पर्धा को कम कर उन्हें एक साझा पहचान और उद्देश्य के तहत जोड़ना आवश्यक है। इसके लिए सामाजिक न्याय, भागीदारी, समान अवसर, और शिक्षा, रोजगार तथा स्वास्थ्य जैसे विषयों को साझा एजेंडे

में शामिल कर एक व्यापक और समावेशी घोषणापत्र तैयार करना चाहिए।

दूसरी रणनीति यह होनी चाहिए कि बहुजन नेतृत्व अब सिर्फ जातिगत राजनीति से आगे बढ़े और व्यापक जनसरोकारों को अपने एजेंडे में स्थान दे। आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, महंगाई, महिला सशक्तिकरण, कृषि संकट और जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दे आम मतदाता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो चुके हैं। यदि बहुजन राजनीति इन विषयों को केवल नीतिगत घोषणाओं तक सीमित न रखकर ज़मीनी स्तर पर इनका समाधान देने की कोशिश करे, तो इससे उसे गैर-पारंपरिक वोटर्स का भी समर्थन प्राप्त हो सकता है, जिससे उसका राजनैतिक आधार और विस्तार दोनों हो सकता है।

तीसरी महत्वपूर्ण रणनीति यह होनी चाहिए कि बहुजन नेतृत्व युवा शक्ति को संगठित और प्रशिक्षित करे। वर्तमान भारत में युवा मतदाताओं की संख्या सर्वाधिक है, और यदि बहुजन राजनीति डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया, विचार संगोष्ठियों, विश्वविद्यालय अभियानों और युवाओं की समस्याओं पर केंद्रित संवाद के माध्यम से युवा वर्ग तक पहुँचने में सफल हो जाती है, तो वह न केवल नई ऊर्जा प्राप्त करेगी, बल्कि एक दीर्घकालीन सामाजिक परिवर्तन का आधार भी तैयार कर सकेगी। इसके लिए युवाओं को उम्मीदवार, प्रवक्ता, और संगठनात्मक नेताओं के रूप में सामने लाना होगा।

अंततः, बहुजन राजनीति को अपनी रणनीति में पारदर्शिता, जवाबदेही और विकासपरक नेतृत्व की भावना को प्राथमिकता देनी होगी। पुराने नेताओं की छवि को धोकर नए विचारों और नैतिक नेतृत्व को सामने लाना, एक मजबूत और प्रगतिशील छवि स्थापित करने में मदद करेगा।

भ्रष्टाचार, वंशवाद और सत्ता के निजीकरण से दूर रहकर यदि बहुजन नेतृत्व एक वैकल्पिक और स्वाभिमानी राजनीति का उदाहरण प्रस्तुत कर सके, तो बहुजन समाज न केवल सत्ता प्राप्त कर सकेगा, बल्कि एक नया राजनैतिक युग भी शुरू कर सकेगा।

हिंदुत्व और बहुजन राजनीति के बीच संघर्ष

भारतीय राजनीति में हिंदुत्व की विचारधारा का प्रसार बीते दशकों में जिस तेज़ी से हुआ है, उसने बहुजन राजनीति के लिए एक नई चुनौती पैदा कर दी है। भारतीय जनता पार्टी (BJP) ने न केवल सवर्ण हिंदू वर्ग को संगठित किया, बल्कि ओबीसी और दलितों के बीच भी गहरी पैठ बनाई। बीजेपी ने “सबका साथ, सबका विकास” जैसे नारों के माध्यम से बहुजन समाज के एक बड़े हिस्से को अपने पक्ष में कर लिया, जिससे बहुजन आधारित दलों का परंपरागत वोट बैंक खिसकने लगा। सामाजिक न्याय की राजनीति, जो कभी जातिगत शोषण के विरुद्ध संघर्ष का केंद्र थी, अब सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और धार्मिक पहचान की राजनीति के सामने असहज स्थिति में आ गई है।

बहुजन राजनीति का मूल आधार यह रहा है कि सामाजिक बराबरी और सत्ता में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए। लेकिन जब हिंदुत्व की विचारधारा बहुजन समुदाय को धर्म और राष्ट्रवाद के नाम पर एक व्यापक सांस्कृतिक ढांचे में समाहित कर लेती है, तो राजनैतिक संघर्ष की दिशा बदल जाती है। अब बहुजन नेतृत्व को यह तय करना है कि क्या वे हिंदुत्व की शक्तियों से टकराकर अपनी अलग राजनैतिक और सामाजिक पहचान को बनाए रखें या उसके साथ किसी तरह का सामंजस्य स्थापित करें।

बहुजन विचारधारा मूलतः ब्राह्मणवाद और वर्णव्यवस्था के विरुद्ध थी, जबकि हिंदुत्व की विचारधारा इन तत्वों को सांस्कृतिक एकता और गौरव के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करती है। ऐसे में दोनों विचारधाराओं के बीच वैचारिक संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। यदि बहुजन राजनीति इस टकराव से बचती है या हिंदुत्व के साथ समझौता करती है, तो वह अपनी मूल आत्मा खो सकती है। दूसरी ओर, यदि वह इस संघर्ष को वैचारिक दृढ़ता और जनसंपर्क के माध्यम से लड़ती है, तो नए सामाजिक गठबंधनों और विचारधारात्मक स्पष्टता के बल पर अपना स्थान पुनः प्राप्त कर सकती है।

आज जब राष्ट्रवाद का स्वर ऊँचा हो रहा है और धर्म आधारित ध्रुवीकरण राजनीति की मुख्यधारा बन चुका है, तब बहुजन राजनीति को अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए अपने सामाजिक आधार को पुनः सक्रिय करना होगा। उसे वर्ग और जाति की चेतना के साथ-साथ आर्थिक और शैक्षिक मुद्दों पर भी जोर देना होगा, ताकि उसकी राजनीति सिर्फ प्रतिक्रियात्मक न होकर रचनात्मक और विकल्पपरक बन सके। इसी संघर्ष और पुनर्संरचना की प्रक्रिया से होकर बहुजन नेतृत्व सत्ता में पहुँचने की नई राह बना सकता है।

युवा नेतृत्व और भविष्य की संभावनाएँ

कांशीराम की राजनैतिक विरासत को आगे बढ़ाने के लिए वर्तमान समय में सबसे बड़ी आशा नए और उभरते हुए बहुजन युवा नेताओं से है। जब कांशीराम ने बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की थी, तो उनका लक्ष्य केवल सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि समाज के हाशिए पर खड़े समुदायों को राजनैतिक रूप से जागरूक और सक्रिय बनाना था। उनके निधन के बाद यह जिम्मेदारी मायावती के नेतृत्व में जारी रही, लेकिन समय के साथ

आंदोलन का वह धारापन कमजोर हुआ, जो पहले सामाजिक क्रांति का संकेतक था। इसी पृष्ठभूमि में अब एक नई पीढ़ी सामने आ रही है, जो बहुजन राजनीति को नए युग में पुनर्जीवित करने की कोशिश कर रही है।

आज के राजनैतिक परिदृश्य में चंद्रशेखर आज़ाद (आजाद समाज पार्टी), जिग्नेश मेवाणी (गुजरात के विधायक), प्रकाश आंबेडकर (वंचित बहुजन आघाड़ी), और कुछ हद तक अकाश आनंद (BSP से जुड़े) जैसे युवा चेहरे बहुजन राजनीति के भविष्य के संभावित स्तंभ के रूप में देखे जा रहे हैं। ये नेता न केवल जाति आधारित भेदभाव के विरुद्ध मुखर हैं, बल्कि वे संविधानिक मूल्यों, लोकतांत्रिक अधिकारों, और सामाजिक न्याय की बात भी तेज़ी से उठा रहे हैं। इनमें से कई नेता ज़मीनी आंदोलनों से उभरे हैं और उन्होंने शोषित वर्गों के बीच जाकर अपनी पहचान बनाई है, जिससे इनकी स्वीकार्यता तेज़ी से बढ़ी है।

युवाओं की यह नई पीढ़ी केवल जातिगत वोट बैंक की राजनीति से ऊपर उठकर समावेशी विकास, शिक्षा सुधार, बेरोज़गारी, डिजिटल असमानता, और महिला सशक्तिकरण जैसे मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रित कर रही है। यह बदलाव इसीलिए भी आवश्यक है क्योंकि आज का युवा मतदाता केवल जाति के आधार पर वोट नहीं करता, बल्कि वह शिक्षा, रोज़गार, सम्मान और अधिकारों को लेकर सजग है। इसलिए, इन युवा बहुजन नेताओं के लिए यह चुनौती और अवसर दोनों है कि वे कांशीराम की मूल विचारधारा को ध्यान में रखते हुए अपने राजनैतिक अभियान को व्यापक बनाएँ।

इन नेताओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और संगठनात्मक अहंकार से ऊपर उठकर एकजुट हों। अगर ये युवा नेता आपसी मतभेदों को दूर कर एक साझा मंच पर आ

सकें, तो यह एक ऐसा नया सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन खड़ा कर सकता है जो सत्ता के समीकरणों को पूरी तरह बदलने की क्षमता रखता है। इसके लिए उन्हें केवल सड़क पर आंदोलन करना ही नहीं, बल्कि नीति निर्माण, संगठन विस्तार और प्रभावशाली संचार रणनीति पर भी ध्यान देना होगा।

बहुजन राजनीति को फिर से सशक्त बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि नए युवा नेतृत्व में वैचारिक स्पष्टता, सामाजिक प्रतिबद्धता और जनसंवाद की क्षमता हो। उन्हें न केवल चुनावी राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए, बल्कि शिक्षा, तकनीक, सामाजिक न्याय और वैश्विक आर्थिक संदर्भों को भी समझकर अपनी राजनीति को अधिक प्रासंगिक बनाना होगा। यह पीढ़ी कांशीराम के 'राजनैतिक सत्ता ही मुख्य चाबी है' के सिद्धांत को 21वीं सदी की वास्तविकताओं में ढालने की क्षमता रखती है-बशर्ते वह संगठित, दूरदर्शी और ईमानदार बनी रहे।

सामाजिक और आर्थिक नीतियों में बदलाव की योजना

कांशीराम के बहुजन आंदोलन का उद्देश्य केवल राजनैतिक सत्ता की प्राप्ति नहीं था, बल्कि सत्ता के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक ढाँचे में मूलभूत बदलाव लाना भी था। यह सपना मायावती के शासनकाल में आंशिक रूप से साकार हुआ, जब उन्होंने उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री के रूप में सत्ता संभाली, लेकिन उस परिवर्तन की गति और गहराई वह नहीं थी जिसकी अपेक्षा कांशीराम ने की थी। मायावती ने सरकारी योजनाओं और आरक्षणों के माध्यम से बहुजन समाज को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया, लेकिन ये प्रयास अक्सर प्रशासनिक सीमाओं, संसाधनों की कमी और राजनैतिक विरोध के चलते सीमित हो गए।

आज, जब नया बहुजन नेतृत्व उभर रहा है, तो यह आवश्यक है कि वे न केवल सत्ता की राजनीति करें बल्कि एक दीर्घकालिक सामाजिक-आर्थिक एजेंडा भी तैयार करें। इसके अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वरोजगार, भूमि सुधार, और महिलाओं की भागीदारी जैसे मुद्दों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। बहुजन समाज में व्यापक बेरोजगारी, भूमि अधिकारों की कमी, और शिक्षा की असमान पहुँच जैसे मुद्दे अब भी प्रमुख हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए केवल घोषणाएँ या आरक्षण पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि एक सशक्त नीति ढाँचा, निगरानी तंत्र, और जनभागीदारी आधारित क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त, बहुजन नेतृत्व को अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों में निवेश सुनिश्चित करना होगा जहाँ उनके समुदाय के लोग पहले से ही परंपरागत रूप से सक्रिय हैं—जैसे हथकरघा, कृषि, डेयरी, कुटीर उद्योग और तकनीकी सेवाएँ। इसके लिए उन्हें बैंकिंग प्रणाली में बहुजन उद्यमियों के लिए आसान ऋण व्यवस्था, प्रशिक्षण संस्थान और मार्केटिंग सुविधाएँ उपलब्ध करानी होंगी। इसी के साथ, आर्थिक नीतियों को ऐसे ढंग से तैयार करना होगा जिससे बहुजन समाज आत्मनिर्भर बन सके और सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को दूर किया जा सके।

इस तरह, केवल चुनाव जीतना या सरकार बनाना ही कांशीराम के सपने की पूर्ति नहीं है; असली सफलता तब होगी जब बहुजन नेतृत्व सत्ता में रहते हुए समाज के सबसे निचले वर्ग तक बदलाव पहुँचाए, और ऐसे स्थायी नीतिगत परिवर्तन लाए जो अगली पीढ़ियों के लिए सम्मानजनक और समान अवसर सुनिश्चित कर सकें।

सरकार बनाने की राह में चुनौतियाँ

बहुजन नेतृत्व के लिए सत्ता तक की राह कभी आसान नहीं रही है, लेकिन हाल के वर्षों में यह और भी जटिल होती गई है। सबसे बड़ी चुनौती वर्तमान समय में वोट बैंक की बिखरती हुई राजनीति है। 1990 के दशक में जो बहुजन समाज एकजुट होकर अपने मताधिकार का उपयोग एक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु करता था, आज वह विविध दलों में विभाजित हो गया है। यह विभाजन न केवल विचारधारा के स्तर पर बल्कि सामाजिक चेतना के स्तर पर भी देखा जा सकता है। विभिन्न दलों ने बहुजन समाज के विभिन्न वर्गों को अपने पक्ष में करने के लिए विशेष नीतियाँ और योजनाएँ अपनाईं, जिससे समुदाय की एकता कमजोर हुई और राजनैतिक प्रतिनिधित्व बिखरने लगा।

बहुजन समाज पार्टी (BSP), जो कभी बहुजन शक्ति का केंद्र बिंदु हुआ करती थी, अब कई कारणों से हाशिए पर चली गई है। इसके परिणामस्वरूप दलित, पिछड़ा, आदिवासी, मुस्लिम और अन्य वंचित समुदायों के वोट अन्य दलों की ओर स्थानांतरित होने लगे हैं। बहुजन वोट बैंक अब केवल एक दल के अधीन नहीं रहा, बल्कि कई राजनैतिक दलों ने इसे आंशिक रूप से अपने पक्ष में मोड़ लिया है। भाजपा, कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, आरजेडी, एनसीपी, टीएमसी, और क्षेत्रीय दलों ने अपनी-अपनी रणनीतियों से बहुजन वर्गों को लुभाने की भरसक कोशिश की है।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक मीडिया, नकली विमर्शों, धार्मिक ध्रुवीकरण और व्यक्तिवादी राजनीति ने भी बहुजन एकता को कमजोर किया है। शिक्षा और रोजगार की असमानता के चलते समाज के विभिन्न वर्गों में अलग-अलग आकांक्षाएँ जन्म लेने लगी हैं, जिससे राजनैतिक

प्राथमिकताएँ भी बदलती जा रही हैं। यही कारण है कि सरकार बनाने की प्रक्रिया में बहुजन समाज अब एक निर्णायक शक्ति होते हुए भी अपनी पूर्ण सामूहिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर पा रहा।

एक अन्य बड़ी चुनौती यह भी है कि वर्तमान बहुजन नेतृत्व में संगठनात्मक अनुशासन, दीर्घकालिक दृष्टि और जनसंवाद की कमी दिखाई देती है। जहां कांशीराम जैसे नेताओं ने जमीनी स्तर से कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया और एक आंदोलन खड़ा किया, वहीं आज बहुजन नेतृत्व में निरंतर संवाद और वैचारिक स्थिरता का अभाव है। नई पीढ़ी के नेताओं को यह समझना होगा कि सत्ता केवल नारों और विरोध के माध्यम से प्राप्त नहीं होती, बल्कि इसके लिए दीर्घकालिक संगठन, जमीनी कार्य, व्यापक जनसमर्थन और समावेशी राजनैतिक एजेंडा आवश्यक होता है।

इसके अलावा गठबंधन की राजनीति में भी बहुजन नेतृत्व को स्पष्ट रणनीति के साथ प्रवेश करना होगा। आज सत्ता तक पहुंचने के लिए बहुजन समाज को अन्य दलों के साथ तालमेल, साझा कार्यक्रम और न्यूनतम साझा एजेंडा की आवश्यकता है। लेकिन गठबंधन की प्रक्रिया में अपने मूल मुद्दों और विचारधारा से समझौता न करना भी एक बड़ी चुनौती है। बहुजन नेतृत्व को यह संतुलन साधना होगा कि वे सत्ता में भागीदारी भी करें और साथ ही अपने मूल सिद्धांतों से विचलित भी न हों।

आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर फोकस

बहुजन नेतृत्व के लिए सत्ता तक पहुंचने की राह केवल जातिगत समीकरणों और आरक्षण जैसे पारंपरिक मुद्दों तक सीमित नहीं रह सकती। आज का भारत आर्थिक विषमता, बढ़ती बेरोजगारी, शिक्षा की

असमानता, स्वास्थ्य सेवाओं की दुर्गमता और क्षेत्रीय विकास के असंतुलन जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। यदि बहुजन नेतृत्व को सत्ता में स्थायी और प्रभावी उपस्थिति बनानी है, तो उसे इन आर्थिक और सामाजिक मुद्दों को केंद्र में रखना होगा, जिनका सीधा संबंध बहुजन वर्ग के जीवन से है।

बेरोजगारी, विशेष रूप से युवाओं में, एक गंभीर संकट के रूप में सामने आई है। बहुजन समाज के युवाओं को शिक्षा और प्रशिक्षण के समुचित अवसर नहीं मिल पा रहे हैं, जिससे वे वैश्विक अर्थव्यवस्था की प्रतिस्पर्धा में पिछड़ते जा रहे हैं। यदि बहुजन नेतृत्व रोजगार सृजन के लिए व्यापक योजनाएँ बनाए, स्वरोजगार और स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा दे, और तकनीकी शिक्षा तथा कौशल विकास केंद्रों की स्थापना करे, तो यह न केवल उनकी राजनैतिक विश्वसनीयता बढ़ाएगा, बल्कि समाज के व्यापक वर्ग को प्रत्यक्ष लाभ भी मिलेगा।

शिक्षा सुधार की दिशा में भी ठोस पहल आवश्यक है। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक बहुजन छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, छात्रवृत्तियाँ, और आधुनिक डिजिटल संसाधनों तक पहुँच उपलब्ध कराना चाहिए। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शिक्षा ही वह आधार है, जिससे समाज में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक प्रगति संभव होती है। यदि शिक्षा में सुधार की व्यापक नीति बनाई जाती है, तो बहुजन समाज की आने वाली पीढ़ियाँ अपने अधिकारों को बेहतर समझ सकेंगी और उन्हें प्राप्त करने में सक्षम होंगी।

इसके अतिरिक्त, ग्रामीण विकास, कृषि सुधार, महिला सशक्तिकरण, स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच, और पर्यावरणीय न्याय जैसे मुद्दे भी बहुजन नेतृत्व की प्राथमिकता में शामिल होने चाहिए। यदि इन विषयों को चुनावी

घोषणापत्रों और नीति दस्तावेजों में प्रमुखता दी जाए, तो इससे यह संदेश जाएगा कि बहुजन नेतृत्व केवल अपनी जातीय पहचान तक सीमित नहीं, बल्कि वह एक समावेशी, विकासोन्मुख और उत्तरदायी सरकार की परिकल्पना कर रहा है।

इन सभी पहलों का समग्र प्रभाव यह होगा कि बहुजन नेतृत्व को केवल जातिगत राजनीति का प्रतिनिधि न समझा जाए, बल्कि उसे एक ऐसी राजनैतिक शक्ति के रूप में देखा जाए जो समग्र समाज की बेहतरी के लिए गंभीर, दूरदर्शी और सक्षम है। यही वह बिंदु है जो सत्ता के नए मार्ग खोल सकता है और बहुजन समाज को एक व्यापक वैकल्पिक राजनैतिक मंच प्रदान कर सकता है।

क्या बहुजन सरकार का सपना पूरा होगा?

कांशीराम ने जिस व्यापक दृष्टिकोण से बहुजन समाज के सशक्तिकरण का स्वप्न देखा था, वह केवल सत्ता में भागीदारी तक सीमित नहीं था, बल्कि एक ऐसे शासन की स्थापना की कल्पना थी जो सामाजिक न्याय, समावेशिता और समानता पर आधारित हो। परंतु आज के राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में यह सपना कई नई चुनौतियों से घिरा हुआ है। सत्ता में वापसी की इस राह में सबसे बड़ी जरूरत है – एकीकृत बहुजन मोर्चे की, जो केवल जातीय पहचान या आरक्षण की सीमाओं से परे जाकर समग्र सामाजिक-आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित हो।

आज की राजनैतिक वास्तविकता में यह स्पष्ट होता जा रहा है कि केवल जातीय गोलबंदी से चुनाव जीतना कठिन है। बहुजन समाज को अब ऐसी रणनीति अपनानी होगी जो रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला सशक्तिकरण, तकनीकी समावेशन, किसानों की भलाई और उद्यमिता जैसे मुद्दों पर स्पष्ट नीतियाँ प्रस्तुत कर सके। यदि बहुजन नेतृत्व इन

बुनियादी नीतिगत क्षेत्रों पर केंद्रित होकर नीति निर्माण करे, तो यह समाज के सभी वर्गों – विशेषकर युवाओं, महिलाओं, बेरोजगारों और ग्रामीण गरीबों – में अपनी विश्वसनीयता पुनः स्थापित कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, यह भी ज़रूरी है कि विभिन्न दलों और नेताओं के बीच वैचारिक सहमति स्थापित हो। आज बहुजन विचारधारा से जुड़े कई दल और संगठन हैं, लेकिन वे बिखरे हुए हैं और आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण एक साझा मंच नहीं बना पा रहे। यदि सभी समान विचारधारा वाले संगठन और युवा नेतृत्व अपने व्यक्तिगत मतभेदों को त्याग कर एक साझा न्यूनतम कार्यक्रम के तहत एकजुट हों, तो यह मोर्चा केंद्र की सत्ता को चुनौती देने की स्थिति में आ सकता है।

राजनीति में केवल भावनात्मक अपील या जातिगत वादे पर्याप्त नहीं होते, जब तक उन्हें व्यावहारिक योजनाओं और प्रशासनिक क्षमता से नहीं जोड़ा जाए। इसलिए एक भावी बहुजन सरकार को चाहिए कि वह अपने घोषणापत्र में रोजगार की ठोस योजनाएँ, शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण सुधार, डिजिटल समावेशन, पारदर्शी प्रशासन और सामाजिक सुरक्षा को प्राथमिकता दे।

यदि नेतृत्व इस समावेशी और आधुनिक राजनैतिक सोच को अपनाता है, तो निश्चित रूप से एक बहुजन सरकार का सपना साकार हो सकता है। यह सपना तभी पूरा होगा जब बहुजन समाज केवल विरोध की राजनीति नहीं, बल्कि निर्माण की राजनीति में विश्वास करेगा – एक ऐसी राजनीति जो देश के भविष्य को आकार दे, न कि केवल अतीत के घावों को दोहराए। यही वह बिंदु है जहाँ से बहुजन राजनीति न केवल पुनर्जीवित हो सकती है, बल्कि भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में निर्णायक शक्ति बनकर उभर सकती है।

मान्यवर संगठन से सत्ता तक